प्रकाशक :
अखिल भारतीय सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ
जोधपुर

शाखा कार्यालय
नेहरू गेट बाहर, ब्यावर (राजस्थान)
✆: (01462) 251216, 257699, 250328

भगवती सूत्र
भाग ३

(शुद्ध मूल पाठ, कठिन शब्दार्थ, भावार्थ एवं विवेचन सहित)

आवरण सौजन्य
विद्या बाल मंडली सोसायटी, मेरठ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

श्री अखिल भारतीय सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ साहित्य रत्न माला का २१ वाँ रत्न

गणधर भगवान् सुधर्मस्वामि प्रणीत

भगवती सूत्र

(व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्र)

तृतीय भाग

(शतक ७-८)

सम्पादक

पं. श्री घेवरचन्दजी बांठिया "वीरपुत्र"

(स्वर्गीय पंडित श्री वीरपुत्र जी महाराज)

न्याय व्याकरणतीर्थ, जैन सिद्धांत शास्त्री

प्रकाशक

श्री अखिल भारतीय सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ, जोधपुर

शाखा-नेहरू गेट बाहर, ब्यावर-305901

(01462) 251216, 257699 Fax No. 250328

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

द्रव्य सहायक

उदारमना श्रीमान् सेठ जशवंतलाल भाई शाह, बम्बई

प्राप्ति स्थान

१. श्री अ. भा. सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ, सिटी पुलिस, **जोधपुर** ☎ **2626145**
२. शाखा - अ. भा. सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ, नेहरू गेट बाहर, **ब्यावर** ☎ **251216**
३. महाराष्ट्र शाखा - माणके कंपाउंड, दूसरी मंजिल आंबेड़कर पुतले के बाजू में, **मनमाड़**
४. कर्नाटक शाखा - श्री सुधर्म जैन पौषध शाला भवन, ३८ अप्पुराव रोड़ छठा मेन रोड़
चामराजपेट, **बैंगलोर-१८** ☎ **25928439**
५. श्री जशवन्तभाई शाह एदुन बिल्डिंग पहली धोबी तलावलेन पो० बॉ० नं० 2217, **बम्बई-2**
६. श्रीमान् हस्तीमल जी किशनलालजी जैन प्रीतम हाऊ० कॉ० सोसा० ब्लॉक नं० १०
स्टेट बैंक के सामने, **मालेगांव (नासिक)** ☎ **252097**
७. श्री एच. आर. डोशी जी-३९ बस्ती नारनौल अजमेरी गेट, **दिल्ली-६** ☎ **23233521**
८. श्री अशोकजी एस. छाजेड़, १२१ महावीर क्लॉथ मार्केट, **अहमदाबाद** ☎ **5461234**
९. श्री सुधर्म सेवा समिति भगवान् महावीर मार्ग, **बुलडाणा**
१०. प्रकाश पुस्तक मंदिर, रायजी मोंढा की गली, पुरानी धानमंडी, **भीलवाड़ा** ☎ **327788**
११. श्री सुधर्म जैन आराधना भवन २४ ग्रीन पार्क कॉलोनी साउथ तुकोगंज, **इन्दौर**
१२. श्री विद्या प्रकाशन मन्दिर, ट्रांसपोर्ट नगर, **मेरठ** (उ. प्र.)
१३. श्री अमरचन्दजी छाजेड़, १०३ वाल टेक्स रोड़, **चैन्नई** ☎ **25357775**
१४. श्री संतोषकुमार बोथरा वर्द्धमान स्वर्ण अलंकार ३९४, शांपिग सेन्टर, **कोटा** ☎ **2360950**

सम्पूर्ण सेट मूल्य : ४००-००

पाँचवीं आवृत्ति
१०००

वीर संवत् २५३४
विक्रम संवत् २०६४
जनवरी २००८

मुद्रक - स्वास्तिक प्रिन्टर्स प्रेम भवन हाथी भाटा, अजमेर ☎ *2423295*

Jain Education International   For Personal & Private Use Only   www.jainelibrary.org

निवेदन

सम्पूर्ण जैन आगम साहित्य में भगवती सूत्र विशाल रत्नाकर है, जिसमें विविध रत्न समाये हुए हैं। जिनकी चर्चा प्रश्नोत्तर के माध्यम से इसमें की गई है। प्रस्तुत तृतीय भाग में सातवें और आठवें शतक का निरूपण हुआ है। प्रत्येक शतक में विषय सामग्री क्या है? इसका संक्षेप में यहाँ वर्णन किया गया है -

शतक ७ - सातवें शतक में १० उद्देशक हैं, उनमें से पहले उद्देशक में आहारक और अनाहारक सम्बन्धी वर्णन है। दूसरे उद्देशक में विरति अर्थात् प्रत्याख्यान सम्बन्धी वर्णन है। तीसरे उद्देशक में वनस्पति आदि स्थावर जीवों का वर्णन है। चौथे उद्देशक में संसारी जीवों का वर्णन है। पांचवें उद्देशक में खेचर जीवों का वर्णन है। छठे उद्देशक में आयुष्य सम्बन्धी, सातवें उद्देशक में साधु आदि सम्बन्धी, आठवें उद्देशक में आयुष्य सम्बन्धी, नववें उद्देशक में असंवृत अर्थात् प्रमत्त-साधु आदि सम्बन्धी और दसवें उद्देशक में कालोदायी आदि अन्यतीर्थिक सम्बन्धी वर्णन है।

शतक ८ - आठवें शतक में १० उद्देशक हैं - १. पुद्गल के परिणाम के विषय में प्रथम उद्देशक है। २. आशीविष आदि के सम्बन्ध में दूसरा उद्देशक है। ३. वृक्षादि के सम्बन्ध में तीसरा उद्देशक है। ४. कायिकी आदि क्रियाओं के सम्बन्ध में चौथा उद्देशक है। ५. आजीविक के विषय में पाँचवां उद्देशक है। ६. प्रासुक दान आदि के विषय में छठा उद्देशक है। ७. अदत्तादान आदि के विषय में सातवाँ उद्देशक है। ८. प्रत्यनीक - गुर्वादि के द्वेषी विषयक आठवाँ उद्देशक है। ९. बन्ध-प्रयोग बन्ध आदि के विषय में नौवाँ उद्देशक है। १०. आराधना आदि के विषय में दसवाँ उद्देशक है।

उक्त दोनों शतक एवं उद्देशकों की विशेष जानकारी के लिए पाठक बंधुओं को इस पुस्तक का पूर्ण रूपेण पारायण करना चाहिये।

संघ की आगम बत्तीसी प्रकाशन में आदरणीय ***श्री जशवंतभाई शाह, मुम्बई*** निवासी का मुख्य सहयोग रहा है। आप एवं आपकी धर्म सहायिका ***श्रीमती मंगलाबेन शाह***

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

की सम्यग्ज्ञान के प्रचार-प्रसार में गहरी रुचि है। आपकी भावना है कि संघ द्वारा प्रकाशित सभी आगम **अर्द्ध मूल्य** में पाठकों को उपलब्ध हो तदनुसार आप इस योजना के अंतर्गत सहयोग प्रदान करते रहे हैं। अतः संघ आपका आभारी है।

आदरणीय शाह साहब तत्त्वज्ञ एवं आगमों के अच्छे ज्ञाता हैं। आप का अधिकांश समय धर्म साधना, आराधना में बीतता है। प्रसन्नता एवं गर्व तो इस बात का है कि आप स्वयं तो आगमों का पठन-पाठन करते ही हैं, साथ ही आपके सम्पर्क में आने वाले चतुर्विध संघ के सदस्यों को भी आगम की वाचनादि देकर जिनशासन की खूब प्रभावना करते हैं। आज के इस हीयमान युग में आप जैसे तत्त्वज्ञ श्रावक रत्न का मिलना जिनशासन के लिए गौरव की बात है। आपके पुत्र रत्न ***मयंकभाई शाह एवं श्रेयांसभाई शाह*** भी आपके पद चिह्नों पर चलने वाले हैं। आप सभी को आगमों एवं थोकड़ों का गहन अभ्यास है। आपके धार्मिक जीवन को देख कर प्रमोद होता है। आप चिरायु हों एवं शासन की प्रभावना करते रहें, इसी शुभ भावना के साथ।

इसके प्रकाशन में जो कागज काम में लिया गया है वह उच्च कोटि का मेफलिथो है साथ ही पक्की सेक्शन बाईडिंग है बावजूद *आदरणीय शाह साहब* के आर्थिक सहयोग के कारण **अर्द्ध मूल्य** ही रखा गया है।

संघ की आगम बत्तीसी प्रकाशन योजना के अन्तर्गत भगवती सूत्र भाग ३ की यह पांचवीं आवृत्ति **श्रीमान् जशवंतलाल भाई शाह, मुम्बई** निवासी के अर्थ सहयोग से ही प्रकाशित हो रही है। संघ आपका आभारी है। यद्यपि कागज, प्रकाशन एवं पारिश्रमिक आदि में अत्यधिक वृद्धि हो गई है किन्तु आपके आर्थिक सहयोग के कारण भगवती सूत्र के सातों भागों में मात्र रु० १००) की वृद्धि की गई है। जो कि अन्य प्रकाशनों की तुलना में विशेष नहीं है। पाठक बन्धुओं से निवेदन है कि वे इस पांचवीं आवृत्ति का अधिक से अधिक लाभ उठावें।

ब्यावर (राज.) भाग ३ **संघ सेवक**

दिनांकः १५-१-२००८ **नेमीचन्द बांठिया**

अ. भा. सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ, जोधपुर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अस्वाध्याय

निम्नलिखित बत्तीस कारण टालकर स्वाध्याय करना चाहिये।

आकाश सम्बन्धी १० अस्वाध्याय	काल मर्यादा
१. बड़ा तारा टूटे तो-	एक प्रहर
२. दिशा-दाह *	जब तक रहे
३. अकाल में मेघ गर्जना हो तो-	दो प्रहर
४. अकाल में बिजली चमके तो-	एक प्रहर
५. बिजली कड़के तो-	आठ प्रहर
६. शुक्ल पक्ष की १, २, ३ की रात-	प्रहर रात्रि तक
७. आकाश में यक्ष का चिह्न हो-	जब तक दिखाई दे
८-९. काली और सफेद धूंअर-	जब तक रहे
१०. आकाश मंडल धूलि से आच्छादित हो-	जब तक रहे

औदारिक सम्बन्धी १० अस्वाध्याय	
११-१३. हड्डी, रक्त और मांस,	ये तिर्यंच के ६० हाथ के भीतर हो। मनुष्य के हो, तो १०० हाथ के भीतर हो। मनुष्य की हड्डी यदि जली या धुली न हो, तो १२ वर्ष तक।
१४. अशुचि की दुर्गंध आवे या दिखाई दे-	तब तक
१५. श्मशान भूमि-	सौ हाथ से कम दूर हो, तो।

---

* आकाश में किसी दिशा में नगर जलने या अग्नि की लपटें उठने जैसा दिखाई दे और प्रकाश हो तथा नीचे अंधकार हो, वह दिशा-दाह है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१६. चन्द्र ग्रहण-	खंड ग्रहण में ८ प्रहर, पूर्ण हो तो १२ प्रहर

(चन्द्र ग्रहण जिस रात्रि में लगा हो उस रात्रि के प्रारम्भ से ही अस्वाध्याय गिनना चाहिये।)

१७. सूर्य ग्रहण-	खंड ग्रहण में १२ प्रहर, पूर्ण हो तो १६ प्रहर

(सूर्य ग्रहण जिस दिन में कभी भी लगे उस दिन के प्रारंभ से ही उसका अस्वाध्याय गिनना चाहिये।)

१८. राजा का अवसान होने पर,	जब तक नया राजा घोषित न हो
१९. युद्ध स्थान के निकट	जब तक युद्ध चले
२०. उपाश्रय में पंचेन्द्रिय का शव पड़ा हो,	जब तक पड़ा रहे

(सीमा तिर्यंच पंचेन्द्रिय के लिए ६० हाथ, मनुष्य के लिए १०० हाथ। उपाश्रय बड़ा होने पर इतनी सीमा के बाद उपाश्रय में भी अस्वाध्याय नहीं होता। उपाश्रय की सीमा के बाहर हो तो यदि दुर्गन्ध न आवे या दिखाई न देवे तो अस्वाध्याय नहीं होता।)

२१-२४. आषाढ़, आश्विन, कार्तिक और चैत्र की पूर्णिमा	दिन रात
२५-२८. इन पूर्णिमाओं के बाद की प्रतिपदा-	दिन रात
२९-३२. प्रातः, मध्याह्न, संध्या और अर्द्ध रात्रि- इन चार सन्धिकालों में-	१-१ मुहूर्त्त

उपरोक्त अस्वाध्याय को टालकर स्वाध्याय करना चाहिए। खुले मुंह नहीं बोलना तथा सामायिक, पौषध में दीपक के उजाले में नहीं वांचना चाहिए।

नोट - नक्षत्र २८ होते हैं उनमें से आर्द्रा नक्षत्र से स्वाति नक्षत्र तक नौ नक्षत्र वर्षा के गिने गये हैं। इनमें होने वाली मेघ की गर्जना और बिजली का चमकना स्वाभाविक है। अतः इसका अस्वाध्याय नहीं गिना गया है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शुद्धि-पत्र

पृष्ट	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१०९५	१	'वोच्तिण्णा'	'वोच्छिण्णा'
१०९५	८	हहां	यहां
१०९५	१२	णिण्गंथे	णिग्गंथे
१११५	१७	उत्तरगुणप्रत्वाख्यान	उत्तरगुणप्रत्याख्यान
१११६	२०	आमकल्याण	आत्म कल्याण
११७१	१४	धौर	और
११९२	६	एयमाणत्तयं	एयमाणत्तियं
१२०७	१८	पहले पहले	पहले
१२०९	८	मण्णाहृपट्टमुयइ	सण्णाहृपट्ट मुयइ
१२१८	१८	णूणं ते	णूणं
१२२३	१४	अठार	अठारह
१२२८	१६	कुद्वस्स	कुद्धस्स
१२३५	७	णेरइयांपचिंदिय....	णेरइय पंचिंदिय.....
१२३७	१०	तियॅच-	तिर्यंच-
१२७१	७	काय-परिणत	काय-प्रयोगपरिणत
१२७६	७	रुक्षस-पर्शपने	रूक्ष-स्पर्शपने
१२८३	२३	इसी प्रकार मृषामनः प्रयोग-परिणत में भी कहना चाहिए।	०
१२८४	१३	पओगपरिगए	पओगपरिणए
१३१३	१५	णो अपज्जत्तगा	णो अपज्जत्तगा णं
१३३६	२६	ऋतु	ऋजु
१३१३	९	में	से
१४०१	१८	तमोकम्मं	तवोकम्मं
१४१४	८	शरीर को	शरीर की
१४२५	अंतिम	उल्लंधन	उल्लंघन
१४४१	१	पुच्च	पडुच्च
१४९५	६	व्याराय	व्यापार
१५२८	२६	जीवितों	जीवितों की

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विषयानुक्रमणिका~

शतक ७

क्रमांक	विषय	पृष्ठ
	उद्देशक १	
२४७	अनाहारक और अल्पाहारक का काल	१०७८
२४८	लोक संस्थान	१०८१
२४९	श्रमणोपासक की सांपरायिकी क्रिया	१०८२
२५०	श्रमणोपासक के उदार व्रत	१०८३
२५१	श्रमणों को प्रतिलाभने का लाभ	१०८५
२५२	कर्म रहित जीव की गति	१०८७
२५३	दुःख से व्याप्त	१०९१
२५४	ऐर्यापथिकी और सांपरायिकी क्रिया	१०९३
२५५	अंगारादि दोष	१०९५
२५६	क्षेत्रातिक्रान्तादि दोष	१०९९
२५७	शस्त्रातीत आदि दोष	११०१
	(अ) उद्गम के सोलह दोष	११०४
	(ब) उत्पादना के सोलह दोष	११०६
	(स) एषणा के दस दोष	११०७
	उद्देशक २	
२५८	सुप्रत्याख्यान दुष्प्रत्याख्यान	११०९
२५९	मूलोत्तर गुण प्रत्याख्यान	१११३
२६०	प्रत्याख्यानी अप्रत्याख्यानी	११२०
२६१	क्या जीव शाश्वत है ?	११२८
	उद्देशक ३	
२६२	वर्षादि ऋतुओं में वनस्पति का आहार	११३०
२६३	कृष्णादि लेश्या और अल्पाधिक कर्म	११३४
२६४	वेदना और निर्जरा	११३७
२६५	शाश्वत अशाश्वत नैरयिक	११४३
	उद्देशक ४	
२६६	संसार समापन्नक जीव	११४५
	उद्देशक ५	
२६७	खेचर तिर्यंच के भेद	११४७
	उद्देशक ६	
२६८	आयु का बंध और वेदन कहां ?	११४९
२६९	आभोगनिर्वर्तितादि आयु	११५३
२७०	कर्कश अकर्कश वेदनीय	११५३
२७१	साता-असाता वेदनीय	११५६
२७२	भरत में दुषम-दुषमा काल	११५८
२७३	छठे आरे के मनुष्यों का स्वरूप	११६२
	उद्देशक ७	
२७४	संवृत्त अनगार और क्रिया	११६८
२७५	काम-भोग	११६९
२७६	छद्मस्थ और केवली	११७५

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्रमांक विषय	पृष्ठ
२७७ अकाम वेदना का वेदन	११७८

उद्देशक ८

२७८ छद्मस्थ सिद्ध नहीं होता	११८२
२७९ पाप दुःखदायक	११८२
२८० अप्रत्याख्यानिकी क्रिया आदि	११८६
२८१ आधाकर्म का फल	११८७

उद्देशक ९

२८२ असंवृत अनगार	११८८
२८३ महाशीला-कंटक संग्राम	११९०
२८४ रथ-मूसल संग्राम	११९९

उद्देशक १०

२८५ कालोदायी की की तत्त्वचर्चा और प्रव्रज्या	१२१४
२८६ पाप और पुण्य कर्म और फल	१२२१
२८७ अग्नि के जलाने बुझाने की क्रिया	१२२५
२८८ अचित्त पुद्गलों का प्रकाश	१२२८

शतक ८

उद्देशक १

२८९ पुद्गलों का प्रयोग-परिणतादि स्वरूप	१२३२
२९० मिश्र-परिणत पुद्गल विषयक नौ दंडक	१२५४
२९१ विस्रसा-परिणत पुद्गल	१२५५
२९२ एक द्रव्य परिणाम	१२५६
२९३ दो द्रव्यों के परिणाम	१२७६
२९४ तीन द्रव्यों के परिणाम	१२८१
२९५ चार आदि द्रव्यों के परिणाम	१२८४
२९६ परिणामों का अल्प बहुत्व	१२८७

उद्देशक २

२९७ आशीविष	१२८८
२९८ छद्मस्थ द्वारा अज्ञेय	१२९६
२९९ ज्ञान के भेद	१२९८
३०० ज्ञानी अज्ञानी	१३०४
३०१ ज्ञान अज्ञान की भजना के बीस द्वार	१३०७
३०२ ज्ञान-दर्शनादि लब्धि	१३२०
३०३ योग उपयोगादि में ज्ञान अज्ञान	१३४४
३०४ ज्ञान की व्यापकता (विषय द्वार)	१३५१
३०५ ज्ञानादि का काल	१३५७
३०६ ज्ञान-अज्ञान के पर्याय	१३५[illegible]

उद्देशक ३

३०७ वृक्ष के भेद	१३६७
३०८ जीव प्रदेशों पर शस्त्रादि का स्पर्श	१३६९
३०९ आठ पृथ्वियों का उल्लेख	१३७१

उद्देशक ४

३१० पाँच क्रिया	१३७३

उद्देशक ५

३११ श्रावक के भाण्ड	१३७४

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्रमांक	विषय	पृष्ठ
३१२	श्रावक व्रत के भंग	१३७८
३१३	आजीविकोपासक और श्रमणोपासक	१३८६

उद्देशक ६

क्रमांक	विषय	पृष्ठ
३१४	श्रमण-अश्रमण के प्रतिलाभ का फल	१३९२
३१५	दूसरों के लिये प्राप्त पिण्ड का उपभोग	१३९५
३१६	अकृत्य सेवी आराधक ?	१३९९
३१७	दीपक जलता है या बत्ती ?	१४०६
३१८	क्रियाएँ कितनी लगती हैं ?	१४०७

उद्देशक ७

क्रमांक	विषय	पृष्ठ
३१९	अन्य तीर्थिक और स्थविर संवाद	१४१५

उद्देशक ८

क्रमांक	विषय	पृष्ठ
३२०	प्रत्यनीक	१४२८
३२१	व्यवहार के भेद	१४३२
३२२	ऐर्यापथिक और सांपरायिक बन्ध	१४३५
३२३	कर्म प्रकृति और परीषह	१४५१
३२४	सूर्य और उसका प्रकाश	१४६२

उद्देशक ९

क्रमांक	विषय	पृष्ठ
३२५	प्रयोग और विस्रसा बंध	१४६६
३२६	प्रयोग बंध	१४७५
३२७	शरीर बंध	१४८१
३२८	वैक्रिय शरीर प्रयोग बंध	१४९८
३२९	आहारक शरीर प्रयोग बंध	१५११
३३०	तैजस्-शरीर प्रयोग बंध	१५१५
३३१	कार्मण-शरीर प्रयोग बंध	१५१८
३३२	शरीर बंध का पारस्परिक सम्बन्ध	१५२९
३३३	बंधकों का अल्पबहुत्व	१५३५

उद्देशक १०

क्रमांक	विषय	पृष्ठ
३३४	श्रुत और शील के आराधक	१५३७
३३५	जघन्यादि आराधना और आराधक	१५४१
३३६	आराधकों के शेष भव	१५४५
३३७	पुद्गल का वर्णादि परिणाम	१५४७
३३८	पुद्गलास्तिकाय के प्रदेश	१५४९
३३९	लोकाकाश और जीव के प्रदेश	१५५१
३४०	कर्म-वर्गणाओं से आबद्ध जीव	१५५२
३४१	कर्मों का पारस्परिक संबंध	१५५६
३४२	जीव पुद्गल है या पुद्गली ?	१५६५

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

श्री अ० भा० सुधर्म जैन सं० रक्षक संघ, जोधपुर आगम बत्तीसी प्रकाशन योजना के अन्तर्गत प्रकाशित आगम

अंग सूत्र

क्रं. नाम आगम	मूल्य
१. आचारांग सूत्र भाग-१-२	५५-००
२. सूयगडांग सूत्र भाग-१,२	६०-००
३. स्थानांग सूत्र भाग-१, २	६०-००
४. समवायांग सूत्र	२५-००
५. भगवती सूत्र भाग १-७	३००-००
६. ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र भाग-१, २	८०-००
७. उपासकदशांग सूत्र	२०-००
८. अन्तकृतदशा सूत्र	२५-००
९. अनुत्तरोपपातिक दशा सूत्र	१५-००
१०. प्रश्नव्याकरण सूत्र	३५-००
११. विपाक सूत्र	३०-००

उपांग सूत्र

१. उववाइय सुत्त	२५-००
२. राजप्रश्नीय सूत्र	२५-००
३. जीवाजीवाभिगम सूत्र भाग-१,२	८०-००
४. प्रज्ञापना सूत्र भाग-१,२,३,४	१६०-००
५. जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति	५०-००
६-७. चन्द्रप्रज्ञप्ति-सूर्यप्रज्ञप्ति	२०-००
८-१२. निरयावलिका (कल्पिका, कल्पवतंसिका, पुष्पिका, पुष्पचूलिका, वृष्णिदशा)	२०-००

मूल सूत्र

१. दशवैकालिक सूत्र	३०-००
२. उत्तराध्ययन सूत्र भाग-१, २	८०-००
३. नंदी सूत्र	२५-००
४. अनुयोगद्वार सूत्र	५०-००

छेद सूत्र

१-३. त्रीणिछेदसुत्ताणि सूत्र (दशाश्रुतस्कन्ध, बृहत्कल्प, व्यवहार)	५०-००
४. निशीथ सूत्र	५०-००
१. आवश्यक सूत्र	३०-००

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आगम बत्तीसी के अलावा संघ के प्रकाशन

क्रं. नाम	मूल्य
१. अंगपविट्ठसुत्ताणि भाग १	१४-००
२. अंगपविट्ठसुत्ताणि भाग २	४०-००
३. अंगपविट्ठसुत्ताणि भाग ३	३०-००
४. अंगपविट्ठसुत्ताणि संयुक्त	८०-००
५. अनंगपविट्ठसुत्ताणि भाग १	३५-००
६. अनंगपविट्ठसुत्ताणि भाग २	४०-००
७. अनंगपविट्ठसुत्ताणि संयुक्त	८०-००
८. अनुत्तरोववाइय सूत्र	३-५०
९. आयारो	८-००
१०. सूयगडो	६-००
११. उत्तरज्झयणाणि(गुटका)	१०-००
१२. दसवेयालिय सुत्तं (गुटका)	५-००
१३. णंदी सुत्तं (गुटका)	अप्राप्य
१४. चउछेयसुत्ताइं	१५-००
१५. अंतगडदसा सूत्र	१०-००
१६-१८.उत्तराध्ययन सूत्र भाग १,२	४५-००
१९. आवश्यक सूत्र (सार्थ)	१०-००
२०. दशवैकालिक सूत्र	१५-००
२१. जैन सिद्धांत थोक संग्रह भाग १	१०-००
२२. जैन सिद्धांत थोक संग्रह भाग २	१०-००
२३. जैन सिद्धांत थोक संग्रह भाग ३	१०-००
२४. जैन सिद्धांत थोक संग्रह भाग ४	१०-००
२५. जैन सिद्धांत थोक संग्रह संयुक्त	१५-००
२६. पन्नवणा सूत्र के थोकड़े भाग १	८-००
२७. पन्नवणा सूत्र के थोकड़े भाग २	१०-००
२८. पन्नवणा सूत्र के थोकड़े भाग ३	१०-००
२९-३१. तीर्थंकर चरित्र भाग १,२,३	१४०-००
३२. मोक्ष मार्ग ग्रन्थ भाग १	३५-००
३३. मोक्ष मार्ग ग्रन्थ भाग २	३०-००
३४-३६. समर्थ समाधान भाग १,२,३	६०-००
३७. सम्यक्त्व विमर्श	१५-००
३८. आत्म साधना संग्रह	२०-००
३९. आत्म शुद्धि का मूल तत्वत्रयी	२०-००
४०. नवतत्वों का स्वरूप	१५-००
४१. अगार-धर्म	१०-००
४२. Saarth Saamaayik Sootra	अप्राप्य
४३. तत्त्व-पृच्छा	१०-००
४४. तेतली-पुत्र	५०-००
४५. शिविर व्याख्यान	१२-००
४६. जैन स्वाध्याय माला	१८-००
४७. सुधर्म स्तवन संग्रह भाग १	२२-००
४८. सुधर्म स्तवन संग्रह भाग २	१८-००
४९. सुधर्म चरित्र संग्रह	१०-००
५०. लोंकाशाह मत समर्थन	१०-००
५१. जिनागम विरुद्ध मूर्त्ति पूजा	१५-००
५२. बड़ी साधु वंदना	१५-००
५३. तीर्थंकर पद प्राप्ति के उपाय	५-००
५४. स्वाध्याय सुधा	७-००
५५. आनुपूर्वी	१-००
५६. सुखविपाक सूत्र	२-००
५७. भक्तामर स्तोत्र	२-००
५८. जैन स्तुति	७-००
५९. सिद्ध स्तुति	८-००
६०. संसार तरणिका	१०-००
६१. आलोचना पंचक	२-००
६२. विनयचन्द चौबीसी	१-००
६३. भवनाशिनी भावना	२-००
६४. स्तवन तरंगिणी	५-००
६५. सामायिक सूत्र	१-००
६६. सार्थ सामायिक सूत्र	३-००
६७. प्रतिक्रमण सूत्र	३-००
६८. जैन सिद्धांत परिचय	अप्राप्य
६९. जैन सिद्धांत प्रवेशिका	४-५०
७०. जैन सिद्धांत प्रथमा	४-००
७१. जैन सिद्धांत कोविद	३-००
७२. जैन सिद्धांत प्रवीण	४-००
७३. तीर्थंकरों का लेखा	अप्राप्य
७४. जीव-धड़ा	२-००
७५. १०२ बोल का बासठिया	०-५०
७६. लघुदण्डक	३-००
७७. महादण्डक	१-००
७८. तेतीस बोल	२-००
७९. गुणस्थान स्वरूप	३-००
८०. गति-आगति	१-००
८१. कर्म-प्रकृति	१-००
८२. समिति-गुप्ति	२-००
८३. समकित के ६७ बोल	२-००
८४. पच्चीस बोल	३-००
८५. नव-तत्त्व	८-००
८६. सामायिक संस्कार बोध	४-००
८७. मुखवस्त्रिका सिद्धि	३-००
८८. विद्युत् सचित्त तेऊकाय है	३-००
८९. धर्म का प्राण यतना	२-००
९०. सामण्ण सड्ढिधम्मो	अप्राप्य
९१. मंगल प्रभातिका	१.२५
९२. कुगुरु गुर्वाभास स्वरूप	५-००
९३. जैन सिद्धांत थोक संग्रह भाग ५	२०-००
९४. जैन सिद्धांत थोक संग्रह भाग ६	२०-००
९५. जैन सिद्धांत थोक संग्रह भाग ७	२०-००

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णमोत्थुणं समणस्स भगवओ महावीरस्स

गणधर भगवत्सुधर्मस्वामि प्रणीत

भगवती सूत्र

शतक ७

उद्देशक १

१—१ आहार २ विरइ ३ थावर ४ जीवा ५ पक्खी य ६ आउ ७ अणगारे। ८ छउमत्थ ९ असंवुड १० अण्ण-उत्थि दस सत्तमम्मि सए।

कठिन शब्दार्थ—असंवुड—असंवृत्त।

भावार्थ—१ आहार, २ विरति, ३ स्थावर, ४ जीव, ५ पक्षी, ६ आयुष्य, ७ अनगार, ८ छद्मस्थ, ९ असंवृत और १० अन्य-तीर्थिक। सातवें शतक में ये दस उद्देशक हैं।

विवेचन—इस सातवें शतक में दस उद्देशक हैं। उनमें से पहले उद्देशक में आहारक और अनाहारक सम्बन्धी वर्णन है। दूसरे उद्देशक में विरति अर्थात् प्रत्याख्यान सम्बन्धी वर्णन है। तीसरे उद्देशक में वनस्पति आदि स्थावर जीवों का वर्णन है। चौथे उद्देशक में संसारी जीवों का वर्णन है। पांचवें उद्देशक में खेचर जीवों का वर्णन है। छठे उद्देशक में आयुष्य सम्बन्धी, सातवें उद्देशक में साधु आदि सम्बन्धी, आठवें उद्देशक में छद्मस्थ मनुष्यादि सम्बन्धी, नववें उद्देशक में असंवृत अर्थात् प्रमत्त-साधु आदि सम्बन्धी और दसवें उद्देशक में कालोदायी आदि अन्यतीर्थिक सम्बन्धी वर्णन है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अनाहारक और अल्पाहारक का काल

२ प्रश्न—तेणं कालेणं तेणं समएणं जाव एवं वयासी—जीवे णं भंते ! कं समयमणाहारए भवइ ?

२ उत्तर—गोयमा ! पढमे समए सिय आहारए सिय अणाहारए, बिइए समए सिय आहारए सिय अणाहारए, तइए समए सिय आहारए सिय अणाहारए, चउत्थे समए णियमा आहारए। एवं दंडओ। जीवा य एगिंदिया य चउत्थे समए, सेसा तइए समए।

३ प्रश्न—जीवे णं भंते ! कं समयं सव्वप्पाहारए भवइ ?

३ उत्तर—गोयमा ! पढमसमयोववण्णए वा चरमसमयभवत्थे वा, एत्थ णं जीवे सव्वप्पाहारए भवइ। दंडओ भाणियव्वो जाव वेमाणियाणं।

कठिन शब्दार्थ-सव्वप्पाहारए—सब से अल्प (अल्पतम) आहार वाला।

भावार्थ—२ प्रश्न—उस काल उस समय में गौतमस्वामी ने इस प्रकार पूछा कि—हे भगवन् ! परभव में जाता हुआ जीव, किस समय में अनाहारक (आहार नहीं करने वाला) होता है ?

२ उत्तर—हे गौतम ! परभव में जाता हुआ जीव, प्रथम समय में कदाचित् आहारक होता है और कदाचित् अनाहारक होता है। दूसरे समय में कदाचित् आहारक और कदाचित् अनाहारक होता है। तीसरे समय में भी कदाचित् आहारक और कदाचित् अनाहारक होता है। परन्तु चौथे समम में नियमा

(अवश्य) आहारक होता है। इस प्रकार नैरयिक आदि चौबीस ही दण्डक में कहना चाहिए। सामान्य जीव और एकेंद्रिय, चौथे समय में आहारक होते हैं। इनके सिवाय शेष जीव, तीसरे समय में आहारक होते हैं।

३ प्रश्न—हे भगवन् ! जीव किस समय में सब से अल्प आहार वाला होता है ?

३ उत्तर—हे गौतम ! उत्पत्ति के प्रथम समय में और भव (जीवन) के अन्तिम समय में जीव सब से अल्प आहार वाला होता है। इस प्रकार वैमानिक पर्यन्त चौबीस ही दण्डक में कहना चाहिए।

विवेचन—यहां यह प्रश्न किया गया है कि परभव में जाता हुआ जीव, किस समय में अनाहारक होता है ? इसका उत्तर यह दिया गया कि जब जीव, एक भव की आयुष्य पूर्ण करके ऋजुगति से परभव में जाता है और प्रथम समय में ही वहां उत्पन्न होता है, तब परभव सम्बन्धी आयुष्य के प्रथम समय में ही आहारक होता है। परन्तु जब वक्रगति द्वारा दो समय में उत्पन्न होता है, तब प्रथम समय में अनाहारक होता है और दूसरे समय में आहारक होता है। जब तीन समय में उत्पन्न होता है, तब प्रथम के दो समयों में अनाहारक होता है और तीसरे समय में आहारक होता है। जब परभव में चार समय में उत्पन्न होता है, तब प्रथम के तीन समयों में अनाहारक होता है और चौथे समय में आहारक होता है। तीन वक्र (मोड़) वाली गति में चार समय लगते है। तीन मोड़ इस प्रकार होते हैं;—त्रसनाड़ी से बाहर विदिशा में रहा हुआ कोई जीव, जब अधोलोक से ऊर्ध्वलोक में त्रसनाड़ी से बाहर दिशा में उत्पन्न होता है, तब वह प्रथम समय में विश्रेणी से समश्रेणी में आता है, दूसरे समय में त्रसनाड़ी में प्रवेश करता है, तीसरे समय में ऊर्ध्वलोक में जाता है और चौथे समय में त्रसनाड़ी से बाहर निकल कर उत्पत्ति स्थान में पहुँच कर उत्पन्न होता है। इनमें से पहले के तीन समयों में विग्रहगति होती है।

इस विषय में दूसरे आचार्य तो इस प्रकार कहते हैं कि—चार वक्र की भी विग्रहगति होती है। यथा—कोई जीव, अधोलोक में त्रसनाड़ी से बाहर विदिशा में रहा हुआ है, वहां से मर कर ऊर्ध्वलोक में त्रसनाड़ी से बाहर विदिशा में उत्पन्न हो, तब पहले समय में विश्रेणी से समश्रेणी में आता है, दूसरे समय में त्रसनाड़ी में प्रवेश करता है, तीसरे समय में ऊर्ध्वलोक में जाता है, चौथे समय में त्रसनाड़ी से बाहर निकल कर समश्रेणी में आता है और पाँचवें

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

समय में उत्पत्ति स्थान में जाकर उत्पन्न होता है। इनमें से प्रथम के चार समयों में विग्रह-गति होती है। विग्रहगति के इन चार समयों में जीव, अनाहारक होता।" परन्तु यह बात सूत्र में नहीं बतलाई गई है। क्योंकि प्रायः कोई भी जीव, इस तरह से उत्पन्न नहीं होता।

जीव (सामान्य जीव) पद और एकेन्द्रिय पद में पूर्वोक्त रीति से समझना चाहिए कि वे चौथे समय में नियमा (नियमतः-अवश्य) आहारक होते है। जीव और एकेन्द्रिय जीवों को छोड़ कर शेष सभी जीव, तीसरे समय में अवश्य ही आहारक होते हैं। इनमें से जो नारकादि त्रस जीव, त्रस जीवों में ही उत्पन्न होता है, उसका गमनागमन त्रसनाड़ी से बाहर नहीं होता, इसलिए वह तीसरे समय में नियम से आहारक होता है। जैसे कि-कोई मत्स्यादि भरतक्षेत्र के पूर्व भाग में रहा हुआ है। वह वहाँ से मरकर जब ऐरवत क्षेत्र के पश्चिम भाग के नीचे नरक में उत्पन्न होता है, तब एक समय में भरत-क्षेत्र के पूर्वभाग से नीचे उत्पत्तिभाग की समश्रेणि में जाता है, फिर दूसरे समय में पश्चिम में जाता है और तीसरे समय में उत्तर में उत्पत्ति स्थान पर पहुँच कर नरक में उत्पन्न होता है। इन तीन समयों में से प्रथम के दो समयों में अनाहारक रहता है और तीसरे समय में आहारक होता है।

इसके बाद यह प्रश्न किया गया है कि-जीव, किस समय में सर्वाल्पाहारी होता है? उत्तर में कहा गया है कि उत्पत्ति के प्रथम समय में जीव सर्वाल्पाहारी होता है। इसका कारण यह है कि उस समय में आहार ग्रहण करने का हेतुभूत शरीर अल्प होता है। अतः उस समय में सर्वाल्पाहारता होती है। तथा जीवन के अन्तिम समय में अर्थात् वर्तमान आयुष्य के अन्तिम समय में जीव, सर्वाल्पाहारी होता है, क्योंकि उस समय में प्रदेशों के संहृत (संकुचित) हो जाने के कारण-शरीर के अल्प अवयवों में जीव के स्थित होजाने के कारण सर्वाल्पाहारता होती है।

प्रज्ञापना सूत्र के अठाईसवें पद में आहार के दो भेद बतलाये गये हैं। यथा-आभोग-निर्वर्तित (इच्छा पूर्वक ग्रहण किया गया) आहार और अनाभोगनिर्वर्तित (बिना इच्छा के अनाभोग रूप से-अनुपयोगपूर्वक ग्रहण किया हुआ) आहार। इनमें से आभोगनिर्वर्तित आहार तो नियत समय पर होता है और अनाभोगनिर्वर्तित आहार उत्पत्ति के प्रथम समय से प्रारम्भ होकर अन्त समय तक प्रति समय निरन्तर होता है।

ऊपर जो आहार का कथन किया गया है, वह अनाभोगनिर्वर्तित आहार के विषय में समझना चाहिए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लोक संस्थान

४ प्रश्न-किंसंठिए णं भंते ! लोए पण्णत्ते ?

४ उत्तर-गोयमा ! सुपइट्ठगसंठिए लोए पण्णत्ते, हेट्ठा विच्छिण्णे जाव उप्पिं उड्ढमुइंगागारसंठिए; तंसि य णं सासयंसि लोगंसि हेट्ठा विच्छिण्णंसि जाव उप्पिं उड्ढमुइंगागारसंठियंसि उप्पण्णणाण-दंसणधरे अरहा जिणे केवली जीवे वि जाणइ पासइ, अजीवे वि जाणइ पासइ, तओ पच्छा सिज्झइ, जाव अंतं करेइ ।

कठिन शब्दार्थ--सुपइट्ठगसंठिए--सुप्रतिष्ठक अर्थात् शराव (सकोरे) के आकार, उड्ढमुइंगागारसंठिए--ऊर्ध्व मृदंग के आकार के समान ।

भावार्थ-४ प्रश्न-हे भगवन् ! लोक का संस्थान (आकार) किस प्रकार का कहा गया है ?

४ उत्तर-हे गौतम ! लोक का संस्थान सुप्रतिष्ठक-शराव (सकोरे) के आकार है । वह नीचे विस्तीर्ण है यावत् ऊपर ऊर्ध्व मृदंग के आकार संस्थित है । इस नीचे विस्तीर्ण यावत् ऊपर ऊर्ध्व मृदंग के आकार वाले लोक में, उत्पन्न केवलज्ञान-दर्शन को धारण करने वाले अरिहन्त जिन केवली, जीवों को भी जानते और देखते हैं तथा अजीवों को भी जानते और देखते हैं । इसके पश्चात् वे सिद्ध होते हैं, यावत् सभी दुःखों का अन्त करते हैं ।

विवेचन—पहले प्रकरण में अनाहारकपन का वर्णन किया गया है । अनाहारक-पना लोक-संस्थान के वश से होता है । इसलिए अब लोक-संस्थान के विषय में कहा जाता है । लोक का संस्थान शराव के आकार बतलाया गया है । इसका आशय यह है कि---नीचे एक उलटा शराव (सकोरा) रखा जाय, फिर उस पर एक सीधा शराव रखा जाय और उस पर एक उलटा शराव रखा जाय । इस तरह उलटे सीधे और उलटे तीन शरावों

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

को रखने से लोक-संस्थान बनता है।

लोक का विस्तार मूल में सात रज्जु परिमाण है। ऊपर क्रम से घटते हुए सात रज्जु की ऊँचाई पर एक रज्जु विस्तार है। फिर क्रम से बढ़ते हुए साढ़े नौ से साढ़े दस रज्जु की उँचाई पर विस्तार पांच रज्जु है। फिर क्रम से घटते हुए मूल से चौदह रज्जु की ऊँचाई पर एक रज्जु का विस्तार है। मूल से लेकर ऊपर तक की ऊँचाई चौदह रज्जु है।

लोक के तीन भेद हैं। उनमें से अधोलोक का आकार (उलटे) शराव जैसा है। तिर्यक् लोक का आकार झालर या पूर्ण चन्द्रमा जैसा है। ऊर्ध्वलोक का आकार ऊर्ध्व मृदंग जैसा है।

इस लोक में उत्पन्न-ज्ञान-दर्शन-धारक अरिहन्त जिन केवली भगवान् सिद्ध होते है यावत् सभी दुःखों का अन्त करते हैं।

ऐर्यापथिकी और साम्परायिकी क्रिया

५ प्रश्न—समणोवासयस्स णं भंते ! सामाइयकडस्स समणोवस्सए अच्छमाणस्स तस्स णं भंते ! किं इरियावहिया किरिया कज्जइ, संपराइया किरिया कज्जइ ?

५ उत्तर—गोयमा ! नो इरियावहिया किरिया कज्जइ, संपराइया किरिया कज्जइ।

प्रश्न—से केणट्ठेणं जाव संपराइया ?

उत्तर—गोयमा ! समणोवासयस्स णं सामाइयकडस्स समणोवस्सए अच्छमाणस्स आया अहिगरणी भवइ, आयाऽहिगरणवत्तियं य णं तस्स णो इरियावहिया किरिया कज्जइ, संपराइया किरिया कज्जइ; से तेणट्ठेणं जाव संपराइया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ—**सामाइयकडस्स**—सामायिक करने वाले, **अच्छमाणस्स**—बैठे हुए के, **संपराइया**—कषाय संबंधी, **अहिगरणी**—अधिकरणी (जीव-वधादि आरम्भ और क्रोधादि कषाय के साधन)।

भावार्थ-५ प्रश्न-हे भगवन् ! श्रमण (साधु) के उपाश्रय में बैठे हुए सामायिक करने वाले श्रमणोपासक (साधुओं का उपासक-श्रावक) को क्या ऐर्यापथिकी क्रिया लगती है, या साम्परायिकी क्रिया लगती है ?

५ उत्तर-हे गौतम ! ऐर्यापथिकी क्रिया नहीं लगती, किंतु साम्परायिकी क्रिया लगती है।

प्रश्न-हे भगवन् ! इसका क्या कारण है ?

उत्तर-हे गौतम ! श्रमण के उपाश्रय में बैठे हुए सामायिक करने वाले श्रमणोपासक की आत्मा अधिकरणी (कषाय के साधन से युक्त) है। उसकी आत्मा अधिकरण का निमित्त होने से उसे ऐर्यापथिकी क्रिया नहीं लगती, किंतु साम्परायिकी क्रिया लगती है। इस कारण यावत् साम्परायिकी क्रिया लगती है।

विवेचन—जो व्यक्ति सामायिक नहीं किया हुआ है तथा साधु के उपाश्रय में नहीं बैठा हुआ है, उसको साम्परायिकी क्रिया लगती है, किंतु जो व्यक्ति सामायिक करके साधु के उपाश्रय में बैठा हुआ है, क्या उसको भी साम्परायिकी क्रिया लगती है ? यह प्रश्न है। इसके उत्तर में कहा गया है कि जो श्रावक सामायिक करके साधुओं के उपाश्रय में बैठा हुआ है, उसे भी साम्परायिकी क्रिया लगती है। क्योंकि साम्परायिकी क्रिया, कषाय के कारण लगती है। उस श्रावक में कषाय का सद्भाव है। इसलिए उसे साम्परायिकी क्रिया लगती है; किंतु ऐर्यापथिकी क्रिया नहीं लगती।

श्रमणोपासक के उदार व्रत

६ प्रश्न-समणोवासयस्स णं भंते ! पुव्वामेव तसपाणसमारंभे पच्चक्खाए भवइ, पुढविसमारंभे अपच्चक्खाए भवइ; से य पुढविं

खणमाणे अण्णयरं तसं पाणं विहिंसेज्जा, से णं भंते ! तं वयं अइचरइ ?

६ उत्तर-णो इणट्ठे समट्ठे, णो खलु से तस्स अइवायाए आउट्टइ ।

७ प्रश्न-समणोवासयस्स णं भंते ! पुव्वामेव वणस्सइसमारंभे पच्चक्खाए, से य पुढविं खणमाणे अण्णयरस्स रुक्खस्स मूलं छिंदेज्जा, से णं भंते ! तं वयं अइचरइ ?

७ उत्तर-णो इणट्ठे समट्ठे, णो खलु से तस्स अइवायाए आउट्टइ ।

कठिन शब्दार्थ—पुव्वामेव--पहले, खणमाणे--खोदता हुआ, अण्णयरं—दूसरे, वयं अइचरइ--व्रत को अतिचारी करता है, अइवायाए—अतिपात-हिंसा के लिए, आउट्टइ-प्रवृत्ति करता है ।

भावार्थ—६ प्रश्न—हे भगवन् ! जिस श्रमणोपासक को पहले से ही त्रस जीवों के वध का प्रत्याख्यान हो और पृथ्वीकाय के वध का प्रत्याख्यान नहीं हो, उस श्रमणोपासक को पृथ्वी खोदते हुए त्रस जीव की हिंसा हो जाय, तो हे भगवन् ! क्या उसके व्रत में अतिचार लगता है ?

६ उत्तर-हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं, क्योंकि उसकी प्रवृत्ति उस त्रस जीव की हिंसा करने के लिए नहीं होती ।

७ प्रश्न--हे भगवन् ! जिस श्रमणोपासक को पहले से ही वनस्पति के वध का प्रत्याख्यान हो और पृथ्वीकाय के वध का प्रत्याख्यान नहीं हो, तो पृथ्वी को खोदते हुए उसके हाथ से किसी वृक्ष का मूल छिद (कट) जाय, तो क्या उसके व्रत में अतिचार लगता है ?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

७ उत्तर-हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है, क्योंकि वह वनस्पति के वध के लिए प्रवृत्ति नहीं करता ।

विवेचन-जिस श्रावक ने त्रस जीव मारने का त्याग किया है तथा जिस श्रावक ने वनस्पतिकाय के जीवों को मारने का त्याग किया है, तो पृथ्वी खोदते समय उसके हाथ से त्रस जीव की हिंसा हो जाय अथवा किसी वृक्ष की जड़ कट जाय, तो उसके लिये हुए त्याग व्रत में कोई अतिचार नहीं लगता । क्योंकि सामान्यतया देशविरति श्रावक को संकल्पपूर्वक हिंसा का त्याग होता है, इसलिए जिन जीवों की हिंसा का उसने प्रत्याख्यान किया है, उन जीवों की संकल्पपूर्वक हिंसा करने के लिए जबतक वह प्रवृत्ति नहीं करता, तब तक उसके व्रत में दोष नहीं लगता ।

श्रमणों को प्रतिलाभने का लाभ

८ प्रश्न-समणोवासए णं भंते ! तहारूवं समणं वा माहणं वा फासु-एसणिज्जेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं पडिलाभेमाणे किं लब्भइ ?

८ उत्तर-गोयमा ! समणोवासए णं तहारूवं समणं वा जाव पडिलाभेमाणे तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा समाहिं उप्पाएइ, समाहिकारए णं तामेव समाहिं पडिलब्भइ ।

९ प्रश्न-समणोवासए णं भंते ! तहारूवं समणं वा जाव पडिलाभेमाणे किं चयइ ?

९ उत्तर-गोयमा ! जीवियं चयइ, दुच्चयं चयइ, दुक्करं करेइ, दुल्लहं लहइ, बोहिं बुज्झइ, तओ पच्छा सिज्झइ, जाव अंतं करेइ ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ—**लब्भइ**—प्राप्त करता है, **समाहिं उप्पाएइ**—समाधि (शांति) उत्पन्न करता है, **पडिलब्भइ**—प्राप्त करता है, **चयइ**—छोड़ता है—देता है, **दुच्चयं चयइ**—कठिनाई से त्यागने योग्य वस्तु का त्याग करता है, **बोहिं बुज्झइ**—बोधि—सम्यग्दर्शन का अनुभव करता है।

भावार्थ—८ प्रश्न—हे भगवन् ! तथारूप के अर्थात् उत्तम श्रमण-माहण को प्रासुक और एषणीय अशन-पान-खादिम-स्वादिम द्वारा प्रतिलाभित करते हुए श्रमणोपासक को क्या लाभ होता है ?

८ उत्तर—हे गौतम ! तथारूप के श्रमण-माहण को यावत् प्रतिलाभित करता हुआ श्रमणोपासक, तथारूप के श्रमण-माहण को समाधि उत्पन्न करता है। उन्हें समाधि प्राप्त कराने वाला वह श्रमणोपासक स्वयं भी समाधि प्राप्त करता है।

९ प्रश्न—हे भगवन् ! तथारूप के श्रमण-माहण को प्रतिलाभित करता हुआ श्रमणोपासक, किसका त्याग करता है ?

९ उत्तर—हे गौतम ! वह जीवित (जीवन निर्वाह के कारणभूत अन्नादि) का त्याग करता है, दुस्त्यज वस्तु का त्याग करता है, दुष्कर कार्य करता है, दुर्लभ वस्तु का त्याग करता है, बोधि (सम्यग्दर्शन) को प्राप्त करता है। इसके बाद वह सिद्ध होता है, यावत् सभी दुःखों का अन्त करता है।

विवेचन—तथारूप अर्थात् साधु के गुणों से और वेष से युक्त श्रमण-माहण को प्रासुक अर्थात् निर्जीव और एषणीय (निर्दोष—दोष रहित) अशन-पान-खादिम-स्वादिम प्रतिलाभित करता हुआ (बहराता हुआ) श्रमणोपासक क्या करता है ? इस प्रश्न के उत्तर में कहा गया है कि वह श्रमण-माहणों को समाधि उत्पन्न करता है और वह स्वयं भी समाधि प्राप्त करता है।

वह श्रमणोपासक किसका त्याग करता है ? इस प्रश्न के उत्तर में कहा गया है कि वह जीवित का त्याग करता है। अशनादि वस्तुएँ जीवन-निर्वाह की हेतुभूत हैं। इसलिए अशनादि का दान करता हुआ मानों जीवन का ही दान करता है। क्योंकि अशनादि का दान करना बड़ा कठिन है। अथवा मूलपाठ में आये हुए 'चयइ' आदि क्रियाओं का दूसरा अर्थ किया गया है कि—वह कर्मों की दीर्घ स्थिति को ह्रस्व करता है और कर्म-द्रव्य सञ्चय का त्याग

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

करता है। फिर अपूर्वकरण के द्वारा ग्रन्थिभेद करता है, फिर अनिवृत्तिकरण को प्राप्त कर सम्यक्त्व लाभ करता है। इसके बाद सिद्ध होता है, यावत् समस्त दुःखों का अन्त करता है।

'दानविशेष' से 'बोधिगुण' की प्राप्ति होती है। यह बात दूसरी जगह भी कही गई है। यथा--

' अणुकंप अकामणिज्जर, बालतवे दाणविणए'

अर्थ-अनुकम्पा, अकाम-निर्जरा, बालतप, दान, विनय आदि से सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है। यथा--

केइ तेणेव भवेण णिव्वुया, सव्वकम्मओ मुक्का।
केइ तइयभवेणं, सिज्झिस्संति जिणसगासे॥

अर्थ-कितनेक जीव तो उसी भव में सभी कर्मों से रहित होकर मुक्त हो जाते हैं और कितनेक जीव, महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर तीसरे भव में सिद्ध हो जाते हैं।

कर्म रहित जीव की गति

१० प्रश्न-अत्थि णं भंते ! अकम्मस्स गई पण्णायइ ?

१० उत्तर-हंता, अत्थि।

११ प्रश्न-कहं णं भंते ! अकम्मस्स गई पण्णायइ ?

११ उत्तर-गोयमा ! णिस्संगयाए, णिरंगणयाए, गइपरिणामेणं, बंधणछेयणयाए, णिरिंधणयाए, पुव्वप्पओगेणं अकम्मस्स गई पण्णायइ।

१२ प्रश्न-कहं णं भंते ! णिस्संगयाए, णिरंगणयाए, गइपरिणामेणं अकम्मस्स गई पण्णायइ ?

१२ उत्तर-से जहाणामए केई पुरिसे सुक्कं तुंबं णिच्छिड्डं

णिरुवहयं आणुपुव्वीए परिकम्मेमाणे परिकम्मेमाणे दब्भेहि य कुसेहि य वेढेइ, वेढेत्ता, अट्ठहिं मट्टियालेवेहिं लिंपइ लिंपित्ता उण्हे दलयइ, भूइं भूइं सुक्कं समाणं अत्थाहमतारमपोरिसियंसि उदगंसि पक्खिवेज्जा, से णूणं गोयमा ! से तुंबे तेसिं अट्ठण्हं मट्टियालेवाणं गुरुयत्ताए, भारियत्ताए, गुरुसंभारियत्ताए सलिलतलमइवइत्ता अहे धरणितलपइट्ठाणे भवइ ? हंता भवइ । अहे णं से तुंबे तेसिं अट्ठण्हं मट्टियालेवाणं परिक्खएणं धरणितलमइवइत्ता उप्पिं सलिलतलपइ-ट्ठाणे भवइ ? हंता भवइ । एवं खलु गोयमा ! णिस्संगयाए, णिरं-गणयाए, गइपरिणामेणं अकम्मस्स गई पण्णायइ ।

कठिन शब्दार्थ–**पण्णायइ**–स्वीकृत है, **णिस्संगयाए**–निःसंगता से, **णिरंगणयाए**–नीरागता से, **णिरिंधणयाए**–निरिन्धनता से अर्थात् कर्मरूप ईन्धन से रहित होने से, **पुव्वप्पओगेणं**–पूर्व प्रयोग से, **णिच्छिड्डं**–छिद्र रहित, **णिरुवहयं**–जो टूटा हुआ नहीं हो, **परिकम्मेमाणे**–संस्कार करके, **वेढेइ**–बांधे, **मट्टियालेवेहिं**–मिट्टी के लेप से, **उण्हे दलयइ**–धूप में रख-कर सुखावे, **भूइं भूइं**–भूयः भूयः–बारम्बार, **अत्थाहमतारमपोरिसियंसि उदगंसि**–अथाह और तिरा नहीं जा सके ऐसे पुरुष प्रमाण से भी अधिक गहरे पानी में, **पक्खिवेज्जा**–प्रक्षेप करे, **सलिलतलमइवइत्ता**–पानी के ऊपर के तल को छोड़कर, **अहे धरणितलपइट्ठाणे**–नीचे पृथ्वी तल पर बैठे ।

भावार्थ–१० प्रश्न–हे भगवन् ! क्या कर्म रहित जीव की गति होती है ?

१० उत्तर–हां, गौतम ! कर्म रहित जीव की गति होती है ।

११ प्रश्न–हे भगवन् ! कर्म रहित जीव की गति किस प्रकार होती है ?

११ उत्तर–हे गौतम ! निःसंगपन से, नीरागपन से, गतिपरिणाम से, बन्धन का छेद होने से, निरिन्धन होने से अर्थात् कर्मरूपी ईन्धन से मुक्त होने से और पूर्व-प्रयोग से कर्म रहित जीव की गति होती है ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१२ प्रश्न—हे भगवन् ! निःसंगपन से, नीरागपन से और गतिपरिणाम से कर्म रहित जीव की गति किस प्रकार होती है ?

१२ उत्तर—हे गौतम ! जैसे कोई छिद्र रहित और निरुपहत (बिना टूटा हुआ) सूखा तुम्बा हो, उस सूखे हुए तुम्बे पर क्रमपूर्वक अत्यन्त संस्कारयुक्त डाभ और कुश लपेट कर, उस पर मिट्टी का लेप कर दिया जाय और फिर उसे धूप में सूखा दिया जाय। इसके बाद क्रमशः डाभ और कुश लपेटते हुए आठ बार उसके ऊपर मिट्टी का लेप कर दिया जाय। इसके बाद थाह रहित अतरणीय और पुरुष प्रमाण से अधिक गहरे पानी में उसे डाल दिया जाय, तो हे गौतम ! वह तुम्बा मिट्टी के आठ लेपों से भारी हो जाने एवं अधिक वजन वाला हो जाने से क्या पानी के उपरितल को छोड़कर नीचे पृथ्वीतल पर जा बैठता है ?

गौतमस्वामी ने कहा—हाँ भगवन् ! वह तुम्बा नीचे पृथ्वीतल पर बैठ जाता है।

भगवान् ने पूछा हे—गौतम ! पानी में पड़े रहने के कारण ज्यों ज्यों उसका लेप गल कर उतरता जाय यावत् उस पर से आठों लेप उतर जाय, तो क्या वह तुम्बा पृथ्वीतल को छोड़ कर पानी के उपरितल पर आ जाता है ?

गौतमस्वामी ने कहा—हाँ, भगवन् ! वह पानी के उपरितल पर आ जाता है।

भगवान् ने फरमाया—हे गौतम ! इसी प्रकार निःसंगपन से, नीरागपन से और गतिपरिणाम से कर्म रहित जीव की भी गति होती है।

१३ प्रश्न—कहं णं भंते ! बंधणछेयणयाए अकम्मस्स गई पण्णायइ ?

१३ उत्तर—गोयमा ! से जहाणामए कलसिंबलिया इ वा, मुग्गसिंबलिया इ वा, माससिंबलिया इ वा, सिंबलिसिंबलिया इ वा,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एरंडमिंजिया इ वा उण्हे दिण्णा सुक्का समाणी फुडित्ता णं एगंतमंतं गच्छइ, एवं खलु गोयमा ! ० ।

१४ प्रश्न—कहं णं भंते ! णिरिंधणयाए अकम्मस्स गई ? ० ।

१४ उत्तर—गोयमा ! से जहाणामए धूमस्स इंधणविप्पमुक्कस्स उड्ढं वीससाए णिव्वाघाएणं गई पवत्तइ, एवं खलु गोयमा ! ० ।

१५ प्रश्न—कहं णं भंते ! पुव्वप्पओगेणं अकम्मस्स गई पण्णायइ ?

१५ उत्तर—गोयमा ! से जहाणामए कंडस्स कोदंडविप्पमुक्कस्स लक्खाभिमुहो णिव्वाघाएणं गई पवत्तइ, एवं खलु गोयमा ! पुव्वप्पओगेणं अकम्मस्स गई पण्णायइ, एवं खलु गोयमा ! णिस्संगयाए, णिरंगणयाए जाव पुव्वप्पओगेणं अकम्मस्स गई पण्णायइ ।

कठिन शब्दार्थ—**कलसिंबलिया**—मटर या बटले की फली, **एरंडमिंजिया**—एरण्ड का बीज, **फुडित्ता**—फूटकर, **एगंतमंतं**—एकान्त में, **इंधणविप्पमुक्कस्स**—ईंधन से मुक्त—छुटे हुए, **णिव्वाघाएणं**—निराबाध होकर **गइपवत्तइ**—गति होती है, **कंडस्स**—बाण की, **कोदंडविप्पमुक्कस्स**—धनुष से छुटे हुए, **लक्खाभिमुही**—लक्ष्य की ओर ।

१३ प्रश्न—हे भगवन् ! बन्धन का छेद होने से कर्म रहित जीव की गति किस प्रकार होती है ?

१३ उत्तर—हे गौतम ! जैसे कोई मटर की फली, मूंग की फली, उड़द की फली, शिम्बलि अर्थात् शेमल की फली और एरण्ड का फल, धूप में रख कर सुखाया जाय । सूख जाने पर वह फूट जाता है और उसमें का बीज उछल कर दूर जा गिरता है । हे गौतम ! इसी प्रकार कर्मरूप बन्धन का छेद हो जाने

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पर, कर्म रहित जीव की गति होती है।

१४ प्रश्न-हे भगवन् ! निरिन्धन (कर्मरूपी इंधन से रहित) होने से कर्म रहित जीव की गति किस प्रकार होती है ?

१४ उत्तर-हे गौतम ! जिस प्रकार इंधन से छूटे हुए धूंए की गति, किसी प्रकार की रुकावट के बिना-स्वाभाविक रूप से ऊपर की ओर होती है, इसी प्रकार हे गौतम ! कर्मरूप इंधन से रहित होने से, कर्म रहित जीव की गति होती है।

१५ प्रश्न-हे भगवन् ! पूर्व-प्रयोग से कर्म रहित जीव की गति किस प्रकार होती है ?

१५ उत्तर-हे गौतम ! जिस प्रकार धनुष से छूटे हुए बाण की गति, किसी भी प्रकार की रुकावट के बिना लक्ष्याभिमुख होती है, इसी प्रकार हे गौतम ! पूर्व प्रयोग से कर्म रहित जीव की गति होती है। हे गौतम ! इस प्रकार निःसंगता से, नीरागता से, यावत् पूर्व प्रयोग से कर्म रहित जीव की गति होती है।

विवेचन--पूर्व प्रकरण में अकर्मत्व का कथन किया गया है। अतः इस प्रकरण में भी अकर्मत्व विषयक कथन किया जाता है।

कर्म रहित जीव की ऊर्ध्वगति होने में निःसंगता, नीरागता (मोह रहितता) गति-परिणाम, बन्धनविच्छेद, निरिन्धनता और पूर्वप्रयोग, ये छह कारण हैं। इन छह कारणों से कर्म रहित जीव की गति किस प्रकार होती है ? इसके लिए मूल में तुम्बा, मूंगादि की फली, एरण्डफल, धूम, बाण आदि के उदाहरण देकर बतलाया गया है, जिससे विषय स्पष्ट और सुगम हो गया है।

दुःख से व्याप्त

१६ प्रश्न-दुक्खी णं भंते ! दुक्खेणं फुडे, अदुक्खी दुक्खेणं फुडे ?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१६ उत्तर-गोयमा ! दुक्खी दुक्खेणं फुडे, णो अदुक्खी दुक्खेणं फुडे।

१७ प्रश्न-दुक्खी णं भंते ! णेरइए दुक्खेणं फुडे, अदुक्खी णेरइए दुक्खेणं फुडे ?

१७ उत्तर-गोयमा ! दुक्खी णेरइए दुक्खेणं फुडे, णो अदुक्खी णेरइए दुक्खेणं फुडे। एवं दंडओ, जाव वेमाणियाणं। एवं पंच दंडगा णेयव्वा-१ दुक्खी दुक्खेणं फुडे, २ दुक्खी दुक्खं परियायइ ३ दुक्खी दुक्खं उदीरेइ, ४ दुक्खी दुक्खं वेएइ, ५ दुक्खी दुक्खं णिज्जरेइ।

कठिन शब्दार्थ--फुडे--स्पृष्ट, परियायइ--ग्रहण करता है।

भावार्थ-१६ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या दुखी जीव, दुःख से व्याप्त होता है, या अदुखी (दुःख रहित) जीव, दुःख से व्याप्त होता है ?

१६ उत्तर-हे गौतम ! दुखी जीव ही दुःख से व्याप्त होता है, अदुखी जीव, दुःख से व्याप्त नहीं होता।

१७ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या दुखी नैरयिक, दुःख से व्याप्त होता है, या अदुखी नैरयिक दुःख से व्याप्त होता है ?

१७ उत्तर-हे गौतम ! दुखी नैरयिक, दुःख से व्याप्त होता है, अदुखी नैरयिक, दुःख से व्याप्त नहीं होता। इस तरह वैमानिक पर्यन्त चौबीस ही दण्डक में कहना चाहिए। इस तरह पांच दण्डक (अलापक) कहने चाहिए। यथाः-१ दुःखी, दुःख से व्याप्त होता है, २ दुःखी, दुःख को ग्रहण करता है, ३ दुःखी दुःख को उदीरता है (उदीरणा करता है), ४ दुःखी दुःख को वेदता है और ५ दुःखी दुःख को निर्जरता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन--पूर्व प्रकरण में अकर्मत्व का कथन किया गया है। अब इस प्रकरण में अकर्मत्व से विपरीत कर्मत्व का कथन किया जाता है।

यहाँ दुःख के कारणभूत मिथ्यात्वादिक कर्म को भी 'दुःख' शब्द से कहा गया है। इसलिए यहाँ 'दुःखी' शब्द का अर्थ है-'सकर्मक जीव'। सकर्मक जीव ही कर्म से स्पृष्ट (बद्ध) होता है, जो कर्म-रहित है वह कर्म से स्पृष्ट नहीं होता। अतएव सिद्ध जीव कर्म से स्पृष्ट नहीं होते, क्योंकि वे कर्म-रहित होते हैं। सकर्मक जीव ही कर्मों को निधत्तादि करता है, उदीरता है, वेदता है और निर्जरता है।

कर्मों का स्पर्श (बद्ध होना), ग्रहण, उदीरणा, वेदना और निर्जरा, ये पांच बातें सकर्मक जीव में ही होती हैं, अकर्मक जीव में नहीं। यदि अकर्मक जीव में भी ये पांच बातें हों, तो सिद्ध भगवान् में भी इनका प्रसंग होगा, किन्तु ऐसा नहीं होता। इसलिए सिद्ध भगवान् में उपरोक्त पाँचों बातें नहीं होती।

ऐर्यापथिकी और साम्परायिकी क्रिया

१८ प्रश्न-अणगारस्स णं भंते ! अणाउत्तं गच्छमाणस्स वा, चिट्ठमाणस्स वा, णिसीयमाणस्स वा, तुयट्टमाणस्स वा, अणाउत्तं वत्थं पडिग्गहं कंबलं पायपुंछणं गेण्हमाणस्स वा, णिक्खिवमाणस्स वा तस्स णं भंते ! किं इरियावहिया किरिया कज्जइ, संपराइया किरिया कज्जइ ?

१८ उत्तर-गोयमा ! णो इरियावहिया किरिया कज्जइ, संपराइया किरिया कज्जइ।

प्रश्न-से केणट्ठेणं ?

उत्तर-गोयमा ! जस्स णं कोह-माण-माया-लोभा वोच्छिण्णा भवंति तस्स णं इरियावहिया किरिया कज्जइ, णो संपराइया किरिया

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कज्जइ; जस्स णं कोह-माण-माया-लोभा अवोच्छिण्णा भवंति तस्स णं संपराइया किरिया कज्जइ, णो इरियावहिया किरिया कज्जइ; अहासुत्तं रीयमाणस्स इरियावहिया किरिया कज्जइ, उस्सुत्तं रीयमाणस्स संपराइया किरिया कज्जइ, से णं उस्सुत्तमेव रीयइ से तेणट्ठेणं।

कठिन शब्दार्थ—**अणाउत्तं**—उपयोग रहित, **चिट्ठमाणस्स**—खड़े रहते-ठहरते, **णिसीयमाणस्स**—बैठते, **तुयट्टमाणस्स**—सोते हुए के, **पडिग्गहं**—पात्र, **पायपुंछणं**—पादप्रोंछन-रजोहरण, **गेण्हमाणस्स**—ग्रहण करते हुए, **णिक्खिवमाणस्स**—रखते हुए, **वोच्छिण्णा**—नष्ट होगए, क्षय होगए, **अहासुत्तं**—यथासूत्र-सूत्रानुसार, **रीयमाणस्स**—करनेवाले-बरतने वाले, **उस्सुत्तं**—उत्सूत्र-(सूत्र विरुद्ध)।

भावार्थ—१८ प्रश्न—हे भगवन्! बिना उपयोग गमन करते हुए, खड़े रहते हुए, बैठते हुए, सोते हुए और इसी प्रकार बिना उपयोग के वस्त्र, पात्र, कम्बल और पादप्रोंच्छन (रजोहरण) ग्रहण करते हुए अनगार को क्या ऐर्यापथिकी क्रिया लगती है या साम्परायिकी क्रिया लगती है?

१८ उत्तर—हे गौतम! ऐर्यापथिकी क्रिया नहीं लगती, साम्परायिकी क्रिया लगती है?

प्रश्न—हे भगवन्! इसका क्या कारण है?

उत्तर—हे गौतम! जिस जीव के क्रोध, मान, माया और लोभ व्युच्छिन्न (अनुदित—उदयावस्था में नहीं रहे हैं) होगये हैं, उसको ऐर्यापथिकी क्रिया लगती है, साम्परायिकी क्रिया नहीं लगती। जिस जीव के क्रोध, मान, माया और लोभ ये चारों व्युच्छिन्न (अनुदित) नहीं हुए, उसको साम्परायिकी क्रिया लगती है, ऐर्यापथिकी क्रिया नहीं लगती। सूत्र (आगम) के अनुसार प्रवृत्ति करने वाले अनगार को ऐर्यापथिकी क्रिया लगती है और सूत्र से विपरीत प्रवृत्ति करने वाले अनगार को साम्परायिकी क्रिया लगती है। उपयोग रहित साधु, सूत्र से विपरीत प्रवृत्ति करता है। इसलिए हे गौतम! उसे साम्परायिकी क्रिया लगती है।

विवेचन—यहां मूलपाठ में 'वोच्छिण्णा' शब्द दिया है, जिसका अर्थ 'क्षीण और अनुदित' होता है, किन्तु टीकाकार ने इसका अर्थ केवल अनुदित लिखा है। यहाँ 'क्षीण और अनुदित' ये दोनों अर्थ रखने से ही संगति ठीक बैठ सकती है, क्योंकि ग्यारहवें उपशान्तमोहनीय गुणस्थान, बारहवें क्षीणमोहनीय गुणस्थान और तेरहवें सयोगी केवली गुणस्थान में, केवल ऐर्यापथिकी क्रिया पाई जाती है। इनमें से बारहवें और तेरहवें गुणस्थान में तो कषाय का सर्वथा क्षय हो चुका है और ग्यारहवें गुणस्थान में कषाय का क्षय नहीं होकर, उपशम होता है अर्थात् कषाय उदयावस्था में नहीं रहता। अतः 'वोच्छिण्णा' शब्द के यहां 'अनुदित और क्षीण' ये दोनों अर्थ लेना ही संगत है।

अंगारादि दोष

१९ प्रश्न—अह भंते ! सइंगालस्स, सधूमस्स, संजोयणादोसदुट्ठस्स पाण-भोयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते ?

१९ उत्तर—गोयमा ! जे णं णिग्गंथे वा णिग्गंथी वा फासु-एसणिज्जं असण-पाण-खाइम-साइमं पडिग्गाहेत्ता मुच्छिए, गिद्धे, गढिए, अज्झोववण्णे आहारं आहारेइ, एस णं गोयमा ! सइंगाले पाण-भोयणे। जे णं णिग्गंथे वा, णिग्गंथी वा फासु-एसणिज्जं असण-पाण-खाइम-साइमं पडिग्गाहित्ता महयाअप्पत्तियं कोहकिलामं करेमाणे आहारं आहारेइ एस णं गोयमा ! सधूमे पाण-भोयणे। जे णं णिग्गंथे वा २ जाव पडिग्गाहेत्ता गुणुप्पायणहेउं अण्णदव्वेणं सद्धिं संजोएत्ता आहारं आहारेइ, एस णं गोयमा ! संजोयणादोसदुट्ठे पाण-भोयणे। एस णं गोयमा ! सइंगालस्स, सधूमस्स, संजोयणादोस-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दुट्ठस्स पाण-भोयणस्स अट्ठे पण्णत्ते ।

२० प्रश्न-अह भंते ! वीतिंगालस्स, वीयधूमस्स, संजोयणादोस-विप्पमुक्कस्स पाण-भोयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते ?

२० उत्तर-गोयमा ! जे णं णिग्गंथे वा जाव पडिग्गाहेत्ता अमुच्छिए जाव आहारेइ; एस णं गोयमा ! वीतिंगाले पाण-भोयणे । जे णं णिग्गंथे वा णिग्गंथी वा जाव पडिग्गाहेत्ता णो महयाअप्पत्तियं जाव आहारेइ, एस णं गोयमा ! वीयधूमे पाण-भोयणे । जे णं णिग्गथे वा णिग्गंथी वा जाव पडिग्गाहेत्ता जहा लद्धं तहा आहारं आहारेइ, एस णं गोयमा ! संजोयणादोसविप्पमुक्के पाण-भोयणे । एस णं गोयमा ! वीतिंगालस्स, वीयधूमस्स संजोयणादोसविप्प-मुक्कस्स पाण-भोयणस्स अट्ठे पण्णत्ते ।

कठिन शब्दार्थ—**सइंगालस्स**—अंगार दोष, **संजोयणादोसदुट्ठस्स**—आहार में स्वाद के लिए कुछ मिलाने के दोष से दुष्ट हुए, **पाणभोयणस्स**—भोजनपानी, **गढिए**—स्नेह युक्त, **अज्झोववण्णे**—अध्युपपन्न-मोह में एकाग्रचित्त, **महयाअप्पत्तियं**—अत्यंत अरतिपूर्वक-खिन्न होकर, **कोहकिलामं**—क्रोधाभिभूत होकर, **गुणुप्पायणहेउं**—स्वाद उत्पन्न करने के लिए, **वीतिंगालस्स**—अंगार दोष रहित ।

भावार्थ—१९ प्रश्न—हे भगवन् ! अंगार (इंगाल) दोष, धूमदोष और संयोजना दोष से दूषित पान-भोजन (आहारपानी) का क्या अर्थ है ?

१९ उत्तर-हे गौतम ! कोई निर्ग्रन्थ साधु अथवा साध्वी, प्रासुक और एषणीय अशन पान खादिम और स्वादिम रूप आहार को ग्रहण करके उसमें मूच्छित, गृद्ध, ग्रथित और आसक्त होकर आहार करता है, तो हे गौतम ! यह अंगार दोष से दूषित आहार-पानी कहलाता है । कोई निर्ग्रन्थ साधु या साध्वी,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रासुक और एषणीय अशन-पान-खादिम-स्वादिम रूप आहार ग्रहण करके अत्यन्त अप्रीतिपूर्वक, क्रोध से खिन्न होकर आहार करता है, तो हे गौतम ! यह 'धूम' दोष से दूषित अशन-पान-भोजन कहलाता है। कोई निर्ग्रन्थ साधु या साध्वी, प्रासुक और एषणीय अशन-पान-खादिम-स्वादिम रूप आहार ग्रहण करके उसमें स्वाद उत्पन्न करने के लिए दूसरे पदार्थों के साथ संयोग करके आहार करता है, तो हे गौतम ! यह 'संयोजना' दोष से दूषित पान-भोजन कहलाता है। हे गौतम ! इस प्रकार अंगार-दोष, धूम-दोष और संयोजना दोष से दूषित पान-भोजन का अर्थ कहा गया है।

२० प्रश्न-हे भगवन् ! अंगार-दोष, धूम-दोष और संयोजना दोष, इन तीन दोषों से रहित पान-भोजन का क्या अर्थ है ?

२० उत्तर-हे गौतम ! जो कोई निर्ग्रन्थ साधु या साध्वी यावत् आहार पानी को ग्रहण करके मूर्च्छा रहित आहार करता है, तो हे गौतम ! वह अंगार दोष रहित पान-भोजन कहलाता है। जो निर्ग्रन्थ साधु या साध्वी यावत् अशनादि को ग्रहण करके अत्यन्त अप्रीतिपूर्वक यावत् आहार नहीं करता है, तो हे गौतम ! यह धूमदोष रहित पान-भोजन कहलाता है। जो कोई निर्ग्रन्थ साधु या साध्वी यावत् अशनादि को ग्रहण करके जैसा मिला है, वैसा आहार करता है, किन्तु स्वाद के लिए दूसरे पदार्थों का संयोग नहीं करता, तो हे गौतम ! यह संयोजना दोष रहित पानभोजन कहलाता है। इस प्रकार अंगारदोष, धूम-दोष और संयोजनादोष, इन तीन दोषों से रहित पान-भोजन का अर्थ है।

विवेचन-गवेषणैषणा और ग्रहणैषणा द्वारा प्राप्त निर्दोष आहारादि को खाते समय माण्डला के पांच दोषों को टालकर उपभोग करना-ग्रासैषणा है। ग्रासैषणा के पांच दोष ये हैं;-१ अंगार, २ धूम, ३ संयोजना, ४ अप्रमाण और ५ अकारण। इन दोषों का विचार साधु-मण्डली में बैठ कर भोजन करते समय किया जाता है। इसलिए ये 'माण्डला' के दोष भी कहे जाते हैं। इनका अर्थ इस प्रकार है-

(१) अंगार दोष-स्वादिष्ट और सरस आहार करते हुए आहार की या दाता की प्रशंसा करते हुए आहार करना-'अंगार दोष' है। जैसे अग्नि से जला हुआ खदिर आदि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ईन्धन, अंगारा (कोयला) हो जाता है, उसी प्रकार उक्त रागरूपी अग्नि से, चारित्ररूपी ईन्धन जल कर कोयले की तरह हो जाता है अर्थात् राग से चारित्र का नाश हो जाता है।

(२) धूम–विरस आहार करते हुए आहार की या दाता की द्वेषवश निन्दा करना अर्थात् कुराहना करते हुए आहार करना–'धूम दोष' है। यह द्वेषभाव, साधु के चारित्र को जलाकर सधूम काष्ठ की तरह कलुषित करने वाला है।

(३) संयोजना—उत्कर्षता पैदा करके के लिए, एक द्रव्य का दूसरे द्रव्य के साथ संयोग करना—'संयोजना' दोष है। जैसे रस लोलुपता के कारण दूध, शक्कर, घी आदि द्रव्यों को स्वाद के लिये मिलाना।

(४) अप्रमाण–शास्त्र में वर्णित प्रमाण से अधिक आहार करना–'अप्रमाण' दोष है।

(५) अकारण—साधु को छह कारणों से आहार करने की आज्ञा है। उन छह कारणों के सिवाय बल-वीर्यादि की वृद्धि के लिए आहार करना–'अकारण' दोष है।

यहाँ तीन दोषों का निर्देश किया गया है। 'अकारण' दोष का समावेश इन्हीं में कर दिया गया है। अप्रमाण दोष का वर्णन आगे दिया जायगा।

इन पाँच दोषों को टालकर साधु को आहार करना चाहिए। आहार का प्रमाण बतलाने के लिए 'कुक्कुटी अण्डक प्रमाण मात्र' शब्द दिया है। टीकाकार ने इसका अर्थ इस प्रकार किया है—कुक्कुटी (मुर्गी) के अण्डक प्रमाण का एक कवल समझना चाहिए। ऐसे बत्तीस कवल प्रमाण, पुरुष का आहार माना गया है। अथवा–कुटी का अर्थ है–झोंपड़ी। जीवरूप पक्षी के लिए आश्रयरूप होने से यह शरीर उसके लिए झोंपड़ी है। यह शरीररूपी कुटी अशुचिप्रायः है, इसलिए यह 'कुकुटी' कहलाता है। इस कुकुटी का उदरपूरक (मुख–मुख में सुगमता पूर्वक जाने वाले) आहार को 'कुकुटी अण्डक' कहते हैं। इसका प्रमाण 'कुकुटी अण्डक प्रमाण' कहलाता है। इसका तात्पर्य यह है कि जिस पुरुष का जितना आहार होता है, उसके बत्तीसवें भाग को 'कुकुटी अण्डक प्रमाण' कहते हैं। इस व्याख्यानुसार यह समझना चाहिए कि यदि कोई पुरुष अपने हाथ से चौसठ कवल (ग्रास) भी ले और उतने आहार से उसके उदर (पेट) की पूर्ति होती है, तो उतना आहार उसके लिए 'प्रमाण प्राप्त' आहार कहलाता है। तात्पर्य यह है कि जिस पुरुष का जितना आहार है अर्थात् जितने आहार से उसकी उदरपूर्ति होती है, उस आहार को वह अपने हाथ द्वारा कितने ही ग्रास से मुख में क्यों न रखे, किन्तु शास्त्रीय भाषा में वह आहार 'बत्तीस कवल प्रमाण' कहलाता है। उस आहार का चतुर्थांश (चौथा हिस्सा) खाना 'अल्पाहार'

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ऊनोदरी है। बारह कवलप्रमाण आहार करना ढाई-भाग ऊनोदरी है। उस आहार का अर्धांश (आधा भाग) खाना 'द्विभाग प्राप्त' ऊनोदरी है। उस आहार का तीन चौथाई भाग खाना 'अवमोदरिका' है अर्थात् चतुर्थांश ऊनोदरी है और अपनी जितनी खुराक है उतना आहार करना 'प्रमाण प्राप्त' आहार कहलाता है। इससे एक कवल भी कम आहार करने वाला मुनि 'प्रकाम-रस-भोजी' नहीं कहलाता।

क्षेत्रातिक्रान्तादि दोष

२१ प्रश्न—अह भंते ! खेत्ताइक्कंतस्स, कालाइक्कंतस्स, मग्गाइक्कंतस्स पमाणाइकंतस्स पाण-भोयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते ?

२१ उत्तर—गोयमा ! जे णं णिग्गंथे वा णिग्गंथी वा फासु-एसणिज्जं असण-पाण-खाइम-साइमं अणुग्गए सूरिए पडिग्गाहेत्ता उग्गए सूरिए आहारं आहारेइ, एस णं गोयमा ! खेत्ताइक्कंते पाण-भोयणे। जे णं णिग्गंथे वा जाव साइमं पढमाए पोरिसीए पडिग्गाहेत्ता पच्छिमं पोरिसिं उवायणावेत्ता आहारं आहारेइ, एस णं गोयमा ! कालाइक्कंते पाण-भोयणे। जे णं णिग्गंथे वा जाव साइमं पडिग्गाहित्ता परं अद्धजोयणमेराए वीइक्कमावइत्ता आहार-माहारेइ, एस णं गोयमा ! मग्गाइक्कंते पाण-भोयणे। जे णं णिग्गंथे वा णिग्गंथी वा फासु-एसणिज्जं जाव साइमं पडिग्गा-हित्ता परं बत्तीसाए कुक्कुडिअंडगपमाणमेत्ताणं कवलाणं आहारं आहारेइ, एस णं गोयमा ! पमाणाइक्कंते पाण-भोयणे। अट्ठ

कुक्कुडिअंडगपमाणमेत्ते कवले आहारं आहारेमाणे अप्पाहारे, दुवालस कुक्कुडिअंडगपमाणमेत्ते कवले आहारं आहारेमाणे अवड्ढो-मोयरिए, सोलस कुक्कुडिअंडगपमाणमेत्ते कवले आहारं आहारे-माणे दुभागप्पत्ते, चउव्वीसं कुक्कुडिअंडगपमाणे जाव आहारं आहारे-माणे ओमोयरिए, बत्तीसं कुक्कुडिअंडगमेत्ते कवले आहारं आहारे-माणे पमाणपत्ते, एत्तो एक्केण वि घासेणं ऊणगं आहारं आहारेमाणे समणे णिग्गंथे णो पकामरसभोईत्ति वत्तव्वं सिया। एस णं गोयमा! खेत्ताइक्कंतस्स, कालाइक्कंतस्स, मग्गाइक्कंतस्स पमाणाइक्कंतस्स पाण-भोयणस्स अट्ठे पण्णत्ते।

कठिन शब्दार्थ—खेत्ताइक्कंतस्स—क्षेत्रातिक्रान्त, अणुग्गए सूरिए—सूर्य के बिना उदित हुए, उवायणावेत्ता—रखकर, परं अद्धजोयणमेराए वीइक्कमावइत्ता—आधयोजन (दो कोस) की मर्यादा का उल्लंघन करके, कुक्कुडिअंडगपमाणे—कुक्कुटी (मुर्गी) के अंडे के बराबर, अवड्ढोमोयरिए—अपार्द्ध ऊनोदरिका, दुभागप्पत्ते—द्विभाग प्राप्त, ओमोयरिए-ऊनोदरिका, पमाणपत्ते—प्रमाणप्राप्त (प्रमाण के अनुसार) घासेणं—ग्रास, ऊणगं—कम, पकामरसभोई—प्रकामरस भोजी (अत्यंत मधुरादि रस का खाने वाला)।

भावार्थ—२१ प्रश्न—हे भगवन्! क्षेत्रातिक्रान्त, कालातिक्रान्त, मार्गाति-क्रान्त और प्रमाणातिक्रान्त पान-भोजन का क्या अर्थ है?

२१ उत्तर—हे गौतम! जो कोई निर्ग्रंथ साधु या साध्वी, प्रासुक और एषणीय अशन-पान-खादिम और स्वादिम, इन चार प्रकार के आहार को सूर्यो-दय से पूर्व ग्रहण करके सूर्योदय के पीछे खाता है, तो हे गौतम! यह—'क्षेत्रातिक्रान्त पान-भोजन' कहलाता है। जो कोई निर्ग्रन्थ साधु या साध्वी यावत् आहार को प्रथम पहर में ग्रहण करके अन्तिम पहर तक रखकर खाता है, तो हे गौतम! यह 'कालातिक्रान्त पानभोजन' कहलाता है। जो कोई निर्ग्रन्थ साधु

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

या साध्वी यावत् आहार को ग्रहण करके आधे योजन की मर्यादा का उल्लंघन करके खाता है, तो हे गौतम ! यह मार्गातिक्रान्त पान-भोजन कहलाता है। जो कोई निर्ग्रन्थ साधु या साध्वी यावत् आहार को ग्रहण करके कुक्कुटी अण्डक प्रमाण बत्तीस कवल (ग्रास) से अधिक खाता है, तो हे गौतम ! यह प्रमाणातिक्रान्त पान-भोजन कहलाता है। कुक्कुटीअण्डक प्रमाण आठ कवल का आहार करने वाला साधु 'अल्पाहारी' कहलाता है। कुक्कुटीअण्डक प्रमाण बारह कवल का आहार करने वाले साधु के 'किञ्चिन्न्यून अर्ध ऊनोदरिका' होती है। कुक्कुटी अण्डकप्रमाण सोलह कवल का आहार करने वाले साधु के 'अर्ध ऊनोदरिका' होती है। अर्थात् वह साधु द्विभाग प्राप्त (अर्धाहारी) कहलाता है। कुक्कुटी अण्डक प्रमाण चौवीस कवल का आहार करने वाले साधु के 'ऊनोदरिका' होती है कुक्कुटीअण्डक प्रमाण बत्तीस कवल का आहार करने वाला साधु 'प्रमाण प्राप्त' (प्रमाणयुक्त) आहार करने वाला कहलाता है। बत्तीस कवल से एक भी कवल कम आहार करने वाला साधु 'प्रकाम-रस-भोजी' (अत्यन्त मधुरादि रस का भोक्ता) नहीं कहलाता। इस प्रकार क्षेत्रातिक्रान्त, कालातिक्रान्त, मार्गातिक्रान्त और प्रमाणातिक्रान्त पान-भोजन का अर्थ कहा गया है।

विवेचन-क्षेत्रातिक्रान्त-यहाँ क्षेत्र शब्द का अर्थ है-सूर्य सम्बन्धी ताप-क्षेत्र, अर्थात् दिन, इसका अतिक्रमण करना 'क्षेत्रातिक्रान्त' कहलाता है। दिन के पहले प्रहर में लाये हुए आहार को चौथे प्रहर में करना 'कालातिक्रान्त' है। आधे योजन से आगे ले जाकर आहारादि करना 'मार्गातिक्रान्त' है। बत्तीस कवलप्रमाण से अधिक आहार करना 'प्रमाणातिक्रान्त' है। इसका विवेचन पहले किया जा चुका है।

शस्त्रातीत आदि दोष

२२ प्रश्न-अह भंते ! सत्थातीयस्स, सत्थपरिणामियस्स, एसियस्स, वेसियस्स, सामुदाणियस्स पाण-भोयणस्स के अट्ठे पण्णत्ते ?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

२२ उत्तर–गोयमा ! जे णं णिग्गंथे वा णिग्गंथी वा णिक्खित्त-सत्थमुसले ववगयमाला-वण्णगविलेवणे ववगयचुयचइयचत्तदेहं, जीव-विप्पजढं, अकयं, अकारियं, असंकप्पियं, अणाहूयं, अकीयकडं अणुद्दिट्ठं, णवकोडीपरिसुद्धं, दसदोसविप्पमुक्कं, उग्ग-मुप्पायणेसणा-सुपरिसुद्धं वीतिंगालं, वीतधूमं, संजोयणादोसविप्पमुक्कं, असुरसुरं अचवचवं अदुयं, अविलंबियं अपरिसाडिं, अक्खोवंजण-वणाणुलेवण-भूयं, संजमजायामायावत्तियं, संजमभारवहणट्ठयाए विलमिव पण्णग-भूएणं अप्पाणेणं आहारमाहारेइ एस णं गोयमा ! सत्थातीयस्स, सत्थपरिणामियस्स जाव पाण-भोयणस्स अयमट्ठे पण्णत्ते ।

❀ सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति ❀

॥ सत्तमसए पढमो उद्देसो समत्तो ॥

कठिन शब्दार्थ—**सत्थातीयस्स**—शस्त्रातीत, **सत्थपरिणामियस्स**—शस्त्र परिणामित, **एसियस्स**—एषणीय, **वेसियस्स**—व्येषित—विविध, **सामुदाणियस्स**—सामुदायिक, **णिक्खित्तसत्थमूसले**—शस्त्रमूसलादि रहित, **ववगयमालावण्णगविलेवणे**—पुष्पमाला और चन्दनादि विलेप रहित, **चुयचइयचत्तदेहं**—देह शोभा रहित, **जीवविप्पजढं**—जीव रहित—प्रासुक, **अणाहूयं**—अनाहूत–आमन्त्रण रहित, **अकीयकडं**—खरीदा हुआ नहीं, **अणुद्दिट्ठं**—औद्देशिक नहीं, **उग्गमुप्पायणेसणापरिसुद्धं**–उद्गम उत्पादन रूप एषणादि दोष रहित–शुद्ध, **असुरसुरं**—सुसुशब्द रहित, **अचवचवं**—चपचप शब्द रहित, **अदुयं**—शीघ्रता रहित, उतावल रहित, **अपरिसाडिं**—नहीं छोड़ते हुए, **अक्खोवंजणवणाणुलेवणभूयं**–गाड़ी की धूरी के लेप और व्रण पर लेप की तरह, **संजमजायामायावत्तियं**—संयम-यात्रा मात्रा का निर्वाह करने, **बिलमिवपण्णगभूएणं**—बिल में सर्प सीधा होकर जाता है, उस तरह सीधा गले उतारना ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ—२२ प्रश्न–हे भगवन् ! शस्त्रातीत, शस्त्रपरिणामित, एषित, व्येषित, सामुदायिक, भिक्षारूप पान-भोजन का क्या अर्थ है ?

२२ उत्तर–हे गौतम ! कोई निर्ग्रंथ साधु या साध्वी जो शस्त्र और मूसलादि से रहित हैं, पुष्पमाला और चन्दन के विलेपन से रहित हैं, वे कृम्यादि जन्तुरहित, निर्जीव, साधु के लिये स्वयं नहीं बनाया हुआ एवं दूसरों से नहीं बनवाया हुआ, असंकल्पित, अनाहूत (आमन्त्रण रहित) अक्रीतकृत (नहीं खरीदा हुआ) अनुद्दिष्ट (औद्देशिक आदि दोष रहित) नव-कोटि विशुद्ध, शंकित आदि दस दोष रहित, उद्गम और उत्पादना सम्बन्धी एषणा के दोषों से रहित अंगार दोष रहित, धूम दोष रहित, संयोजना दोष रहित, सुरसुर और चपचप शब्द रहित, बहुत शीघ्रता और बहुत मन्दता से रहित, आहार के किसी अंश को छोड़े बिना, नीचे न गिराते हुए, गाडी की धूरी के अंजन अथवा घाव पर लगाये जाने वाले लेप की तरह केवल संयम के निर्वाह के लिये और संयम का भार वहन करने के लिये, जिस प्रकार सर्प बिल में प्रवेश करता है, उसी प्रकार जो आहार करते हैं, तो हे गौतम ! वह शस्त्रातीत, शस्त्रपरिणामित यावत् पान-भोजन का अर्थ है ।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है । हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है ।

विवेचन—कैसा आहार शस्त्रातीत अर्थात् अग्नि आदि शस्त्र से उतरा हुआ तथा शस्त्रपरिणामित अर्थात् अग्न्यादि शस्त्र लगने से अचित्त बना हुआ होता है, उस आहार पानी का अर्थ यहाँ बतलाया गया है ।

नवकोटि विशुद्ध का अर्थ इस प्रकार है— (१) किसी जीव की हिंसा नहीं करना । (२) किसी जीव की हिंसा नहीं कराना । (३) हिंसा करने वाले का अनुमोदन भी नहीं करना । (४) स्वयं न पकाना । (५) दूसरों से न पकवाना । (६) पकाने वालों का अनुमोदन भी नहीं करना । (७) स्वयं न खरीदना । (८) दूसरों से नहीं खरीदवाना । (९) खरीदने वाले का अनुमोदन भी नहीं करना । इन नौ दोषों से रहित आहार, वस्त्र, पात्र, मकानादि नव कोटि विशुद्ध कहलाते हैं । ये ही मुनि के लिये कल्पनीय हैं ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उद्गम के सोलह दोष

अहाकम्मुद्देसिय, पूइकम्मे य मीसजाए य ।
ठवणा पाहुडियाए, पाओयर कीय पामिच्चे ।। १ ।।
परियट्टिए अभिहडे, उब्भिन्ने मालोहडे इय ।
अच्छिज्जे अणिसिट्ठे, अज्झोयरए य सोलसमे ।। २ ।।

अर्थ—(१) आधाकर्म—साधु के निमित्त से सचित्त वस्तु को अचित्त करना या अचित्त को पकाना आदि 'आधाकर्म' कहलाता है। यह दोष चार प्रकार से लगता है। प्रतिसेवन—आधाकर्मी आहार का सेवन करना। प्रतिश्रवण—आधाकर्मी आहार के लिये निमन्त्रण स्वीकार करना। संवसन—आधाकर्मी आहार भोगने वालों के साथ रहना। अनुमोदन—आधाकर्मी आहार भोगने वालों की प्रशंसा करना।

(२) औद्देशिक—सामान्य याचकों को देने की बुद्धि से जो आहारादि तैयार किये जाते हैं, उन्हें भी औद्देशिक कहते हैं। इनके दो भेद हैं—ओघ और विभाग। भिक्षुकों के लिये अलग तैयार न करते हुए अपने लिये बनते हुए आहारादि में ही कुछ और मिला देना 'ओघ' है। विवाहादि में याचकों के लिये अलग निकाल कर रख छोड़ना 'विभाग' है। यह उद्दिष्ट, कृत और कर्म के भेद से तीन प्रकार का है। फिर प्रत्येक के उद्देश, समुद्देश, आदेश और समादेश इस तरह चार चार भेद बतलाये गये हैं, किन्तु यहाँ यह अर्थ विवक्षित है। यथा—किसी खास साधु के लिये बनाया गया आहार, यदि वही साधु ले, तो आधाकर्म, दूसरा ले तो औद्देशिक है।

(३) पूतिकर्म—शुद्ध आहार में आधाकर्मादि का अंश मिल जाना 'पूतिकर्म' है। आधाकर्मी आदि आहार का थोड़ा-सा अंश भी शुद्ध और निर्दोष आहार को सदोष बना देता है। शुद्ध चारित्र पालने वाले संयमी के लिए वह अकल्पनीय है। जिसमें ऐसे आहार का अंश लगा हो ऐसे बर्तन को भी टालना चाहिए।

(४) मिश्रजात—अपने और साधु के लिये एक साथ पकाया हुआ आहार 'मिश्रजात' कहलाता है। इसके तीन भेद हैं—यावदर्थिक, पाखंडीमिश्र और साधुमिश्र। जो आहार अपने लिये और सभी याचकों के लिये इकट्ठा बनाया जाय वह 'यावदर्थिक' है। जो अपने और साधु सन्यासियों के लिये इकट्ठा बनाया जाय, वह 'पाखंडीमिश्र' है। जो केवल अपने लिये और साधुओं के लिये इकट्ठा बनाया जाय, वह 'साधु-मिश्र' है।

(५) स्थापन—साधु को देने की इच्छा से कुछ काल के लिये आहार को अलग

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(६) प्राभृतिका-साधु को विशिष्ट आहार बहराने के लिये जीमणवार या निमंत्रण के समय को आगे पीछे करना।

(७) प्रादुष्करण-देय वस्तु के अंधेरे में होने पर अग्नि, दीपक आदि का उजाला करके या खिड़की वगैरह खोलकर वस्तु को प्रकाश में लाना अथवा आहारादि को अन्धेरी जगह से प्रकाश वाली जगह में लाना 'प्रादुष्करण' है।

(८) क्रीत—साधु के लिये मोल लिया आहारादि।

(९) प्रामित्य (पामिच्चं)—साधु के लिये उधार लिया हुआ आहारादि।

(१०) परिवर्तित-साधु के लिये बदला करके लिया हुआ।

(११) अभिहृत-(अभिहडे)-साधु के लिये गृहस्थ द्वारा ग्राम या घर आदि से सामने लाया हुआ आहारादि।

(१२) उद्भिन्न-साधु को घी आदि देने के लिये कुप्पी आदि का मुंह (छांदण) खोल कर देना।

(१३) मालापहृत—ऊपर, नीचे या तिरछी दिशा में जहाँ आसानी से हाथ नहीं पहुंच सके, वहाँ पंजों पर खड़े होकर या नसेनी एवं सीढ़ी आदि लगाकर आहार देना। इसके चार भेद हैं। उर्ध्व, अधः, उभय और तिर्यक, इनमें से भी हर एक के जघन्य, उत्कृष्ट और मध्यम रूप तीन-तीन भेद हैं। एड़ियाँ उठाकर हाथ फैलाते हुए छत में टंगे छींके आदि से कुछ निकालना जघन्य ऊर्ध्व-मालापहृत है। सीढ़ी आदि लगाकर ऊपर के मंजिल से उतारी गई वस्तु उत्कृष्ट ऊर्ध्वमालापहृत है। इनके बीच की वस्तु मध्यम है। इसी तरह अधः, उभय और तिर्यक् के भी भेद जानने चाहिये।

(१४) आछेद्य-निर्बल व्यक्ति या अपने आश्रित रहने वाले नौकर चाकर और पुत्र आदि से छीन कर साधु को देना, इसके भी तीन भेद हैं-स्वामीविषयक, प्रभुविषयक और स्तेनविषयक। ग्राममालिक 'स्वामी' और अपने घर का मालिक 'प्रभु' कहलाता हैं। चोर और लुटेरे को 'स्तेन' कहते हैं। इन में से कोई किसी से कुछ छीन कर साधु को दे, तो क्रमशः इन तीनों से भी उपरोक्त दोष लगता है।

(१५) अनिसृष्ट—किसी वस्तु के एक से अधिक मालिक होने पर सब की इच्छा बिना देना।

(१६) अध्यवपूरक-साधुओं का आगमन सुनकर आधण में कुछ बढ़ाना अर्थात् अपने लिये बनते हुए भोजन में साधुओं का आगमन सुनकर उनके निमित्त से और मिला देना।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उद्गम के सोलह दोषों का निमित्त गृहस्थ दाता होता है। अर्थात् गृहस्थ के निमित्त से ये दोष साधुओं को लगते हैं।

उत्पादना के सोलह दोष

धाई दूई निमित्ते, आजीव वणिमगे तिगिच्छा य।
कोहे माणे माया लोहे, य, हवंति दस एए ॥१॥
पुव्विपच्छासंथव, विज्जा मंते य चुण्ण जोगे य।
उप्पायणाइ दोसा, सोलसमे मूलकम्मे य ॥२॥

(१) धात्री-बच्चे को खिलाना, पिलाना आदि धाय का काम करके या किसी के घर में धाय की नौकरी लगवाकर आहार लेना।

(२) दूती-एक दूसरे का सन्देश गुप्त या प्रकट रूप से पहुँचा कर, दूत का काम करके आहारादि लेना।

(३) निमित्त-भूत और भविष्यत् को जानने के शुभाशुभ निमित्त बतलाकर आहारादि लेना।

(४) आजीव - स्पष्ट या अस्पष्ट रूप से अपनी जाति और कुल आदि प्रकट करके।

(५) वनीपक—श्रमण, शाक्य, सन्यासी आदि में जो जिसका भक्त हो, उसके सामने उसी की प्रशंसाकर के या दीनता दिखाकर आहारादि लेना।

(६) चिकित्सा-औषधि करना या बताना आदि चिकित्सक का काम करके आहारादि ग्रहण करना।

(७) क्रोध-क्रोध करके या गृहस्थ को शापादि का भय दिखाकर भिक्षा लेना।

(८) मान-अभिमान से अपने को प्रतापी, तेजस्वी, बहुश्रुत आदि बताते हुए अपना प्रभाव जमाकर आहारादि लेना।

(९) माया—वंचना अर्थात् ठगाई करके आहारादि लेना।

(१०) लोभ-आहार में लोभ करना अर्थात् भिक्षा के लिये जाते समय जीभ के लालच से यह निश्चय करके निकलना कि आज तो अमुक वस्तु ही लायेंगे और उसके अनायास न मिलने पर इधर-उधर ढूंढना तथा दूध आदि मिल जाने पर स्वादवश शक्कर आदि के लिये इधर-उधर भटकना 'लोभपिण्ड' है।

(११) प्राक्पश्चात्संस्तव (पुव्विपच्छा संथव)-आहार लेने के पहले या पीछे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दाता की प्रशंसा करना ।

(१२) विद्या—स्त्रीरूप देवता से अधिष्ठित या जप, होम आदि से सिद्ध होने वाली अक्षरों की रचना विशेष को 'विद्या' कहते हैं । विद्या का प्रयोग करके आहारादि लेना 'विद्यापिण्ड' है ।

(१३) मन्त्र—पुरुषरूप देव के द्वारा अधिष्ठित ऐसी अक्षर रचना, जो केवल पाठ मात्र से सिद्ध हो जाय, उसे 'मन्त्र' कहते हैं । मन्त्र के प्रयोग से लिया जाने, वाला आहारादि 'मन्त्रपिण्ड' है ।

(१४) चूर्ण—अदृश्य करने वाले सुरमे आदि का प्रयोग करके जो आहारादि लिया जाय, उसे 'चूर्णपिण्ड' कहते हैं ।

(१५) योग—पादलेप वशीकरण आदि सिद्धियाँ बताकर जो आहारादि लिया जाय, उसे 'योगपिण्ड' कहते हैं ।

(१६) मूलकर्म—गर्भ-स्तम्भन, गर्भाधान, गर्भपात आदि संसार सागर में भ्रमण कराने वाली सावद्य-क्रिया करना ।

उत्पादना के दोष साधु से लगते हैं अर्थात् इन दोषों के लगने का निमित्त साधु ही होता है ।

एषणा के दस दोष

संकिय-मक्खिय-णिक्खित्त, पिहिय-साहरिय-दाय-गुम्मीसे ।
अपरिणय-लित्त-छड्डिय, एसण-दोसा दस हवंति ॥१॥

(१) संकिय (शंकित)-आहार में आधाकर्मादि दोषों की शंका होने पर भी उसे लेना ।

(२) मक्खिय (म्रक्षित)-देते समय आहार, चमचा या हाथ आदि किसी अंग का सचित्त वस्तु से छू जाना या सचित्त वस्तु से लगे हुए हाथ या बर्तन आदि से देना ।

(३) णिक्खित्त (निक्षिप्त)-दी जाने वाली वस्तु, सचित्त के ऊपर रखी उसे लेना। इसके पृथ्वीकायादि छह भेद हैं।

(४) पिहिय (पिहित)—देय वस्तु, सचित्त के द्वारा ढंकी हुई हो । इसके भी पृथ्वीकायादि छह भेद हैं

(५) साहरिय (संहृत्य)—जिस बर्तन में असूझती वस्तु पड़ी हो, उसमें से असूझती वस्तु निकाल कर उसी बर्तन से आहारादि देना ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(६) दायक-बालक आदि दान देने के अनधिकारी से, आहारादि लेना 'दायक' दोष है। यदि अधिकारीव्यक्ति स्वयं बालक आदि के हाथ से आहारादि बहराना चाहे, तो उसमें दोष नहीं हैं। पुरुषविशेष की अपेक्षा इसके चालीस भेद किये गये हैं।

(७) उम्मीसे (उन्मिश्र)-अचित्त के साथ सचित्त या मिश्र मिला हुआ अथवा सचित्त या मिश्र के साथ अचित्त मिला हुआ आहार लेना 'उन्मिश्र' दोष है।

(८) अपरिणय (अपरिणत)-पूरे पाक के बाद वस्तु के निर्जीव होने से पहले ही उसे लेलेना अथवा जिसमें शस्त्र पूरी तरह परिणत न हुआ हो, ऐसी वस्तु लेना।

(९) लित्त (लिप्त) हाथ या पात्र (भोजन परोसने का बर्तन) आदि में लेप करने वाली वस्तु को 'लिप्त' कहते हैं। जैसे-दूध, दहीं, घी आदि लेप करनेवाली वस्तु को लेना 'लिप्त दोष' है। रसीली वस्तुओं के खाने से भोजन में गृद्धि बढ़ जाती है। दही आदि के हाथ या बर्तन आदि में लगे रहने पर उन्हें धोना पड़ता है। इसमे 'पश्चात्कर्म' आदि दोष लगते हैं। इसलिये साधु को लेप करनेवाली वस्तुएँ नहीं लेनी चाहियें। अधिक स्वाध्याय और अध्ययन आदि खास कारण से या वैसी शक्ति न होने पर लेप वाले पदार्थ भी लेने कल्पते हैं। लेपवाली वस्तु लेते समय दाता का हाथ और परोसने का बर्तन संसृष्ट (जिसमें दही आदि लगे हुए हों) अथवा असंसृष्ट होते हैं। इसी प्रकार दिया जाने वाला द्रव्य सावशेष (जो देने से कुछ बाकी बच गया हो) या निरवशेष (जो बाकी न बचा हो) दो प्रकार का होता है। इन के आठ भांगे होते हैं। जैसे—

(१) संसृष्ट-हाथ, संसृष्ट-पात्र और सावशेष द्रव्य।
(२) संसृष्ट-हाथ, संसृष्ट-पात्र और निरवशेष द्रव्य।
(३) संसृष्ट-हाथ, असंसृष्ट-पात्र और सावशेष द्रव्य।
(४) संसृष्ट-हाथ, असंसृष्ट पात्र और निरवशेष द्रव्य।
(५) असंसृष्ट-हाथ, संसृष्ट पात्र और सावशेष द्रव्य।
(६) असंसृष्ट-हाथ, संसृष्ट-पात्र और निरवशेष द्रव्य।
(७) असंसृष्ट-हाथ, असंसृष्ट-पात्र और सावशेष द्रव्य।
(८) असंसृष्ट-हाथ, असंसृष्ट-पात्र और निरवशेष द्रव्य।

इन आठ भांगों में विषम अर्थात् प्रथम, तृतीय, पंचम और सप्तम भंगों में लेप वाले पदार्थ ग्रहण किये जा सकते हैं। सम अर्थात् दूसरे, चौथे, छठे और आठवें भंग में ग्रहण न करना चाहिये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तात्पर्य यह है कि हाथ या पात्र-संसृष्ट हों या असंसृष्ट, पश्चात्कर्म अर्थात् हाथ आदि का धोना, इस बात पर निर्भर नहीं है। पश्चात्कर्म का होना या न होना द्रव्य के न बचने या बचने पर आश्रित है। अर्थात् यदि दिया जाने वाला पदार्थ कुछ बाकी बच जाय तो हाथ या कुड़छी आदि के लिप्त होने पर भी उन्हें नहीं धोया जाता, क्योंकि उसी द्रव्य को परोसने की फिर संभावना रहती है। यदि वह पदार्थ बाकी न बचे, तो बर्तन आदि धो दिये जाते हैं। इससे साधु को पश्चात्कर्म दोष लगने की संभावना रहती है। इसलिये ऐसे भांगे कल्पनीय कहे गये हैं-जिनमें दी जाने वाली वस्तु सावशेष कही है। सारांश यह है कि लेप वाली वस्तु तभी कल्पनीय है-जब वह लेने के बाद कुछ बाकी बची रहे। पूरी लेने पर ही पश्चात्कर्म दोष की संभावना है। लिप्त दोष का प्रचलित अर्थ यह है कि तत्काल के लीपे हुए आंगन पर जाकर साधु आहारादि लेवे या उस पर जाकर दाता आहारादि देवे।

(१०) छड्डिय (छर्दित)-जिसके छींटे नीचे पड़ रहे हों, ऐसा आहार लेना 'छर्दित दोष' है। ऐसे आहार में नीचे चलते हुए कीड़ी आदि जीवों की हिंसा का डर है, इसलिये साधु को अकल्पनीय है।

एषणा के दोष साधु और गृहस्थ दोनों के निमित्त से लगते हैं।

इन उपरोक्त समस्त दोषों को टालकर मुनि को आहारादि ग्रहण करना और भोगना चाहिये। इन दोषों का यह अर्थ और वर्णन पिण्डनिर्युक्ति, प्रवचनसारोद्धार आदि ग्रन्थों से लिया गया है।

॥ इति सातवें शतक का पहला उद्देशक संपूर्ण ॥

शतक ७ उद्देशक २

सुप्रत्याख्यान दुष्प्रत्याख्यान

प्रश्न-१ से णूणं भंते ! सव्वपाणेहिं, सव्वभूएहिं, सव्वजीवेहिं, सव्वसत्तेहिं पच्चक्खायमिति वयमाणस्स सुपच्चक्खायं भवइ, दुपच्च-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्खायं भवइ ?

१ उत्तर-गोयमा ! सव्वपाणेहिं, जाव सव्वसत्तेहिं पच्चक्खाय-मिति वयमाणस्स सिय सुपच्चक्खायं भवइ, सिय दुपच्चक्खायं भवइ।

प्रश्न-से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ-सव्वपाणेहिं जाव सव्वसत्तेहिं जाव सिय दुपच्चक्खायं भवइ ?

उत्तर-गोयमा ! जस्स णं सव्वपाणेहिं, जाव सव्वसत्तेहिं पच्च-क्खायमिति वयमाणस्स णो एवं अभिसमण्णागयं भवइ-इमे जीवा, इमे अजीवा, इमे तसा, इमे थावरा, तस्स णं सव्वपाणेहिं जाव सव्वसत्तेहिं पच्चक्खायमिति वयमाणस्स णो सुपच्चक्खायं भवइ, दुपच्चक्खायं भवइ। एवं खलु से दुपच्चक्खाई सव्वपाणेहिं जाव सव्वसत्तेहिं पच्चक्खायमिति वयमाणे णो सच्चं भासं भासइ, मोसं भासं भासइ। एवं खलु से मुसावाई सव्वपाणेहिं जाव सव्वसत्तेहिं तिविहं तिविहेणं असंजय-विरय-पडिहय-पच्चक्खायपावकम्मे, सकि-रिए, असंवुडे, एगंतदंडे, एगंतबाले यावि भवइ। जस्स णं सव्वपाणेहिं जाव सव्वसत्तेहिं पच्चक्खायमिति वयमाणस्स एवं अभिसमण्णा-गयं भवइ-इमे जीवा, इमे अजीवा, इमे तसा, इमे थावरा, तस्स णं सव्वपाणेहिं जाव सव्वसत्तेहिं पच्चक्खायमिति वयमाणस्स सुपच्च-क्खायं भवइ, णो दुपच्चक्खायं भवइ। एवं खलु से सुपच्चक्खाई सव्व-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पाणेहिं जाव सव्वसत्तेहिं पच्चक्खायमिति वयमाणे सच्चं भासं भासइ, णो मोसं भासं भासइ। एवं खलु से सच्चवाई सव्वपाणेहिं, जाव सव्वसत्तेहिं तिविहं तिविहेणं संजय-विरय-पडिहय-पच्चक्खायपाव-कम्मे, अकिरिए, संवुडे, एगंतपंडिए यावि भवइ, से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ-जाव सिय दुपच्चक्खायं भवइ।

कठिन शब्दार्थ-अभिसमण्णागयं-इस प्रकार का ज्ञान होना, **सकिरिए**-सक्रिय, **असंवुडे**-असंवृत (जिसने आश्रव द्वारों को नहीं रोका) **एगंतदंडे**-एकान्त दण्ड (दूसरे प्राणियों की हिंसा करने वाला) **एगंतबाले**-एकान्तबाल (सर्वथा अज्ञानी)।

भावार्थ-१ प्रश्न-हे भगवन् ! 'मैंने सभी प्राण, सभी भूत, सभी जीव और सभी सत्त्वों की हिंसा का प्रत्याख्यान किया है,' इस प्रकार कहने वाले के सुप्रत्याख्यान होता है, या दुष्प्रत्याख्यान होता है ?

१ उत्तर-हे गौतम ! 'मैंने सभी प्राण, सभी भूत, सभी जीव, और सभी सत्त्वों की हिंसा का प्रत्याख्यान किया है'-इस प्रकार बोलने वाले के कदाचित् सुप्रत्याख्यान होता है और कदाचित् दुष्प्रत्याख्यान होता है।

प्रश्न-हे भगवन् ! आप ऐसा क्यों कहते हैं कि सभी प्राण यावत् सर्व सत्त्वों की हिंसा का त्याग करने वाले के कदाचित् सुप्रत्याख्यान होता है और कदाचित् दुष्प्रत्याख्यान होता है ?

उत्तर-हे गौतम ! 'मैंने सर्वप्राण यावत् सर्व सत्त्वों की हिंसा का प्रत्याख्यान किया है'-इस प्रकार बोलने वाले पुरुष को यदि इस प्रकार का ज्ञान नहीं होता कि 'ये जीव हैं, ये अजीव हैं, ये त्रस हैं, ये स्थावर हैं, उस पुरुष का प्रत्याख्यान सुप्रत्याख्यान नहीं होता, किन्तु दुष्प्रत्याख्यान होता है।' 'मैंने सभी प्राण यावत् सभी सत्त्वों की हिंसा का प्रत्याख्यान किया है'-इस प्रकार बोलता हुआ वह दुष्प्रत्याख्यानी पुरुष, सत्यभाषा नहीं बोलता, किन्तु असत्य

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भाषा बोलता है। इस प्रकार वह मृषावादी सर्वप्राण यावत् सर्व सत्त्वों में तीन करण तीन योग से असंयत, (संयम रहित) अविरत (विरति रहित) पापकर्म का अत्यागी एवं अप्रत्याख्यानी (जिसने पापकर्म का त्याग और प्रत्याख्यान नहीं किया है) सक्रिय (कायिकी आदि कर्म-बन्ध की क्रियाओं से युक्त) संवर रहित, एकान्तदण्ड (हिंसा करने वाला) और एकान्त अज्ञानी है।

गौतम ! जो पुरुष जीव, अजीव, त्रस और स्थावर को जानता है, उसको ऐसा ज्ञान है, तो उसका कहना कि-'मैंने सर्व-प्राण यावत् सर्व सत्त्वों की हिंसा का प्रत्याख्यान किया है'—सत्य है। उसका प्रत्याख्यान, सुप्रत्याख्यान है, किंतु दुष्प्रत्याख्यान नहीं। 'मैंने सर्व-प्राण यावत् सब सत्त्वों की हिंसा का प्रत्याख्यान किया है'—इस प्रकार बोलने वाला वह सुप्रत्याख्यानी, सत्य भाषा बोलता है, मृषा भाषा नहीं बोलता। इस प्रकार वह सुप्रत्याख्यानी सत्यभाषी, सर्वप्राण यावत् सर्व सत्त्वों में तीन करण तीन योग से संयत, विरत, पाप-कर्म का त्यागी, प्रत्याख्यानी, अक्रिय (कर्म-बन्ध की क्रियाओं से रहित,) संवरयुक्त और एकान्त पंडित है। इसलिये हे गौतम ! ऐसा कहा जाता है कि यावत् कदाचित् सुप्रत्याख्यान होता है और कदाचित् दुष्प्रत्याख्यान होता है।

विवेचन—प्रथम उद्देशक में प्रत्याख्यानी जीव का वर्णन किया गया है। अब इस दूसरे उद्देशक में प्रत्याख्यान का वर्णन किया जाता है।

किस जीव का प्रत्याख्यान, सुप्रत्याख्यान होता है और किस का दुष्प्रत्याख्यान होता है, इस प्रश्न के उत्तर में बतलाया गया है कि सभी प्राण, भूत, जीव, सत्त्व की हिंसा का प्रत्याख्यान करने वाले जीव को यदि जीव, अजीव, त्रस और स्थावर का ज्ञान है, तो उसका प्रत्याख्यान सुप्रत्याख्यान है और जिसको इनका ज्ञान नहीं, उसका प्रत्याख्यान दुष्प्रत्याख्यान है। क्योंकि ज्ञान के अभाव में उसे यथावत् बोध नहीं हो सकता।

आगे के प्रश्न का उत्तर देते हुए दुष्प्रत्याख्यान का कथन पहले किया गया और सुप्रत्याख्यान का पीछे, इसका कारण यह है कि यहाँ 'यथा संख्य' न्याय को छोड़कर 'यथासन्न' न्याय स्वीकार किया गया है +।

+ जो शब्द पहले आया है, उसकी व्याख्या पहले करना और जो शब्द पीछे आया है, उसकी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सुप्रत्याख्यान का कारण जीवाजीवादि का बोध है और बोध का अभाव दुष्प्रत्याख्यान में निमित्त है।

मूलोत्तर गुण प्रत्याख्यान

२ प्रश्न—कइविहे णं भंते ! पच्चक्खाणे पण्णत्ते ?

२ उत्तर—गोयमा ! दुविहे पच्चक्खाणे पण्णत्ते, तं जहा—मूलगुणपच्चक्खाणे य उत्तरगुणपच्चक्खाणे य।

३ प्रश्न—मूलगुणपच्चक्खाणे णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते ?

३ उत्तर—गोयमा ! दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—सव्वमूलगुणपच्चक्खाणे य देसमूलगुणपच्चक्खाणे य।

४ प्रश्न—सव्वमूलगुणपच्चक्खाणे णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते ?

४ उत्तर—गोयमा ! पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा—सव्वाओ पाणाइवायाओ वेरमणं, जाव सव्वाओ परिग्गहाओ वेरमणं।

५ प्रश्न—देसमूलगुणपच्चक्खाणे णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते ?

५ उत्तर—गोयमा ! पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा—थूलाओ पाणाइवायाओ वेरमणं, जाव थूलाओ परिग्गहाओ वेरमणं।

व्याख्या पीछे करना—यह 'यथासंख्य' (यथाक्रम) न्याय कहलाता है।

जो शब्द प्रश्न के अन्त में आया है उसकी पहले व्याख्या करना और जो शब्द प्रश्न के प्रारम्भ में आया है उसकी व्याख्या पीछे करना, यह 'यथाऽऽसन्न' (समीपस्थ) न्याय कहलाता है। यहाँ प्रश्न के अन्त में आये हुए 'दुष्प्रत्याख्यान' शब्द की व्याख्या पहले की गई और सुप्रत्याख्यान शब्द की व्याख्या पीछे की गई है।

भावार्थ—२ प्रश्न—हे भगवन् ! प्रत्याख्यान कितने प्रकार का कहा गया है ?

२ उत्तर—हे गौतम ! प्रत्याख्यान दो प्रकार का कहा गया है । यथा—मूलगुणप्रत्याख्यान और उत्तरगुणप्रत्याख्यान ।

३ प्रश्न—हे भगवन् ! मूलगुणप्रत्याख्यान कितने प्रकार का कहा गया है ?

३ उत्तर—हे गौतम ! मूलगुणप्रत्याख्यान दो प्रकार कहा गया है । यथा—सर्व मूलगुणप्रत्याख्यान और देश-मूल-गुणप्रत्याख्यान ।

४ प्रश्न—हे भगवन् ! सर्व-मूल-गुण-प्रत्याख्यान कितने प्रकार का कहा गया है ?

४ उत्तर—हे गौतम ! सर्व-मूलगुणप्रत्याख्यान पांच प्रकार का कहा गया है । यथा—सर्व-प्राणातिपात से विरमण, सर्व-मृषावाद से विरमण, सर्व अदत्तादान से विरमण, सर्व-मैथुन से विरमण और सर्व-परिग्रह से विरमण ।

५ प्रश्न—हे भगवन् ! देश-मूलगुणप्रत्याख्यान कितने प्रकार का कहा गया है ?

५ उत्तर—हे गौतम ! देशमूलगुणप्रत्याख्यान पांच प्रकार का कहा गया है । यथा—स्थूल-प्राणातिपात से विरमण यावत् स्थूल-परिग्रह से विरमण ।

विवेचन—चारित्ररूप कल्पवृक्ष के मूल के समान प्राणातिपात-विरमण आदि गुण 'मूलगुण' कहलाते हैं । मूलगुण विषयक प्रत्याख्यान (त्याग) को 'मूल गुणप्रत्याख्यान' कहते हैं । वृक्ष की शाखा के समान मूलगुणों की अपेक्षा जो उत्तररूप गुण हों, वे 'उत्तर-गुण' कहलाते हैं । और तद्विषयक प्रत्याख्यान 'उत्तरगुणप्रत्याख्यान' कहलाते हैं ।

सर्वथा मूलगुणप्रत्याख्यान—'सर्वमूलगुणप्रत्याख्यान' कहलाता है और देशतः (अंशतः) मूलगुण प्रत्याख्यान, 'देशमूलगुणप्रत्याख्यान' कहलाता है । सर्वविरत मुनियों के सर्वमूल-गुणप्रत्याख्यान होता है और देशविरत श्रावकों के देशमूलगुणप्रत्याख्यान होता है ।

६ प्रश्न—उत्तरगुणपच्चक्खाणे णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते ?

६ उत्तर—गोयमा ! दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—सव्वुत्तरगुणपच्च-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्खाणे य देसुत्तरगुणपच्चक्खाणे य ।

७ प्रश्न—सव्वुत्तरगुणपच्चक्खाणे णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते ?

७ उत्तर—गोयमा ! दसविहे पण्णत्ते, तं जहा—

अणागयमइक्कंतं कोडीसहियं णियंटियं चेव ।
सागारमणागारं परिमाणकडं निरवसेसं ॥
साकेयं चेव अद्धाए पच्चक्खाणं भवे दसहा ।

८ प्रश्न—देसुत्तरगुणपच्चक्खाणे णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते ।

८ उत्तर—गोयमा ! सत्तविहे पण्णत्ते, तं जहा—१ दिसिव्वयं, २ उवभोगपरिभोगपरिमाणं, ३ अणत्थदंडवेरमणं, ४ सामाइयं, ५ देसावगासियं, ६ पोसहोववासो, ७ अतिहिसंविभागो; अपच्छिम-मारणंतियसंलेहणाझूसणाऽऽराहणया ।

कठिन शब्दार्थ—अणागयं—अनागत, अइक्कंतं—अतिक्रान्त, कोडीसहियं—कोटि-सहित, नियंटियं—नियन्त्रित, सागारमणागारं—साकार निराकार, ६ परिमाणकडं—परिमाणकृत, साकेयं—संकेत ।

भावार्थ—६ प्रश्न—हे भगवन् ! उत्तरगुणप्रत्याख्यान कितने प्रकार का कहा गया है ?

६ उत्तर—हे गौतम ! उत्तरगुणप्रत्याख्यान दो प्रकार का कहा गया है । यथा—सर्वोत्तरगुणप्रत्याख्यान और देशोत्तरगुणप्रत्याख्यान ।

७ प्रश्न—हे भगवन् ! सर्वोत्तरगुणप्रत्याख्यान कितने प्रकार का कहा गया है ?

७ उत्तर—हे गौतम ! सर्वोत्तरगुणप्रत्याख्यान दस प्रकार का कहा गया है । यथा—१ अनागत, २ अतिक्रान्त, ३ कोटिसहित, ४ नियन्त्रित, ५ साकार,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

६ अनाकार, ७ परिमाणकृत, ८ निरवशेष, ९ संकेत, १० अद्धाप्रत्याख्यान। इस प्रकार सर्वोत्तरगुणप्रत्याख्यान दस प्रकार का कहा गया है।

८ प्रश्न—हे भगवन् ! देशउत्तरगुणप्रत्याख्यान कितने प्रकार का कहा गया है ?

८ उत्तर—हे गौतम ! देश उत्तर गुण प्रत्याख्यान सात प्रकार का कहा गया है। यथा—१ दिग्व्रत, २ उपभोगपरिभोगपरिमाण, ३ अनर्थदण्डविरमण, ४ सामायिक, ५ देशावकाशिक, ६ पौषधोपवास, ७ अतिथिसंविभाग और अपश्चिममारणान्तिक-संलेखना-जोषणा-आराधना।

विवेचन—सर्वोत्तरगुण प्रत्याख्यान के दस भेद हैं। यथा—

(१) अनागत प्रत्याख्यान

होही पज्जोसवणा मम य तया अंतराइयं होज्जा।
गुरुवेयावच्चेणं, तवस्सि गेलण्णयाए वा ॥ १ ॥
सो दाइ तवोकम्मं पडिवज्जइ तं अणागए काले।
एयं पच्चक्खाणं अणागयं होइ णायव्वं ॥ २ ॥

अर्थ—किसी आने वाले पर्व पर निश्चित किये हुए प्रत्याख्यान को, उस समय बाधा पड़ती देखकर पहले ही कर लेना—'अनागत प्रत्याख्यान है'। जैसे कि पर्युषण में आचार्य, तपस्वी और ग्लान (रोगी) मुनि की सेवा शुश्रूषा करने के कारण होने वाली अन्तराय को देखकर पहले ही उपवास आदि कर लेना।

(२) अतिक्रान्त

पज्जोसवणाइ तवं जो खलु न करेइ कारणज्जाए।
गुरुवेयावच्चेणं तवस्सिगेलण्णयाए वा ॥ १ ॥
सो दाइ तवोकम्मं पडिवज्जइ तं अइच्छिए काले।
एयं पच्चक्खाणं अइक्कंतं होइ णायव्वं ॥ २ ॥

अर्थ—पर्युषणादि के समय कोई कारण उपस्थित होने पर बाद में तपस्यादि करना अर्थात् गुरु तपस्वी और ग्लान की वैयावृत्य आदि कारणों से जो व्यक्ति पर्युषण आदि पर्वों पर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तपस्या नहीं कर सका, वह यदि बाद में वही तप करे, तो उसे 'अतिक्रान्तप्रत्याख्यान' कहते हैं।

(३) कोटि-सहित

पट्ठवणओ उ दिवसो पच्चक्खाणस्स निट्ठवणओ य।
जहियं समेंति दोण्णि उ तं भण्णइ कोडीसहियं तु ॥१॥

अर्थ—जहाँ एक प्रत्याख्यान की समाप्ति तथा दूसरे प्रत्याख्यान का प्रारम्भ एक ही दिन में हो जाय, उसे कोटि-सहित प्रत्याख्यान कहते हैं। जैसे कि उपवास के पारणे में आयम्बिल आदि तप करना।

(४) नियन्त्रित

मासे मासे य तवो अमुगो अमुगे दिणम्मि एवइयो।
हट्ठेण गिलाणेण व कायव्वो जाव ऊसासो ॥१॥
एयं पच्चक्खाणं नियंटियं धीरपुरिसपण्णत्तं।
जं गेण्हंत अणगारा अणिस्सियप्पा अपडिबद्धा ॥२॥

अर्थ—जिस दिन जो प्रत्याख्यान करने का निश्चय किया है, उसी दिन उसे नियम पूर्वक करना, बीमारी आदि की बाधा आने पर भी उसे नहीं छोड़ना—नियन्त्रित प्रत्याख्यान है। प्रत्येक मास में जिस दिन जितने काल के लिये जो तप अंगीकार किया है, उसे अवश्य करना, रोग आदि बाधाएँ उपस्थित होने पर भी, प्राण रहते उसे नहीं छोड़ना नियन्त्रित प्रत्याख्यान है।

(५) साकार (सागार) प्रत्याख्यान—जिस प्रत्याख्यान में कुछ आगार अर्थात् अपवाद रखा जाय, उन आगारों में से किसी के उपस्थित होने पर त्यागी हुई वस्तु त्याग का समय पूरा होने से पहले भी काम में ले ली जाय, तो प्रत्याख्यान नहीं टूटता। जैसे कि नवकारसी, पोरिसी आदि प्रत्याख्यानों में अनाभोग आदि आगार हैं।

(६) अनाकार (अनागार) प्रत्याख्यान—जिस प्रत्याख्यान में 'महत्तरागार' आदि आगार न हों। (अनाभोग और सहसाकार तो उसमें भी होते हैं, क्योंकि मुंह में अंगुली आदि के अनुपयोग पूर्वक पड़ जाने से आगार न होने पर, प्रत्याख्यान के टूटने का डर है।)

(७) परिमाण-कृत

दत्तीहि व कवलेहि व घरेहि भिक्खाहि अहव दव्वेहि।
जो भत्तपरिच्चायं करेइ परिमाणकडमेयं ॥१॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अर्थ-दत्ति (दात), कवल (ग्रास), घर, भिक्षा या भोजन के द्रव्यों की मर्यादा करना 'परिमाणकृत' प्रत्याख्यान है।

(८) निरवशेष

सव्वं असणं सव्वं च पाणगं सव्वखज्जपेज्जविहिं।
परिहरइ सव्वभावेणेयं भणियं निरवसेसं ॥१॥

अर्थ-अशन, पान, खादिम और स्वादिम चारों प्रकार के आहार का सर्वथा त्याग करना-निरवशेष प्रत्याख्यान है।

(९) संकेत प्रत्याख्यान

अंगुट्ठमुट्ठिगंठीघर सेऊसास थिबुगजोइक्खे।
भणियं संकेयमेयं धीरेहिं अणंतणाणिहिं ॥१॥

अर्थ—अंगूठा, मुट्ठी, गांठ आदि के चिन्ह को लेकर जो प्रत्याख्यान किया जाता है, उसे 'संकेत प्रत्याख्यान' कहते हैं।

(१०) अद्धा प्रत्याख्यान

अद्धापच्चक्खाणं जं तं कालप्पमाणछेएणं।
पुरिमड्ढपोरुसीहिं मुहुत्तमासद्धमासेहिं ॥१॥

अर्थ—अद्धा अर्थात् काल को लेकर जो प्रत्याख्यान किया जाता है, जैसे पोरिसी, दोपोरिसी, अर्द्धमास, मास आदि, उसे 'अद्धा-प्रत्याख्यान' कहते हैं।

देशोत्तर-गुण प्रत्याख्यान के सात भेद बतलाये गये हैं। यथा-(१) दिग्व्रत-पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, ऊपर, नीचे, इन छह दिशाओं की मर्यादा करना एवं नियमित दिशा से आगे आश्रवसेवन का त्याग करना-'दिग्व्रत' या 'दिशिपरिमाणव्रत' कहलाता है।

(२) उपभोगपरिभोगपरिमाण व्रत-भोजनादि जो एक बार भोगने में आते हैं, वे 'उपभोग' हैं और बार बार भोगे जाने वाले वस्त्र, शय्या आदि 'परिभोग' है +। उपभोग परिभोग योग्य वस्तुओं का परिमाण करना छब्बीस बोलों की मर्यादा करना एवं मर्यादा के उपरान्त उपभोग परिभोग योग्य वस्तुओं के भोगोपभोग का त्याग करना 'उपभोगपरिभोग परिमाण व्रत' है।

+ उपभोग परिभोग शब्दों का अर्थ उपासकदशांग सूत्र अध्ययन १ में इस प्रकार भी किया है-बारबार भोगे जाने वाले पदार्थ 'उपभोग' और एक ही बार भोगे जाने वाले पदार्थ 'परिभोग' है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(३) अनर्थदण्ड विरमण व्रत-अपध्यान अर्थात् आर्त्तध्यान, रौद्रध्यान करना, प्रमाद पूर्वक प्रवृत्ति करना, हिंसाकारी शस्त्र देना एवं पापकर्म का उपदेश देना—ये सभी कार्य 'अनर्थदण्ड' है। क्योंकि इनसे निष्प्रयोजन हिंसा होती है। इस अनर्थदण्ड से निवृत्त होना 'अनर्थदण्डविरमण' व्रत है।

(४) सामायिक व्रत-सावद्य-व्यापार का त्याग कर आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान को दूर कर, धर्मध्यान में आत्मा को लगाना और मनोवृत्ति को समभाव में रखना-सामायिक-व्रत है। एक सामायिक काल, दो घडी अर्थात् एक मुहूर्त (४८ मिनिट) है। सामायिक में बत्तीस दोषों को वर्जना चाहिये।

(५) देशावकाशिक व्रत—दिग्व्रत में दिशाओं का जो परिमाण किया है, उसका तथा पहले के सभी व्रतों का प्रतिदिन संकोच करना, 'देशावकाशिक' व्रत है। मर्यादा के बाहर की दिशाओं में आस्रव का सेवन नहीं करना चाहिये, तथा मर्यादित दिशाओं में जितने द्रव्यों की मर्यादा की है, उसके उपरान्त द्रव्यों का उपभोग न करना चाहिये।

(६) पौषधोपवास व्रत—एक दिन रात अर्थात् आठ प्रहर के लिये-चार आहार, मैथुन, मणि, सुवर्ण तथा आभूषण, पुष्पमाला, सुगन्धित चूर्ण आदि तथा सकल सावद्य व्यापारों को त्याग कर धर्मस्थान में रहना और धर्म-ध्यान में लीन रहकर शुभभावों से उक्त काल को व्यतीत करना 'पौषधोपवास' व्रत है। इस व्रत में पौषध के अठारह दोषों का त्याग करना चाहिये।

(७) अतिथिसंविभाग व्रत-पंच-महाव्रतधारी साधुओं को उनके कल्प के अनुसार निर्दोष अशन, पान, खादिम, स्वादिम, वस्त्र, पात्र कम्बल, पादप्रोञ्छन, पीठ, फलक, शय्या, संस्तारक, औषध और भेषज—ये चौदह प्रकार की वस्तुएं निष्काम बुद्धिपूर्वक, आमकल्याण की भावना से देना तथा दान का संयोग न मिलने पर सदा ऐसी भावना रखना-अतिथि-संविभाग व्रत' है।

दिग्व्रत, उपभोग परिभोग परिमाणव्रत, अनर्थदण्डविरमण व्रत, इनको 'गुणव्रत' भी कहते हैं। सामायिक व्रत, देशावकाशिक व्रत, पौषधोपवास व्रत और अतिथिसंविभाग व्रत, इनको 'शिक्षाव्रत' कहते हैं।

अपश्चिममारणान्तिकसंलेखना:-यद्यपि आवीचि-मरण की दृष्टि से सभी प्राणियों का प्रतिक्षण मरण हो रहा है, किन्तु यहाँ उस मरण की विवक्षा नहीं की गई। परन्तु सम्पूर्ण आयु की समाप्तिरूप मरण की विवक्षा की गई है। अपश्चिम अर्थात् जिसके पीछे कोई कार्य करना शेष न रहा हो, उसे 'अपश्चिम' कहते हैं। अन्तिम मरण के समय शरीर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

और कषायादि को कृश करने वाला तप विशेष 'अपश्चिम-मारणान्तिक-संलेखना' कहलाती है। उसके सेवन की आराधना अखण्ड काल तक करना 'अपश्चिममारणान्तिक-संलेखना-जोषणा आराधना' कहलाती है।

यहाँ दिग्व्रतादि सात देशोत्तरगुण कहे गये हैं। संलेखना को भजना (विकल्प) से देशोत्तरगुण समझना चाहिये, क्योंकि आवश्यक में ऐसा कहा गया है कि यह संलेखना देशोत्तर गुणवाले के लिये देशोत्तरगुणरूप है और सर्वोत्तरगुण वाले के लिये सर्वोत्तरगुणरूप है। देशोत्तरगुण वाले को भी अन्तिम समय में यह अवश्य करनी चाहिये, यह बात सूचित करने के लिये इसका कथन देशोत्तर गुणों के साथ किया गया है।

प्रत्याख्यानी अप्रत्याख्यानी

९ प्रश्न-जीवा णं भंते ! किं मूलगुणपच्चक्खाणी, उत्तरगुणपच्चक्खाणी, अपच्चक्खाणी ?

९ उत्तर-गोयमा ! जीवा मूलगुणपच्चक्खाणी वि, उत्तरगुणपच्चक्खाणी वि, अपच्चक्खाणी वि।

१० प्रश्न-णेरइया णं भंते ! किं मूलगुणपच्चक्खाणी-पुच्छा।

१० उत्तर-गोयमा ! णेरइया णो मूलगुणपच्चक्खाणी, णो उत्तरगुणपच्चक्खाणी, अपच्चक्खाणी; एवं जाव चउरिंदिया, पंचिंदियतिरिक्खजोणिया मणुस्सा य जहा जीवा, वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिया जहा णेरइया।

भावार्थ-९ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या जीव, मूलगुणप्रत्याख्यानी है, उत्तरगुणप्रत्याख्यानी है, या अप्रत्याख्यानी है ?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

९ उत्तर-हे गौतम ! जीव, मूलगुण प्रत्याख्यानी भी हैं, उत्तरगुण-प्रत्याख्यानी भी हैं और अप्रत्याख्यानी भी हैं।

१० प्रश्न-हे भगवन् ! क्या नैरयिक जीव, मूलगुण प्रत्याख्यानी हैं, उत्तरगुण प्रत्याख्यानी हैं, या अप्रत्याख्यानी हैं ?

१० उत्तर-हे गौतम ! नैरयिक जीव, मूलगुण प्रत्याख्यानी नहीं हैं, उत्तर-गुण प्रत्याख्यानी भी नहीं हैं, अप्रत्याख्यानी हैं। इस प्रकार चतुरिन्द्रिय, जीवों पर्यन्त कहना चाहिये। पंचेन्द्रिय तिर्यंच और मनुष्यों के विषय में औधिक जीवों की तरह कहना चाहिये। वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक देवों के विषय में नैरयिक जीवों की तरह कहना चाहिये।

११ प्रश्न-एएसि णं भंते ! जीवाणं मूलगुणपच्चक्खाणीणं, उत्तर-गुणपच्चक्खाणीणं, अपच्चक्खाणीण य कयरे कयरेहिंतो जाव विसेसा-हिया वा ?

११ उत्तर-गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा मूलगुणपच्चक्खाणी, उत्तर-गुणपच्चक्खाणी असंखेज्जगुणा, अपच्चक्खाणी अणंतगुणा।

१२ प्रश्न-एएसि णं भंते ! पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं-पुच्छा।

१२ उत्तर-गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा पंचिंदियतिरिक्खजोणिया मूलगुणपच्चक्खाणी, उत्तरगुणपच्चक्खाणी असंखेज्जगुणा, अपच्चक्खाणी असंखेज्जगुणा।

१३ प्रश्न-एएसि णं भंते ! मणुस्साणं मूलगुणपच्चक्खाणीणं-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पुच्छा ।

१३ उत्तर-गोयमा ! सव्वत्थोवा मणुस्सा मूलगुणपच्चक्खाणी, उत्तरगुणपच्चक्खाणी संखेज्जगुणा, अपच्चक्खाणी असंखेज्जगुणा ।

११ प्रश्न-हे भगवन् ! मूलगुणप्रत्याख्यानी, उत्तरगुणप्रत्याख्यानी और अप्रत्याख्यानी जीवों में कौन किससे अल्प, बहुत, तुल्य और विशेषाधिक हैं ?

११ उत्तर-हे गौतम ! मूल-गुण-प्रत्याख्यानी जीव सब से थोड़े हैं, उत्तर-गुण-प्रत्याख्यानी जीव उनसे असंख्यगुणे हैं और अप्रत्याख्यानी जीव, उनसे भी अनन्तगुणे हैं ।

१२ प्रश्न-हे भगवन् ! इन मूलगुण-प्रत्याख्यानी आदि जीवों मे पंचेंद्रिय-तिर्यंच जीव कौन किससे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

१२ उत्तर-हे गौतम ! मूल-गुण-प्रत्याख्यानी पचेन्द्रिय तिर्यञ्च जीव सबसे थोड़े हैं, उनसे उत्तरगुण-प्रत्याख्यानी असंख्यगुणे हैं और अप्रत्याख्यानी उनसे असंख्यगुणे हैं ।

१३ प्रश्न-हे भगवन् ! इन मूलगुण-प्रत्याख्यानी आदि में मनुष्य कौन किससे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

१३ उत्तर-हे गौतम ! मूल-गुण-प्रत्याख्यानी मनुष्य सबसे थोड़े हैं, उत्तर-गुण-प्रत्याख्यानी मनुष्य उनसे संख्यातगुणे हैं और अप्रत्याख्यानी मनुष्य उनसे असंख्यातगुणे हैं ।

१४ प्रश्न-जीवा णं भंते ! किं सव्वमूलगुणपच्चक्खाणी, देसमूलगुणपच्चक्खाणी, अपच्चक्खाणी ?

१४ उत्तर-गोयमा ! जीवा सव्वमूलगुणपच्चक्खाणी, देसमूलगुणपच्चक्खाणी, अपच्चक्खाणी वि ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१५ प्रश्न-णेरइयाणं-पुच्छा ?

१५ उत्तर-गोयमा ! णेरइया णो सव्वमूलगुणपच्चक्खाणी, णो देसमूलगुणपच्चक्खाणी, अपच्चक्खाणी । एवं जाव चउरिंदिया ।

१६ प्रश्न-पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं-पुच्छा ।

१६ उत्तर-गोयमा ! पंचिंदियतिरिक्खजोणिया णो सव्वमूलगुणपच्चक्खाणी, देसमूलगुणपच्चक्खाणी वि, अपच्चक्खाणी वि । मणुस्सा जहा जीवा, वाणमंतर-जोइस-वेमाणिया जहा णेरइया ।

१७ प्रश्न-एएसि णं भंते ! जीवाणं सव्वमूलगुणपच्चक्खाणीणं, देसमूलगुणपच्चक्खाणीणं, अपच्चक्खाणीण य कयरे कयरेहिंतो जाव विसेसाहिया वा ?

१७ उत्तर-गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा सव्वमूलगुणपच्चक्खाणी, देसमूलगुणपच्चक्खाणी असंखेज्जगुणा, अपच्चक्खाणी अणंतगुणा । एवं अप्पाबहुगाणि तिण्णि वि जहा पढमिल्लए दंडए, णवरं सव्वत्थोवा पंचिंदियतिरिक्खजोणिया देसमूलगुणपच्चक्खाणी, अपच्चक्खाणी असंखेज्जगुणा ।

कठिन शब्दार्थ-पढमिल्लए-पहले में, अप्पाबहुगाणि-अल्पबहुत्व ।

भावार्थ-१४ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या जीव सर्व-मूलगुण-प्रत्याख्यानी हैं, देशमूलगुणप्रत्याख्यानी हैं, या अप्रत्याख्यानी हैं ?

१४ उत्तर-हे गौतम ! जीव सर्वमूलगुणप्रत्याख्यानी भी हैं, देशमूलगुणप्रत्याख्यानी भी हैं और अप्रत्याख्यानी भी हैं ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१५ प्रश्न—हे भगवन् ! क्या नैरयिक जीव, सर्व-मूलगुणप्रत्याख्यानी हैं, देशमूलगुणप्रत्याख्यानी हैं, या अप्रत्याख्यानी हैं ?

१५ उत्तर—हे गौतम ! नैरयिक जीव, सर्व-मूलगुणप्रत्याख्यानी नहीं, और देशमूलगुणप्रत्याख्यानी भी नहीं, किंतु अप्रत्याख्यानी हैं । यावत् चतुरिन्द्रिय तक इसी प्रकार कहना चाहिये ।

१६ प्रश्न—हे भगवन् ! क्या पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च जीव, सर्व-मूलगुण प्रत्याख्यानी हैं, देशमूलगुण प्रत्याख्यानी हैं या अप्रत्याख्यानी हैं ?

१६ उत्तर—हे गौतम ! पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च जीव, सर्व-मूलगुण प्रत्याख्यानी नहीं, किन्तु देशमूलगुण प्रत्याख्यानी हैं और अप्रत्याख्यानी हैं । मनुष्यों का कथन औधिक जीवों के समान करना चाहिये । वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक देवों का कथन, नैरयिक जीवों के समान करना चाहिये ।

१७ प्रश्न—हे भगवन् ! सर्वमूलगुणप्रत्याख्यानी, देशमूलगुणप्रत्याख्यानी और अप्रत्याख्यानी जीवों में कौन किससे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

१७ उत्तर—हे गौतम ! सर्व-मूलगुण प्रत्याख्यानी जीव, सबसे थोड़े हैं । देशमूलगुणप्रत्याख्यानी जीव, उनसे असंख्य गुणे हैं । और अप्रत्याख्यानी जीव, उनसे अनन्त गुणे हैं । इसी प्रकार तीन अर्थात् औधिक जीव, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च और मनुष्य का अल्प बहुत्व, प्रथम दण्डक में कहे अनुसार कहना चाहिये, किंतु इतनी विशेषता है कि देशमूलगुणप्रत्याख्यानी पंचेन्द्रिय तिर्यंच, सब से थोड़े हैं और अप्रत्याख्यानी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च उनसे असंख्य गुणे हैं ।

१८ प्रश्न—जीवा णं भंते ! किं सव्वउत्तरगुणपच्चक्खाणी देसुत्तरगुण पच्चक्खाणी, अपच्चक्खाणी ?

१८ उत्तर—गोयमा ! जीवा सव्वुत्तरगुणपच्चक्खाणी वि, तिण्णि वि । पंचिंदियतिरिक्खजोणिया मणुस्सा य एवं चेव, सेसा अप-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

च्चक्खाणी, जाव वेमाणिया ।

१९ प्रश्न–एएसि णं भंते ! जीवाणं सव्वउत्तरगुणपच्चक्खा-णीणं० ?

१९ उत्तर–अप्पाबहुगाणि तिण्णि वि जहा पढमे दंडए, जाव मणुस्साणं ।

भावार्थ–१८ प्रश्न–हे भगवन् ! क्या जीव, सर्वोत्तरगुण-प्रत्याख्यानी हैं, देशोत्तरगुण-प्रत्याख्यानी हैं, या अप्रत्याख्यानी हैं ?

१८ उत्तर–हे गौतम ! जीव, सर्वोत्तरगुण-प्रत्याख्यानी आदि तीनों प्रकार के हैं । पंचेन्द्रिय तिर्यंच और मनुष्यों का कथन भी इसी तरह करना चाहिये । शेष वैमानिक पर्यन्त सभी जीव, अप्रत्याख्यानी हैं ।

१९ प्रश्न–हे भगवन् ! सर्वोत्तरगुण-प्रत्याख्यानी, देशोत्तरगुणप्रत्याख्यानी और अप्रत्याख्यानी जीवों में कौन किससे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

१९ उत्तर—हे गौतम ! इन तीनों की अल्प-बहुत्व, प्रथम दण्डक में कहे अनुसार यावत् मनुष्यों तक जान लेना चाहिये ।

२० प्रश्न–जीवा णं भंते ! किं संजया, असंजया, संजया-संजया ?

२० उत्तर–गोयमा ! जीवा संजया वि, असंजया वि, संजया-संजया वि तिण्णि वि, एवं जहेव पण्णवणाए तहेव भाणियव्वं जाव वेमाणिया, अप्पाबहुगं तहेव तिण्ह वि भाणियव्वं ।

२१ प्रश्न–जीवा णं भंते ! किं पच्चक्खाणी, अपच्चक्खाणी,

पच्चक्खाणापच्चक्खाणी ?

२१ उत्तर–गोयमा ! जीवा पच्चक्खाणी वि तिण्णि वि, एवं मणुस्सा वि तिण्णि वि, पंचिंदियतिरिक्खजोणिया आइल्लविरहिया सेसा सव्वे अपच्चक्खाणी, जाव वेमाणिया ।

२२ प्रश्न–एएसि णं भंते ! जीवाणं पच्चक्खाणीणं जाव विसेसाहिया वा ?

२२ उत्तर–गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा पच्चक्खाणी, पच्चक्खाणापच्चक्खाणी असंखेज्जगुणा, अपच्चक्खाणी अणंतगुणा । पंचिंदियतिरिक्खजोणिया सव्वत्थोवा पच्चक्खाणापच्चक्खाणी, अपच्चक्खाणी असंखेज्जगुणा । मणुस्सा सव्वत्थोवा पच्चक्खाणी, पच्चक्खाणापच्चक्खाणी संखेज्जगुणा, अपच्चक्खाणी असंखेज्जगुणा ।

कठिन शब्दार्थ—आइल्लविरहिया—आदि (प्रथम) के भंग से रहित ।

भावार्थ–२० प्रश्न–हे भगवन् ! क्या जीव संयत हैं, असंयत हैं, संयतासंयत (देश-संयत) हैं ?

२० उत्तर–हे गौतम ! जीव संयत भी हैं, असंयत भी हैं और संयतासंयत भी हैं । तीनों प्रकार के हैं । इस तरह प्रज्ञापना सूत्र के बत्तीसवें पद में कहे अनुसार यावत् वैमानिक पर्यन्त कहना चाहिये और तीनों अल्पबहुत्व पूर्ववत् कहना चाहिये ।

२१ प्रश्न––हे भगवन् ! जीव, प्रत्याख्यानी हैं, अप्रत्याख्यानी हैं या प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानी (देश प्रत्याख्यानी) हैं ?

२१ उत्तर–हे गौतम ! जीव, प्रत्याख्यानी आदि तीनों प्रकार के हैं। इसी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तरह मनुष्य भी तीनों प्रकार के हैं। पंचेन्द्रिय-तिर्यंच-योनिक जीव, प्रथम भंग रहित हैं अर्थात् वे प्रत्याख्यानी नहीं हैं, किन्तु अप्रत्याख्यानी और प्रत्याख्याना-प्रत्याख्यानी हैं। शेष वैमानिक पर्यन्त सभी जीव अप्रत्याख्यानी हैं।

२२ प्रश्न—हे गौतम ! प्रत्याख्यानी आदि जीवों में कौन किससे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

२२ उत्तर-हे गौतम ! प्रत्याख्यानी जीव सबसे थोडे हैं, प्रत्याख्याना-प्रत्याख्यानी जीव उनसे असंख्य गुणे हैं और अप्रत्याख्यानी जीव उनसे अनन्त गुणे हैं। पंचेन्द्रियतिर्यंच जीवों में प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानी जीव सबसे थोडे हैं और अप्रत्याख्यानी उनसे असंख्यगुणे हैं। मनुष्यों में प्रत्याख्यानी मनुष्य सबसे थोडे हैं। प्रत्याख्यानाप्रत्याख्यानी उनसे संख्यातगुणे हैं और अप्रत्याख्यानी उनसे असंख्य गुणे हैं।

विवेचन—मूलगुणप्रत्याख्यानी जीव सबसे थोड़े कहे गये हैं अर्थात् सर्वमूलगुणप्रत्याख्यानी और देशमूलगुणप्रत्याख्यानी जीव सबसे थोड़े हैं, क्योंकि सर्व उत्तरगुणप्रत्याख्यानी और देश उत्तर गुणप्रत्याख्यानी जीव उनसे असंख्य गुणे हैं। इसका कारण यह है कि सर्व-विरत (मुनि) जीवों में, जो उत्तर गुणप्रत्याख्यानी हैं, वे अवश्य ही मूलगुणप्रत्याख्यानी हैं, किंतु जो मूलगुणप्रत्याख्यानी हैं, वे कदाचित् उत्तरगुणप्रत्याख्यानी होते भी हैं और नहीं भी होते हैं। जो उत्तरगुणप्रत्याख्यान से रहित हैं, ऐसे मूलगुणप्रत्याख्यानी ही यहाँ पर गृहीत किये हैं। वे दूसरे जीवों से अल्प ही हैं। बहुत से मुनि दस-विध प्रत्याख्यान से युक्त होते हैं, फिर भी वे मूलगुणप्रत्याख्यानी जीवों से संख्यात गुणे ही होते हैं, असंख्यात गुणे नहीं होते। क्योंकि सभी मुनि संख्यात ही होते हैं। इस प्रकार मूलगुणप्रत्याख्यानी जीव सबसे थोड़े होते हैं। उत्तर-गुणप्रत्याख्यानी जीव उनसे असंख्यात गुणे होते हैं, इसका कारण यह है कि देशविरत जीवों में मूलगुण से रहित भी उत्तरगुण वाले होते हैं, क्योंकि मधु-मांसादि का त्याग एवं विचित्र प्रकार के अभिग्रह के धारक होने से वे उत्तर गुण वाले हैं तथा सामायिक, पौषधोपवास आदि करने वाले होने से वे उत्तरगुण के धारक हैं। इसलिये देशविरतोत्तरगुण वालों की अपेक्षा मूलगुण वालों से उत्तरगुण वाले जीव असंख्यात गुणे कहे गये हैं। अप्रत्याख्यानी जीव उनसे अनन्त गुणे हैं। इसका कारण यह है कि मनुष्य और पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च ही प्रत्याख्यान वाले होते हैं, शेष जीव तो अप्रत्याख्यानी ही होते हैं। उनमें वनस्पतिकाय

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

के जीव भी सम्मिलित हैं और वे अनन्त हैं। इसलिये अप्रत्याख्यानी जीव अनन्त गुणे हैं।

मनुष्यों में अप्रत्याख्यानी असंख्यात गुणे कहे गये हैं, इसका कारण यह है कि इनमें सम्मूच्छिम मनुष्यों का ग्रहण किया गया है। गर्भज मनुष्य तो संख्यात ही हैं।

मूलगुण प्रत्याख्यानी आदि जीव संयत आदि होते हैं, इसलिये आगे संयतों के संबंध में कहा गया है। संयतादि के सम्बन्ध में जिस तरह प्रज्ञापना सूत्र के बत्तीसवें पद में कहा गया है, उसी तरह यहाँ भी कहना चाहिये तथा उनका अल्पबहुत्व पूर्ववत् कहना चाहिये। औधिक सूत्र में सब से थोड़े संयत जीव हैं, संयतासंयत उनसे असंख्य गुणे हैं और असंयत जीव अनन्त गुणे हैं। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चों में सब से थोड़े संयतासंयत है, असंयत उनसे असंख्यात गुणे हैं। मनुष्यों में सबसे थोड़े संयत जीव हैं, उनसे संयतासंयत संख्यात गुणे हैं और उनसे असंयत जीव असंख्यात गुणे हैं।

प्रत्याख्यानादि होने पर ही संयतादि होते हैं। इसलिये आगे प्रत्याख्यानी आदि के सम्बन्ध में कथन किया गया है। यद्यपि छठे शतक के चौथे उद्देशक में प्रत्याख्यानी आदि का कथन हो चुका है, किन्तु वहाँ उनका अल्प-बहुत्व नहीं बताया गया है। इसलिये यहाँ अल्प-बहुत्व सहित प्रत्याख्यानी का पुनः कथन किया गया है, तथा यहाँ सम्बन्धान्तर से उनका कथन प्रासंगिक भी है। अतएव उनका यहां कथन किया गया है।

क्या जीव शाश्वत है ?

२३ प्रश्न—जीवा णं भंते ! किं सासया, असासया ?

२३ उत्तर—गोयमा ! जीवा सिय सासया, सिय असासया।

प्रश्न—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—जीवा सिय सासया, सिय असासया ?

उत्तर—गोयमा ! दव्वट्ठयाए सासया, भावट्ठयाए असासया, से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—जाव सिय असासया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

२४ प्रश्न-णेरइया णं भंते ! किं सासया, असासया ?

२४ उत्तर-एवं जहा जीवा तहा णेरइया वि, एवं जाव वेमाणिया जाव सिय सासया, सिय असासया ।

❀ सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति ❀

॥ सत्तमसए बिईओ उद्देसो समत्तो ॥

कठिन शब्दार्थ—सासया—शाश्वत (नित्य) दव्वट्ठयाए—द्रव्य की अपेक्षा से, भावट्ठयाए—भाव की अपेक्षा से ।

भावार्थ-२३ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या जीव शाश्वत है या अशाश्वत है ?

२३ उत्तर-हे गौतम ! जीव कथञ्चित् शाश्वत और कथञ्चित् अशाश्वत है ।

प्रश्न-हे भगवन् ! इसका क्या कारण है कि जीव कथञ्चित् शाश्वत है और कथञ्चित् अशाश्वत है ?

उत्तर-हे गौतम ! द्रव्य की अपेक्षा जीव शाश्वत है और भाव की अपेक्षा जीव अशाश्वत है । इस कारण ऐसा कहता हूँ कि जीव कथञ्चित् अशाश्वत है ।

२४ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या नैरयिक जीव शाश्वत हैं, या अशाश्वत हैं ?

२४ उत्तर-हे गौतम ! जिस प्रकार जीवों का कथन किया गया है, उसी प्रकार नैरयिकों का भी करना चाहिये । इसी तरह वैमानिक पर्यन्त चौबीस ही दण्डक का कथन करना चाहिये कि जीव कथञ्चित् शाश्वत है और कथञ्चित् अशाश्वत हैं ।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है । हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन—जीवों का प्रकरण चालू होने से यहाँ जीवों के विषय में शाश्वतता और अशाश्वतता का कथन किया गया है।

॥ इति सातवें शतक का दूसरा उद्देशक सम्पूर्ण ॥

शतक ७ उद्देशक ३

वर्षादि ऋतुओं में वनस्पति का आहार

१ प्रश्न—वणस्सइकाइया णं भंते ! किं कालं सव्वप्पाहारगा वा, सव्वमहाहारगा वा भवंति ?

१ उत्तर—गोयमा ! पाउसवरिसारत्तेसु णं एत्थ णं वणस्सइकाइया सव्वमहाहारगा भवंति, तयाणंतरं च णं सरए, तयाणंतरं च णं हेमंते, तयाणंतरं च णं वसंते, तयाणंतरं च णं गिम्हे, गिम्हासु णं वणस्सइकाइया सव्वप्पाहारगा भवंति।

२ प्रश्न—जइ णं भंते ! गिम्हासु वणस्सइकाइया सव्वप्पाहारगा भवंति, कम्हा णं भंते ! गिम्हासु बहवे वणस्सइकाइया पत्तिया, पुप्फिया, फलिया हरियगरेरिज्जमाणा, सिरीए अईव अईव उवसोभेमाणा उवसोभेमाणा चिट्ठंति ?

२ उत्तर—गोयमा ! गिम्हासु णं बहवे उसिणजोणिया जीवा

य, पोग्गला य वणस्सइकाइयत्ताए वक्कमंति विउक्कमंति, चयंति, उववज्जंति, एवं खलु गोयमा ! गिम्हासु बहवे वणस्सइकाइया पत्तिया, पुप्फिया, जाव चिट्ठंति।

कठिन शब्दार्थ—पाउस-वरिसा-रत्तेसु—पाउस-अर्थात् श्रावण और भाद्रपद मास, वरिसा—आश्विन और कार्तिक मास की रात्रियों में, (चौमासे में) तयाणंतरं—उसके बाद, सरए—शरद् ऋतु अर्थात् मार्गशीर्ष और पौष मास में, हेमंते—हेमन्त ऋतु अर्थात् माघ और फाल्गुण मास में, वसंते—बसंत ऋतु—चैत्र और वैशाख में, गिम्हे—ग्रीष्म—ज्येष्ठ और आषाढ़ मास में, बहवे—बहुत से, हरियगरेरिज्जमाणा—हरियाई से एकदम दीप्ति युक्त, सिरीए—शोभा से, उसिणजोणिया—उष्ण योनिवाले, विउक्कमंति—विशेष उत्पन्न होते हैं।

भावार्थ—१ प्रश्न—हे भगवन् ! वनस्पतिकायिक जीव, किस काल में सर्वाल्पाहारी (सब से थोड़ा आहार करने वाले) होते हैं और किस काल में सर्वमहाहारी (सब से अधिक आहार करने वाले) होते हैं ?

१ उत्तर—हे गौतम ! प्रावृट् ऋतु में अर्थात् श्रावण और भाद्रपद मास में तथा वर्षा ऋतु में अर्थात् आश्विन और कार्तिक मास में वनस्पतिकायिक जीव, सर्व-महाहारी होते हैं। इसके बाद शरद् ऋतु में इसके बाद हेमन्त ऋतु में इसके बाद बसन्त ऋतु में और इसके बाद ग्रीष्म ऋतु में अनुक्रम से अल्पाहारी होते हैं, एवं ग्रीष्म ऋतु में सर्वाल्पाहारी होते हैं।

२ प्रश्न—हे भगवन् ! यदि ग्रीष्म ऋतु में वनस्पतिकायिक जीव, सर्वाल्पाहारी होते हैं, तो बहुत से वनस्पतिकायिक, ग्रीष्म ऋतु में पत्तवाले, पुष्पवाले, और फलवाले हरे हरे एकदम दीप्तियुक्त एवं वन की शोभा से सुशोभित कैसे होते हैं ?

२ उत्तर—हे गौतम ! ग्रीष्म ऋतु में बहुत से उष्णयोनिवाले जीव और पुद्गल वनस्पतिकाय रूप से उत्पन्न होते हैं, विशेष रूप से उत्पन्न होते हैं, वृद्धि को प्राप्त होते हैं और विशेष रूप से वृद्धि को प्राप्त होते हैं। इस कारण हे गौतम ! ग्रीष्म ऋतु में बहुत से वनस्पतिकायिक पत्तों वाले, पुष्पों वाले

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यावत् होते हैं।

विवेचन-ऋतुएँ छह कही गयी हैं। यथा-प्रावृट्, वर्षा, शरद्, हेमन्त, बसन्त और ग्रीष्म। श्रावण और भाद्रपद को 'प्रावृट्,' आश्विन और कार्तिक को 'वर्षा,' मृगशिर और पौष को 'शरद्,' माघ और फाल्गुन को 'हेमन्त,' चैत्र और वैशाख को 'बसन्त' तथा ज्येष्ठ और आषाढ़ को 'ग्रीष्म' ऋतु कहते हैं। इन छह ऋतुओं में से प्रावृट् और वर्षा ऋतु में वनस्पतिकायिक जीव, सर्वमहाहारी (सब से अधिक आहार करने वाले) होते हैं। क्योंकि उस समय वर्षा बरसती है। इसलिये जल की अधिकता के कारण वनस्पति को आहार अधिक मिलता है। उसके बाद शरद् हेमन्त और बसन्त में क्रमशः अल्पाहारी होते हैं और ग्रीष्म ऋतु में सर्वाल्पाहारी होते हैं। ग्रीष्म ऋतु में सर्वाल्पाहारी होते हुए भी कई वनस्पतियां पत्र पुष्पादि से युक्त होकर एकदम हरी-भरी दिखाई देती है। इसका कारण यह है कि उनमें उस समय उष्णयोनिक जीव अधिक पैदा होते हैं और वृद्धि को प्राप्त होते हैं।

३ प्रश्न-से णूणं भंते ! मूला मूलजीवफुडा, कंदा कंदजीवफुडा, जाव बीया बीयजीवफुडा ?

३ उत्तर-हंता, गोयमा ! मूला मूलजीवफुडा, जाव बीया बीयजीवफुडा।

४ प्रश्न-जइ णं भंते ! मूला मूलजीवफुडा, जाव बीया बीयजीवफुडा, कम्हा णं भंते ! वणस्सइकाइया आहारेंति, कम्हा परिणामेंति ?

४ उत्तर-गोयमा ! मूला मूलजीवफुडा, पुढवीजीवपडिबद्धा तम्हा आहारेंति, तम्हा परिणामेंति; कंदा कंदजीवफुडा मूलजीवपडिबद्धा, तम्हा आहारेंति, तम्हा परिणामेंति, एवं जाव बीया बीयजीव-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

फुडा फलजीवपडिबद्धा तम्हा आहारेंति, तम्हा परिणामेंति।

कठिन शब्दार्थ—फुडा—व्याप्त, पडिबद्धा—प्रतिबद्ध—बँधे हुए।

भावार्थ-३ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या वनस्पतिकाय के मूल, मूल के जीवों से स्पृष्ट (व्याप्त) होते हैं ? कन्द, कन्द के जीवों से स्पृष्ट होते हैं ? यावत् बीज, बीज के जीवों से स्पृष्ट होते हैं ?

३ उत्तर-हाँ गौतम ! मूल, मूल के जीवों से स्पृष्ट होते हैं यावत् बीज बीजों के जीवों से स्पृष्ट होते हैं।

४ प्रश्न-हे भगवन् ! यदि मूल, मूल के जीवों से व्याप्त हैं यावत् बीज, बीज के जीवों से व्याप्त हैं, तो वनस्पतिकायिक जीव, किस तरह आहार करते हैं और किस तरह परिणमाते हैं ?

४ उत्तर-हे गौतम ! मूल, मूल के जीवों से व्याप्त हैं और वे पृथ्वी के जीवों के साथ संबद्ध हैं, इससे वनस्पतिकायिक जीव, आहार करते हैं और परिणमाते हैं। इस तरह यावत् बीज, बीज के जीवों से व्याप्त हैं और वे फल के जीवों के साथ संबद्ध हैं। इससे वे आहार करते और उसको परिणमाते हैं।

विवेचन—यहाँ पर एक ही वृक्षादिरूप वनस्पति के दस विभाग बतलाये गये हैं। यथा—मूल, कन्द, स्कन्ध, त्वचा, शाला (शाखा), प्रवाल, पत्र, पुष्प, फल और बीज।

यहाँ यह प्रश्न उपस्थित होता है कि मूलादि के जीव मूलादि से व्याप्त हैं और पुष्प, फल, बीजादि के जीव, पुष्प फल बीजादि से व्याप्त हैं। वे भूमि से दूर हैं और आहार तो भूमिगत होता है, फिर वे किस प्रकार आहार ग्रहण करते हैं और परिणमाते हैं ?

इस प्रश्न का उत्तर यह है कि मूल, मूलजीवों से स्पृष्ट है और पृथ्वी जीवों के साथ प्रतिबद्ध हैं। उस प्रतिबद्धता के कारण मूल के जीव, पृथ्वी रस का आहार करते हैं। कन्द, कन्द के जीवों से स्पृष्ट हैं और मूल के जीवों से प्रतिबद्ध हैं। उस मूल जीव प्रतिबद्धता के कारण कन्द के जीव, मूलजीवों द्वारा गृहीत पृथ्वीरस का आहार करते हैं। इस तरह क्रमशः स्कन्धादि से लेकर बीज पर्यन्त समझ लेना चाहिये। ये सब परस्पर एक दूसरे से प्रतिबद्ध हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

५ प्रश्न-अह भंते ! आलुए, मूलए, सिंगबेरे, हिरिली, सिरिली सिस्सिरिली, किट्ठिया, छिरिया छीरविरालिया, कण्हकंदे, वज्जकंदे, सूरणकंदे, खेलूडे, अद्दभद्दमुत्था, पिंडहलिद्दा, लोहिणीहूथीहू, थिरुगा, मुग्गपण्णी, अस्सकण्णी, सीहकण्णी, सीहंढी, मुसुंढी, जेयावण्णे, तहप्पगारा सव्वे ते अणंतजीवा विविहसत्ता ?

५ उत्तर-हंता, गोयमा ! आलुए मूलए जाव अणंतजीवा विविहसत्ता ।

कठिन शब्दार्थ—जेयावण्णे—उसी प्रकार के, तहप्पगारा—तथाप्रकार के ।

भावार्थ-५ प्रश्न-हे भगवन् ! आलू, मूला, अदरख, हिरीली, सिरीली, सिस्सिरीली किट्टिका, छिरिया, छीरविदारिका, बज्रकन्द, सूरणकन्द, खेलूडा, आर्द्रभद्रमोथा, पिंडहरिद्रा, रोहिणी, हुथिहू, थिरुगा, मुद्गपर्णी, अश्वकर्णी, सिंह-कर्णी, सिहण्डी, मुसुण्ढी और इसी तरह की दूसरी वनस्पतियाँ, क्या अनन्त जीव वाली हैं और विविध जीव वाली हैं ?

५ उत्तर—हे गौतम ! आलू, मूला यावत् मुसुण्ढी और इसी प्रकार की दूसरी वनस्पतियाँ अनन्त जीव वाली हैं और विविध जीव वाली हैं ।

विवेचन-आलू, मूला, हिरीली सिरीली आदि ये सब अनन्तकाय के भेद हैं और भिन्न भिन्न देशों में उन उन नामों से प्रसिद्ध हैं। इनमें अनन्त जीव हैं और वे विविध सत्त्व हैं अर्थात् वर्णादि के भेद से अनेक प्रकार के हैं एवं विचित्र कर्म के कारण भी वे अनेक प्रकार के हैं।

कृष्णादि लेश्या और अल्पाधिक कर्म

६ प्रश्न-सिय भंते ! कण्हलेसे णेरइए अप्पकम्मतराए, णील-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लेसे णेरइए महाकम्मतराए ?

६ उत्तर-हंता, सिया।

प्रश्न-से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ-कण्हलेसे णेरइए अप्पकम्मतराए, णीलल्लेसे णेरइए महाकम्मतराए ?

उत्तर-गोयमा ! ठिइं पडुच्च, से तेणट्ठेणं गोयमा ! जाव महाकम्मतराए।

७ प्रश्न-सिय भंते ! णीलल्लेसे णेरइए अप्पकम्मतराए, काउलेसे णेरइए महाकम्मतराए ?

७ उत्तर-हंता, सिया।

प्रश्न-से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ-णीलल्लेसे णेरइए अप्पकम्मतराए, काउलेसे णेरइए महाकम्मतराए ?

उत्तर-गोयमा ! ठिइं पडुच्च; से तेणट्ठेणं गोयमा ! जाव महाकम्मतराए। एवं असुरकुमारे वि, णवरं तेउलेसा अब्भहिया, एवं जाव वेमाणिया जस्स जइ लेस्साओ तस्स तत्तिया भाणियव्वाओ, जोइसियस्स ण भण्णइ। जाव सिय भंते ! पम्हलेस्से वेमाणिए अप्पकम्मतराए, सुक्कलेसे वेमाणिए महाकम्मतराए ? हंता, सिया। से केणट्ठेणं ? सेसं जहा णेरइयस्स; जाव महाकम्मतराए।

कठिन शब्दार्थ—अब्भहिया—अधिक।

भावार्थ-६ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या कृष्णलेश्या वाला नैरयिक कदाचित्

Jain Education International   For Personal & Private Use Only   www.jainelibrary.org

अल्पकर्म वाला होता है और नीललेश्या वाला नैरयिक, कदाचित् महाकर्म वाला होता है ?

६ उत्तर-हाँ, गौतम ! होता है ।

प्रश्न-हे भगवन् ! इसका क्या कारण है ? जिससे ऐसा कहा जाता है कि कृष्णलेश्या वाला नैरयिक, कदाचित् अल्पकर्म वाला होता है और नीललेश्या वाला नैरयिक कदाचित् महाकर्म वाला होता है ?

उत्तर-हे गौतम ! स्थिति की अपेक्षा से ऐसा कहा जाता है कि यावत् महाकर्म वाला होता है ।

७ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या नीललेश्या वाला नैरयिक कदाचित् अल्पकर्म वाला होता है और कापोतलेश्या वाला नैरयिक, कदाचित् महाकर्म वाला होता है ?

७ उत्तर-हाँ, गौतम ! कदाचित् होता है ।

प्रश्न-हे भगवन् ! ऐसा किस कारण कहते हैं कि नीललेश्या वाला नैरयिक कदाचित् अल्पकर्म वाला होता है और कापोतलेश्या वाला नैरयिक कदाचित् महाकर्म वाला होता है ?

उत्तर-हे गौतम ! स्थिति की अपेक्षा ऐसा कहता हूँ कि यावत् वह महाकर्म वाला होता है । इसी प्रकार असुरकुमारों के विषय में भी कहना चाहिये, परन्तु उनमें एक तेजोलेश्या अधिक होती है अर्थात् उनमें कृष्ण, नील, कापोत और तेजो, ये चार लेश्याएँ होती है इसी तरह वैमानिक देवों पर्यन्त कहना चाहिये । जिसमें जितनी लेश्या हों उतनी कहनी चाहिये, किन्तु ज्योतिषी दण्डक का कथन नहीं करना चाहिये ।

प्रश्न-यावत् हे भगवन् ! क्या पद्मलेश्या वाला वैमानिक, कदाचित् अल्पकर्म वाला होता है और शुक्ललेश्या वाला वैमानिक कदाचित् महाकर्म वाला होता है ?

उत्तर--हाँ, गौतम ! कदाचित् होता है ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्न-हे भगवन् ! इसका क्या कारण है ?

उत्तर-शेष सारा कथन नैरयिक की तरह कहना चाहिये यावत् महाकर्म वाला होता हैं ।

विवेचन—कृष्णलेश्या अत्यन्त अशुभ परिणाम रूप है, उसकी अपेक्षा नीललेश्या कुछ शुभ परिणाम रूप है । इसलिये सामान्यतः कृष्णलेश्या वाला जीव महाकर्मी और नील लेश्या वाला जीव अल्पकर्मी होता है, परन्तु आयुष्य की स्थिति की अपेक्षा कृष्णलेशी जीव कदाचित् अल्पकर्मी और नीललेशी जीव, कदाचित् महाकर्मी भी हो सकता है । जैसे कि सातवीं नरक में उत्पन्न कोई कृष्णलेश्या वाला नैरयिक, जिसने अपनी आयुष्य की बहुत स्थिति क्षय करदी हैं, अतएव उसने बहुत कर्म भी क्षय कर दिये हैं, उसकी अपेक्षा कोई नील लेश्या वाला नैरयिक दस सागरोपम की स्थिति से पाँचवी नरक में अभी तत्काल उत्पन्न हुआ ही है । उसने आयुष्य की स्थिति अधिक क्षय नहीं की । अतएव उसके अभी बहुत कर्म बाकी हैं । इस कारण वह उस कृष्णलेशी नैरयिक की अपेक्षा महाकर्मी हैं ।

यहाँ ज्योतिषी दण्डक का निषेध करने का कारण यह है कि ज्योतिषी देवों में केवल एक तेजोलेश्या ही होती है, दूसरी लेश्या नहीं होती । दूसरी लेश्या के न होने से वह अल्पकर्मी और महाकर्मी, किस दूसरी लेश्या की अपेक्षा कहा जाय ? इसलिये वह अन्य लेश्या सापेक्ष अल्प-कर्म वाला और महाकर्म वाला नहीं कहा जा सकता ।

वेदना और निर्जरा

८ प्रश्न-से णूणं भंते ! जा वेयणा सा णिज्जरा, जा णिज्जरा सा वेयणा ?

८ उत्तर-गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे ।

प्रश्न-से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ-जा वेयणा ण सा णिज्जरा, जा णिज्जरा ण सा वेयणा ?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर-गोयमा ! कम्मं वेयणा, णोकम्मं णिज्जरा, से तेणट्ठेणं गोयमा ! जाव ण सा वेयणा।

९ प्रश्न-णेरइयाणं भंते ! जा वेयणा सा णिज्जरा, जा णिज्जरा सा वेयणा ?

९ उत्तर-गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

प्रश्न-से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ-णेरइयाणं जा वेयणा ण सा णिज्जरा, जा णिज्जरा ण सा वेयणा ?

उत्तर-गोयमा ! णेरइयाणं कम्मं वेयणा, णोकम्मं णिज्जरा; से तेणट्ठेणं गोयमा ! जाव ण सा वेयणा, एवं जाव वेमाणियाणं।

कठिन शब्दार्थ-णोकम्मं-नोकर्म अर्थात् कर्म का अभाव।

भावार्थ-८ प्रश्न-हे भगवन् ! जो वेदना है, वह निर्जरा कहलाती है और जो निर्जरा है, वह वेदना कहलाती है ?

८ उत्तर-हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प्रश्न-हे भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहते हैं कि जो वेदना है वह निर्जरा नहीं कहलाती और जो निर्जरा है वह वेदना नहीं कहलाती ?

उत्तर-हे गौतम ! कर्म, वेदना है और नोकर्म, निर्जरा है। इस कारण से ऐसा कहता हूं कि यावत् जो निर्जरा है वह वेदना नहीं कहलाती।

९ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या नैरयिक जीवों के जो वेदना है, वह निर्जरा कहलाती है और जो निर्जरा है, वह वेदना कहलाती है ?

९ उत्तर-हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

प्रश्न-हे भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहते हैं कि नैरयिक जीवों के जो वेदना है, वह निर्जरा नहीं कहलाती और जो निर्जरा है, वह वेदना नहीं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कहलाती ?

उत्तर—हे गौतम ! नैरयिक जीवों के जो वेदना है, वह कर्म है और जो निर्जरा है, वह नोकर्म है। इसलिये हे गौतम ! मैं ऐसा कहता हूँ कि यावत् जो निर्जरा है, वह वेदना नहीं कहलाती। इसी प्रकार वैमानिक पर्यन्त चौबीस ही दण्डकों में कहना चाहिये।

१० प्रश्न—से णूणं भंते ! जं वेदेंसु तं णिज्जरिंसु, जं णिज्जरिंसु तं वेदेंसु ?

१० उत्तर—णो इणट्ठे समट्ठे।

प्रश्न—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—जं वेदेंसु णो तं णिज्जरेंसु, जं णिज्जरेंसु णो तं वेदेंसु ?

उत्तर—गोयमा ! कम्मं वेदेंसु, णोकम्मं णिज्जरिंसु, से तेणट्ठेणं गोयमा ! जाव णो तं वेदेंसु।

प्रश्न—णेरइयाणं भंते ! जं वेदेंसु तं णिज्जरेंसु ?

उत्तर—एवं णेरइया वि, एवं जाव वेमाणिया।

११ प्रश्न—से णूणं भंते ! जं वेदेंति तं णिज्जरेंति, जं णिज्जरेंति तं वेदेंति ?

११ उत्तर—गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे।

प्रश्न—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—जाव णो तं वेदेंति ?

उत्तर—गोयमा ! कम्मं वेदेंति, णोकम्मं णिज्जरेंति, से तेणट्ठेणं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा ! जाव णो तं वेदेंति, एवं णेरइया वि, जाव वेमाणिया ।

१२ प्रश्न–से णूणं भंते ! जं वेदिस्संति तं णिज्जरिस्संति, जं णिज्जरिस्संति तं वेदिस्संति ?

१२ उत्तर–गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे ।

प्रश्न–से केणट्ठेणं जाव णो तं वेदिस्संति ?

उत्तर–गोयमा ! कम्मं वेदिस्संति, णोकम्मं णिज्जरिस्संति, से तेणट्ठेणं जाव णो तं णिज्जरिस्संति, एवं णेरइया वि, जाव वेमाणिया ।

१३ प्रश्न–से णूणं भंते ! जे वेयणासमए से णिज्जरासमए, जे णिज्जरासमए से वेयणासमए ?

१३ उत्तर–गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे ।

प्रश्न–से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–जे वेयणासमए ण से णिज्जरासमए, जे णिज्जरासमए ण से वेयणासमए ?

उत्तर–गोयमा ! जं समयं वेदेंति णो तं समयं णिज्जरेंति, जं समयं णिज्जरेंति णो तं समयं वेदेंति, अण्णम्मि समए वेदेंति अण्णम्मि समए णिज्जरेंति, अण्णे से वेयणासमए, अण्णे से णिज्जरासमए; से तेणट्ठेणं जाव ण से वेयणासमए ण से णिज्जरासमए ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१४ प्रश्न-णेरइयाणं भंते ! जे वेयणासमए से णिज्जरासमए, जे णिज्जरासमए से वेयणासमए ?

१४ उत्तर-गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे ।

प्रश्न-से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ-णेरइयाणं जे वेयणासमए ण से णिज्जरासमए, जे णिज्जरासमए ण से वेयणासमए ?

उत्तर-गोयमा ! णेरइया णं जं समयं वेदेंति णो तं समयं णिज्जरेंति, जं समयं णिज्जरेंति णो तं समयं वेदेंति, अण्णम्मि समए वेदेंति, अण्णम्मि समए णिज्जरेंति, अण्णे से वेयणासमए, अण्णे से णिज्जरासमए, से तेणट्ठेणं जाव ण से वेयणासमए, एवं जाव वेमाणियाणं ।

कठिन शब्दार्थ--अण्णम्मि समए--अन्य समय में ।

भावार्थ-१० प्रश्न-हे भगवन् ! क्या जिन कर्मों को वेद लिया, उनको निर्जीर्ण किया और निर्जीर्ण किया, उनको वेद लिया ?

१० उत्तर-हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं ।

प्रश्न-हे भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहते हैं कि जो वेद लिये, वे *निर्जीर्ण नहीं किये और जो निर्जीर्ण किये, वे वेदे नहीं गये ?*

उत्तर-हे गौतम ! कर्म, वेदा गया और नोकर्म, निर्जीर्ण किया गया। इस कारण पूर्वोक्त प्रकार से कहा जाता है ।

प्रश्न-हे भगवन् ! क्या नैरयिक जीवों ने जिस कर्म को वेदा, वह निर्जीर्ण किया गया ?

उत्तर-पूर्व कहे अनुसार नैरयिकों के विषय में भी जान लेना चाहिये। यावत् वैमानिक पर्यन्त चौबीस ही दण्डक में इसी तरह कहना चाहिये ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

११ प्रश्न-हे भगवन् ! जिसको वेदते हैं, उसकी निर्जरा करते हैं ? और जिसकी निर्जरा करते हैं, उसको वेदते हैं ?

११ उत्तर-हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं ।

प्रश्न-हे भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहते हैं कि जिसको वेदते हैं उसकी निर्जरा नहीं करते और जिसकी निर्जरा करते हैं, उसको वेदते नहीं ?

उत्तर-हे गौतम ! कर्म को वेदते हैं और नोकर्म को निर्जीर्ण करते हैं। इसलिये ऐसा कहता हूँ कि यावत् जिसको निर्जीर्ण करते हैं, उसको वेदते नहीं। इसी तरह नैरयिकों के विषय में जानना चाहिये। यावत् वैमानिक पर्यन्त चौबीस ही दण्डक में इसी तरह जान लेना चाहिये।

१२ प्रश्न-हे भगवन् ! जिसको वेदेंगे, उसको निर्जरेंगे और जिसको निर्जरेंगे उसको वेदेंगे ?

१२ उत्तर-हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं।

प्रश्न-हे भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहते हैं कि यावत् उसको नहीं वेदेंगे ?

उत्तर-हे गौतम ! कर्म को वेदेंगे और नोकर्म को निर्जरेंगे। इस कारण यावत् जिसको वेदेंगे उसको नहीं निर्जरेंगे।

१३ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या जो वेदना का समय है, वह निर्जरा का समय है और जो निर्जरा का समय है, वह वेदना का समय है ?

१३ उत्तर-हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं।

प्रश्न-हे भगवन् ! क्या कारण है कि जो वेदना का समय है वह निर्जरा का समय नहीं और जो निर्जरा का समय है, वह वेदना का समय नहीं ?

उत्तर-हे गौतम ! जिस समय वेदते हैं, उस समय निर्जरते नहीं हैं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

और जिस समय निर्जरते हैं, उस समय वेदते नहीं, अन्य समय में वेदते हैं और अन्य समय में निर्जरते हैं। वेदना का समय दूसरा है और निर्जरा का समय दूसरा है। इसका कारण यावत् वेदना का जो समय है, वह निर्जरा का समय नहीं।

१४ प्रश्न-हे भगवन् ! नैरयिक जीवों के जो वेदना का समय है, वह निर्जरा का समय है और जो निर्जरा का समय है, वह वेदना का समय है ?

१४ उत्तर-हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं।

प्रश्न-हे भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहते हैं कि नैरयिकों के जो वेदना का समय है, वह निर्जरा का समय नहीं और जो निर्जरा का समय है, वह वेदना का समय नहीं ?

उत्तर-हे गौतम ! नैरयिक जीव, जिस समय में वेदते हैं, उस समय में निर्जरते नहीं और जिस समय में निर्जरते हैं, उस समय में वेदते नहीं। अन्य समय में वेदते हैं और अन्य समय में निर्जरते हैं। उनके वेदना का समय दूसरा है और निर्जरा का समय दूसरा है। इस कारण से ऐसा कहता हूँ कि यावत् जो निर्जरा का समय है, वह वेदना का समय नहीं। इस प्रकार यावत् वैमानिक पर्यन्त चौवीस ही दण्डक में जान लेना चाहिये।

विवेचन—उदय में आये हुए कर्म को भोगना 'वेदना' कहलाती है और जो कर्म भोगकर क्षय कर दिया गया है, वह 'निर्जरा' कहलाती है। इसलिये वेदना को 'कर्म' कहा गया है और निर्जरा को 'नोकर्म' कहा गया है। वेदना कर्म की होती है। इसलिये वेदना को 'कर्म' कहा गया है। कर्म वेदित हो गया, इसलिये कर्म के अभाव को 'निर्जरा' कहते हैं।

शाश्वत अशाश्वत नैरयिक

१५ प्रश्न-णेरइया णं भंते ! किं सासया, असासया ?

१५ उत्तर-गोयमा ! सिय सासया, सिय असासया ।

प्रश्न-से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ-णेरइया सिय सासया, सिय असासया ?

उत्तर-गोयमा ! अव्वोच्छित्तिणयट्ठयाए सासया, वोच्छित्तिणयट्ठयाए असासया, से तेणट्ठेणं जाव सिय सासया, सिय असासया; एवं जाव वेमाणिया जाव सिय असासया ।

❀ सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति ❀

॥ सत्तमसए तईओ उद्देसो समत्तो ॥

कठिन शब्दार्थ—अव्वोच्छित्तिणयट्ठयाए—द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा, वोच्छित्तिणयट्ठयाए—पर्यायार्थिकनय की अपेक्षा से ।

भावार्थ—१५ प्रश्न-हे भगवन् ! नैरयिक जीव शाश्वत हैं या अशाश्वत हैं ?

१५ उत्तर-हे गौतम ! कथंचित् शाश्वत हैं और कथंचित् अशाश्वत हैं।

प्रश्न--हे भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहते हैं कि नैरयिक जीव, कथंचित शाश्वत है और कथंचित् अशाश्वत हैं ।

उत्तर--हे गौतम ! अव्यवच्छित्ति (अव्युच्छित्ति--द्रव्यार्थिक) नय की अपेक्षा शाश्वत हैं और व्यवच्छित्ति (व्युच्छित्ति--पर्यायार्थिक) नय की अपेक्षा अशाश्वत हैं । इस कारण हे गौतम ! ऐसा कहता हूँ कि नैरयिक जीव, कथंचित् शाश्वत हैं और कथंचित् अशाश्वत हैं, इस प्रकार यावत् वैमानिक पर्यन्त कहना चाहिये कि वे कथंचित् शाश्वत और कथंचित् अशाश्वत हैं ।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है । हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है । ऐसा कहकर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन—अव्यवच्छित्ति नय का अर्थ है-द्रव्य की अपेक्षा और व्यवच्छित्ति नय का अर्थ है—पर्यायों की अपेक्षा। द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा सभी पदार्थ शाश्वत हैं और पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा सभी पदार्थ अशाश्वत हैं।

॥ इति सातवें शतक का तीसरा उद्देशक समाप्त ॥

शतक ७ उद्देशक ४

संसार-समापन्नक जीव

१ प्रश्न—रायगिहे णयरे जाव एवं वयासी—कइविहा णं भंते ! संसारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता ?

१ उत्तर—गोयमा ! छव्विहा संसारसमावण्णगा जीवा पण्णत्ता, तं जहा—पुढविकाइया, एवं जहा जीवाभिगमे जाव सम्मत्तकिरियं वा मिच्छत्तकिरियं वा।

+ जीवा छव्विह पुढवी जीवाण ठिई भवट्ठिई काये।
णिल्लेवण अणगारे किरिया सम्मत्त-मिच्छत्ता ॥

❀ सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति ❀

॥ सत्तमसए चउत्थो उद्देसो सम्मत्तो ॥

कठिन शब्दार्थ—संसारसमावण्णगा—संसार में रहने वाले, णिल्लेवण—निर्लेपन—खाली होना।

+ यह गाथा वाचनान्तर है—ऐसा टीकाकार लिखते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ-१ प्रश्न-राजगृह नगर में गौतम स्वामी ने यावत् इस प्रकार पूछा। हे भगवन् ! संसारसमापन्नक (संसारी) जीव कितने प्रकार के कहे गये हैं ?

१ उत्तर-हे गौतम ! संसारसमापन्नक जीव, छह प्रकार के कहे गये हैं। यथा-पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक और त्रसकायिक। यह सारा वर्णन जीवाभिगम सूत्र के तिर्यंच के दूसरे उद्देशक में कहे अनुसार सम्यक्त्व क्रिया और मिथ्यात्व क्रिया पर्यन्त कहना चाहिये।

संग्रह गाथा का अर्थ इस प्रकार है—जीवों के छह भेद, पृथ्वीकायिक जीवों के छह भेद। पृथ्वीकायिक जीवों की स्थिति, भवस्थिति, सामान्य काय-स्थिति, निर्लेपन, अनगार सम्बन्धी वर्णन, सम्यक्त्व क्रिया और मिथ्यात्व क्रिया।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है। ऐसा कहकर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं।

विवेचन—पृथ्वीकायिक जीवों के छह भेद कहे गये हैं। यथा—

सण्हा य सुद्ध वालू य, मणोस्सिला सक्कराय खरपुढवी।
इग बार चोद्दस सोलट्ठार, बावीससयसहस्सा ॥ १ ॥

अर्थ—१ सण्हा (श्लक्ष्णा) २ शुद्ध पृथ्वी, ३ बालुका पृथ्वी, ४ मणोसिला (मनःशिला) पृथ्वी, ५ शर्करापृथ्वी ६ खरपृथ्वी। इन छहों पृथ्वीकायिक जीवों की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की है, उत्कृष्ट स्थिति श्लक्ष्णा पृथ्वी की एक हजार वर्ष, शुद्ध-पृथ्वी की बारह हजार वर्ष, बालुका पृथ्वी की चौदह हजार वर्ष, मणोसिला (मनःशिला-मेन सिल) पृथ्वी की सोलह हजार वर्ष, शर्करा पृथ्वी की अठारह हजार वर्ष और खर-पृथ्वी की बाईस हजार वर्ष की है।

नारकी और देवता की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष की है और उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागरोपम की है। तिर्यञ्च और मनुष्य की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की और उत्कृष्ट तीन पल्योपम की है। इस तरह सभी जीवों की भवस्थिति प्रज्ञापना सूत्र के चौथे स्थिति पद के अनुसार कहनी चाहिये।

निर्लेपन-वर्तमान समय में तत्काल के उत्पन्न हुए पृथ्वीकाय के जीवों को प्रति समय

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एक एक अपहरे-निकाले तो जघन्य पद में असंख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी काल में और उत्कृष्ट पद में भी असंख्यात अवसर्पिणी, उत्सर्पिणी काल में निर्लेप (खाली) होते हैं। जघन्यपद से उत्कृष्ट पद में काल असंख्यात गुणा अधिक समझना चाहिये। इसी तरह अप्काय, तेउकाय और वायुकाय का भी कहना चाहिये। वनस्पतिकाय अनन्तानन्त होने से कभी निर्लेप नहीं होती। त्रसकाय, जघन्य पृथक्त्व सौ सागर में और उत्कृष्टपद में भी पृथक्त्व सौ सागर में निर्लेप होती है, किन्तु जघन्यपद से उत्कृष्ट पद में काल विशेषाधिक है।

अविशुद्ध लेश्या वाले अवधिज्ञानी अनगार के, देव देवी आदि को जानने सम्बन्धी बारह आलापक कहने चाहिये।

अन्यतीर्थिक कहते हैं कि एक जीव, एक समय में सम्यक्त्व की और मिथ्यात्व की ये दो क्रिया करता है। अन्यतीर्थिकों का यह कथन मिथ्या है, क्योंकि एक जीव, एक समय में एक ही क्रिया कर सकता है, दो क्रिया नहीं कर सकता।

इस प्रकार यह सारा वर्णन जीवाभिगम सूत्र के तिर्यञ्च के दूसरे उद्देशक के समान कहना चाहिये।

॥ इति सातवें शतक का चौथा उद्देशक सम्पूर्ण ॥

शतक ७ उद्देशक ५

खेचर तिर्यंच के भेद

१ प्रश्न–रायगिहे जाव एवं वयासी–खहयरपंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं भंते ! कइविहे जोणीसंगहे पण्णत्ते ?

१ उत्तर–गोयमा ! तिविहे जोणीसंगहे पण्णत्ते, तं जहा–अंडया, पोयया, सम्मुच्छिमा; एवं जहा जीवाभिगमे, जाव 'णो चेव णं ते

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विमाणे वीईवएज्जा, एमहालया णं गोयमा ! ते विमाणा पण्णत्ता ।'

जोणीसंगह-लेसा दिट्ठी णाणे य जोग-उवओगे ।

उववाय-ट्ठिइ-समुग्घाय-चवण-जाइ-कुल-विहीओ ॥

❀ सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति । ❀

॥ सत्तमसयस्स पंचमो उद्देसो सम्मत्तो ॥

कठिन शब्दार्थ—**खहयर**—खेचर, **वीईवएज्जा**—उल्लंघन करता है ।

भावार्थ—१ प्रश्न—राजगृह नगर में गौतमस्वामी ने यावत् इस प्रकार पूछा-हे भगवन् ! खेचर पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च जीवों का योनि-संग्रह कितने प्रकार का कहा गया है ?

१ उत्तर-हे गौतम ! इनका योनि-संग्रह तीन प्रकार का कहा गया है । यथा-अण्डज, पोतज और सम्मूच्छिम । ये सारा वर्णन जीवाभिगम सूत्र में कहे अनुसार कहना चाहिये यावत् 'उन विमानों को उल्लंघा नहीं जा सकता । इतने बडे विमान कहे गये हैं,' यहाँ तक सारा वर्णन कहना चाहिये ।

संग्रह गाथा का अर्थ इस प्रकार है-योनि संग्रह, लेश्या, दृष्टि, ज्ञान, योग, उपयोग, उपपात, स्थिति, समुद्घात, च्यवन और जातिकुलकोटि ।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है । हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है । ऐसा कहकर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं ।

विवेचन--खेचर-पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों के तीन प्रकार का योनि-संग्रह कहा गया है। उत्पत्ति के हेतु को 'योनि' कहते हैं और अनेक का कथन एक शब्द के द्वारा कर दिया जाय, उसे 'संग्रह' कहते हैं । खेचर पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अनेक होते हुए भी तीन प्रकार के योनि-संग्रह के द्वारा उनका कथन किया गया है । यथा-अण्डज, पोतज और सम्मूच्छिम । अण्डे से उत्पन्न होने वाले जीव 'अण्डज' कहलाते है । जैसे कबूतर, मोर, हंस आदि । जो जीव जन्म के समय चर्म से आवृत होकर कोथली सहित उत्पन्न होते हैं, वे 'पोतज' कहलाते हैं । जैसे-चिमगादड़ आदि । कोई तोता आदि जो माता-पिता के संयोग के बिना उत्पन्न होते हैं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वे सम्मूच्छिम-खेचर-तिर्यञ्च-पञ्चेन्द्रिय कहलाते हैं।

खेचर-तिर्यञ्च-पञ्चेन्द्रिय में अण्डज और पोतज स्त्री, पुरुष और नपुंसक तीनों होते हैं। सम्मूच्छिम जीव नपुंसक ही होते हैं।

खेचर पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च में लेश्या छह, दृष्टि तीन, ज्ञान तीन, (भजना से) अज्ञान तीन (भजना से) योग तीन, उपयोग दो पाये जाते हैं। सामान्यतः ये चारों गति से आते हैं और चारों गति में जाते हैं। इनकी स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट पल्योपम के असंख्यातवें भाग है। केवली-समुद्घात और आहारक-समुद्घात को छोड़कर इनमें पांच समुद्घात पाये जाते हैं। इनकी बारह लाख कुल कोड़ी है।

इस प्रकरण में अन्तिम सूत्र विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित का है। यदि कोई देव नौ आकाशांतर प्रमाण (८५०७४०$\frac{१८}{६०}$ योजन) का एक कदम भरता हुआ छह महीने तक चले तो किसी विमान के अन्त को प्राप्त करता है और किसी विमान के अन्त को प्राप्त नहीं करता। विजयादि चार विमानों का इतना विस्तार है।

इन सब बातों का विस्तृत वर्णन जीवाभिगम सूत्र से जान लेना चाहिये।

॥ इति सातवें शतक का पांचवा उद्देशक सम्पूर्ण ॥

शतक ७ उद्देशक ६

आयु का बन्ध और वेदन कहां ?

१ प्रश्न—रायगिहे जाव एवं वयासी—जीवे णं भंते ! जे भविए णेरइएसु उववज्जित्तए से णं भंते ! किं इहगए णेरइयाउयं पकरेइ, उववज्जमाणे णेरइयाउयं पकरेइ, उववण्णे णेरइयाउयं पकरेइ ?

१ उत्तर—गोयमा ! इहगए णेरइयाउयं पकरेइ, णो उववज्जमाणे

णेरइयाउयं पकरेइ, णो उववण्णे णेरइयाउयं पकरेइ । एवं असुर-कुमारेसु वि, एवं जाव वेमाणिएसु ।

२ प्रश्न-जीवे णं भंते ! जे भविए णेरइएसु उववज्जित्तए से णं भंते ! किं इहगए णेरइयाउयं पडिसंवेदेइ, उववज्जमाणे णेरइयाउयं पडिसंवेदेइ, उववण्णे णेरइयाउयं पडिसंवेदेइ ?

२ उत्तर-गोयमा ! णो इहगए णेरइयाउयं पडिसंवेदेइ, उवव-ज्जमाणे णेरइयाउयं पडिसंवेदेइ, उववण्णे वि णेरइयाउयं पडिसंवे-देइ । एवं जाव वेमाणिएसु ।

३ प्रश्न-जीवे णं भंते ! जे भविए णेरइएसु उववज्जित्तए से णं भंते ! किं इहगए महावेयणे, उववज्जमाणे महावेयणे, उववण्णे महावेयणे ।

३ उत्तर-गोयमा ! इहगए सिय महावेयणे सिय अप्पवेयणे, उववज्जमाणे सिय महावेयणे सिय अप्पवेयणे; अहे णं उववण्णे भवइ तओ पच्छा एगंतदुक्खं वेयणं वेयइ, आहच्च सायं ।

४ प्रश्न-जीवे णं भंते ! जे भविए असुरकुमारेसु उववज्जित्तए पुच्छा ।

४ उत्तर-गोयमा ! इहगए सिय महावेयणे सिय अप्पवेयणे, उववज्जमाणे सिय महावेयणे सिय अप्पवेयणे; अहे णं उववण्णे भवइ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तओ पच्छा एगंतसायं वेयणं वेदेइ, आहच्च असायं । एवं जाव थणियकुमारेसु ।

५ प्रश्न-जीवे णं भंते ! जे भविए पुढविक्काइएसु उववज्जित्तए पुच्छा ।

५ उत्तर-गोयमा ! इहगए सिय महावेयणे सिय अप्पवेयणे; एवं उववज्जमाणे वि, अहे णं उववण्णे भवइ तओ पच्छा वेमायाए वेयणं वेदेइ । एवं जाव मणुस्सेसु, वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिएसु जहा असुरकुमारेसु ।

कठिन शब्दार्थ-उववज्जित्तए-उत्पन्न होने योग्य, इहगए-इस भव में, उववज्जमाणे-उत्पन्न होता हुआ, उववण्णे-उत्पन्न होने के बाद, पडिसंवेदेइ-करता है, आहच्च-कदाचित् ।

भावार्थ-१ प्रश्न-राजगृह नगर में गौतम स्वामी ने यावत् इस प्रकार पूछा-हे भगवन् ! जो जीव, नरक में उत्पन्न होने योग्य है, वह जीव, इस भव में रहता हुआ नरक का आयुष्य बांधता है, या नरक में उत्पन्न होता हुआ नरक का आयुष्य बांधता है ? या नरक में उत्पन्न होने पर नरक का आयुष्य बांधता है ?

१ उत्तर-हे गौतम ! इस भव में रहा हुआ जीव, नरक का आयुष्य बांधता है, परन्तु नरक मे उत्पन्न होता हुआ नरक का आयुष्य नहीं बांधता और नरक में उत्पन्न होने के बाद भी नरक का आयुष्य नहीं बांधता । इस प्रकार असुरकुमारों में यावत् वैमानिकों तक में भी जान लेना चाहिए ।

२ प्रश्न-हे भगवन् ! जो जीव, नरक में उत्पन्न होने योग्य है, वह इस भव में रहता हुआ नरक का आयुष्य वेदता है, या वहां उत्पन्न होता हुआ नरक का आयुष्य वेदता है, अथवा वहां उत्पन्न होने के बाद नरक का आयुष्य वेदता है ?

२ उत्तर-हे गौतम ! इस भव में रहा हुआ जीव नरक के आयुष्य का

वेदन नहीं करता, परन्तु नरक में उत्पन्न होता हुआ और उत्पन्न होने के बाद नरक के आयुष्य का वेदन करता है। इस प्रकार यावत् वैमानिक तक चौवीस ही दण्डक में कहना चाहिये।

३ प्रश्न-हे भगवन् ! जो जीव, नरक में उत्पन्न होने वाला है, वह इस भव में रहा हुआ महावेदना वाला है, या नरक में उत्पन्न होता हुआ महावेदना वाला है या उत्पन्न होने के बाद महावेदना वाला है ?

३ उत्तर-हे गौतम ! वह जीव, इस भव में रहा हुआ कदाचित् महावेदना वाला होता है और कदाचित् अल्प वेदना वाला होता है। नरक में उत्पन्न होता हुआ कदाचित् महावेदना वाला होता है और कदाचित् अल्प वेदना वाला होता है, किंतु नरक में उत्पन्न होने के बाद एकांत दुःख रूप वेदना वेदता है। कदाचित् सुखरूप वेदना वेदता है।

४ प्रश्न-हे भगवन् ! जो जीव, असुरकुमारों में उत्पन्न होने वाला है....?

४ उत्तर-हे गौतम ! वह इस भव में रहा हुआ कदाचित् महावेदना वाला होता है और कदाचित् अल्प वेदना वाला होता है, उत्पन्न होता हुआ कदाचित् महावेदना वाला होता है और कदाचित् अल्प वेदना वाला होता है, परन्तु उत्पन्न होने के बाद वह एकांत सुख रूप वेदना वेदता है और कदाचित् दुःख रूप वेदना वेदता है। *इस प्रकार यावत् स्तनितकुमारों तक कहना चाहिये।*

५ प्रश्न-हे भगवन् ! जो जीव, पृथ्वीकाय में उत्पन्न होने वाला है....?

५ उत्तर-हे गौतम ! इस भव में रहा हुआ वह जीव, कदाचित् महावेदना वाला होता है और कदाचित् अल्प वेदना वाला होता है। इसी प्रकार उत्पन्न होता हुआ भी कदाचित् महा वेदना वाला और कदाचित् अल्प वेदना वाला होता है, परन्तु उत्पन्न होने के बाद वह विमात्रा (विविध प्रकार से) से वेदना वेदता है। इस प्रकार यावत् मनुष्य पर्यन्त कहना चाहिये। जिस प्रकार असुरकुमारों के विषय में कहा है, उसी प्रकार वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक देवों के विषय में भी कहना चाहिये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आभोगनिर्वर्तितादि आयु

६ प्रश्न–जीवा णं भंते ! किं आभोगणिव्वत्तियाउया, अणाभोगणिव्वत्तियाउया ?

६ उत्तर–गोयमा ! णो आभोगणिव्वत्तियाउया, अणाभोगणिव्वत्तियाउया । एवं णेरइया वि, एवं जाव वेमाणिया ।

कठिन शब्दार्थ—आभोगनिव्वत्तियाउया—जानते हुए आयुष्य कर्म को बंधकर ।

भावार्थ—६ प्रश्न–हे भगवन् ! जीव, आभोगनिर्वर्तित आयुष्य वाले हैं, या अनाभोग निर्वर्तित आयुष्य वाले हैं ?

६ उत्तर–हे गौतम ! जीव, आभोगनिर्वर्तित आयुष्य वाले नहीं, किन्तु अनाभोगनिर्वर्तित आयुष्य वाले हैं। इस प्रकार नैरयिकों के विषय में भी जानना चाहिये, यावत् वैमानिक पर्यन्त इसी तरह जानना चाहिये ।

कर्कश अकर्कश वेदनीय

७ प्रश्न–अत्थि णं भंते ! जीवाणं कक्कसवेयणिज्जा कम्मा कज्जंति ?

७ उत्तर–(गोयमा !) हंता, अत्थि ।

८ प्रश्न–कहं णं भंते ! जीवाणं कक्कसवेयणिज्जा कम्मा कज्जंति ?

८ उत्तर–गोयमा ! पाणाइवाएणं, जाव मिच्छादंसणसल्लेणं;

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एवं खलु गोयमा ! जीवाणं कक्कसवेयणिज्जा कम्मा कज्जंति ।

९ प्रश्न—अत्थि णं भंते ! णेरइयाणं कक्कसवेयणिज्जा कम्मा कज्जंति ?

९ उत्तर—एवं चेव, एवं जाव वेमाणियाणं ।

१० प्रश्न—अत्थि णं भंते ! जीवाणं अकक्कसवेयणिज्जा कम्मा कज्जंति ?

१० उत्तर—हंता, अत्थि ।

११ प्रश्न—कहं णं भंते ! जीवाणं अकक्कसवेयणिज्जा कम्मा कज्जंति ?

११ उत्तर—गोयमा ! पाणाइवायवेरमणेणं, जाव परिग्गहवेरमणेणं कोहविवेगेणं, जाव मिच्छादंसणसल्लविवेगेणं; एवं खलु गोयमा ! जीवाणं अकक्कसवेयणिज्जा कम्मा कज्जंति ।

१२ प्रश्न—अत्थि णं भंते ! णेरइयाणं अकक्कसवेयणिज्जा कम्मा कज्जंति ?

१२ उत्तर—गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे । एवं जाव वेमाणिया, णवरं मणुस्साणं जहा जीवाणं ।

कठिन शब्दार्थ—कक्कसवेयणिज्जा—कर्कश-वेदनीय—दुःखपूर्वक भोगी जा सके ऐसी वेदना, अकक्कसवेयणिज्जा—अकर्कश वेदनीय—जो सुखपूर्वक भोगी जा सके ।

भावार्थ—७ प्रश्न—हे भगवन् ! क्या जीव, कर्कशवेदनीय (अत्यन्त दुःख पूर्वक भोगने योग्य) कर्मों का बन्ध करते हैं ?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

७ उत्तर-हाँ, गौतम ! बांधते हैं ।

८ प्रश्न-हे भगवन् ! जीव, कर्कश-वेदनीय कर्म किस प्रकार बांधते हैं ?

८ उत्तर-हे गौतम ! प्राणातिपात के सेवन से यावत् मिथ्यादर्शनशल्य, इन अठारह पापों के सेवन से जीव, कर्कश-वेदनीय कर्म बांधते हैं ।

९ प्रश्न—हे भगवन् ! क्या नैरयिक जीव, कर्कश-वेदनीय कर्म बांधते हैं ?

९ उत्तर-हां, गौतम ! बांधते हैं । यावत् वैमानिक पर्यन्त इसी तरह कहना चाहिये ।

१० प्रश्न-हे भगवन् ! क्या जीव, अकर्कश-वेदनीय (सुख पूर्वक भोगने योग्य) कर्म बांधते हैं ?

१० उत्तर-हाँ, गौतम ! बांधते हैं ।

११ प्रश्न-हे भगवन् ! जीव, अकर्कश-वेदनीय (अति सुखपूर्वक भोगने योग्य) कर्म किस प्रकार बांधते हैं ?

११ उत्तर-हे गौतम ! प्राणातिपात विरमण से यावत् परिग्रह विरमण से तथा क्रोध विवेक (क्रोध का त्याग) से यावत् मिथ्यादर्शनशल्य विवेक (त्याग) से जीव, अकर्कश-वेदनीय कर्म बांधते हैं ।

१२ प्रश्न-हे भगवन् ! नैरयिक जीव, अकर्कश-वेदनीय कर्म बाँधते हैं ?

१२ उत्तर-हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं । इस तरह यावत् वैमानिक पर्यन्त कहना चाहिये । परन्तु मनुष्यों के विषय में औधिक जीवों की तरह कथन करना चाहिये ।

विवेचन—नैरयिक जीव, सदा दुःखरूप वेदना वेदते हैं, किन्तु नरकपालादि (परमाधार्मिक देव आदि) का संयोग न होने पर एवं तीर्थङ्कर भगवान् के जन्म महोत्सव आदि प्रसंग पर कदाचित् सुखरूप वेदना वेदते हैं । असुरकुमारादि जीव, भव-प्रत्यय के कारण एकान्त साता वेदना वेदते हैं, किन्तु प्रहारादि के लगने से कदाचित् असाता वेदना वेदते हैं ।

जीव कर्कश-वेदनीय कर्म बांधते हैं । जैसे कि स्कन्दक आचार्य के शिष्यों ने पहले के किसी भव में बांधा था । जीव अकर्कश-वेदनीय बाँधते हैं । जैसे कि भरत चक्रवर्ती

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आदि के बाँधा हुआ था । कर्कश-वेदनीय को बांधने का कारण प्राणातिपातादि अठारह पापस्थान सेवन है और इन अठारह पापस्थानों का त्याग करने से अकर्कश-वेदनीय कर्म का बंध होता है । नरकादि जीवों में प्राणातिपात आदि पाप स्थानों का विरमण नहीं, इसलिये वे अकर्कश-वेदनीय कर्म का बन्ध नहीं कर सकते ।

साता-असाता वेदनीय

१३ प्रश्न–अत्थि णं भंते ! जीवाणं सायावेयणिज्जा कम्मा कज्जंति ?

१३ उत्तर–हंता, अत्थि ।

१४ प्रश्न–कहं णं भंते ! जीवाणं सायावेयणिज्जा कम्मा कज्जंति ?

१४ उत्तर–गोयमा ! पाणाणुकंपयाए, भूयाणुकंपयाए, जीवाणुकंपयाए, सत्ताणुकंपयाए; बहूणं पाणाणं, जाव सत्ताणं अदुक्खणयाए, असोयणयाए, अजूरणयाए, अतिप्पणयाए, अपिट्टणयाए, अपरियावणयाए; एवं खलु गोयमा ! जीवाणं सायावेयणिज्जा कम्मा कज्जंति; एवं णेरइयाण वि, एवं जाव वेमाणियाणं ।

१५ प्रश्न–अत्थि णं भंते ! जीवाणं असायावेयणिज्जा कम्मा कज्जंति ?

१५ उत्तर–हंता, अत्थि ।

१६ प्रश्न–कहं णं भंते ! जीवाणं असायावेयणिज्जा कम्मा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कज्जंति ?

१६ उत्तर-गोयमा ! परदुक्खणयाए, परसोयणयाए, परजूरणयाए, परतिप्पणयाए, परपिट्टणयाए, परपरियावणयाए; बहूणं पाणाणं, जाव सत्ताणं दुक्खणयाए, सोयणयाए जाव परियावणयाए; एवं खलु गोयमा ! जीवाणं अस्सायावेयणिज्जा कम्मा कज्जंति। एवं णेरइयाण वि, एवं जाव वेमाणियाणं।

कठिन शब्दार्थ-सायावेयणिज्जा-सुखपूर्वक वेदी जाने वाली, पाणाणुकंपयाए-प्राणियों की अनुकम्पा करने से, परसोयणयाए-दूसरे जीवों को शोक कराने से, परजूरणयाए-दूसरों को खेदित करने से, तिप्पणयाए-टपटप आंसू गिराने से, परपिट्टणयाए-दूसरों को पीटने से।

भावार्थ-१३ प्रश्न-हे भगवन् ! जीव, साता-वेदनीय कर्मों का बन्ध करते हैं ?

१३ उत्तर-हाँ, गौतम ! करते हैं।

१४ प्रश्न-हे भगवन् ! जीव, सातावेदनीय कर्म किस प्रकार बांधते हैं ?

१४ उत्तर-हे गौतम ! प्राण, भूत, जीव और सत्त्वों पर अनुकम्पा करने से, बहुत से प्राणों, भूतों और सत्त्वों को दुःख न देने से, उन्हें शोक उत्पन्न न करने से, उन्हें खेदित एवं पीड़ित न करने से, उनको न पीटने से, उनको परिताप (कष्ट) नहीं देने से जीव, सातावेदनीय कर्म बांधते हैं। इसी प्रकार नैरयिकों में भी जानना चाहिये, यावत् वैमानिक पर्यन्त इसी तरह कहना चाहिये।

१५ प्रश्न-हे भगवन् ! जीव, असातावेदनीय कर्म बांधते हैं ?

१५ उत्तर-हाँ, गौतम ! बांधते हैं।

१६ प्रश्न-हे भगवन् ! जीव, असाता-वेदनीय कर्म किस प्रकार बांधते हैं ?

१६ उत्तर-हे गौतम ! दूसरे जीवों को दुःख देने से, दूसरे जीवों को शोक उत्पन्न करने से, दूसरे जीवों को खेद उत्पन्न करने से, दूसरे जीवों को पीड़ित

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

करने से, दूसरे जीवों को पीटने से, दूसरे जीवों को परिताप उत्पन्न करने से, बहुत से प्राण, भूत, जीव और सत्त्वों को दुःख देने से, शोक उत्पन्न करने से यावत् परिताप उत्पन्न करने से जीव, असाता-वेदनीय कर्म बांधते हैं। इसी प्रकार नैरयिकों में और इसी प्रकार यावत् वैमानिक पर्यन्त जानना चाहिये।

विवेचन-यहाँ साता-वेदनीय कर्म बन्ध के दस कारण बतलाये गये हैं। यथा—(१) प्राण (२) भूत (३) जीव (४) सत्त्व, इन चारों पर अनुकम्पा करने से। (५) बहुत प्राण, भूत, जीव और सत्त्वों पर अनुकम्पा करने से। (६) उन्हें शोक नहीं उपजाने से। (७) खेदित नहीं करने से। (८) वेदना (पीड़ा) नहीं उपजाने से। (९) नहीं पीटने से और (१०) परिताप नहीं उपजाने से। इन दस कारणों से जीव, साता-वेदनीय कर्म बांधता है।

असाता-वेदनीय कर्म बांधने के बारह कारण बतलाये गये हैं। यथा-(१) दूसरे जीवों को दुःख देने से। (२) शोक उत्पन्न करने से। (३) खेद उपजाने से। (४) पीड़ा उपजाने से। (५) पीटने से। (६) परिताप उपजाने से। (७ से १२) बहुत प्राण, भूत, जीव, सत्त्वों को दुःख देने से, शोक उपजाने से, खेद उत्पन्न करने से, पीड़ा पहुंचाने से पीटने से और परिताप उपजाने से जीव, असातावेदनीय कर्म बांधता है।

भरत में दुषम-दुषमा काल

१७ प्रश्न—जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए दुसमदुसमाए समाए उत्तमकट्ठपत्ताए भरहस्स वासस्स केरिसए आयारभावपडोयारे भविस्सइ ?

१७ उत्तर—गोयमा ! कालो भविस्सइ हाहाभूए, भंभाभूए, कोलाहलगभूए; समयाणुभावेण य णं खर-फरुस-धूलिमइला,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दुब्विसहा, वाउला, भयंकरा, वाया संवट्टगा य वाहिंति; इह अभिक्खं धूमाहिंति य दिसा समंता रओसला, रेणुकलुसतमपडल-णिरालोगा; समयलुक्खयाए य णं अहियं चंदा सीयं मोच्छंति, अहियं सूरिया तवइस्संति; अदुत्तरं च णं अभिक्खणं बहवे अरस-मेहा, विरसमेहा, खारमेहा, खत्तमेहा, (खट्टमेहा) अग्गिमेहा, विज्जु-मेहा, विसमेहा, असणिमेहा; अपिवणिज्जोदगा [अजवणिज्जोदया] वाहि-रोग-वेदणोदीरणापरिणामसलिला, अमणुण्णपाणियगा, चंडा-णिलपहयतिक्खधाराणिवायपउरं वासं वासिहिंति; जे णं भारहे वासे गामाऽऽगर-नयर-खेड-कव्बड-मडंब-दोणमुह-पट्टणाऽऽसमगयं जणवयं, चउप्पय-गवेलए, खहयरे य पक्खिसंघे, गामा-ऽरण्ण पया-रणिरए तसे य पाणे, बहुप्पगारे रुक्ख-गुच्छ-गुम्म-लय-वल्लि-तण-पव्वग-हरिओसहि पवालंकुरमादीए य तण-वणस्सइकाइए विद्धं-सेहिंति, पव्वय-गिरि-डोंगर-उत्थल-भट्ठिमादीए य वेयड्ढगिरिवज्जे विरावेहिंति, सलिलबिल-गड्ड-दुग्गविसमणिण्णुण्णयाइं च गंगा-सिंधुवज्जाइं समीकरेहिंति ।

१८ प्रश्न-तीसे णं समाए भारहवासस्स भूमीए केरिसए आयारभावपडोयारे भविस्सइ ?

१८ उत्तर-गोयमा ! भूमी भविस्सइ इंगालब्भूया, मुम्मुरब्भूया, छारियभूया, तत्तकवेल्लयब्भूया, तत्तसमजोइभूया, धूलिबहुला, रेणु-

बहुला, पंकबहुला, पणगबहुला, चलणिबहुला, बहूणं धरणिगोयराणं सत्ताणं दुण्णिक्कमा यावि भविस्सइ ।

कठिन शब्दार्थ-उत्तमकट्ठपत्ताए-अत्यंत उत्कट अवस्था प्राप्त, आयारभावपडोयारे-आकारभावप्रत्यवतार-आकार और भावों का आविर्भाव, हाहाभूए-हाहाकार भूत, भंभाभूए-कराहने रंभाने जैसे, खरफरुसधूलिमइला-कठोर स्पर्श और धूल से मेले शरीर वाले, दुव्विसहा-दुस्सह-मुश्किल से सहन करने योग्य, वाउल-व्याकुल, वायासंवट्टगा य वाहिंति-संवर्तक वायु चलेगा, धूमाहिंति-धूल उड़ने से, रओसला-रजस्वला, रेणुकलुसतमपडलणिरालोगा-रज से मलीन हो अंधकार के पट जैसी, नहीं दिखाई देने वाली, समयलुक्खयाए-काल की रुक्षता से, चंडाणिलपहयतिक्खधाराणिवायपउरं वासं वासिहिंति-भयानक वायु के साथ तीक्ष्ण धारा से बहुत बरसात होगी, अदुत्तरं-अथवा, डोंगर-डूंगर-पर्वत, दुण्णिक्कमा-दुनिष्क्रमा-मुश्किल से पार करने योग्य ।

भावार्थ-१७ प्रश्न-हे भगवन् ! इस जम्बूद्वीप नामक द्वीप के भरत क्षेत्र में इस अवसर्पिणी काल के दुषमदुषमनामक छठा आरा जब अत्यन्त उत्कट अवस्था को प्राप्त होगा, तब इस भरतक्षेत्र का आकारभावप्रत्यवतार (आकार और भावों का आविर्भाव) कैसा होगा ?

१७ उत्तर-हे गौतम ! वह काल हाहाभूत अर्थात् मनुष्यों के हाहाकार-युक्त, भंभाभूत अर्थात् पशुओं के दुःखयुक्त आर्त्तनाद से युक्त (जिस काल में पशु भाँ भाँ शब्द करेंगे) कोलाहलभूत (दुःख से पीड़ित पक्षी जिसमें कोलाहल करेंगे) होगा । काल के प्रभाव से अत्यन्त कठोर, धूमिल (धूल से मलीन बने हुए), असह्य, व्याकुल (जीवों को आकुल-व्याकुल कर देने वाली) और भयंकर वायु एवं संवर्तक वायु चलेगी । इस काल में बारबार चारों तरफ धूल उड़ती हुई होने से रज से मलीन, अन्धकार युक्त और प्रकाश-शून्य दिशाएँ होगी । काल की रुक्षता से चन्द्रमा से अत्यन्त शीतलता गिरेगी और सूर्य अत्यन्त तपेंगे । अरस मेघ अर्थात खराब रस वाले मेघ, विरस (विरुद्ध रस वाले) मेघ, क्षार मेघ अर्थात् खारे पानी वाले मेघ, तिक्त मेघ अर्थात् खट्टे पानी वाले मेघ, अग्नि मेघ अर्थात् अग्नि के समान गर्म पानी वाले मेघ, विद्युत्मेघ अर्थात् बिजली सहित मेघ,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विषमेघ अर्थात् विष सरीखे पानी वाले मेघ, अशनिमेघ अर्थात् ओले (गडे) बरसाने वाले मेघ अथवा वज्र आदि के समान पर्वतादि को तोड़ने वाले मेघ, अपेय अर्थात् नहीं पीने योग्य पानी वाले मेघ, तृषा को शान्त न कर सकने वाले पानी युक्त मेघ, व्याधि, रोग और वेदना उत्पन्न करने वाले मेघ, मन को अरुचिकर पानी वाले मेघ, प्रचण्ड वायु युक्त तीक्ष्ण धाराओं के साथ बरसेंगे। जिससे भरत क्षेत्र के ग्राम, आकर, नगर, खेट, कर्बट, मडम्ब, द्रोणमुख, पट्टन और आश्रम, इन स्थानों में रहने वाले मनुष्य, चतुष्पद, खग (आकाश में उड़ने वाले पक्षी) ग्राम और जंगलों में चलने वाले त्रस जीव तथा बहुत प्रकार के वृक्ष, गुल्म, लताएँ, बेलें, घास, दूब, पर्वक (गन्ने आदि,) शाल्यादि धान्य, प्रवाल और अंकुर आदि तृण वनस्पतियाँ, ये सब विनष्ट हो जायेगी। वैताढ्य-पर्वत को छोड़कर शेष सभी पर्वत, छोटे पहाड़, टीले, स्थल, रेगिस्तान, आदि सब का विनाश हो जायगा। गंगा और सिन्धु, इन दो नदियों को छोड़कर शेष नदियां, पानी के झरने, गड्ढे, सरोवर, तालाब आदि सब नष्ट हो जायेंगे। दुर्गम और विषम, ऊँचे और नीचे सब स्थान समतल हो जायेंगे।

१८ प्रश्न—हे भगवन्! उस समय में भरत क्षेत्र की भूमि का आकार-भावप्रत्यवतार (आकार और भावों का आविर्भाव—स्वरूप) कैसा होगा?

१८ उत्तर—हे गौतम! उस समय इस भरतक्षेत्र की भूमि अंगार के समान, मुर्मुर (छाणा की अग्नि) के समान, भस्मीभूत (गर्म राख के समान), तपे हुए लोह के कड़ाहे के समान, ताप द्वारा अग्नि के समान, बहुत धूल वाली, बहुत रज वाली, बहुत कीचड़ वाली, बहुत शैवाल वाली, बहुत चलनि (कर्दम) वाली होगी। जिस पर पृथ्वीस्थित जीवों को चलना बड़ा ही कठिन होगा।

विवेचन—इस अवसर्पिणी काल के दुषमदुषमा नामक छठे आरे में इस भरत क्षेत्र का कैसा स्वरूप होगा? मनुष्य और पशु-पक्षियों की क्या दशा होगी और भूमि का स्वरूप कैसा होगा, इसका वर्णन ऊपर बतलाया गया है। यह अवसर्पिणी काल है। इसलिये इसमें जीवों के संहनन और संस्थान क्रमशः हीन होते जायेंगे। आयु, अवगाहना, उत्थान, कर्म,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बल, वीर्य, पुरुषकार-पराक्रम का ह्रास होता जायगा। इस काल में पुद्गलों के वर्ण, गंध, रस और स्पर्श हीन होते जावेंगे। शुभभाव घटते जावेंगे और अशुभ भाव बढ़ते जावेंगे। अवसर्पिणी काल दस कोड़ाकोड़ी सागरोपम का होता है। इस काल के छह विभाग है जिन्हें 'आरा' कहते हैं। वे इस प्रकार हैं—(१) सुषमसुषमा, (२) सुषमा, (३) सुषमदुषमा, (४) दुषमसुषमा, (५) दुषमा और (६) दुषमदुषमा। इन सब आरों में जीव और पुद्गलों की क्रमशः हीन, हीनतर और हीनतम दशा होती जाएगी। छठे आरे में हीनतम दशा होगी। जिसका वर्णन ऊपर किया गया हैं। इसका विस्तृत विवेचन जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति सूत्र के दूसरे वक्षस्कार में है। वहाँ अवसर्पिणी काल के छह आरों का तथा उत्सर्पिणीकाल के छह आरों के स्वरूप का विस्तृत वर्णन दिया गया है।

छठे आरे के मनुष्यों का स्वरूप

१९ प्रश्न—तीसे णं भंते ! समाए भारहे वासे मणुयाणं केरिसए आयारभावपडोयारे भविस्सइ ?

१९ उत्तर—गोयमा ! मणुया भविस्संति दुरूवा, दुव्वण्णा, दुग्गंधा, दुरसा, दुफासा, अणिट्ठा, अकंता जाव अमणामा, हीणस्सरा, दीणस्सरा, अणिट्ठस्सरा, जाव अमणामस्सरा, अणादेज्जवयणपच्चायाया णिल्लज्जा, कूड-कवड-कलह-वह-बंध-वेरणिरया, मज्जायातिक्कमप्पहाणा, अकज्जणिच्चुज्जता, गुरुणियोय-विणयरहिया य, विकलरूवा, परूढणह-केस-मंसु-रोमा, काला, खर-फरुस-झामवण्णा, फुट्टसिरा, कविल-पलियकेसा, बहुण्हारुसंपिणद्ध-दुद्दंसणिज्जरूवा, संकुडियवलीतरंगपरिवेढियंगमंगा, जरापरिणयव्व

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

थेरगणरा; पविरलपरिसडियदंतसेढी, उब्भडघड (य) मुहा (उब्भड-घाडामुहा) विसमणयणा, वंकणासा वंक (ग)-वलीविगय-भेसणमुहा, कच्छू-कसरा-भिभूया, खर-तिक्खणख-कंडूइयविक्खयतणू, दद्दु-किडिभ सिंज्झ-फुडियफरुसच्छवी, चित्तलंगा, टोलागइ-विसमसंधि-बंधणउक्कुडुअट्ठिगविभत्त-दुब्बला कुसंघयण-कुप्पमाण-कुसंठिया, कुरूवा कुट्ठाणासण-कुसेज्ज-दुब्भोइणो, असुइणो, अणेगवाहिपरिपीलियंगमंगा, खलंत-वेब्भलगई, निरुच्छाहा, सत्तपरिवज्जिया, विगय-चेट्ठ-णट्ठतेया, अभिक्खणं सीय-उण्ह-खर-फरुसवायविज्झ-डियमलिणपंसुरयगुडियंग-मंगा, बहुकोह-माण-माया, बहुलोभा, असुह-दुक्खभागी, ओसण्णं धम्मसण्ण-सम्मत्तपरिभट्ठा, उक्कोसेणं रयणिप्पमाणमेत्ता, सोलस-वीसइवासपरमाउसो, पुत्त-णत्तुपरियालपणय (परिपालण) बहुला गंगा-सिंधूओ महाणईओ, वेयड्ढं च पव्वयं णिस्साए बावत्तरिं णिओया बीयं बीयामेत्ता बिलवासिणो भविस्संति ।

कठिन शब्दार्थ—**अणादेज्जवयणा**—जिनके वचन स्वीकार करने योग्य नहीं, **णिल्लज्जा**—निर्लज्ज, **मज्जायातिक्कमप्पहाणा**—मर्यादा का उल्लंघन करने में अग्रगण्य, **अकज्जणिच्चुज्जत्ता**—अकार्य करने में सदैव तत्पर, **गुरुनियोयविणयरहिया**—मातापितादि गुरुजन के विनय से रहित, **फुट्टसिरा**—खड़े केश वाले, **कविलपलियकेसा**—कपिल अर्थात् पीले और पलित अर्थात् सफेद केश वाले, **कच्छूकसराभिभूया**—खुजली को खुजलाने से दुःखी बने हुए, **दद्दुकिडिभसिज्झ फुडिय फरुसच्छवी**—दाद किडिभ और कुष्ट रोग से कटी हुई चमड़ी वाले, **टोलागइ**—ऊंट के समान चाल, **खलंत वेब्भलगई**—स्खलन युक्त विव्हल गतिवाले, **ओसण्णं**—बहुलता से प्रायः करके, **णिस्साए**—आश्रय में ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ-१९ प्रश्न-हे भगवन् ! उस समय अर्थात् 'दुषमदुषमा' नामक छठे आरे के समय मनुष्यों का आकारभाव-प्रत्यवतार (आकार और भावों का आविर्भाव-स्वरूप) कैसा होगा ?

१९ उत्तर-हे गौतम ! उस समय इस भरतक्षेत्र के मनुष्य, कुरूप, कुवर्ण, कुगन्ध, कुरस और कुस्पर्शयुक्त, अनिष्ट, अमनोज्ञ, अमनाम (मन को नहीं गमने वाले अर्थात् अच्छे नहीं लगने वाले) हीन स्वर, दीन स्वर, अनिष्ट स्वर, अमनोज्ञ स्वर और यावत् अमनाम स्वरयुक्त, अनादेय और अप्रीति युक्त वचन वाले, निर्लज्ज, कूट, कलह, वध, बन्ध और वैर में आसक्त, मर्यादा का उल्लंघन करने में अग्रणी, अकार्य में तत्पर, माता-पिता आदि पूज्यजनों की आज्ञा भंग करने वाले, विनय रहित, विकलरूप अर्थात् बेडौल आकार वाले, बढ़े हुए नख, केश, दाढी, मूँछ और रोम वाले, काले, अतीव कठोर, श्यामवर्ण वाले, बिखरे हुए बालों वाले, पीले और सफेद केशों वाले, अनेक स्नायुओं से आवेष्टित, दुर्दर्शनीय रूप वाले, संकुचित और वली-तरंगयुक्त (झुरियों से युक्त) टेढ़ेमेढ़े अंगोपांग वाले, अनेक प्रकार के कुलक्षणों से युक्त, जरापरिणत वृद्ध पुरुष के सदृश प्रविरल और टूटे फूटे सडे दांतों वाले, घडे के समान भयङ्कर मुंह वाले, विषम नेत्रों वाले, टेढ़ी नाक वाले, टेढ़े और विकृत मुखवाले, खाज (एक प्रकार की भयङ्कर खुजली) वाले, कठिन और तीक्ष्ण नखों द्वारा खुजलाने से विकृत बने हुए, दद्रु (दाद) किडिभ (एक प्रकार का कोढ़) सिध्म (एक प्रकार का भयंकर कोढ़) वाले, फटी हुई कठोर चमडी वाले, विचित्र अंग वाले, ऊंट के समान गति वाले, कुआकृतियुक्त, विषमसंधिबन्धनयुक्त, ऊँची नीची विषम हड्डियों और पसलियों से युक्त, कुगठन युक्त, कुसंहनन वाले, कुप्रमाणयुक्त, विषम संस्थानयुक्त, कुरूप कुस्थान में बढ़े हुए शरीर वाले, कुशय्या वाले (खराब स्थान में शयन करने वाले,) कुभोजन करने वाले, विविध व्याधियों से पीड़ित, स्खलित गति वाले, उत्साह रहित, सत्त्व रहित, विकृत चेष्टा युक्त, तेज हीन, बारम्बार शीत, उष्ण, तीक्ष्ण और कठोर पवन से व्याप्त (संत्रस्त) रज आदि से मलिन

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अंग वाले, अत्यन्त क्रोध, मान, माया और लोभ से युक्त, अत्यन्त अशुभ वेदना को भोगने वाले और प्रायः धर्म-संज्ञा (धर्म-भावना) एवं सम्यक्त्व से भ्रष्ट होंगे। इनकी अवगाहना एक हाथ प्रमाण होगी। इनका आयुष्य सोलह वर्ष और अधिक से अधिक बीस वर्ष का होगा। ये बहुत पुत्र पौत्रादि परिवार वाले तथा अत्यन्त ममत्व वाले होंगे। इनके बहत्तर कुटुम्ब (आश्रय स्थान वाले) बीजभूत (आगामी मनुष्य जाति के लिए बीज रूप) होंगे। ये गंगा और सिन्धु महानदियों के बिलों में और वैताढय पर्वत की गुफाओं का आश्रय लेकर रहेंगे।

२० प्रश्न—ते णं भंते ! मणुया कं आहारं आहारेहिंति ?

२० उत्तर—गोयमा ! तेणं कालेणं तेणं समएणं गंगा-सिंधूओ महाणईओ रहपहवित्थराओ अक्खसोयप्पमाणमेत्तं जलं वोज्झिहिंति, से वि य णं जले बहुमच्छ-कच्छभाइण्णे णो चेव णं आउबहुले भविस्सइ। तए णं ते मणुया सूरुग्गमणमुहुत्तंसि य सूरत्थमणमुहुत्तंसि य बिलेहिंतो णिद्धाहिंति, णिद्धाइत्ता मच्छ-कच्छभे थलाइं गाहेहिंति, गाहित्ता सीयायवतत्तएहिं मच्छ-कच्छएहिं एक्कवीसं वाससहस्साइं वित्तिं कप्पेमाणा विहरिस्संति।

२१ प्रश्न—ते णं भंते ! मणुया णिस्सीला, णिग्गुणा, णिम्मेरा, णिप्पचक्खाण-पोसहोववासा ओसण्णं मंसाहारा, मच्छाहारा, खोद्दाहारा, कुणिमाहारा कालमासे कालं किच्चा कहिं गच्छिहिंति, कहिं उववज्जिहिंति ?

२१ उत्तर—गोयमा ! ओसण्णं णरग-तिरिक्खजोणिएसु उव-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वज्जिहिंति ।

२२ प्रश्न–ते णं भंते ! सीहा, वग्घा, वगा, दीविया, अच्छा, तरच्छा, परस्सरा, णिस्सीला तहेव जाव कहिं उववज्जिहिंति ?

२२ उत्तर–गोयमा ! ओसण्णं णरग-तिरिक्खजोणिएसु उववज्जिहिंति ।

२३ प्रश्न–ते णं भंते ! ढंका, कंका, विलका, मद्दुगा, सिही, णिस्सीला, तहेव जाव ओसण्णं णरग-तिरिक्खजोणिएसु उववज्जिहिंति ।

❀ सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति ❀

॥ सत्तमस्स सयस्स छट्ठो उद्देसओ समत्तो ॥

कठिन शब्दार्थ—अक्खसोयप्पमाणमेत्तं—रथ की धुरी रहने के छिद्र जितने प्रमाण में, बोज्झिहिति—बहेगा, निद्धाहिंति—निकलेंगे, णिम्मेरा—कुलादि की मर्यादा से हीन, खोद्दाहारा—क्षुद्र आहार वाले, कुणिमाहारा—मृतक का मांस खाने वाले, परस्सरा—शरभ, मद्दुगा—जलकाक (जलकौए) ।

भावार्थ–२० प्रश्न–हे भगवन् ! वे मनुष्य किस प्रकार का आहार करेंगे ?

२० उत्तर–हे गौतम ! उस काल उस समय में गंगा और सिन्धु महानदियाँ, रथ-मार्ग प्रमाण विस्तृत होगी । उनमें अक्ष-प्रमाण (धुरी के छिद्र में प्रवेश करे उतना) पानी बहेगा । उस जल में अनेक मच्छ और कच्छप होंगे । पानी अति अल्प होगा । वे बिलवासी मनुष्य सूर्योदय के समय एक मुहूर्त और सूर्यास्त के समय एक मुहूर्त अपने अपने बिलों से बाहर निकलेंगे और गंगा सिन्धु महानदियों में से मछलियाँ और कच्छपादि को पकड़ कर रेत में गाड़ देंगे । वे रात की ठण्ड से और दिन की गर्मी से सिक जायेंगे । इस प्रकार शाम को गाडे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हुए मच्छादि को सुबह निकाल कर खायेंगे और सुबह के गाडे हुए मच्छादि को शाम को निकाल कर खायेंगे। इस प्रकार वे इक्कीस हजार वर्ष तक अपनी आजीविका चलावेंगे।

२१ प्रश्न-हे भगवन् ! शील रहित, निर्गुण, मर्यादा रहित, प्रत्याख्यान और पौषधोपवास रहित, प्रायः मांसाहारी, मत्स्याहारी, क्षुद्राहारी, मृतकाहारी वे मनुष्य, मरण समय काल करके कहाँ जायेंगे ? कहाँ उत्पन्न होंगे ?

२१ उत्तर-हे गौतम ! वे मनुष्य प्रायः नरक और तिर्यञ्च में जायेंगे, नरक तिर्यञ्च गति में उत्पन्न होंगे।

२२ प्रश्न-हे भगवन् ! उस काल और उस समय के सिंह, व्याघ्र, वृक (भेड़िया,) द्वीपी (गेण्डा) रीछ, तरक्ष (जरख), शरभ आदि जो कि पूर्वोक्त रूप से निःशील आदि होंगे, वे मर कर कहाँ जायेंगे ? कहाँ उत्पन्न होंगे ?

२२ उत्तर-हे गौतम ! वे प्रायः नरक और तिर्यञ्च योनि में उत्पन्न होंगे।

२३ प्रश्न-हे भगवन् ! उस काल और उस समय के ढंक (एक प्रकार के कौए) कंक, बीलक, जलवायस (जल काक) मयूर आदि पक्षी जो पूर्ववत् निःशील आदि होंगे, वे मर कर कहाँ उत्पन्न होंगे ?

२३ उत्तर-हे गौतम ! वे प्रायः नरक और तिर्यञ्च योनि में उत्पन्न होंगे।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है। ऐसा कह कर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं।

विवेचन-दुषमदुषमा नामक छठे आरे के मनुष्य कैसे होंगे, वे किस प्रकार का आहार करेंगे, इत्यादि बातों का वर्णन ऊपर किया गया है। उस समय के मनुष्य प्रायः धर्म और सम्यक्त्व से रहित होंगे। अत्यन्त पापी और अधर्मिष्ठ होंगे। अतएव वे मरकर प्रायः नरक और तिर्यञ्च गति में उत्पन्न होंगे।

इसी प्रकार उस समय के सिंह व्याघ्रादि जानवर और ढंक कंकादि पक्षी भी मरकर प्रायः नरक और तिर्यञ्च गति में उत्पन्न होंगे।

॥ इति सातवें शतक का छठा उद्देशक सम्पूर्ण ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शतक ७ उद्देशक ७

संवृत अनगार और क्रिया

१ प्रश्न—संवुडस्स णं भंते ! अणगारस्स आउत्तं गच्छमाणस्स, जाव आउत्तं तुयट्टमाणस्स, आउत्तं वत्थं पडिग्गहं कंबलं पायपुंछणं गेण्हमाणस्स वा, णिक्खिवमाणस्स वा, तस्स णं भंते ! किं इरियावहिया किरिया कज्जइ, संपराइया किरिया कज्जइ ?

१ उत्तर—गोयमा ! संवुडस्स णं अणगारस्स जाव तस्स णं इरियावहिया किरिया कज्जइ, णो संपराइया किरिया कज्जइ।

प्रश्न—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—संवुडस्स णं जाव णो संपराइया किरिया कज्जइ ?

उत्तर—गोयमा ! जस्स णं कोह-माण-माया-लोभा वोच्छिण्णा भवंति तस्स णं इरियावहिया किरिया कज्जइ, तहेव जाव उस्सुत्तं रीयमाणस्स संपराइया किरिया कज्जइ; से णं अहासुत्तमेव रीयइ, से तेणट्ठेणं गोयमा ! जाव णो संपराइया किरिया कज्जइ।

कठिन शब्दार्थ—संवुडस्स—संवृत--संयमी, आउत्तं—उपयोग पूर्वक, गच्छमाणस्स—चलते हुए, तुयट्टमाणस्स—सोते हुए, णिक्खिवमाणस्स—रखते हुए, इरियावहियं—गमनागमन सम्बन्धी (अकषायी को), संपराइया—कषाय के सद्भाव में लगने वाली, वोच्छिण्णा—नष्ट, उस्सुत्तं—उत्सूत्र—सूत्र विधि रहित, रीयमाणस्स—चलते हुए, अहासुत्तमेव—यथासूत्र—सूत्रानुसार।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ-१ प्रश्न—हे भगवन् ! उपयोग पूर्वक चलते, बैठते यावत् सोते तथा वस्त्र, पात्र, कम्बल, और पादप्रोञ्छन (रजोहरण) आदि लेते हुए और रखते हुए संवृत (संवरयुक्त) अनगार को ऐर्यापथिकी क्रिया लगती है या साम्परायिकी क्रिया लगती है ?

१ उत्तर—हे गौतम ! संवरयुक्त अनगार को यावत् ऐर्यापथिकी क्रिया लगती है, किन्तु साम्परायिकी क्रिया नहीं लगती ।

प्रश्न—हे भगवन् ! आप किस कारण कहते हैं कि संवरयुक्त यावत् अणगार को ऐर्यापथिकी क्रिया लगती है, साम्परायिकी क्रिया नहीं लगती ?

उत्तर—हे गौतम ! जिसके क्रोध, मान, माया और लोभ व्यवच्छिन्न हो गये हैं, उसको ऐर्यापथिकी क्रिया लगती है । इसी प्रकार यावत् सूत्र विरुद्ध प्रवृत्ति करने वाले को साम्परायिकी क्रिया लगती है । वह संवृत अनगार यथा-सूत्र (सूत्र के अनुसार) प्रवृत्ति करता है । इस कारण हे गौतम ! उसको यावत् साम्परायिकी क्रिया नहीं लगती ।

विवेचन—इस विषय का विवेचन पहले दिया जा चुका है । यहाँ 'वोच्छिण्ण' (व्यवच्छिन्न-व्युच्छिन्न) शब्द का अर्थ अनुदय प्राप्त (जो उदय में नहीं आये हुए हैं, किन्तु सत्ता में रहे हुए हैं, अभी केवल उपशमन ही किया गया है) और नष्ट (सर्वथा क्षीण) हुए समझना चाहिये । क्योंकि ग्यारहवें, बारहवें और तेरहवें गुणस्थानवर्ती जीव को केवल ऐर्यापथिकी क्रिया लगती है । इनमें से ग्यारहवें गुणस्थानवर्ती जीव के क्रोधादि कषाय का उपशमन हुआ है और बारहवें तथा तेरहवें गुणस्थानवर्ती जीव के क्रोधादि कषाय का सर्वथा क्षय हो चुका है ।

काम-भोग

२ प्रश्न—रूवी भंते ! कामा, अरूवी कामा ?

२ उत्तर-गोयमा ! रूवी कामा, णो अरूवी कामा ।

३ प्रश्न-सचित्ता भंते ! कामा, अचित्ता कामा ?

३ उत्तर-गोयमा ! सचित्ता वि कामा, अचित्ता वि कामा ।

४ प्रश्न-जीवा भंते ! कामा, अजीवा भंते ! कामा ?

४ उत्तर-गोयमा ! जीवा वि कामा, अजीवा वि कामा ।

५ प्रश्न-जीवाणं भंते ! कामा, अजीवाणं कामा ?

५ उत्तर-गोयमा ! जीवाणं कामा, णो अजीवाणं कामा ।

६ प्रश्न-कइविहा णं भंते ! कामा पण्णत्ता ?

६ उत्तर-गोयमा ! दुविहा कामा पण्णत्ता, तं जहा-सद्दा य रूवा य ।

७ प्रश्न-रूवी भंते ! भोगा, अरूवी भोगा ?

७ उत्तर-गोयमा ! रूवी भोगा, णो अरूवी भोगा ।

८ प्रश्न-सचित्ता भंते ! भोगा, अचित्ता भोगा ?

८ उत्तर-गोयमा ! सचित्ता वि भोगा, अचित्ता वि भोगा ।

९ प्रश्न-जीवा भंते ! भोगा-पुच्छा ।

९ उत्तर-गोयमा ! जीवा वि भोगा, अजीवा वि भोगा ।

१० प्रश्न-जीवाणं भंते ! भोगा, अजीवाणं भोगा ?

१० उत्तर-गोयमा ! जीवाणं भोगा, णो अजीवाणं भोगा ।

कठिन शब्दार्थ--पडुच्च--अपेक्षा से ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ—२ प्रश्न—हे भगवन् ! काम रूपी है या अरूपी है ?

२ उत्तर—हे गौतम ! काम रूपी हैं, अरूपी नहीं हैं।

३ प्रश्न—हे भगवन् ! काम सचित्त हैं, या अचित्त हैं ?

३ उत्तर—हे गौतम ! काम सचित्त भी हैं और अचित्त भी हैं।

४ प्रश्न—हे भगवन् ! काम जीव हैं या अजीव हैं ?

४ उत्तर—हे गौतम ! काम जीव भी हैं और अजीव भी हैं।

५ प्रश्न—हे भगवन् ! काम जीवों के होते हैं या अजीवों के ?

५ उत्तर—हे गौतम ! काम जीवों के होते हैं, अजीवों के नहीं होते।

६ प्रश्न—हे भगवन् ! काम कितने प्रकार के कहे गये हैं ?

६ उत्तर—हे गौतम ! काम दो प्रकार के कहे गये हैं, यथा—शब्द और रूप।

७ प्रश्न—हे भगवन् ! भोग रूपी है या अरूपी हैं ?

७ उत्तर—हे गौतम ! भोग रूपी हैं, अरूपी नहीं।

८ प्रश्न—हे भगवन् ! भोग सचित्त हैं या अचित्त ?

८ उत्तर—हे गौतम ! भोग, सचित्त भी हैं और अचित्त भी हैं।

९ प्रश्न—हे भगवन् ! भोग, जीव हैं, या अजीव ?

९ उत्तर—हे गौतम ! भोग, जीव भी हैं और अजीव भी हैं।

१० प्रश्न—हे भगवन् ! भोग, जीवों के होते हैं, या अजीवों के ?

१० उत्तर—हे गौतम ! भोग, जीवों के होते हैं, अजीवों के नहीं होते।

११ प्रश्न—कइविहा णं भंते ! भोगा पण्णत्ता ?

११ उत्तर—गोयमा ! तिविहा भोगा पण्णत्ता, तं जहा—गंधा, रसा, फासा।

१२ प्रश्न—कइविहा णं भंते ! कामभोगा पण्णत्ता ?

१२ उत्तर—गोयमा ! पंचविहा कामभोगा पण्णत्ता, तं जहा—सद्दा, रूवा, गंधा, रसा, फासा ।

१३ प्रश्न—जीवा णं भंते ! किं कामी, भोगी ?

१३ उत्तर—गोयमा ! जीवा कामी वि, भोगी वि ।

प्रश्न—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—जीवा कामी वि, भोगी वि ?

उत्तर—गोयमा ! सोइंदिय-चक्खिदियाइं पडुच्च कामी, घाणिंदिय-जिब्भिंदिय-फासिंदियाइं पडुच्च भोगी, से तेणट्ठेणं गोयमा ! जाव भोगी वि ।

१४ प्रश्न—णेरइया णं भंते ! किं कामी, भोगी ?

१४ उत्तर—एवं चेव, जाव थणियकुमारा ।

१५ प्रश्न—पुढविकाइयाणं पुच्छा ।

१५ उत्तर—गोयमा ! पुढविकाइया णो कामी, भोगी ।

प्रश्न—से केणट्ठेणं जाव भोगी ?

उत्तर—गोयमा ! फासिंदियं पडुच्च; से तेणट्ठेणं जाव भोगी; एवं जाव वणस्सइकाइया; बेइंदिया एवं चेव, णवरं जिब्भिंदिय-फासिंदियाइं पडुच्च भोगी; तेइंदिया वि एवं चेव, णवरं घाणिंदियजिब्भिंदिय-फासिंदियाइं पडुच्च भोगी ।

१६ प्रश्न—चउरिंदियाणं पुच्छा ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१६ उत्तर-गोयमा ! चउरिंदिया कामी वि, भोगी वि।

प्रश्न—से केणट्ठेणं जाव भोगी वि ?

उत्तर-गोयमा ! चक्खिंदियं पडुच्च कामी, घाणिंदिय-जिब्भिंदिय-फासिंदियाइं पडुच्च भोगी, से तेणट्ठेणं जाव भोगी वि अवसेसा जहा जीवा, जाव वेमाणिया।

१७ प्रश्न-एएसि णं भंते ! जीवाणं कामभोगीणं, णोकामीणं णोभोगीणं, भोगीण य कयरे कयरेहिंतो जाव विसेसाहिया वा ?

१७ उत्तर-गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा कामभोगी, णोकामी णोभोगी अणंतगुणा, भोगी अणंतगुणा।

भावार्थ-११ प्रश्न-हे भगवन् ! भोग, कितने प्रकार के कहे गये हैं ?

११ उत्तर-हे गौतम ! भोग तीन प्रकार के कहे गये हैं। यथा-गन्ध, रस और स्पर्श।

१२ प्रश्न-हे भगवन् ! काम-भोग, कितने प्रकार के कहे गये हैं ?

१२ उत्तर-हे गौतम ! काम और भोग दोनों मिलाकर पांच प्रकार के कहे हैं। यथा-शब्द, रूप, गन्ध, रस और स्पर्श।

१३ प्रश्न-हे भगवन् ! जीव कामी हैं या भोगी हैं ?

१३ उत्तर-हे गौतम ! जीव, कामी भी हैं और भोगी भी हैं।

प्रश्न-हे भगवन् ! किस कारण से कहते हैं कि जीव कामी भी हैं और भोगी भी हैं ?

उत्तर-हे गौतम ! श्रोत्रेन्द्रिय और चक्षुरिन्द्रिय की अपेक्षा जीव कामी हैं और घ्राणेन्द्रिय, जिव्हेन्द्रिय तथा स्पर्शनेन्द्रिय की अपेक्षा जीव भोगी हैं। इस कारण हे गौतम ! जीव कामी भी हैं और भोगी भी हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१४ प्रश्न—हे भगवन् ! नैरयिक जीव, कामी हैं या भोगी हैं ?

१४ उत्तर—हे गौतम ! नैरयिक जीव, कामी भी हैं और भोगी भी हैं। इस प्रकार यावत् स्तनितकुमारों तक कहना चाहिये।

१५ प्रश्न—हे भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीव कामी हैं, या भोगी हैं ?

१५ उत्तर—हे गौतम ! पृथ्वीकायिक जीव, कामी नहीं हैं, भोगी हैं।

प्रश्न—हे भगवन् ! किस कारण से कहते हैं कि पृथ्वीकायिक जीव यावत् भोगी हैं ?

उत्तर—हे गौतम ! स्पर्शनेन्द्रिय की अपेक्षा, वे भोगी हैं। इस प्रकार यावत् वनस्पतिकायिक तक कहना चाहिये। बेइन्द्रिय जीव भी भोगी हैं, परन्तु वे जिव्हेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय की अपेक्षा भोगी हैं। तेइन्द्रिय जीव भी इसी तरह जानना चाहिये, किन्तु वे घ्राणेन्द्रिय, जिव्हेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय की अपेक्षा भोगी हैं।

१६ प्रश्न—हे भगवन् ! चतुरिन्द्रिय जीव कामी हैं या भोगी हैं ?

१६ उत्तर—हे गौतम ! चतुरिन्द्रिय जीव कामी भी हैं और भोगी भी हैं।

प्रश्न—हे भगवन् ! इसका क्या कारण है ?

उत्तर—हे गौतम ! चतुरिन्द्रिय जीव, चक्षुइन्द्रिय की अपेक्षा कामी हैं। घ्राणेन्द्रिय, जिव्हेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय की अपेक्षा भोगी हैं। शेष वैमानिक-पर्यन्त सभी जीवों के विषय में औधिक जीवों की तरह कहना चाहिये।

१७ प्रश्न—हे भगवन् ! कामभोगी, नोकामीनोभोगी और भोगी जीवों में कौन किससे अल्प यावत् विशेषाधिक हैं ?

१७ उत्तर—हे गौतम ! कामभोगी जीव सबसे थोड़े हैं, नोकामीनोभोगी जीव उनसे अनन्तगुणे हैं और भोगी जीव, उनसे अनन्त गुणे हैं।

विवेचन—रूप अर्थात् मूर्त्तता जिनमें हों, वे 'रूपी' कहलाते हैं और जिनमें न हो, वे 'अरूपी' कहलाते हैं। जो विशिष्ट शरीर स्पर्श के द्वारा भोगे न जाते हों, किन्तु जिनकी केवल कामना—अभिलाषा की जाती हो, वे 'काम' कहलाते हैं। मनोज्ञ शब्द और संस्थान तथा वर्ण 'काम' कहलाते हैं। वे काम, पुद्गल धर्म होने से मूर्त्त हैं, अतएव रूपी हैं, किन्तु

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अरूपी नहीं । समनस्क (संज्ञी) प्राणी के रूप की अपेक्षा काम सचित्त भी हैं और शब्द द्रव्य की अपेक्षा से तथा असंज्ञी जीव के शरीर के रूप की अपेक्षा अचित्त भी हैं । यहाँ सचित्त शब्द से विशिष्ट चेतना अथवा संज्ञीपन ग्रहण किया गया है और अचित्त शब्द से विशिष्ट चेतना शून्य अर्थात् असंज्ञीपन ग्रहण किया गया है । जीवों के शरीर के रूपों की अपेक्षा काम जीव भी हैं और शब्दों की अपेक्षा चित्रित पुतली आदि के रूपों की अपेक्षा अजीव भी हैं । काम सेवन के कारणभूत होने से जीवों के ही होते हैं, अजीवों के नहीं होते । क्योंकि उनमें काम का अभाव है ।

जो शरीर से भोगे जायँ, वे गन्ध, रस और स्पर्श द्रव्य 'भोग' कहे जाते हैं । वे भोग पुद्गल धर्म होने से मूर्त हैं, अतएव रूपी हैं, अरूपी नहीं । किन्हीं संज्ञी गन्धादि प्रधान जीव शरीरों की अपेक्षा भोग सचित्त भी हैं और किन्हीं असंज्ञी गन्धादि विशिष्ट जीव-शरीरों की अपेक्षा अचित्त भी हैं । जीवों के शरीर विशिष्ट गन्धादि युक्त होते हैं । इसलिये भोग, जीव भी है और अजीव द्रव्य भी विशिष्ट गन्धादि युक्त होते हैं, इसलिये भोग अजीव भी हैं ।

चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय जीव काम-भोगी हैं । वे सबसे थोड़े हैं, उनसे नोकामी-नोभोगी अर्थात् सिद्ध जीव अनन्तगुणे हैं और भोगी अर्थात् एकेंद्रिय बेइन्द्रिय तेइन्द्रिय जीव उससे अनन्त गुणे हैं, क्योंकि एक अकेली वनस्पतिकाय ही अनन्त गुण है ।

छद्मस्थ और केवली

१८ प्रश्न—छउमत्थे णं भंते ! मणूसे जे भविए अण्णयरेसु देवलोएसु देवत्ताए उववज्जित्तए, से णूणं भंते ! से खीणभोगी णो पभू उट्ठाणेणं, कम्मेणं, बलेणं, वीरिएणं, पुरिसकार-परक्कमेणं विउलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरित्तए ? से णूणं भंते ! एयमट्ठं एवं वयह ?

१८ उत्तर—गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, पभू णं भंते ! से उट्ठा-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णेण वि, कम्मेण वि, बलेण वि, वीरिएण वि, पुरिसकार-परक्कमेण वि अण्णयराइं विपुलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरित्तए, तम्हा भोगी, भोगे परिच्चयमाणे महाणिज्जरे, महापज्जवसाणे भवइ।

कठिन शब्दार्थ--**छउमत्थेणं**--छद्मस्थ-जिसका ज्ञान आवरण युक्त हो, **खीणभोगी**--अरस विरस खाने से दुर्बल शरीर वाला, **वयह**--कहते हैं, **परिच्चयमाणे**--त्याग करने पर, **महापज्जवसाणे**--महाफलवाला।

भावार्थ-१८ प्रश्न-हे भगवन्! ऐसा छद्मस्थ मनुष्य जो किसी देवलोक में उत्पन्न होने के योग्य है, वह क्षीण-भोगी (दुर्बल शरीरवाला) उत्थान, कर्म, बल, वीर्य और पुरुषकारपराक्रम द्वारा विपुल और भोगने योग्य भोगों को भोगने में समर्थ नहीं है? हे भगवन्! आप इस अर्थ को इसी तरह कहते हैं?

१८ उत्तर-हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं। वह उत्थान, कर्म, बल, वीर्य और पुरुषकारपराक्रम द्वारा किन्हीं विपुल और भोगने योग्य भोगों को भोगने में समर्थ है। इसलिये हे गौतम! वह भोगी, भोगों का त्याग करता हुआ महानिर्जरा और महापर्यवसान (महाफल) वाला होता है।

विवेचन-भोग भोगने का साधन शरीर है। इसलिये शरीर को यहाँ भोगी कहा है। तपस्या या रोगादि से जिसका शरीर क्षीण हो गया हो, वह 'क्षीणभोगी' कहलाता है। उसके विषय में भोग भोगने सम्बन्धी जो प्रश्न किये गये हैं, उनका आशय यह है कि यदि वह भोग भोगने में असमर्थ है, तो वह भोगी नहीं कहला सकता और जब भोगी नहीं है, तो वह किन भोगों का त्याग करेगा? अतएव भोग-त्यागी भी नहीं कहला सकता और जबकि वह भोग त्यागी नहीं है, तो उसके निर्जरा नहीं होगी। निर्जरा के अभाव में देवलोक में उत्पत्ति नहीं हो सकती।

इस प्रश्न का उत्तर यह दिया गया है कि वह क्षीण-भोगी मनुष्य, क्षीण-शरीर के योग्य किन्हीं भोगों को भोग सकता है, अतएव वह भोगी है और उनका त्याग करने से वह भोग-त्यागी है, इससे निर्जरा होती है और उससे देवलोक में उत्पन्न हो सकता है।

१९ प्रश्न-आहोहिए णं भंते! मणूसे जे भविए अण्णयरेसु

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

देवलोएसु० ?

१९ उत्तर-एवं चेव, जहा छउमत्थे जाव महापज्जवसाणे भवइ।

२० प्रश्न-परमाहोहिए णं भंते ! मणुस्से जे भविए तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झित्तए, जाव अंतं करेत्तए, से णूणं भंते ! से खीणभोगी ?

२० उत्तर-सेसं जहा छउमत्थस्स ।

२१ प्रश्न-केवली णं भंते ! मणूसे जे भविए तेणेव भवग्गहणेणं ?

२१ उत्तर-एवं जहा परमाहोहिए, जाव महापज्जवसाणे भवइ ।

कठिन शब्दार्थ—आहोहिए—अधोऽवधिक अर्थात् नियत क्षेत्र के अवधिज्ञान वाला, परमाहोहिए—परमाऽवधिक अर्थात् परम अवधिज्ञानी ।

१९ प्रश्न-हे भगवन् ! ऐसा अधोऽवधिक (नियतक्षेत्र के अवधिज्ञान वाला) मनुष्य जो किसी देवलोक में उत्पन्न होने योग्य है, वह क्षीण-भोगी (दुर्बल शरीरवाला) उत्थान, यावत् पुरुषकारपराक्रम द्वारा विपुल भोगने योग्य भोगों को भोगने में समर्थ है ?

१९ उत्तर-हे गौतम ! इसका कथन भी उपर्युक्त छद्मस्थ के समान ही जान लेना चाहिये, यावत् वह महापर्यवसान वाला होता है ।

भावार्थ—२० प्रश्न—हे भगवन् ! ऐसा परमावधिक मनुष्य जो उसी भव में सिद्ध होने वाला है यावत् सर्व दुःखों का अन्त करने वाला है, क्या वह क्षीण भोगी यावत् भोगने योग्य विपुल भोगों को भोगने में समर्थ है ?

२० उत्तर-हे गौतम ! इसका उत्तर छद्मस्थ के लिये दिये हुए उत्तर के समान जानना चाहिये ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

२१ प्रश्न-हे भगवन् ! केवलज्ञानी मनुष्य जो उसी भव में सिद्ध होने वाला है यावत् सभी दुःखों का अन्त करने वाला है। क्या वह और भोगने योग्य विपुल भोगों को भोगने में समर्थ है ?

२१ उत्तर-हे गौतम ! इसका कथन परमावधिज्ञानी की तरह करना चाहिये। यावत् वह महापर्यवसान वाला होता है।

विवेचन—नियत क्षेत्र विषयक अवधिज्ञान वाला 'आधोवधिकज्ञानी' कहलाता है। उत्कृष्ट अवधिज्ञान वाला परमाधोऽवधिकज्ञानी कहलाता है। यह चरमशरीरी होता है। केवलज्ञान वाला केवलज्ञानी कहलाता है, वह तो चरमशरीरी है ही। इन तीनों के भोग भोगने सम्बन्धी वक्तव्यता, छद्मस्थ की तरह कहनी चाहिये।

अकाम वेदना का वेदन

२२ प्रश्न-जे इमे भंते ! असण्णिणो पाणा, तं जहा-पुढविक्काइआ जाव वणस्सइकाइआ, छट्ठा य एगइया तसा; एए णं अंधा, मूढा, तमं पविट्ठा, तमपडल-मोहजालपडिच्छण्णा अकामणिकरणं वेयणं वेदेंतीत्ति वत्तव्वं सिया ?

२२ उत्तर-हंता, गोयमा ! जे इमे असण्णिणो पाणा, जाव पुढविक्काइआ जाव वणस्सइकाइआ छट्ठा य जाव वेयणं वेदेंतीति वत्तव्वं सिया।

२३ प्रश्न-अत्थि णं भंते ! पभू वि अकामणिकरणं वेयणं वेदेंति ?

२३ उत्तर-हंता, गोयमा ! अत्थि।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

२४ प्रश्न-कहं णं भंते ! पभू वि अकामणिकरणं वेयणं वेदेंति ?

२४ उत्तर-गोयमा ! जे णं णो पभू विणा पईवेणं अंधकारंसि रूवाइं पासित्तए, जे णं णो पभू पुरओ रूवाइं अणिज्झाइत्ता णं पासित्तए, जे णं णो पभू मग्गओ रूवाइं अणवयक्खित्ता णं पासित्तए, जे णं णो पभू पासओ रूवाइं अणवलोइत्ता णं पासित्तए, जे णं णो पभू उड्ढं रूवाइं अणालोएत्ता णं पासित्तए, जे णं णो पभू अहे रूवाइं अणालोइत्ता णं पासित्तए, एस णं गोयमा ! पभू वि अकामणिकरणं वेयणं वेदेंति ।

कठिन शब्दार्थ--**असण्णिणो**-बिना मन वाले जीव, **तमपडलमोहजालपडिच्छण्णा**-अज्ञान अन्धकार और मोह के पर्दे से आवृत-ढके हुए, **विणा पईवेणं**-बिना दीपक के, **अकामणिकरणं**-अनिच्छा पूर्वक, **अणिज्झाइत्ता**-देखे बिना, **अणवयक्खित्ता**-पश्चाद् भाग को देखे बिना, **अणवलोइत्ता**-बिना देखे ।

भावार्थ-२२ प्रश्न-हे भगवन् ! जो ये असंज्ञी (मन रहित) प्राणी हैं, यथा-पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेउकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक और छठे कितनेक त्रसकायिक (सम्मूच्छिम त्रसकायिक) जीव जो अन्ध (अज्ञानी), मूढ, अज्ञानान्धकार में प्रविष्ट, अज्ञानरूप आवरण और मोह जाल के द्वारा आच्छादित हैं, वे अकामनिकरण (अनिच्छापूर्वक) वेदना वेदते हैं,--क्या ऐसा कहना चाहिये ?

२२ उत्तर--हां, गौतम ! जो ये असंज्ञी प्राणी पृथ्वीकायिक यावत् वनस्पतिकायिक छठे त्रस (सम्मूच्छिम त्रस) कायिक जीव, ये सब अकामनिकरण वेदना वेदते हैं ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

२३ प्रश्न–हे भगवन् ! क्या ऐसा भी है कि समर्थ होते हुए (संज्ञी होते हुए) भी जीव, अकाम-निकरण वेदना वेदते हैं ?

२३ उत्तर–हां, गौतम ! वेदते हैं।

२४ प्रश्न–हे भगवन् ! समर्थ होते हुए भी जीव, अकामनिकरण वेदना किस प्रकार वेदते हैं ?

२४ उत्तर–हे गौतम ! जो जीव समर्थ होते हुए भी अन्धकार में दीपक के बिना पदार्थों को देखने में समर्थ नहीं होते, अवलोकन किये बिना सामने के पदार्थों को नहीं देख सकते, अवेक्षण किये बिना पीछे रहे हुए रूपों को नहीं देख सकते, अवलोकन किये बिना दोनों और के रूपों को नहीं देख सकते, आलोचन किये बिना ऊपर और नीचे के रूपों नहीं देख सकते, वे समर्थ होते हुए भी अकाम-निकरण वेदना वेदते हैं।

२५ प्रश्न–अत्थि णं भंते ! पभू वि पकामणिकरणं वेयणं वेदेंति ?

२५ उत्तर–हंता, अत्थि।

२६ प्रश्न–कहं णं भंते ! पभू वि पकामणिकरणं वेयणं वेदेंति ?

२६ उत्तर–गोयमा ! जे णं णो पभू समुद्दस्स पारं गमित्तए, जे णं णो पभू समुद्दस्स पारगयाइं रूवाइं पासित्तए, जे णं णो पभू देवलोगं गमित्तए, जे णं णो पभू देवलोगगयाइं रूवाइं पासित्तए, एस णं गोयमा ! पभू वि पकामणिकरणं वेयणं वेदेंति।

❀ सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति ❀

॥ सत्तमस्स सयस्स सत्तमो उद्देसओ समत्तो ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ—पकामणिकरणं—तीव्र इच्छापूर्वक।

भावार्थ-२५ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या ऐसा भी होता है कि समर्थ होते हुए भी जीव, प्रकामनिकरण (तीव्र इच्छापूर्वक) वेदना को वेदते हैं ?

२५ उत्तर-हां, गौतम ! वेदते हैं।

२६ प्रश्न-हे भगवन् ! समर्थ होते हुए भी जीव, प्रकामनिकरण वेदना किस प्रकार वेदते हैं ?

२६ उत्तर-हे गौतम ! जो समुद्र के पार जाने में समर्थ नहीं हैं, जो समुद्र के पार रहे हुए रूपों को देखने में समर्थ नहीं हैं, जो देवलोक में जाने में समर्थ नहीं हैं और जो देवलोक में रहे हुए रूपों को देखने में समर्थ नहीं है, हे गौतम ! वे समर्थ होते हुए भी प्रकामनिकरण वेदना वेदते हैं।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है।

विवेचन—जो असंज्ञी अर्थात् मन रहित प्राणी हैं, उनके मन नहीं होने से इच्छा शक्ति और ज्ञान शक्ति के अभाव में अकामनिकरण (अनिच्छा पूर्वक—अज्ञानपने) सुख-दुःखरूप वेदना वेदते हैं।

जो संज्ञी अर्थात् मन सहित जीव हैं, वे भी अनिच्छापूर्वक अज्ञानपने सुख-दुःख का अनुभव करते हैं। जैसे कि जिस मनुष्य में देखने को शक्ति है, किन्तु शक्ति होते हुए भी वह अन्धकार में रहे हुए पदार्थों को दीपक के बिना नहीं देख सकता, तथा पीठ पीछे रहे हुए यावत् ऊपर और नीचे रहे पदार्थों को भी देखने की शक्ति होते हुए भी उपयोग के बिना नहीं देख सकता। तात्पर्य यह है कि सामर्थ्य होते हुए भी इच्छा शक्ति और ज्ञान-शक्ति युक्त जीव, अज्ञानदशा में सुख-दुःख का अनुभव करते हैं। जबकि असंज्ञी जीव सामर्थ्य के अभाव में इच्छा शक्ति और ज्ञान शक्ति रहित होने से अनिच्छापूर्वक अज्ञान-दशा में सुख-दुःख का अनुभव करते हैं।

संज्ञी (मन सहित) जीव प्रकाम-निकरण (तीव्र अभिलाषापूर्वक) वेदना वेदते हैं। जैसे कि समुद्र के पार जाने की तथा उस पार रहे हुए रूपों को देखने की तथा देवलोक में जाने की एवं वहां के रूपों को देखने की शक्ति नहीं होने से तीव्र अभिलाषापूर्वक वेदना वेदते हैं। उन जीवों में इच्छा शक्ति और ज्ञान शक्ति है, परन्तु उसे प्रवृत्त करने का *सामर्थ्य नहीं है। उनकी तीव्र अभिलाषा मात्र है। इससे वे वेदना का अनुभव करते हैं।*

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तात्पर्य यह है कि असंज्ञी जीव 'इच्छा और ज्ञान शक्ति के अभाव में अनिच्छा और अज्ञान पूर्वक सुखदुःख वेदते हैं।' संज्ञी जीव, इच्छा और ज्ञान शक्ति युक्त होते हुए भी उपयोग के अभाव में अनिच्छा और अज्ञानपूर्वक वेदना वेदते हैं। एवं सामर्थ्य और इच्छायुक्त होते हुए भी प्राप्तिरूप सामर्थ्य के अभाव में मात्र तीव्र अभिलाषापूर्वक वेदना वेदते हैं।

॥ इति सातवें शतक का सातवाँ उद्देशक सम्पूर्ण ॥

शतक ७ उद्देशक ८

छद्मस्थ सिद्ध नहीं होता

१ प्रश्न—छउमत्थे णं भंते ! मणूसे तीयमणंतं सासयं समयं केवलेणं संजमेणं० ?

१ उत्तर— एवं जहा पढमसए चउत्थे उद्देसए तहा भाणियव्वं, जाव अलमत्थु ।

२ प्रश्न—से णूणं भंते ! हत्थिस्स य समे चेव जीवे ?

२ उत्तर—हंता, गोयमा ! हत्थिस्स य कुंथुस्स य एवं जहा 'रायप्पसेणइज्जे' जाव खुड्डियं वा, महालियं वा, से तेणट्ठेणं गोयमा ! जाव समे चेव जीवे ।

कठिन शब्दार्थ—तीयमणंतं—अतीत अनन्त, सासयं—शाश्वत, अलमत्थु—पूर्ण, खुड्डियं—क्षुद्र (छोटा), महालियं—महान् (बड़ा)।

भावार्थ--१ प्रश्न--हे भगवन् ! क्या छद्मस्थ मनुष्य अनन्त और शाश्वत

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अतीत काल में केवल संयम द्वारा, केवल संवर द्वारा, केवल ब्रह्मचर्य द्वारा और केवल अष्टप्रवचन माता के पालन द्वारा सिद्ध हुआ है, बुद्ध हुआ है, यावत् सर्व दुःखों का अन्त किया हैं ?

१ उत्तर—हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है । इस विषय में प्रथम शतक के चौथे उद्देशक में जो कहा है वही यावत् 'अलमत्थु' पाठ तक कहना चाहिये ।

२ प्रश्न--हे भगवन् ! क्या हाथी और कुन्थुए का जीव समान है ?

२ उत्तर--हां, गौतम ! हाथी और कुन्थुआ दोनों का जीव समान हैं । इस विषय में राजप्रश्नीय सूत्र में कहे अनुसार यावत् 'खुड्डियं वा महालियं वा' पाठ तक कहना चाहिये ।

विवेचन–छद्मस्थ मनुष्य के विषय में जिस प्रकार भगवती सूत्र के पहले शतक के चौथे उद्देशक (प्रथम भाग पृ. २१६) में कथन किया गया है, उसी प्रकार यहां भी कथन करना चाहिये । भूतकाल में, वर्तमान काल में और भविष्यत्काल में जितने सिद्ध, बुद्ध, मुक्त हुए, होते हैं और होंगे, वे सभी उत्पन्न ज्ञान-दर्शन के धारक अरिहन्त जिन केवली होकर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त हुए हैं, होते हैं और भविष्य में भी होंगे । उत्पन्न ज्ञान-दर्शन के धारक अरिहन्त जिन केवली को 'अलमत्थु' (अलमस्तु–पूर्ण) कहना चाहिये ।

हाथी और कुन्थुआ का जीव समान है । इस विषय में राजप्रश्नीयसूत्र में दीपक का दृष्टांत दिया गया है । जैसे–एक दीपक का प्रकाश किसी एक कमरे में फैला हुआ है, यदि उसको किसी बर्तन द्वारा ढक दिया जाय, तो उसका प्रकाश उस बर्तन परिमाण हो जाता है, इसी प्रकार जब जीव, हाथी का शरीर धारण करता है, तो उतने बड़े शरीर में व्याप्त रहता है और जब कुन्थुआ का शरीर धारण करता है, तो उस छोटे शरीर में व्याप्त रहता है । इस प्रकार केवल शरीर में ही छोटे बड़े का अन्तर रहता है, किन्तु जीव में कुछ भी अन्तर नहीं है । सभी जीव समान हैं ।

पाप दुःखदायक

३ प्रश्न–णेरइयाणं भंते ! पावे कम्मे जे य कडे, जे य कज्जइ,

जे य कज्जिस्सइ सव्वे से दुक्खे, जे णिज्जिण्णे से सुहे ?

३ उत्तर–हंता, गोयमा ! णेरइयाणं पावे कम्मे जाव सुहे। एवं जाव वेमाणियाणं।

४ प्रश्न–कइ णं भंते ! सण्णाओ पण्णत्ताओ ?

४ उत्तर–गोयमा ! दस सण्णाओ पण्णत्ताओ, तं जहा–आहार-सण्णा, भयसण्णा, मेहुणसण्णा, परिग्गहसण्णा, कोहसण्णा, माण-सण्णा, मायासण्णा, लोभसण्णा, लोगसण्णा, ओहसण्णा। एवं जाव वेमाणियाणं।

५ णेरइया दसविहं वेयणं पच्चणुभवमाणा विहरंति, तं जहा–सीयं, उसिणं, खुहं, पिवासं, कंडुं, परज्झं, जरं, दाहं, भयं, सोगं।

कठिन शब्दार्थ–सण्णा–संज्ञा–इच्छा, **पच्चणुभवमाणा**–अनुभव करते हुए, **कंडुं**–खुजली, **परज्झं**–परतन्त्रता, **जरं**–ज्वर।

भावार्थ–३ प्रश्न–हे भगवन् ! नैरयिक जीवों द्वारा जो पापकर्म किया गया है, किया जाता है और जो किया जायेगा, क्या वह सब दुःखरूप है। और जिसकी निर्जरा की गई है, क्या वह सब सुख रूप है ?

३ उत्तर–हाँ, गौतम ! नैरयिकों द्वारा जो पापकर्म किया गया है यावत् वह दुःख रूप है और जिसकी निर्जरा की गई है, वह सुख रूप है। इस प्रकार यावत् वैमानिक पर्यन्त चौवीस दण्डक में जान लेना चाहिये।

४ प्रश्न–हे भगवन् ! संज्ञा कितने प्रकार की कही गई है ?

४ उत्तर–हे गौतम ! संज्ञा दस प्रकार की कही गई है। यथा–१ आहार संज्ञा, २ भय संज्ञा, ३ मैथुन संज्ञा, ४ परिग्रह संज्ञा, ५ क्रोध संज्ञा, ६ मान संज्ञा, ७ माया संज्ञा, ८ लोभ संज्ञा ९ लोक संज्ञा और १० ओघ संज्ञा। इस प्रकार

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यावत् वैमानिक पर्यन्त चौवीस ही दण्डक में ये दस संज्ञायें पाई जाती हैं।

५-नैरयिक जीव दस प्रकार की वेदना का अनुभव करते हुए रहते हैं। यथा-१ शीत, २ उष्ण, ३ क्षुधा, ४ पिपासा, ५ कण्डू (खुजली), ६ परतन्त्रता, ७ ज्वर, ८ दाह, ९ भय, १० शोक।

विवेचन—नैरयिक जीव जो पापकर्म करते हैं, किये हैं, और करेंगे, वे सब दुःख के हेतु और संसार का कारण होने से दुःख रूप हैं और जिन पाप-कर्मों की निर्जरा की है, वे सुख स्वरूप मोक्ष (छुटकारे) का हेतु होने से सुख स्वरूप हैं।

नैरयिकादि संज्ञी हैं, इसलिये आगे संज्ञा का वर्णन किया जाता है। यथा—

वेदनीय और मोहनीय कर्म के उदय से तथा ज्ञानावरणीय और दर्शनावरणीय कर्म के क्षयोपशम से पैदा होने वाली आहारादि की प्राप्ति के लिये आत्मा की इच्छा विशेष को 'संज्ञा' कहते हैं। अथवा जिन बातों से यह जाना जाय कि जीव आहारादि को चाहता है, उसे 'संज्ञा' कहते हैं। किसी के मन से मानसिक ज्ञान ही संज्ञा है अथवा जीव का आहारादि विषयक चिन्तन 'संज्ञा' है। इसके दस भेद हैं:—

(१) आहार संज्ञा—क्षुधावेदनीय के उदय से कवलादि आहार के लिये पुद्गल ग्रहण करने की इच्छा को 'आहार-संज्ञा' कहते हैं।

(२) भय संज्ञा—भय मोहनीय के उदय से व्याकुल चित्त वाले पुरुष का भयभीत होना, घबराना, रोमाञ्च, शरीर का कम्पन आदि क्रियाएं 'भय-संज्ञा' हैं।

(३) मैथुन संज्ञा-पुरुष-वेदादि (नो कषायरूप वेदमोहनीय) के उदय से, स्त्री आदि के अंगों को देखने, छूने आदि की इच्छा तथा उससे होने वाले शरीर में कम्पन आदि, जिनसे मैथुन की इच्छा जानी जाय, 'मैथुन-संज्ञा' कहते हैं।

(४) परिग्रह संज्ञा—लोभरूप कषाय-मोहनीय के उदय से संसार बन्ध के कारणों में आसक्तिपूर्वक सचित्त और अचित्त द्रव्यों को ग्रहण करने की इच्छा 'परिग्रह-संज्ञा' कहलाती है।

(५) क्रोध संज्ञा—क्रोध के उदय से आवेश में भर जाना, मुंह का सूखना, आँखें लाल हो जाना और काँपना आदि क्रियाएँ 'क्रोध संज्ञा' हैं।

(६) मान संज्ञा—मान के उदय से आत्मा के अहंकारादि रूप परिणामों को 'मान संज्ञा' कहते हैं।

(७) माया संज्ञा—माया के उदय से बुरे भाव लेकर दूसरे को ठगना, झूठ बोलना

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आदि 'माया संज्ञा' है।

(८) लोभ संज्ञा-लोभ के उदय से सचित्त या अचित्त पदार्थों को प्राप्त करने की लालसा करना 'लोभ संज्ञा' है।

(९) ओघ संज्ञा—मतिज्ञानावरण आदि के क्षयोपशम से शब्द और अर्थ के सामान्य ज्ञान को 'ओघ संज्ञा' कहते हैं।

(१०) लोक संज्ञा-सामान्य रूप से जानी हुई बात को विशेष रूप से जानना 'लोक-संज्ञा' है। अर्थात् दर्शनोपयोग को 'ओघ-संज्ञा' और ज्ञानोपयोग को 'लोक संज्ञा' कहते हैं। किसी के मत से ज्ञानोपयोग ओघ-संज्ञा है और दर्शनोपयोग लोक-संज्ञा। सामान्य प्रवृत्ति को 'ओघ-संज्ञा' कहते हैं तथा लोक-दृष्टि को 'लोक-संज्ञा' कहते हैं, यह भी एक मत है।

अप्रत्याख्यानिकी क्रिया आदि

६ प्रश्न-से णूणं भंते ! हत्थिस्स य कुंथुस्स य समा चेव अपच्चक्खाणकिरिया कज्जइ ?

६ उत्तर-हंता, गोयमा ! हत्थिस्स य कुंथुस्स य जाव कज्जइ।

प्रश्न-से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ जाव कज्जइ ?

उत्तर-गोयमा ! अविरइं पडुच्च, से तेणट्ठेणं जाव कज्जइ।

कठिन शब्दार्थ—अपच्चक्खाणकिरिया—विरति (त्याग) के अभाव में लगनेवाली क्रिया।

भावार्थ—६ प्रश्न—हे भगवन् ! क्या हाथी और कुन्थुए के जीव को अप्रत्याख्यानिकी क्रिया समान लगती है ?

६ उत्तर-हाँ, गौतम ! हाथी और कुन्थुए के जीव को अप्रत्याख्यानी क्रिया समान लगती है।

प्रश्न-हे भगवन् ! इसका क्या कारण है ?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर–हे गौतम ! अविरति की अपेक्षा हाथी और कुन्थुए के जीव को अप्रत्याख्यानिकी क्रिया समान लगती है ।

विवेचन—अविरति की अपेक्षा हाथी और कुंथुए को अप्रत्याख्यानिकी क्रिया समान रूप मे लगती है । क्योंकि अविरति का सद्भाव दोनों में समान है ।

आधाकर्म का फल

७ प्रश्न–आहाकम्मं णं भंते ! भुंजमाणे किं बंधइ, किं पकरेइ, किं चिणाइ, किं उवचिणाइ ?

७ उत्तर–एवं जहा पढमे सए णवमे उद्देसए तहा भाणियव्वं, जाव सासए पंडिए, पंडियत्तं असासयं ।

❀ सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति ❀

॥ सत्तमस्स सयस्स अट्ठमो उद्देसो सम्मत्तो ॥

भावार्थ–७ प्रश्न–हे भगवन् ! आधाकर्म आहारादि सेवन करने वाला साधु, क्या बांधता है, क्या करता है, किसका चय करता है, किसका उपचय करता है ?

७ उत्तर–हे गौतम ! आधाकर्म आहारादि का सेवन करने वाला साधु, आयुष्य कर्म को छोड़कर, शेष सात कर्मों की प्रकृतियों को, यदि वे शिथिल बंध से बन्धी हुई हों, तो उन्हें गाढ़ बन्ध वाली करता है यावत् बारम्बार संसार परिभ्रमण करता है । इस विषयक सारा वर्णन प्रथम शतक के नववें उद्देशक में कहे अनुसार कहना चाहिये । यावत् पण्डित शाश्वत है और पण्डितपन अशाश्वत है, यहां तक कहना चाहिये ।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है । हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है । इस

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रकार कह कर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं ।

विवेचन—आधाकर्म का अर्थ इस प्रकार है—

"आधया साधुप्रणिधानेन यत्सचेतनमचेतनं क्रियते, अचेतनं वा पच्यते, चीयते वा गृहादिकं, वयते वा वस्त्रादिकं तदाधाकर्म ।"

अर्थ—साधु के लिये सचित्त पदार्थ को अचित्त बनाया जाय, अथवा अचित्त को पकाया जाय, घर आदि बनवाये जायें, वस्त्रादि बुनवाये जायें, उसे 'आधाकर्म' कहते हैं । तात्पर्य यह है कि आहार, पानी, वस्त्र, पात्र, कम्बल, मकान आदि कोई भी पदार्थ जो साधु के लिये बनवाये जायें, वे सब 'आधाकर्म' दोष दूषित हैं । इनका सेवन करना मुनि के लिये अनाचार है ।

इस विषय का विस्तृत विवेचन प्रथम शतक के नववें उद्देशक में किया जा चुका है । वहाँ 'पण्डितपन अशाश्वत है' तक का सारा वर्णन यहाँ कहना चाहिये ।

॥ इति सातवें शतक का आठवां उद्देशक समाप्त ॥

शतक ७ उद्देशक ९

असंवृत अनगार

१ प्रश्न—असंवुडे णं भंते ! अणगारे बाहिरए पोग्गले अपरियाइत्ता पभू एगवण्णं एगरूवं विउव्वित्तए ?

१ उत्तर—णो इणट्ठे समट्ठे ।

२ प्रश्न—असंवुडे णं भंते ! अणगारे बाहिरए पोग्गले परियाइत्ता पभू एगवण्णं एगरूवं जाव० ?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

२ उत्तर—हंता, पभू ।

३ प्रश्न—से भंते ! किं इहगए पोग्गले परियाइत्ता विकुव्वइ तत्थगए पोग्गले परियाइत्ता विकुव्वइ अण्णत्थगए पोग्गले परियाइत्ता विकुव्वइ ?

३ उत्तर—गोयमा ! इहगए पोग्गले परियाइत्ता विकुव्वइ, णो तत्थगए पोग्गले परियाइत्ता विकुव्वइ, णो अण्णत्थगए पोग्गले जाव विकुव्वइ । एवं एगवण्णं अणेगरूवं चउभंगो जहा छट्ठसए णवमे उद्देसए तहा इहा वि भाणियव्वं, णवरं अणगारे इहगयं (ए) इहगए चेव पोग्गले परियाइत्ता विकुव्वइ, सेसं तं चेव, जाव लुक्ख-पोग्गलं णिद्धपोग्गलत्ताए परिणामेत्तए ? हंता, पभू । से भंते ! किं इहगए पोग्गले परियाइत्ता, जाव णो अण्णत्थगए पोग्गले परियाइत्ता विकुव्वइ ।

कठिन शब्दार्थ—असंवुडे—असंवृत्त, (असंयमी—आश्रवसेवी,) परियाइत्ता—ग्रहण करके ।

भावार्थ—१ प्रश्न—हे भगवन् ! क्या असंवृत (प्रमत्त) अनगार, बाहर के पुद्गलों को ग्रहण किये बिना एक वर्ण वाला, एक रूप वैक्रिय कर सकता है ?

१ उत्तर—गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं ।

२ प्रश्न—हे भगवन् ! क्या असंवृत अनगार, बाहर के पुद्गलों को ग्रहण करके एक वर्ण वाले एक रूप की विक्रिया कर सकता है ?

२ उत्तर—हाँ, गौतम ! कर सकता हूं ।

३ प्रश्न—हे भगवन् ! क्या वह अनगार, यहाँ रहे हुए पुद्गलों को ग्रहण करके विक्रिया करता है, या वहाँ रहे हुए पुद्गलों को ग्रहण करके विक्रिया

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

करता है, या अन्यत्र रहे हुए पुद्गलों को ग्रहण करके विक्रिया करता है ?

उत्तर—हे गौतम ! यहाँ रहे हुए पुद्गलों को ग्रहण करके विक्रिया (विकुर्वणा) करता है, परन्तु वहाँ रहे हुए पुद्गलों को ग्रहण करके विक्रिया नहीं करता और अन्यत्र रहे हुए पुद्गलों को ग्रहण करके भी विक्रिया नहीं करता। इस प्रकार एक वर्ण अनेकरूप, अनेक वर्ण एक रूप और अनेक वर्ण अनेकरूप चौभंगी आदि का कथन जिस प्रकार छठे शतक के नववें उद्देशक में किया गया है, उसी प्रकार यहां भी कहना चाहिये। परन्तु इतनी विशेषता है कि यहाँ रहा हुआ, यहाँ रहे हुए पुद्गलों को ग्रहण करके विक्रिया करता है। शेष सारा वर्णन उसी के अनुसार कहना चाहिये, यावत् 'हे भगवन् ! क्या रूक्ष पुद्गलों को स्निग्ध पुद्गलपने परिणमाने में समर्थ है ? हां, समर्थ है।' हे भगवन् ! क्या यहां रहे हुए पुद्गलों को ग्रहण करके यावत् अन्यत्र रहे हुए पुद्गलों को ग्रहण किये बिना विक्रिया करता है, वहाँ तक कहना चाहिये।

विवेचन—यहाँ 'इहगए' शब्द का अर्थ 'यह मनुष्य लोक' समझना चाहिये, क्योंकि यहां प्रश्नकर्ता गौतम स्वामी हैं, उनकी अपेक्षा, 'इह' शब्द का अर्थ 'यह मनुष्य लोक' ही करना संगत है। 'तत्थगए' का अर्थ है--वैक्रिय बनाकर वह अनगार जहाँ जायेगा वह स्थान। 'अन्नत्थगए' का अर्थ है,--'उपरोक्त दोनों स्थानों से भिन्न स्थान'। तात्पर्य यह है कि जिस स्थान पर रहकर मुनि वैक्रिय करता है, वहां के पुद्गल 'इहगत' कहलाते हैं। वैक्रिय करके जिस स्थान पर जाता है, वहाँ के पुद्गल 'तत्रगत' कहलाते और इन दोनों स्थानों से भिन्न स्थान के पुद्गल 'अन्यत्र गत' कहलाते हैं। देव तो तत्रगत अर्थात् देवलोक में रहे हुए पुद्गलों को ग्रहण करके वैक्रिय कर सकता है, किन्तु मुनि तो इहगत अर्थात् मनुष्य लोक में रहे हुए पुद्गलों को ग्रहण करके वैक्रिय कर सकता है।

महाशिला-कंटक संग्राम

४ प्रश्न—णायमेयं अरहया, सुयमेयं अरहया, विण्णायमेयं अरहया—महासिलाकंटए संगामे। महासिलाकंटए णं भंते ! संगामे वट्ट-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

माणे के जइत्था, के पराजइत्था ?

४ उत्तर—गोयमा ! वज्जी विदेहपुत्ते जइत्था; णव मल्लई णव लेच्छई कासी-कोसलगा अट्ठारस वि गणरायाणो पराजइत्था। तए णं से कोणिए राया महासिलाकंटगं संगामं उवट्ठियं जाणित्ता कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! उदाइं हत्थिरायं पडिकप्पेह, हय-गय-रह-जोह-कलियं चाउरंगिणिं सेणं सण्णाहेह, सण्णाहेत्ता मम एयमाणत्तियं खिप्पामेव पच्चप्पिणह। तएणं ते कोडुंबियपुरिसा कोणिएणं रण्णा एवं वुत्ता समाणा हट्ठ-तुट्ठ-जाव अंजलिं कट्टु 'एवं सामी, तहत्ति' आणाए विणएणं वयणं पडिसुणंति, पडिसुणित्ता खिप्पामेव छेयायरियोवएसमतिकप्पणा-विकप्पेहिं सुणिउणेहिं एवं जहा उववाइए जाव भीमं संगामियं अउज्झं उदाइं हत्थिरायं पडिकप्पेंति, हय-गय-जाव सण्णाहेंति, सण्णाहित्ता जेणेव कूणिए राया तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता करयल जाव कूणियस्स रण्णो तमाणत्तियं पच्चप्पिणंति। तएणं से कूणिए राया जेणेव मज्जणघरं तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता, मज्जणघरं अणुप्पविसइ, मज्जणघरं अणुप्पविसित्ता ण्हाए, कयबलिकम्मे, कयकोउय-मंगल-पायच्छित्ते, सव्वालंकारविभूसिए, सण्णद्ध-बद्ध-वम्मियकवए, उप्पीलियसरासणपट्टिए, पिणद्धगेवेज्ज-विमलवरबद्ध-चिंधपट्टे, गहियाउहप्पहरणे, सकोरेंटमल्लदामेणं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

छत्तेणं धरिज्जमाणेणं चउचामरबालवीइयंगे, मंगलजयसद्दकयालोए एवं जहा उववाइए जाव उवागच्छित्ता उदाइं हत्थिरायं दुरूढे।

कठिन शब्दार्थ-णायमेयं अरहया-अरिहंत जानते हैं, **वट्टमाणे**-होते हुए, **के जइत्था के पराजइत्था**-कौन जीता और कौन पराजित हुआ, **वज्जी**-वज्री-इन्द्र, **विदेहपुत्ते**-विदेहपुत्र कोणिक, **उवट्ठियं**-उपस्थित होने पर, **खिप्पामेव**-शीघ्र, **पडिकप्पेह**-सजाकर तैयार करो, **सण्णाहेह**-तैयार करो, **एयमाणत्तियं**-इस आज्ञा को, **पच्चप्पिणह**-पीछी अर्पण करो, **रन्ना**-राजा, **एवं वुत्ता समाणा**-इस प्रकार कहने पर, **अंजलिकट्टु**-हाथ जोड़कर, **एवं सामी तहत्ति**-हे स्वामी ऐसा ही होगा, **छेयायरियोवएसमतिकप्पणा**- कुशल आचार्य के उपदेश से मतिकल्पना द्वारा, **सुणिउणेहिं**-सुनिपुण, **अउज्झं**-अयोद्धचं-जिसके साथ कोई युद्ध नहीं कर सके, **तमाणत्तियं पच्चपिणंति**-उनकी आज्ञा लौटाई--काम कर देने की सूचना दी, **मज्जणघरं**-स्नान घर, **ण्हाए कयबलिकम्मे**-स्नान मर्दनादि किये, **कयकोउयमंगलपायच्छित्ते**-कृत कौतुक मंगल प्रायश्चित्त, **सण्णद्धबद्ध वम्मियकवए**-सन्नद्धबद्ध--शस्त्रादि सजकर कवच धारण कर, **उप्पिलियसरासणपट्टिए**-तने हुए धनुर्दण्ड को धारण कर, **पिणद्धगेवेज्ज-विमलवरबद्धचिंधपट्टे**-गले में आभूषण पहने और उत्तमोत्तम चिन्हपट्ट बाँधकर, **गहियाउहप्पहरणे**-आयुध--गदा आदि शस्त्र तथा प्रहरण-भाला आदि शस्त्रों को ग्रहण करके, **सकोरेंटमल्लदामेणं छत्तेणं**-कोरंट के पुष्पों की माला वाले छत्र, **चउचामरबालवीइयंगे**-चार चँवर के बालों से विंजाता हुआ, **मंगलजयसद्दकयालोए**-जिसके दर्शन से लोक मंगल और जय जयकार करे।

भावार्थ-४ प्रश्न-अरिहन्त भगवान् ने यह जाना है, यह सुना है अर्थात् प्रत्यक्ष देखा है, विशेष रूप से जाना है कि महाशिलाकण्टक नामक संग्राम है। हे भगवन्! जब महाशिलाकण्टक संग्राम चलता था, तब उसमें कौन जीता और कौन हारा?

४ उत्तर-हे गौतम! वज्री अर्थात् इन्द्र और विदेहपुत्र अर्थात् कोणिक राजा जीते। नव मल्लि और नव लच्छी जो कि काशी और कौशल देश के अठारह गणराजा थे, वे पराजित हुए।

उस समय में 'महाशिला कंटक संग्राम' उपस्थित हुआ जान कर कोणिक राजा ने अपने कौटुम्बिक पुरुषों (आज्ञा पालक सेवकों) को बुलाया। बुलाकर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उनसे इस प्रकार कहा कि-हे देवानुप्रियों ! शीघ्र ही 'उदायी' नामक पट्टहस्ती को तैयार करो और हाथी, घोड़ा, रथ और योद्धाओं से युक्त चतुरंगिणी सेना सन्नद्धबद्ध करो अर्थात् शस्त्रादि से सुसज्जित करो और वैसा करके अर्थात् मेरी आज्ञानुसार कार्य करके मेरी आज्ञा वापिस मुझे शीघ्र सौंपो । इसके पश्चात् कोणिक राजा के द्वारा इस प्रकार कहे हुए वे कौटुम्बिक पुरुष हृष्ट, तुष्ट हुए यावत् मस्तक पर अञ्जलि करके-'हे स्वामिन् ! जैसी आपकी आज्ञा'-ऐसा कहकर विनयपूर्वक वचनों द्वारा आज्ञा स्वीकार की । वचन को स्वीकार करके कुशल आचार्यों द्वारा शिक्षित और तीक्ष्ण मति-कल्पना के विकल्पों से युक्त इत्यादि विशेषणों युक्त औपपातिक सूत्र में कहे अनुसार यावत् भयंकर संग्राम के योग्य उदार (प्रधान) उदायी नामक पट्टहस्ती को सुसज्जित किया । तथा घोड़ा, हाथी, रथ और योद्धाओं से युक्त चतुरंगिणी सेना को सुसज्जित किया । सुसज्जित करके जहाँ कोणिक राजा था, वहाँ आये और दोनों हाथ जोड़कर कोणिक राजा को उसकी आज्ञा वापिस सौंपी । इसके बाद कोणिक राजा जहाँ स्नानघर है, वहाँ आया और स्नानघर में प्रवेश किया । फिर स्नान एवं बलि-कर्म (स्नान सम्बन्धी सभी कार्य) किया । प्रायश्चित्तरूप (विघ्नों को नाश करने वाले कार्य) कौतुक (मषतिलकादि) और मंगल करके सब अलङ्कारों से विभूषित हुआ, सन्नद्धबद्ध हुआ । लोह कवच को धारण किया । मुड़े हुए धनुर्दण्ड को ग्रहण किया । गले में आभूषण पहने । योद्धा के योग्य उत्तमोत्तम चिन्ह पट बांधे । आयुध और प्रहरणों को धारण किया, कोरण्टक-पुष्पमाला युक्त छत्र धारण किया । उसके चारों तरफ चामर डुलाये जाने लगे । जय-विजय शब्द उच्चारण किये जाने लगे । ऐसा कोणिक राजा औपपातिक सूत्र में कहे अनुसार यावत् उदायी नामक पट्टहस्ती पर बैठा ।

तए णं से कूणिए राया हारोत्थयसुकयरइयवच्छे जहा उववाइए जाव सेयवरचामराहिं उद्धुव्वमाणीहिं उद्धुव्वमाणीहिं हय-गय-रहपवर-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जोहकलियाए चाउरंगिणीए सेणाए सद्धिं संपरिवुडे, महयाभडचड-गरविंदपरिक्खित्ते जेणेव महासिलाकंटए संगामे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता महासिलाकंटयं संगामं ओयाए। पुरओ य से सक्के देविंदे देवराया एगं महं अभेज्जकवयं वइरपडिरूवगं विउव्वित्ता णं चिट्ठइ। एवं खलु दो इंदा संगामे संगामेंति, तं जहा—देविंदे य, मणुइंदे य। एगहत्थिणा वि णं पभू कूणिए राया पराजिणित्तए। तएणं से कूणिए राया महासिलाकंटकं संगामं संगामेमाणे णव मल्लई णव लेच्छई कासी-कोसलगा अट्ठारस वि गणरायाणो हय-महियपवरवीरघाइय-विवडियचिंधद्धयपडागे किच्छपाणगए दिसोदिसिं पडिसेहित्था।

कठिन शब्दार्थ—हारोत्थयसुकयरइयवच्छे—जिसका हारमाला आदि से वक्षस्थल शोभित है, **महाभडचडगरविंदपरिक्खित्ते**—महान् योद्धाओं के समूह से व्याप्त, **ओयाए**—उतरा, **अभेज्जकवयं**—अभेद्यकवच, **वइरपडिरूवगं**—वज्र जैसा, **हयमहियपवरवीरघाइय-विवडियचिंधद्धयपडागे**—उनके महान् वीर योद्धाओं को मारा, घायल किये, उनकी चिन्हांकित पताका गिरादी, **किच्छपाणगए**—प्राण संकट में पड़ गए, **पडिसेहित्था**—भगा दिये।

भावार्थ—इसके पश्चात् हारों से आच्छादित वक्षस्थल वाला कोणिक, जनमन में रति उत्पन्न करता हुआ और औपपातिक सूत्र में कहे अनुसार बारबार श्वेत चामरों से बिजाता हुआ यावत् घोडे, हाथी, रथ और उत्तम योद्धाओं से युक्त चतुरंगिणी सेना से परिवृत महान् सुभटों के विस्तीर्ण समूह से व्याप्त कोणिक राजा, महाशिला-कंटक संग्राम में आया। उसके आगे देवेन्द्र, देवराज शक्र, वज्र के समान अभेद्य एक महान् कवच की विकुर्वणा करके खड़ा हुआ। इस प्रकार मानो दो इन्द्र संग्राम करने लगे। यथा—(१) देवेन्द्र और (२) मनुजेन्द्र। अब

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कोणिक राजा, एक हाथी के द्वारा भी शत्रु सेना का पराजय करने में समर्थ है। इसके बाद उस कोणिक राजा ने महाशिला-कण्टक संग्राम करते हुए नव मल्लि और नव लच्छि जो काशी और कौशल देश के अठारह गणराजा थे, उनके महा-योद्धाओं को नष्ट किया, घायल किया और मार डाला। उनकी चिन्ह युक्त ध्वजा और पताकाओं को गिरा दिया। जिनके प्राण महासंकट में पड़ गये हैं, ऐसे उन राजाओं को युद्ध में से चारों दिशाओं में भगा दिया।

५ प्रश्न—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—महासिलाकंटए संगामे ?

५ उत्तर—गोयमा ! महासिलाकंटए णं संगामे वट्टमाणे जे तत्थ आसे वा, हत्थी वा, जोहे वा, सारही वा, तणेण वा, पत्तेण वा, कट्ठेण वा, सक्कराए वा अभिहम्मइ सव्वे से जाणेइ महा-सिलाए अहं अभिहए, से तेणट्ठेणं गोयमा ! महासिलाकंटए संगामे।

६ प्रश्न—महासिलाकंटए णं भंते ! संगामे वट्टमाणे कइ जण-सयसाहस्सीओ वहियाओ ?

६ उत्तर—गोयमा ! चउरासीइं जणसयसाहस्सीओ वहियाओ।

७ प्रश्न—ते णं भंते ! मणुया णिस्सीला, जाव णिप्पच्चक्खाण-पोसहोववासा, रुट्ठा, परिकुविया, समरवहिया, अणुवसंता काल-मासे कालं किच्चा कहिं गया, कहिं उववण्णा ?

७ उत्तर—गोयमा ! ओसण्णं णरग-तिरिक्ख जोणिएसु उववण्णा।

कठिन शब्दार्थ—अभिहम्मइ—मारा जाय, अभिहत—मारा गया वहियाओ—मारे गये—

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वध हुए, समरवहिया-युद्ध में घायल हुए, ओसण्णं-विशेष करके।

भावार्थ—५ प्रश्न—हे भगवन् ! इसे महाशिलाकण्टक संग्राम क्यों कहा जाता है ?

५ उत्तर-हे गौतम ! जब महाशिला-कण्टक संग्राम हो रहा था, उस समय उस संग्राम में जो भी घोड़ा, हाथी, योद्धा और सारथि आदि तृण, काष्ठ, पत्र या कंकर आदि के द्वारा आहत होने पर वे सब ऐसा जानते थे कि हम महाशिला से मारे गये हैं अर्थात् हमारे ऊपर महाशिला पड़ गई। इस कारण हे गौतम ! उसे महाशिलाकण्टक संग्राम कहा गया है।

६ प्रश्न—हे भगवन् ! महाशिला-कण्टक संग्राम में कितने लाख मनुष्य मारे गये ?

६ उत्तर-हे गौतम ! चौरासी लाख मनुष्य मारे गये।

७ प्रश्न-हे भगवन् ! निःशील यावत् प्रत्याख्यान पौषधोपवास रहित, रोष में भरे हुए, कुपित बने हुए, युद्ध में घायल हुए और अनुपशांत ऐसे वे मनुष्य काल के समय में काल करके कहाँ गये और कहाँ उत्पन्न हुए ?

७ उत्तर-हे गौतम ! वे प्रायः नरक और तिर्यञ्च योनि में उत्पन्न हुए।

विवेचन-महाशिलाकण्टक संग्राम का पूर्व सम्बन्ध इस प्रकार है। श्रेणिक राजा की मृत्यु के पश्चात् कोणिक राजा ने राजगृह नगर को छोड़कर चम्पा नगरी को अपनी राजधानी बनाया और स्वयं भी वहाँ रहने लगा। कोणिक राजा के छोटे भाई का नाम विहल्लकुमार + था। श्रेणिक राजा ने अपने जीवन-काल में ही उसे एक सेचानक गन्ध हस्ती और अठारहसरा वङ्कचूड़ हार दे दिया था। विहल्लकुमार अन्तःपुर सहित हाथी पर सवार होकर गंगा नदी के किनारे जाता और वहां अनेक प्रकार की क्रीड़ाएँ करता। हाथी उसकी रानियों को अपनी सूंड में उठाता, पीठ पर बिठाता और अनेक प्रकार की क्रीडाओं द्वारा उनका मनोरञ्जन करता हुआ उन्हें गंगा नदी में स्नान कराता। इस प्रकार

+ टीकाकार ने लिखा है कि कोणिक राजा के हल्ल और विहल्ल नाम के दो छोटे भाई थे, किन्तु अनुत्तरौपपातिक सूत्र में विहल्ल और वैहायस ये दो भाइयों के नाम आये हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उसकी क्रीड़ाओं को देखकर लोग कहने लगे कि "वास्तव में राज्यश्री का उपभोग तो विहल्लकुमार करता है।" जब यह बात कोणिक की रानी पद्मावती ने सुनी, तो उसके हृदय में ईर्षा उत्पन्न हुई। वह सोचने लगी— यदि हमारे पास सेचानक गन्ध हस्ती नहीं है, तो यह राज्य हमारे किस काम का ? इसलिये विहल्ल कुमार से सेचानक गन्ध हस्ती अपने यहां मंगा लेने के लिये मैं राजा कोणिक से प्रार्थना करूंगी। तदनुसार उसने अपनी इच्छा राजा कोणिक के सामने प्रकट की। रानी की बात सुनकर पहले तो राजा ने उसकी बात को टाल दिया, किंतु उसके बार-बार कहने पर राजा के हृदय में भी यह बात जँच गई। उसने विहल्लकुमार से हार और हाथी मांगे। विहल्लकुमार ने कहा—यदि आप हार और हाथी लेना चाहते हैं, तो मेरे हिस्से का राज्य मुझे दे दीजिये। विहल्लकुमार की न्याय संगत बात पर कोणिक ने कोई ध्यान नहीं दिया, किन्तु हार और हाथी बार-बार मांगता रहा। इस पर से विहल्लकुमार को ऐसा विचार उत्पन्न हुआ कि 'कदाचित् कोणिक यह हार, हाथी मुझ से बरबस छीन लेगा।' अतः वह हार और हाथी को लेकर अपने अन्तःपुर सहित विशाला नगरी में अपने नाना चेड़ा राजा की शरण में चला गया। तत्पश्चात् राजा कोणिक ने अपने नाना चेड़ा राजा के पास दूत द्वारा यह सन्देशा भेजा कि 'विहल्लकुमार मुझे पूछे बिना ही सेचानक हाथी और वंकचूड़ हार लेकर आपके पास चला आया है। इसलिये उसे मेरे पास वापिस शीघ्र भेज दीजिये।'

विशाला नगरी में जाकर दूत, चेड़ा राजा की सेवा में उपस्थित हुआ। उसने राजा कोणिक का सन्देश कह सुनाया। चेड़ा राजा ने दूत से कहा-"तुम कोणिक से कहना कि जिस प्रकार तुम श्रेणिक के पुत्र, चेलना के अंगजात और मेरे दोहित्र हो, उसी प्रकार विहल्लकुमार भी श्रेणिक का पुत्र, चेलना का अंगजात और मेरा दोहित्र है। श्रेणिक राजा जब जीवित थे, तब उन्होंने यह हार और हाथी, विहल्लकुमार को दे दिया था। यदि अब तुम उन्हें लेना चाहते हो, तो विहल्लकुमार को अपने राज्य का हिस्सा दे दो।"

दूत ने जाकर यह बात कोणिक राजा से कही। कोणिक राजा ने दूसरा दूत भेज कर चेटक राजा को निवेदन करवाया कि "राज्य में उत्पन्न हुई सब श्रेष्ठ वस्तुओं का स्वामी राजा होता है। हार और हाथी भी राज्य में उत्पन्न हुए हैं। इसलिये उन पर मेरा अधिकार है। वे मेरे ही भोग में आने चाहिये।" चेड़ा राजा ने दूत को पुनः वही उत्तर देकर सम्मान सहित विसर्जित किया। तब कोणिक राजा ने तीसरा दूत भेजकर कहलवाया—"या तो आप हार हाथी सहित विहल्लकुमार को मेरे पास भेज दीजिये, अन्यथा युद्ध के लिये

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तैयार हो जाइये।"

चेड़ा राजा के पास पहुंच कर दूत ने कोणिक राजा का सन्देश कह सुनाया। चेड़ा राजा ने कहा-"यदि कोणिक अनीतिपूर्वक युद्ध करने को तैयार हो गया है, तो नीति की रक्षा के लिये मैं भी युद्ध करने को तैयार हूँ।"

दूत ने जाकर कोणिक राजा को उपरोक्त बात कह सुनाई। तत्पश्चात् कोणिक ने काल, सुकाल आदि दस भाईयों को बुलाकर कहा-"तुम सब अपने-अपने राज्य में जाकर अपनी-अपनी सेना लेकर शीघ्र आओ।" कोणिक राजा की आज्ञा को सुनकर दसों भाई अपने-अपने राज्य में गये और सेना लेकर वापिस कोणिक की सेवा में उपस्थित हुए। कोणिक भी अपनी सेना को सज्जित कर तैयार हुआ। फिर वे सभी विशाल नगरी पर चढ़ाई करने के लिये रवाना हुए। उनकी सेना में तेतीस हजार हाथी, तेतीस हजार घोड़े, तेतीस हजार रथ और तेतीस करोड़ पैदल सैनिक थे।

इधर चेड़ा राजा ने अपने धर्ममित्र काशी देश के नव मल्लि वंश के राजाओं को और कोशल देश के नव लच्छि वंश के राजाओं को बुलाया और विहल्लकुमार विषयक सारी हकीकत कही। चेड़ा राजा ने कहा-"भूपतियों! कोणिक राजा मेरी न्याय संगत बात की अवहेलना करके अपनी चतुरंगिणी सेना को लेकर युद्ध करने के लिये यहाँ आ रहा है। अब आप लोगों की क्या सम्मति है? क्या विहल्लकुमार को वापिस भेज दिया जाय, या युद्ध किया जाय?" सभी राजाओं ने एक-मत होकर उत्तर दिया-"मित्र! हम क्षत्रिय हैं। शरणागत की रक्षा करना हमारा परम कर्त्तव्य है। विहल्लकुमार का पक्ष न्याय संगत है और वह हमारी शरण में आ चुका है इसलिये हम इसे कोणिक के पास नहीं भेज सकते।"

उनका कथन सुनकर चेड़ा राजा ने कहा-"जब आप लोगों का यही निश्चय है, तो आप लोग अपनी-अपनी सेना लेकर वापिस शीघ्र आइये।" तत्पश्चात् वे अपने-अपने राज्य में गये और सेना लेकर वापिस चेड़ा राजा के पास आये चेड़ा राजा भी तैयार हो गया। उन उन्नीस राजाओं की सेना में सत्तावन हजार हाथी, सत्तावन हजार घोड़े, सत्तावन हजार रथ और सत्तावन करोड़ पदाति थे।

दोनों ओर की सेनाएँ युद्ध में आ डटीं। घोर संग्राम होने लगा। चेड़ा राजा का ऐसा नियम था कि वे एक दिन में एक बार बाण छोड़ते थे। उनका बाण अमोघ था, वह कभी निष्फल नहीं जाता था। पहले दिन कोणिक का भाई कालकुमार सेनापति

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बनकर युद्ध में गया। वह चेड़ाराजा के एक ही बाण से मारा गया। उसकी सभी सेना भाग गई। इस प्रकार दस दिन में चेड़ा ने कालकुमार आदि दसों भाईयों को मार डाला। ग्यारहवें दिन कोणिक की बारी थी। कोणिक ने विचार किया—"मैं भी चेड़ा राजा के आगे टिक नहीं सकूंगा। मुझे भी वे एक ही बाण में मार डालेंगे"—ऐसा सोच कर उसने तीन दिन युद्ध स्थगित रखा और देव आराधना के लिये उसने अष्टम तप करके अपने पूर्वभव के मित्र देवों का स्मरण किया। जिससे शक्रेन्द्र और चमरेन्द्र उसकी सहायता करने के लिये आये। शक्रेन्द्र ने कोणिक से कहा—'चेड़ा राजा परम श्रावक हैं, इसलिये मैं उसे नहीं मारूंगा, किन्तु तेरी रक्षा करूंगा।' फिर शक्रेन्द्र ने कोणिक की रक्षा करने के लिये वज्र सरीखे अभेद्य कवच की विकुर्वणा की और चमरेन्द्र ने महाशिलाकण्टक संग्राम और रथमूसल संग्राम, इन दो संग्रामों की विकुर्वणा की, जिसमें महाशिलाकण्टक संग्राम का वर्णन मूल पाठ में दिया गया है। उस संग्राम में चौरासी लाख मनुष्य मारे गये थे। रथमूसल संग्राम का वर्णन आगे दिया जा रहा है।

नोट—यह कथा नन्दीसूत्र, उत्तराध्ययनसूत्र आदि की टीका के आधार से दी गई है। इस कथा में और निरयावलिकासूत्र वर्णित कथा में कुछ अन्तर हैं, सो जिज्ञासुओं को वहाँ देखना चाहिए।

रथमूसल संग्राम

८ प्रश्न—णायमेयं अरहया, सुयमेयं अरहया, विण्णायमेयं अरहया—रहमुसले संगामे। रहमुसले णं भंते ! संगामे वट्टमाणे के जइत्था, के पराजइत्था ?

८ उत्तर—गोयमा ! वज्जी, विदेहपुत्ते, चमरे असुरिंदे असुरकुमारराया जइत्था; णवमल्लई, णव लेच्छई पराजइत्था। तए णं से कूणिए राया रहमुसलं संगामं उवट्ठियं, सेसं जहा महासिलाकंटए,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णवरं भूयाणंदे हत्थिराया जाव रहमुसलं संगामं ओयाए। पुरओ य से सक्के, देविंदे देवराया, एवं तहेव जाव चिट्ठइ, मग्गओ य से चमरे असुरिंदे असुरकुमारराया एगं महं आयसं किढिणपडिरूवगं विउव्वित्ता णं चिट्ठइ। एवं खलु तओ इंदा संगामं संगामेंति, तं जहा—देविंदे य, मणुइंदे य, असुरिंदे य। एग हत्थिणा वि णं पभू कूणिए राया जइत्तए, तहेव जाव दिसोदिसिं पडिसेहित्था।

कठिन शब्दार्थ—मग्गओ—पीछे, **आयसं**—लोह का बना हुआ, **किढिणपडिरूवगं**—किढिन नामक बांस से बने हुए तापसपात्र के समान, **पडिसेहित्था**—भगा दिए।

भावार्थ—८ प्रश्न—हे भगवन्! अरिहन्त भगवान् ने जाना है, प्रत्यक्ष किया है और विशेष रूप से जाना है कि रथमूसल नामक संग्राम है। हे भगवन्! जब रथमूसल संग्राम हो रहा था, तब कौन जीता था और कौन हारा था?

८ उत्तर—हे गौतम! वज्री (इन्द्र), विदेह पुत्र (कोणिक) और असुरेन्द्र, असुरकुमार-राज चमर जीता था और नवमल्लि तथा नवलच्छि राजा हारे थे। रथमूसल संग्राम को उपस्थित हुआ जानकर कोणिक राजा ने अपने कौटुम्बिक (सेवक) पुरुषों को बुलाया। यावत् महाशिलाकण्टक संग्राम में कहा हुआ सारा वर्णन यहाँ कहना चाहिये। इसमें इतनी विशेषता है कि यहाँ भूतानन्द नामक पट्टहस्ती है यावत् वह कोणिक रथमूसल संग्राम में उतरा। उसके आगे देवेन्द्र देवराज शक्र है यावत् पूर्ववत् सारा वर्णन कहना चाहिये। पीछे असुरेन्द्र असुरकुमारराज चमर ने, लोह के बने हुए किढिन (बांस का बना हुआ एक तापस पात्र) के समान कवच की विकुर्वणा की। इस प्रकार तीन इन्द्र युद्ध करने लगे। यथा—देवेन्द्र, मनुजेन्द्र और असुरेन्द्र। अब कोणिक एक हाथी के द्वारा भी शत्रुओं को पराजय करने में समर्थ है, यावत् उसने पूर्व कथित वर्णन के अनुसार शत्रुओं को चारों दिशाओं में भगा दिया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

९ प्रश्न—से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ रहमुसले संगामे ?

९ उत्तर—गोयमा ! रहमुसले णं संगामे वट्टमाणे एगे रहे अणासए, असारहिए, अणारोहए, समुसले, महया जणक्खयं, जणवहं, जणप्पमद्दं, जणसंवट्टकप्पं रुहिरकद्दमं करेमाणे सव्वओ समंता परिधावित्था, से तेणट्ठेणं जाव रहमुसले संगामे ।

१० प्रश्न—रहमुसले णं भंते ! संगामे वट्टमाणे कइ जणसयसाहस्सीओ वहियाओ ?

१० उत्तर—गोयमा ! छण्णउइं जणसयसाहस्सीओ वहियाओ ?

११ प्रश्न—ते णं भंते ! मणुया णिस्सीला जाव उववण्णा ?

११ उत्तर—गोयमा ! तत्थ णं दससाहस्सीओ एगाए मच्छीए कुच्छिसि उववण्णाओ, एगे देवलोगेसु उववण्णे, एगे सुकुले पच्चायाए; अवसेसा ओसण्णं णरगतिरिक्खजोणिएसु उववण्णा ।

कठिन शब्दार्थ—अणासए—अश्व रहित—बिना घोड़े का, असारहीए—सारथी रहित, अणारोहए—योद्धाओं से रहित, समूसले—मूसलसहित, जणप्पमद्दं—जन-समूह का मर्दन करने वाला, जणसंवट्टकप्पं—जन-प्रलयकारी, रुहिरकद्दमं करेमाणे—रक्त का कीचड़ करते हुए, परिधावित्था—दौड़ता है, कुच्छिसि—कुक्षा में, सुकुले पच्चायाए—अच्छे कुल में उत्पन्न हुआ ।

भावार्थ—९ प्रश्न—हे भगवन् ! इसे रथमूसल संग्राम क्यों कहते हैं ?

९ उत्तर—हे गौतम ! जिस समय रथमूसल संग्राम हो रहा था, उस समय अश्व रहित, सारथी रहित, योद्धा रहित और मूसल सहित रथ, अत्यन्त जन संहार, जन वध, जन मर्दन और जन प्रलय करता हुआ तथा रक्त का कीचड़ करता हुआ चारों ओर दौड़ता था । अतः उस संग्राम को रथमूसल

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संग्राम कहा गया है।

१० प्रश्न-हे भगवन् ! रथमूसल संग्राम में कितने लाख मनुष्य मारे गये ?

१० उत्तर-हे गौतम ! छयानवे लाख मनुष्य मारे गये।

११ प्रश्न-हे भगवन् ! निःशील (शील रहित) यावत् वे मनुष्य मरकर कहाँ गये, कहाँ उत्पन्न हुए ?

११ उत्तर-हे गौतम ! उनमें से दस हजार मनुष्य तो एक मछली के उदर में उत्पन्न हुए। एक मनुष्य देवलोक में उत्पन्न हुआ, एक मनुष्य उत्तम कुल (मनुष्य गति) में उत्पन्न हुआ और शेष प्रायः नरक और तिर्यञ्च योनि में उत्पन्न हुए।

१२ प्रश्न-कम्हा णं भंते ! सक्के देविंदे देवराया, चमरे य असुरिंदे असुरकुमारराया कूणियरण्णो साहेज्जं दलयित्था ?

१२ उत्तर-गोयमा ! सक्के देविंदे देवराया पुव्वसंगइए, चमरे असुरिंदे असुरकुमारराया परियायसंगइए; एवं खलु गोयमा ! सक्के देविंदे देवराया, चमरे य असुरिंदे असुरकुमारराया कूणियस्स रण्णो साहेज्जं दलयित्था।

कठिन शब्दार्थ-साहेज्जं-सहायता, परियायसंगइए-पर्याय-तापस दीक्षा के साथी।

भावार्थ-१२ प्रश्न-हे भगवन् ! देवेन्द्र, देवराज शक्र और असुरेन्द्र, असुरकुमारराज चमर, इन दोनों इन्द्रों ने कोणिक राजा को किस कारण से सहायता दी ?

१२ उत्तर-हे गौतम ! देवेन्द्र, देवराज शक्र तो कोणिक राजा का पूर्व संगतिक (पूर्वभव सम्बन्धी अर्थात् कार्तिक सेठ के भव में) मित्र था और असु-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रेन्द्र असुरकुमारराज चमर, कोणिक राजा का पर्याय-संगतिक (पूरण नामक तापस की अवस्था का साथी) मित्र था। इसलिये हे गौतम ! देवेन्द्र देवराज शक्र ने और असुरेन्द्र असुरकुमारराज चमर ने कोणिक को सहायता दी।

१३ प्रश्न—बहुजणे णं भंते ! अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ, जाव परूवेइ—एवं खलु बहवे मणुस्सा अण्णयरेसु उच्चावएसु संगामेसु अभिमुहा चेव पहया समाणा कालमासे कालं किच्चा अण्णयरेसु देवलोएसु देवत्ताए उववत्तारो भवंति, से कहमेयं भंते ! एवं ?

१३ उत्तर—गोयमा ! जण्णं से बहुजणो अण्णमण्णस्स एवं आइक्खइ—जाव उववत्तारो भवंति; जे ते एवमाहंसु मिच्छं ते एवमाहंसु। अहं पुण गोयमा ! एवं आइक्खामि, जाव परूवेमि—एवं खलु गोयमा ! तेणं कालेणं तेणं समएणं वेसाली णामं णयरी होत्था, वण्णओ। तत्थ णं वेसालीए णयरीए वरुणे णामं णागणत्तुए परिवसइ, अड्ढे जाव अपरिभूए, समणोवासए, अभिगयजीवाजीवे, जाव पडिलाभेमाणे छट्ठं छट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

कठिन शब्दार्थ—पहया-मारे गए।

भावार्थ—१३ प्रश्न—हे भगवन् ! बहुत से मनुष्य इस प्रकार कहते हैं यावत् प्ररूपणा करते हैं कि अनेक प्रकार के छोटे बड़े संग्रामों में से किसी भी संग्राम में सम्मुख रहकर युद्ध करते हुए उसमें मारे जायँ, तो वे सब काल के समय काल करके देवलोकों में से किसी देवलोक में उत्पन्न होते हैं। हे भगवन् !

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ऐसा किस प्रकार हो सकता है ?

१३ उत्तर-हे गौतम ! बहुत से मनुष्य जो इस प्रकार कहते हैं यावत् प्ररूपणा करते हैं कि संग्राम में मारे हुए मनुष्य, देवलोकों में उत्पन्न होते हैं, वे मिथ्या कहते हैं। हे गौतम ! मैं इस प्रकार कहता हूँ यावत् प्ररूपणा करता हूँ,- उस काल उस समय में वैशाली नाम की नगरी थी। उसमें वरुण-नागनत्तुआ (नाग नामक पुरुष का 'वरुण' नामक पौत्र या दोहित्र) रहता था। वह धनाढ्य यावत् किसी से पराभूत न हो सके-ऐसा समर्थ था। वह श्रमणोपासक था और जीवाजीवादि तत्त्वों का ज्ञाता था, यावत् वह आहारादि द्वारा श्रमण निर्ग्रन्थों को प्रतिलाभित करता हुआ एवं निरन्तर छठ-छठ की तपस्या द्वारा अपनी आत्मा को भावित करता हुआ विचरता था।

तएणं से वरुणे णागणत्तुए अण्णया कयाइं रायाभिओगेणं, गणाभिओगेणं, बलाभिओगेणं रहमुसले संगामे आणत्ते समाणे छठभत्तिए अट्ठमभत्तं अणुवट्टेइ, अणुवट्टित्ता कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी-खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! चाउग्घंटं आसरहं जुत्तामेव उवट्ठावेह, हय-गय-रह० जाव सण्णाहेत्ता मम एयं आणत्तियं पच्चप्पिणह। तए णं ते कोडुंबियपुरिसा जाव पडिसुणेत्ता खिप्पामेव सच्छत्तं सज्झयं जाव उवट्ठावेंति, हय-गय-रह० जाव सण्णाहेंति, सण्णाहित्ता जेणेव वरुणे णागणत्तुए, जाव पच्चप्पिणंति। तएणं से वरुणे णागणत्तुए जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ, जहा कूणिओ, जाव-पायच्छित्ते, सव्वालंकारविभूसिए,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मण्णद्ध-बद्धे सकोरंटमल्लदामेणं जाव धरिज्जमाणेणं; अणेगगण-णायग० जाव दूय-संधिवालसद्धिं संपरिवुडे मज्जणघराओ पडिणिक्ख-मइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला, जेणेव चाउग्घंटे आसरहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता चाउग्घंटं आस-रहं दुरुहइ, दुरुहित्ता हय-गय-रह जाव संपरिवुडे, महयाभडचडगर० जाव परिक्खित्ते जेणेव रहमुसले संगामे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता रहमुसलं संगामं ओयाओ।

कठिन शब्दार्थ-रायाभिओगेणं-राजा के अभियोग-आदेश से, आणत्तेसमाणे-आज्ञा होने पर, अणुवट्टेइ-बढ़ाता है, दूय-संधिवालसद्धि-दूत और संधीपाल के साथ, चाउग्घंटं-चार घण्टाओं से युक्त, ओयाओ-उतरा।

भावार्थ-एक बार राजा के आदेश से, गण के अभियोग से और बल के अभियोग से, रथमूसल संग्राम में जाने की आज्ञा हुई। तब उसने बेले की तपस्या को बढ़ाकर तेले की तपस्या करली। उसने अपने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और इस प्रकार कहा-'हे देवानुप्रियों! चार घण्टा वाला अश्वरथ, सामग्री सहित तैयार कर उपस्थित करो। घोड़ा, हाथी, रथ और प्रवर-योद्धाओं से युक्त चतु-रंगिणी सेना को सज्जित करो, यावत् सज्जित करके यह मेरी आज्ञा मुझे सम-पित करो। कौटुम्बिक पुरुषों ने यावत् उसकी आज्ञा को स्वीकार कर छत्र सहित, ध्वजा सहित यावत् रथ को शीघ्र उपस्थित किया और घोड़ा, हाथी, रथ एवं प्रवर-योद्धाओं से युक्त चतुरंगिणी सेना को सज्जित किया और वरुण-नागनत्तुआ को उसकी आज्ञा वापिस सौंपी। वरुण-नागनत्तुआ स्नानघर में गया और कोणिक की तरह यावत् कौतुक और मंगल रूप प्रायश्चित्त करके सर्वालङ्कारों से विभू-षित हुआ, कवच पहना, कोरण्टपुष्प की माला युक्त छत्र धारण किया। फिर अनेक गणनायक यावत् दूत और सन्धिपालों के साथ परिवृत हो स्नान-घर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

से बाहर निकला। निकल कर बाहर की उपस्थानशाला में आया और चार घण्टा वाले अश्वरथ पर सवार हुआ। घोडे, हाथी, रथ और प्रवर-योद्धाओं से युक्त चतुरंगिणी सेना के साथ यावत् महान् सुभटों के समूह से परिवृत वह वरुण-नागनत्तुआ रथमूसल संग्राम में आया।

तएणं से वरुणे णागणत्तुए रहमुसलं संगामं ओयाए समाणे अयमेयारूवं अभिग्गहं अभिगेण्हइ-कप्पइ मे रहमुसलं संगामं संगामेमाणस्स जे पुव्विं पहणइ से पडिहणित्तए, अवसेसे णो कप्पइत्ति; अयमेयारूवं अभिग्गहं अभिगेण्हइ, अभिगेण्हेत्ता रहमुसलं संगामं संगामेति। तएणं तस्स वरुणस्स णागणत्तुयस्स रहमुसलं संगामं संगामेमाणस्स एगे पुरिसे सरिसए, सरिसत्तए, सरिसव्वए, सरिस-भंडमत्तोवगरणे रहेणं पडिरहं हव्वं आगए। तएणं से पुरिसे वरुणं णागणत्तुयं एवं वयासी-"पहण भो वरुणा! णागणत्तुया! पहण०!" तए णं से वरुणे णागणत्तुए तं पुरिसं एवं वयासी-"णो खलु मे कप्पइ देवाणुप्पिया! पुव्विं अहयस्स पहणित्तए, तुमं चेव णं पुव्विं पहणाहि।" तएणं से पुरिसे वरुणेणं णागणत्तुएणं एवं वुत्ते समाणे आसुरुत्ते जाव मिसिमिसिमाणे धणुं परामुसइ धणुं परामुसित्ता उसुं परामुसइ, उसुं परामुसित्ता ठाणं ठाइ, ठाणं ठिच्चा आययकण्णाययं उसुं करेइ, आययकण्णाययं उसुं करित्ता वरुणं णागणत्तुयं गाढप्पहारी करेइ। तएणं से वरुणे णागणत्तुए तेणं पुरिसेणं गाढप्पहारीकए समाणे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आसुरुत्ते जाव मिसिमिसेमाणे धणुं परामुसइ, धणुं परामुसित्ता, उसुं परामुसइ, उसुं परामुसित्ता आययकण्णाययं उसुं करेइ, आयय-कण्णाययं उसुं करेत्ता तं पुरिसं एगाहच्चं कूडाहच्चं जीवियाओ ववरोवेइ ।

कठिन शब्दार्थ--अभिग्गहं--अभिग्रह (प्रतिज्ञा), पहण--मार--प्रहार कर, पडिहत्तए--प्रतिहत करना, पडिरहं--प्रतिरथ--रथ के सामने, मिसिमिसेमाणे--क्रोधाग्नि से दीप्त, उसुं--बाण को, आययकण्णाययं--कान तक खींचकर, गाढप्पहारी करेइ--जोरदार प्रहार करता है, एगाहच्चं-एकदम, कूडाहच्चं-विलम्ब रहित ।

भावार्थ-युद्ध में प्रवृत्त होने के पूर्व उसने यह नियम लिया कि 'रथमूसल संग्राम में युद्ध करते हुए मुझ पर जो पहले वार करेगा, उसी को मारना मुझे योग्य है, दूसरे को नहीं ।' इस प्रकार का अभिग्रह करके वह संग्राम करने लगा। संग्राम करते हुए वरुण-नागनत्तुआ के रथ के सामने, उसी के समानवय वाला, उसी के समान त्वचा वाला और उसी के समान अस्त्रशस्त्रादि उपकरणों वाला एक पुरुष, रथ में बैठकर आया और उसने वरुण-नागनत्तुआ से कहा कि-"हे वरुण-नागनत्तुआ ! तूं मुझ पर प्रहार कर तूं मुझ पर प्रहार कर।" तब वरुण-नाग-नत्तुआ ने उस पुरुष से इस प्रकार कहा-"हे देवानुप्रिय ! जबतक मुझ पर पहले कोई प्रहार नहीं करेगा, तबतक उस पर प्रहार करना मुझे योग्य नहीं है । इसलिये पहले पहले तू ही मुझ पर प्रहार कर ।" जब वरुण-नागनत्तुआ ने उस पुरुष से ऐसा कहा, तब कुपित एवं क्रोधाग्नि से धमधमाते हुए उस पुरुष ने धनुष उठाया, उस पर बाण चढ़ाया, अमुक आसन से अमुक स्थान पर रह कर धनुष को कान तक लम्बा खींचा और वरुणनागनत्तुआ पर तत्काल प्रबल प्रहार किया । उस प्रहार से घायल बने हुए वरुणनागनत्तुआ ने कुपित होकर धनुष उठाया, उस पर बाण चढ़ाया और उस बाण को कान पर्यन्त खींचकर उस पुरुष पर फेंका। इस प्रहार से जिस प्रकार पत्थर के टुकड़े टुकड़े हो जाते हैं, उसी प्रकार वह पुरुष जीवन से रहित हो गया ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तए णं से वरुणे णागणत्तुए तेणं पुरिसेणं गाढप्पहारीकए समाणे अत्थामे, अबले, अवीरिए, अपुरिसक्कारपरक्कमे अधारणिज्जमिति कट्टु तुरए णिगिण्हइ, तुरए णिगिण्हित्ता रहं परावत्तेइ, रहं परावत्तित्ता रहमुसलाओ संगामाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता, एगंतमंतं अवक्कमइ, एगंतमंतं अवक्कमित्ता तुरए णिगिण्हइ तुरए णिगिण्हित्ता रहं ठवेइ, रहं ठवेत्ता, रहाओ पच्चोरुहइ, रहाओ पच्चोरुहित्ता तुरए मोएइ, तुरए मोएत्ता तुरए विसज्जेइ, तुरए विसज्जित्ता दब्भसंथारगं संथरइ, दब्भसंथारगं संथरित्ता दब्भसंथारगं दुरुहइ, दब्भसंथारगं दुरुहित्ता, पुरत्थाभिमुहे संपलियंकणिसण्णे करयल-जाव कट्टु एवं वयासी—"णमोत्थुणं अरिहंताणं भगवंताणं, जाव संपत्ताणं, णमोत्थुणं समणस्स भगवओ महावीरस्स, आइगरस्स, जाव संपाविउकामस्स, मम धम्मायरियस्स, धम्मोवदेसगस्स; वंदामि णं भगवंतं तत्थगयं इहगए, पासउ मे से भगवं तत्थगए, जाव वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता, एवं वयासी—पुव्विं पि मए समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए थूलए पाणाइवाए पच्चक्खाए जावज्जीवाए, एवं जाव थूलए परिग्गहे पच्चक्खाए जावज्जीवाए; इयाणिं पि णं अहं तस्सेव भगवओ महावीरस्स अंतिए सव्वं पाणाइवायं पच्चक्खामि जावज्जीवाए, एवं जहा खंदओ, जाव एयं पि णं चरिमेहिं ऊसास-णीसासेहिं वोसिरिस्सामि" त्ति कट्टु सण्णाहपट्टं मुयइ, मुइत्ता

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सल्लुद्धरणं करेइ, सल्लुद्धरणं करेत्ता आलोइयपडिक्कंते, समाहिपत्ते, आणुपुव्वीए कालगए।

कठिन शब्दार्थ—अत्थामे—सामान्य रूप से शक्ति रहित, अबले—शारीरिक बल रहित, अवीरिए—मानसिक शक्ति रहित, अधारणिज्जं—अपने शरीर को धारण करने में असमर्थ, तुरए णिगिण्हइ—घोड़े को रोका, पच्चोरुहइ—उतरता है, तुरए मोएइ—घोड़े को छोड़ता है, दब्भसंथारगं संथरइ—घास का बिछौना बिछाता है, दुरुहइत्ता—बैठकर, पुरत्थाभिमुहे—पूर्व की ओर मुंह करके, सपलियंकणिसण्णे—पर्यंक आसन से बैठकर, करयल—हाथ की हथेलियां, पासउ—देखें, सण्णाहपट्टंमुयइ—कवच छोड़ता-खोलता है, सल्लुद्धरणं करेइ—बाण को निकालता है, आलोइयपडिक्कंते—आलोचना प्रतिक्रमण करता है।

भावार्थ—इसके बाद उस पुरुष के प्रबल प्रहार से घायल हुआ वरुणनागनत्तुआ शक्ति रहित, निर्बल, वीर्यरहित और पुरुषकार पराक्रम से रहित बना और 'अब मेरा शरीर टिक नहीं सकेगा'—ऐसा समझ कर रथ को वापिस फेरा और संग्राम स्थल से बाहर निकला। एकान्त स्थान में आकर रथ को खड़ा किया। रथ से नीचे उतर कर उसने घोड़ों को छोड़ कर विसर्जित कर दिया। फिर दर्भ (डाभ) का संथारा बिछाया और पूर्व दिशा की ओर मुंह करके पर्यंकासन से दर्भ के संथारे पर बैठा और दोनों हाथ जोड़कर यावत् इस प्रकार कहा—'अरिहन्त भगवन्त यावत् जो सिद्धगति को प्राप्त हुए हैं, उन्हें नमस्कार हो। मेरे धर्म-गुरु धर्माचार्य श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को नमस्कार हो, जो धर्म की आदि करने वाले हैं यावत् सिद्धगति को प्राप्त करने की इच्छा वाले हैं। वहाँ दूर स्थान पर रहे हुए भगवान् को यहाँ रहा हुआ मैं वन्दना करता हूँ। वहाँ रहे हुए भगवान् मुझे देखें," इत्यादि कहकर उसने वन्दन नमस्कार किया। वन्दन नमस्कार करके इस प्रकार कहा कि "पहले मैंने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पास जीवन पर्यन्त स्थूल प्राणातिपात का प्रत्याख्यान किया था, यावत् स्थूल परिग्रह का जीवन पर्यन्त प्रत्याख्यान किया था, अब अरिहन्त भगवान् महावीर स्वामी के पास (साक्षी से) सर्व प्राणातिपात का प्रत्याख्यान जीवन पर्यन्त करता हूँ।" इस प्रकार

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्कन्दक* की तरह 'इस शरीर का भी अन्तिम श्वासोच्छ्वास के साथ त्याग करता हूँ', ऐसा कह कर उसने सन्नाहपट (कवच) खोल दिया। सन्नाहपट को खोलकर बाण को बाहर खींचा। बाण को शरीर से बाहर निकाल कर आलोचना की, प्रतिक्रमण किया और समाधि युक्त काल धर्म को प्राप्त हो गया।

तएणं तस्स वरुणस्स णागणत्तुयस्स एगे पियबालवयंसए रहमुसलं संगामं संगामेमाणे एगेणं पुरिसेणं गाढप्पहारीकए समाणे अत्थामे अबले जाव अधारणिज्जमिति कट्टु वरुणं णागणत्तुयं रहमुसलाओ संगामाओ पडिणिक्खममाणं पासइ, पासित्ता, तुरए णिगिण्हइ, तुरए णिगिण्हित्ता जहा वरुणे जाव तुरए विसज्जेइ, पडसंथारगं दुरुहइ, पडसंथारगं दुरुहित्ता पुरत्थाभिमुहे जाव अंजलिं कट्टु एवं वयासी–जाइं णं भंते! मम पियबालवयंसस्स वरुणस्स णागणत्तुयस्स सीलाइं, वयाइं, गुणाइं, वेरमणाइं, पच्चक्खाण-पोसहोववासाइं, ताइं णं ममं पि भवंतु त्ति कट्टु सण्णाहपट्टं मुयइ, मुइत्ता सल्लुद्धरणं करेइ, सल्लुद्धरणं करेत्ता आणुपुव्वीए कालगए। तएणं तं वरुणं णागणत्तुयं कालगयं जाणित्ता अहासण्णिहिएहिं वाणमंतरेहिं देवेहिं दिव्वे सुरभिगंधो-दगवासे वुट्ठे, दसद्धवण्णे कुसुमे णिवाडए, दिव्वे य गीयगंधव्वणिणाए कए यावि होत्था। तएणं तस्स वरुणस्स णागणत्तुयस्स तं दिव्वं देविड्ढिं, दिव्वं देवज्जुइं, दिव्वं देवाणुभागं सुणित्ता

* इनका वर्णन भगवती सूत्र शतक २ उद्देशक १ पृ. ४८५ में है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

य पासित्ता य बहुजणो अण्णमण्णस्स एवं आइक्खइ, जाव परूवेइ एवं खलु देवाणुप्पिया ! बहवे मणुस्सा जाव उववत्तारो भवंति ।

कठिन शब्दार्थ—पियबालवयंसए—प्रिय बाल मित्र, **पडिणिक्खममाणं**—निकलते हुए, **अहासण्णिहिएहिं**--निकट रहने वाले, **दसद्धवण्णे**--पांच वर्ण के, **णिवाइए**–डाले, **गीयगंधव्व णिणाए**--गीत गन्धर्व नाद किया ।

भावार्थ—उस वरुणनागनत्तुआ का एक प्रिय बाल-मित्र भी रथमूसल संग्राम में युद्ध करता था । वह भी एक पुरुष द्वारा घायल हुआ और शक्ति रहित, बल रहित, वीर्य रहित बने हुए उसने सोचा–'अब मेरा शरीर टिक नहीं सकेगा,' उसने वरुणनागनत्तुआ को युद्ध-स्थल से बाहर निकलते हुए देखा । वह भी अपने रथ को वापिस फिराकर रथ-मूसल संग्राम से बाहर निकला और जहाँ वरुण-नागनत्तुआ था, वहां आकर घोडों को रथ से खोल कर विर्सजित कर दिया । फिर वस्त्र का संथारा बिछाकर उस पर पूर्व दिशा की ओर मुंह करके बैठा और दोनों हाथ जोड़कर इस प्रकार बोला–'हे भगवन् ! मेरे प्रिय बाल-मित्र वरुण-नागनत्तुआ के जो शीलव्रत, गुणव्रत, विरमण व्रत, प्रत्याख्यान और पौषधोपवास हैं, वे सब मुझे भी होवें'---ऐसा कहकर उसने कवच खोला । शरीर में लगे हुए बाण को बाहर निकाला और अनुक्रम से वह भी काल-धर्म को प्राप्त हो गया ।

वरुण-नागनत्तुआ को काल-धर्म प्राप्त हुआ जानकर निकट रहे हुए वाणव्यन्तर देवों ने उस पर सुगन्धित जल की वृष्टि की, पाँच वर्ण के फूल बरसाये और गीत एवं गन्धर्व-नाद किया । उस वरुण-नागनत्तुआ की दिव्य देव-ऋद्धि, दिव्य देव-द्युति और दिव्य देव प्रभाव को सुनकर और देखकर बहुत से मनुष्य परस्पर इस प्रकार कहने लगे यावत् प्ररूपणा करने लगे कि 'हे देवानुप्रियों ! जो संग्राम करते हुए मरते हैं, वे देवलोक में उत्पन्न होते हैं ।'

१४ प्रश्न—वरुणे णं भंते ! णागणत्तुए कालमासे कालं किच्चा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कहिं गए, कहिं उववण्णे ?

१४ उत्तर-गोयमा ! सोहम्मे कप्पे, अरुणाभे विमाणे देवत्ताए उववण्णे, तत्थ णं अत्थेगइयाणं देवाणं चत्तारि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता, तत्थ णं वरुणस्स वि देवस्स चत्तारि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता । से णं भंते ! वरुणे देवे ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं, भवक्खएणं, ठिइक्खएणं जाव महाविदेहे वासे सिज्झिहिति, जाव अंतं करेहिति ।

१५ प्रश्न-वरुणस्स णं भंते ! णागणत्तुयस्स पियबालवयंसए कालमासे कालं किच्चा कहिं गए, कहिं उववण्णे ?

१५ उत्तर-गोयमा ! सुकुले पच्चायाए ।

१६ प्रश्न-से णं भंते ! तओहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता कहिं गच्छिहिति, कहिं उववज्जिहिति ?

१६ उत्तर-गोयमा ! महाविदेहे वासे सिज्झिहिति, जाव अंतं काहिति ।

❀ सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति ❀

॥ सत्तमसयस्स णवमओ उद्देसओ सम्मत्तो ॥

१४ प्रश्न—हे भगवन् ! वरुण-नागनत्तुआ काल के समय में काल करके कहाँ गया, कहाँ उत्पन्न हुआ ?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१४ उत्तर–हे गौतम ! सौधर्म देवलोक के अरुणाभ नामक विमान में देवपने उत्पन्न हुआ है। वहाँ के कितने ही देवों की स्थिति चार पल्योपम की कही गई है, तदनुसार वरुण देव की स्थिति भी चार पल्योपम की है।

प्रश्न—हे भगवन् ! वह वरुणदेव, देवलोक की आयु, भव और स्थिति का क्षय होने पर कहाँ जाएगा, कहाँ उत्पन्न होगा ?

उत्तर–हे गौतम ! वह महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर सिद्ध होगा यावत् सभी दुःखों का अन्त करेगा।

१५ प्रश्न–हे भगवन् ! वरुण-नागनत्तुआ का प्रिय बालमित्र, काल के समय काल करके कहाँ गया, कहाँ उत्पन्न हुआ ?

१५ उत्तर—हे गौतम ! वह सुकुल में (अच्छे मनुष्य कुल में) उत्पन्न हुआ है।

१६ प्रश्न–हे भगवन् ! वहाँ से काल करके वरुण-नागनत्तुआ का प्रिय बालमित्र कहाँ जायेगा, कहाँ उत्पन्न होगा ?

१६ उत्तर–हे गौतम ! वह महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर सिद्ध होगा यावत् सर्व दुःखों का अन्त करेगा।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है। ऐसा कह कर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं।

विवेचन–महाशिलाकण्टक संग्राम और रथमूसल संग्राम इन दोनों संग्रामों में एक करोड़ अस्सी लाख मनुष्य मारे गये। उनमें से एक वरुण-नागनत्तुआ देवलोक में गया और उसका प्रिय बाल-मित्र मनुष्य गति में गया।

॥ इति सातवें शतक का नववाँ उद्देशक सम्पूर्ण ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शतक ७ उद्देशक १०

कालोदायी की तत्त्वचर्चा और प्रव्रज्या

१-तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे णामं णगरे होत्था, वण्णओ। गुणसिलए चेइए, वण्णओ। जाव पुढविसिलापट्टओ। तस्स णं गुणसिलयस्स चेइयस्स अदूरसामंते बहवे अण्णउत्थिया परिवसंति, तं जहा—कालोदाई, सेलोदाई, सेवालोदाई, उदए, णामुदए, णम्मुदए, अण्णवालए, सेलवालए, संखवालए, सुहत्थी गाहावई। तए णं तेसिं अण्णउत्थियाणं अण्णया कयाइं एगयओ समुवागयाणं, सण्णिविट्ठाणं, सण्णिसण्णाणं अयमेयारूवे मिहोकहासमुल्लावे समुप्पज्जित्था—एवं खलु समणे णायपुत्ते पंच अत्थिकाए पण्णवेइ, तं जहा—धम्मत्थिकायं, जाव पोग्गलत्थिकायं। तत्थ णं समणे णायपुत्ते चत्तारि अत्थिकाए अजीवकाए पण्णवेइ, तं जहा—धम्मत्थिकायं, अधम्मत्थिकायं, आगासत्थिकायं, पोग्गलत्थिकायं; एगं च णं समणे णायपुत्ते जीवत्थिकायं अरूविकायं जीवकायं पण्णवेइ। तत्थ णं समणे णायपुत्ते चत्तारि अत्थिकाए अरूविकाए पण्णवेइ तं जहा—धम्मत्थिकायं अधम्मत्थिकायं, आगासत्थिकायं, जीवत्थिकायं; एगं च णं समणे णायपुत्ते पोग्गलत्थिकायं रूविकायं, अजीवकायं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पण्णवेइ। से कहमेयं मण्णे एवं ?

कठिन शब्दार्थ--एगयाओ समुवागयाणं--एक स्थान पर आये, सण्णिविट्ठाणं--बैठे, सण्णिसण्णाणं --सुख पूर्वक बैठे, मिहोकहासमुल्लावे--ऐसी बातचीत हुई, समणे णायपुत्ते--श्रमण ज्ञात पुत्र--भ. महावीर, अत्थिकाए--अस्तिकाय।

भावार्थ--१ उस काल उस समय में राजगृह नामक नगर था, वर्णक। गुण-शील नामक चैत्य (बगीचा) था, वर्णक। यावत् उसमें पृथ्वी-शिलापट था। उस गुण-शील चैत्य के पास थोडी दूर पर बहुत से अन्यतीर्थी रहते थे। यथा--कालोदायी, शैलोदायी, शैवालोदायी, उदय, नामोदय, नर्मोदय, अन्यपालक, शैलपालक, शंखपालक और सुहस्ती गृहपति। किसी समय वे सब एक जगह आये और सुखपूर्वक बैठे। उन अन्यतीर्थिकों में इस प्रकार का वार्तालाप हुआ--"श्रमण-ज्ञातपुत्र (महावीर) पांच अस्तिकायों की प्ररूपणा करते हैं, यथा--धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय। इन में से श्रमण-ज्ञातपुत्र चार अस्तिकाय को 'अजीवकाय' कहते हैं। यथा-धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय। एक जीवास्तिकाय को श्रमण-ज्ञातपुत्र 'अरूपी जीवकाय' बतलाते हैं। उन पांच अस्तिकायों में श्रमण-ज्ञातपुत्र, चार अस्तिकायों को 'अरूपी' बताते हैं। यथा--धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय और जीवास्तिकाय। एक पुद्गलास्तिकाय को ही श्रमण-ज्ञातपुत्र रूपीकाय और 'अजीवकाय' कहते हैं। उनकी यह बात किस प्रकार मानी जा सकती है ?"

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे जाव गुण-सिलए चेइए समोसढे। जाव परिसा पडिगया।

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जेट्ठे अंतेवासी इंदभूई णामं अणगारे गोयमगोत्ते णं, एवं जहा बितियसए णियंठुद्देसए जाव भिक्खायरियाए अडमाणे अहापज्जत्तं भत्त-पाणं पडिग्गाहित्ता रायगिहाओ णगराओ जाव अतुरियं, अचवलं, असंभंतं जाव रियं सोहेमाणे सोहेमाणे तेसिं अण्णउत्थियाणं अदूरसामंतेणं वीइवयइ। तए णं ते अण्णउत्थिया भगवं गोयमं अदूरसामंतेणं वीइवयमाणं पासंति, पासेत्ता अण्णमण्णं सद्दावेंति, अण्णमण्णं सद्दावेत्ता एवं वयासी-"एवं खलु देवाणुप्पिया! अम्हे इमा कहा अविप्पकडा, अयं च णं गोयमे अम्हं अदूरसामंतेणं वीईवयइ, तं सेयं खलु देवाणुप्पिया! अम्हं गोयमं एयमट्ठं पुच्छित्तए" त्ति कट्टु अण्णमण्णस्स अंतिए एयमट्ठं पडिसुणंति, एयं अट्ठं पडिसुणित्ता जेणेव भगवं गोयमे तेणेव उवागच्छंति, तेणेव उवागच्छित्ता भगवं गोयमं एवं वयासी—

कठिन शब्दार्थ-वीइवयमाणं-जाते हुए, अविप्पकडा-अप्रकट (अज्ञान)।

भावार्थ-उस काल उस समय में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी गुणशील चैत्य (उद्यान) में यावत् पधारे। यावत् परिषद् वापिस चली गई।

उस काल उस समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के ज्येष्ठ अन्तेवासी गौतम गोत्री इन्द्रभूति नामक अनगार, दूसरे शतक के निर्ग्रन्थोद्देशक में कहे अनुसार भिक्षाचर्या के लिये घूमते हुए यथा-पर्याप्त आहार-पानी ग्रहण करके राजगृह नगर से त्वरा रहित, चपलता रहित, संभ्रान्तता रहित, ईर्या समिति का शोधन करते हुए, अन्यतीर्थिकों से थोडी दूर होकर निकले। तब अन्यतीर्थिकों ने भगवान् गौतम को थोडी दूरी से जाते हुए देखा और एक दूसरे से परस्पर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार कहा—

'हे देवानुप्रियों ! पञ्चास्तिकाय सम्बन्धी यह बात हम नहीं जानते। यह गौतम अपने से थोड़ी दूरी पर ही जा रहे हैं, इसलिये गौतम से यह अर्थ पूछना श्रेयस्कर है।' इस प्रकार परस्पर परामर्श करके वे भगवान् गौतम के पास आये और उन्होंने भगवान् गौतम से इस प्रकार पूछा—

प्रश्न–एवं खलु गोयमा ! तव धम्मायरिए, धम्मोवएसए, समणे णायपुत्ते पंच अत्थिकाए पण्णवेइ, तं जहा–धम्मत्थिकायं, जाव पोग्गलत्थिकायं; तं चेव जाव रूविकायं अजीवकायं पण्णवेइ; से कहमेयं गोयमा ! एवं ?

उत्तर–तए णं से भगवं गोयमे ते अण्णउत्थिए एवं वयासी– "णो खलु वयं देवाणुप्पिया ! अत्थिभावं णत्थि त्ति वयामो, णत्थिभावं अत्थि त्ति वयामो; अम्हे णं देवाणुप्पिया ! सव्वं अत्थिभावं अत्थि त्ति वयामो, सव्वं णत्थिभावं णत्थि त्ति वयामो; तं चेयसा (वेदसा) खलु तुब्भे देवाणुप्पिया ! एयमट्ठं सयमेव पच्चुवेक्खह" त्ति कट्टु ते अण्णउत्थिए एवं वयासी–एवं, एवं। जेणेव गुणसिलए चेइए, जेणेव समणे भगवं महावीरे, एवं जहा णियंठुद्देसए जाव भत्त-पाणं पडिदंसेइ, भत्त-पाणं पडिदंसित्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ, णमंसइ, वंदित्ता, णमंसित्ता णच्चासण्णे जाव पज्जुवासइ।

कठिन शब्दार्थ—अत्थिभावं–सद्भाव–अस्तित्व, **नत्थिभावं**–नास्तित्वभाव–अविद्यमान भाव, तं चेयसा–अपने ज्ञान से–मन से, **सयमेव**–खुद, **पच्चुवेक्खह**–विचार करो।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रश्न--'हे गौतम ! तुम्हारे धर्माचार्य धर्मोपदेशक श्रमण-ज्ञातपुत्र पांच अस्तिकाय की प्ररूपणा करते हैं, यथा-धर्मास्तिकाय यावत् पुद्गलास्तिकाय यावत् उन्होंने अपनी सारी चर्चा गौतम से कही। फिर पूछा हे गौतम ! यह किस प्रकार है ?

उत्तर--तब भगवान् गौतम ने अन्यतीथिकों से इस प्रकार कहा-"हे देवानुप्रियों ! हम अस्तिभाव (विद्यमान) को नास्तिभाव (अविद्यमान) नहीं कहते, इसी प्रकार नास्तिभाव को अस्तिभाव नहीं कहते। हे देवानुप्रियों ! हम सभी अस्तिभावों को अस्तिभाव कहते हैं और नास्तिभावों को नास्तिभाव कहते हैं, इसलिये हे देवानुप्रियों ! आप स्वयं ज्ञान द्वारा इस बात का विचार करो," इस प्रकार कहकर गौतम स्वामी ने उन अन्यतीथिकों से कहा कि जैसा भगवान् ने कहा है वैसा ही है। गौतमस्वामी गुणशीलक चैत्य में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पास आये और दूसरे शतक के पांचवें निर्ग्रन्थोद्देशक में कहे अनुसार यावत् भगवान् को भक्तपान दिखलाया। भक्तपान दिखलाकर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वन्दन नमस्कार किया। वन्दन नमस्कार करके न बहुत दूर न बहुत निकट रह कर यावत् उपासना करने लगे।

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे महाकहापडिवण्णे या वि होत्था, कालोदाई य तं देसं हव्वं आगए। 'कालोदाइ' त्ति समणे भगवं महावीरे कालोदाइं एवं वयासी-"से णूणं ते कालोदाई ! अण्णया कयाइ एगयओ सहियाणं, समुवागयाणं, संणिविट्ठाणं तहेव जाव से कहमेयं मण्णे एवं ? से णूणं कालोदाई ! अट्ठे समट्ठे ?" "हंता अत्थि।" "तं सच्चे णं एसमट्ठे कालोदाई ! अहं पंच-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

त्थिकायं पण्णवेमि, तं जहा-धम्मत्थिकायं, जाव पोग्गलत्थिकायं, तत्थ णं अहं चत्तारि अत्थिकाए अजीवत्थिकाए अजीवताए पण्णवेमि, तहेव जाव एगं च णं अहं पोग्गलत्थिकायं रूविकायं पण्णवेमि।

३ प्रश्न-तए णं से कालोदाई समणं भगवं महावीरं एवं वयासी-एयंसि णं भंते ! धम्मत्थिकायंसि, अधम्मत्थिकायंसि, आगासत्थिकायंसि अरूविकायंसि अजीवकायंसि चक्किया केई आसइत्तए वा, सइत्तए वा, चिट्ठइत्तए वा, णिसीइत्तए वा, तुयट्टित्तए वा ?

३ उत्तर-णो इणट्ठे समट्ठे, कालोदाई ! एगंसि णं पोग्गलत्थिकायंसि रूविकायंसि अजीवकायंसि चक्किया केई आसइत्तए वा, सइत्तए वा, जाव तुयट्टित्तए वा।

४ प्रश्न-एयंसि णं भंते ! पोग्गलत्थिकायंसि रूविकायंसि, अजीवकायंसि जीवाणं पावा कम्मा पावफलविवागसंजुत्ता कज्जंति ?

४ उत्तर-णो इणट्ठे समट्ठे, कालोदाई ! एयंसि णं जीवत्थिकायंसि अरूविकायंसि जीवाणं पावा कम्मा पावफलविवागसंजुत्ता कज्जंति। एत्थ णं से कालोदाई संबुद्धे, समणं भगवं महावीरं वंदइ णमंसइ; वंदित्ता, णमंसित्ता एवं वयासी-"इच्छामि णं भंते ! तुब्भं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अंतियं धम्मं णिसामेत्तए, एवं जहा खंदए तहेव पव्वइए, तहेव एक्कारस अंगाइं जाव विहरइ ।

कठिन शब्दार्थ--महाकहा पडिवण्णे--महाकथा प्रतिपन्न--विशाल जनसमूह में धर्मोपदेश देने में प्रवृत, चक्किया--कर सकता है, आसइत्तए सइत्तए--बैठने सोने ।

२ उस काल उस समय में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी महाकथा-प्रतिपन्न थे अर्थात् बहुत से मनुष्यों को धर्मोपदेश देने में प्रवृत थे । उसी समय कालोदायी वहाँ शीघ्र आया । 'हे कालोदायिन् !' इस प्रकार सम्बोधित करके श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने कालोदायी से इस प्रकार कहा--

"हे कालोदायी ! किसी समय एकत्र बैठे हुए तुम सब में पंचास्तिकाय के सम्बन्ध में इस प्रकार विचार हुआ था कि यावत् यह बात किस प्रकार मानी जा सकती है ? हे कालोदायिन् ! क्या यह बात यथार्थ है ?"

"हाँ, यथार्थ है ।"

"हे कालोदायिन् ! पंचास्तिकाय सम्बन्धी बात सत्य है । मैं धर्मास्तिकाय यावत् पुद्गलास्तिकाय पर्यन्त पाँच अस्तिकाय की प्ररूपणा करता हूँ । उनमें से चार अस्तिकायों को अजीवास्तिकाय अजीव रूप कहता हूँ । यावत् पूर्व कथितानुसार एक पुद्गलास्तिकाय को रूपी अजीवकाय कहता हूँ ।

३ प्रश्न-तब कालोदायी ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से कहा कि "हे भगवन् ! धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय इन अरूपी अजीवकायों के ऊपर क्या कोई बैठना, सोना, खडे रहना, नीचे बैठना और इधर उधर आलोटने इत्यादि क्रियाएँ कर सकता है ?

३ उत्तर-हे कालोदायिन् ! यह अर्थ योग्य नहीं है । केवल पुद्गलास्तिकाय ही रूपी अजीवकाय है, उस पर बैठना, सोना आदि क्रियाएँ करने में कोई भी समर्थ है ।

४ प्रश्न-हे भगवन् ! इस रूपी अजीव पुद्गलास्तिकाय में क्या जीवों

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

को पापफल-विपाक सहित अर्थात् अशुभ फल देने वाले पाप कर्म लगते हैं ?

४ उत्तर–हे कालोदायिन् ! यह अर्थ योग्य नहीं है, किन्तु अरूपी जीवास्तिकाय में ही जीवों को पापफलविपाक सहित पापकर्म लगते हैं, अर्थात् जीव ही पापकर्म संयुक्त होते हैं ।

भगवान् के उत्तर को सुनकर कालोदायी बोध को प्राप्त हुआ । फिर उसने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वन्दन नमस्कार किया । वन्दना नमस्कार करके उसने इस प्रकार कहा––

"हे भगवन् ! मैं आपके पास धर्म सुनना चाहता हूँ। भगवान् ने उसको धर्म सुनाया । फिर स्कन्दक की तरह उसने भगवान् के पास प्रव्रज्या अंगीकार की । ग्यारह अंगों का ज्ञान पढ़ा यावत् कालोदायी अनगार विचरते हैं ।

विवेचन––अन्यतीर्थिकों में पञ्चास्तिकाय के सम्बन्ध में परस्पर वार्तालाप हुआ, उन्होंने भिक्षा लेकर जाते हुए गौतम स्वामी से पूछा । गौतम स्वामी ने कहा कि वही ठीक है जो श्रमण भगवान् महावीर स्वामी प्ररूपणा करते हैं । गौतम स्वामी इतना कहकर भगवान् की सेवा में पधार गये । इसके बाद उन अन्यतीर्थिकों में से कालोदायी भगवान् के पास आया और उसने इस विषयक प्रश्न किया । भगवान् का उत्तर सुनकर उसे पूर्ण सन्तोष हुआ । फिर भगवान् से धर्म सुनकर बोध को प्राप्त हुआ और स्कन्धक की तरह प्रव्रज्या अंगीकार की ।

पाप और पुण्य कर्म और फल

५–तए णं समणे भगवं महावीरे अण्णया कयाइ रायगिहाओ णयराओ, गुणसिलाओ चेइयाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ । तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे णामं णयरे गुणसिलए चेइए होत्था । तए णं समणे भगवं महा-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वीरे अण्णया कयाइ जाव समोसढे, परिसा जाव पडिगया। तए णं से कालोदाई अणगारे अण्णया कयाइ जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, तेणेव उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी–

प्रश्न–अत्थि णं भंते! जीवाणं पावा कम्मा पावफलविवाग-संजुत्ता कज्जंति?

उत्तर–हंता, अत्थि।

६ प्रश्न–कहं णं भंते! जीवाणं पावा कम्मा पावफलविवागसंजुत्ता कज्जंति?

६ उत्तर–कालोदाई! से जहाणामए केइ पुरिसे मणुण्णं थाली-पागसुद्धं अट्ठारसवंजणाउलं विससंमिस्सं भोयणं भुंजेज्जा, तस्स णं भोयणस्स आवाए भद्दए भवइ, तओ पच्छा परिणममाणे परिणममाणे दुरूवत्ताए, दुगंधत्ताए जहा महासवए, जाव भुज्जो भुज्जो परिणमइ; एवामेव कालोदाई! जीवाणं पाणाइवाए जाव मिच्छादंसणसल्ले, तस्स णं आवाए भद्दए भवइ, तओ पच्छा विपरिणममाणे विपरिणम-माणे दुरूवत्ताए जाव भुज्जो भुज्जो परिणमइ; एवं खलु कालोदाई! जीवाणं पावा कम्मा पावफलविवागसंजुत्ता कज्जंति।

कठिन शब्दार्थ --पावफलविवागसंजुत्ता—पाप के फल भोग से युक्त, थालीपागसुद्धं—

स्थाली (हाण्डी) में पकाने से शुद्ध पका हुआ, विससंमिस्सं--विष मिला हुआ, आवाए भद्दए--आपात (तत्काल) अच्छा, परिणममाणे—(शरीर में—)रंजने पर।

भावार्थ-५ किसी समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी राजगृह नगर के गुणशील उद्यान से निकलकर बाहर जनपद (देश) में विचरने लगे। उस काल उस समय में राजगृह नगर के बाहर गुणशील नामक चैत्य था। किसी समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी पुनः वहाँ पधारे यावत् धर्मोपदेश सुनकर परिषद् लौट गई। कालोदायी अनगार किसी समय श्रमण भगवान् महावीर के पास आये और भगवान् महावीर स्वामी को वन्दन नमस्कार करके इस प्रकार पूछा--

प्रश्न-हे भगवन्! क्या जीवों को पापफल-विपाक सहित पापकर्म लगते हैं?

उत्तर-हाँ, कालोदायिन्! लगते हैं।

६ प्रश्न--हे भगवन्! पापफल-विपाक सहित पापकर्म कैसे होते हैं?

६ उत्तर-हे कालोदायिन्! जैसे कोई पुरुष, सुन्दर भाण्ड में पकाने से शुद्ध पका हुआ, अठार प्रकार के दाल-शाकादि व्यञ्जनों से युक्त विष-मिश्रित भोजन करता है, तो वह भोजन प्रारंभ में अच्छा लगता है, परन्तु उसके बाद उसका परिणाम खराब रूपपने, दुर्गन्धपने यावत् छठे शतक के महाश्रव नामक तीसरे उद्देशक में कहे अनुसार अशुभ होता है। इसी प्रकार हे कालोदायिन्! जीव के लिये प्राणातिपात यावत् मिथ्यादर्शनशल्य तक अठारह पाप-स्थान का सेवन तो अच्छा लगता है, किन्तु उनके द्वारा बंधे हुए पापकर्म जब उदय में आते हैं, तब उनका परिणाम अशुभ होता है। इसी प्रकार हे कालोदायिन्! जीवों के लिये अशुभ फल-विपाक सहित पापकर्म होते हैं।

७ प्रश्न-अत्थि णं भंते! जीवाणं कल्लाणा कम्मा कल्लाण-फलविवागसंजुत्ता कज्जंति?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

७ उत्तर-हंता, अत्थि ।

८ प्रश्न-कहं णं भंते! जीवाणं कल्लाणा कम्मा जाव कज्जंति ?

८ उत्तर-कालोदाई ! से जहाणामए केई पुरिसे मणुण्णं थाली-पागसुद्धं अट्ठारसवंजणाउलं ओसहमिस्सं भोयणं भुंजेज्जा, तस्स णं भोयणस्स आवाए णो भद्दए भवइ, तओ पच्छा परिणममाणे परिणम-माणे सुरूवत्ताए, सुवण्णत्ताए, जाव सुहत्ताए, णो दुक्खत्ताए, भुज्जो भुज्जो परिणमइ, एवामेव कालोदाई ! जीवाणं पाणाइवायवेरमणे जाव परिग्गहवेरमणे, कोहविवेगे, जाव मिच्छादंसणसल्लविवेगे, तस्स णं आवाए णो भद्दए भवइ, तओ पच्छा परिणममाणे परिणम-माणे सुरूवत्ताए जाव णो दुक्खत्ताए भुज्जो भुज्जो परिणमइ, एवं खलु कालोदाई ! जीवाणं कल्लाणा कम्मा जाव कज्जंति ।

कठिन शब्दार्थ—कल्लाणाकम्मा—शुभ कर्म ।

भावार्थ-७ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या जीवों के कल्याण फल-विपाक सहित कल्याण (शुभ) कर्म होते हैं ?

७ उत्तर—हाँ, कालोदायिन् ! होते हैं ।

८ प्रश्न-हे भगवन् ! जीवों के कल्याण फल-विपाक सहित कल्याण-कर्म कैसे होते हैं ?

८ उत्तर-हे कालोदायिन् ! जैसे कोई एक पुरुष, सुन्दर भाण्ड में रांधने से शुद्ध पका हुआ और अठारह प्रकार के दाल-शाकादि व्यञ्जनों से युक्त औषध मिश्रित भोजन करता है, तो वह भोजन प्रारंभ में अच्छा नहीं लगता, परन्तु उसके

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बाद जब उसका परिणमन होता है, तब वह सुरूपपने, सुवर्णपने यावत् सुखपने बारंबार परिणत होता है, वह दुःखपने परिणत नहीं होता। इसी प्रकार हे कालोदायिन् ! जीवों के लिये प्राणातिपात-विरमण यावत् परिग्रह-विरमण, क्रोध-विवेक (क्रोध का त्याग) यावत् मिथ्यादर्शनशल्य का त्याग, प्रारंभ में कठिन लगता है, किन्तु उसका परिणाम सुखरूप यावत् नो दुःखरूप होता है। इसी प्रकार हे कालोदायिन् ! जीवों के कल्याणफल-विपाक संयुक्त कल्याण-कर्म होते हैं।

विवेचन-कालोदायी ने पाप पुण्य विषयक प्रश्न भगवान् से पूछे। भगवान् ने फरमाया कि जिस प्रकार सभी तरह से सुसंस्कृत विषमिश्रित भोजन खाते समय तो अच्छा लगता है, किन्तु जब उसका परिणमन होता है, तब बड़ा भयङ्कर होता है और यहां तक कि प्राणों से हाथ धोना पड़ता है। यही बात प्राणातिपातादि पापकर्मों के लिये है। पाप-कर्म करते समय तो जीव को अच्छे लगते हैं, किन्तु भोगते समय महा दुःखदायी होते हैं।

औषधि युक्त भोजन करने में बड़ी कठिनाई होती है। उस समय उसका स्वाद अच्छा नहीं लगता, किन्तु उसका परिणमन बड़ा अच्छा, सुखकारी और हितकारी होता है। इसी प्रकार प्राणातिपातादि पापों से निवृत्ति बड़ी कठिन लगती है, किन्तु उनका परिणाम बड़ा हितकारी और सुखकारी होता है।

अग्नि के जलाने बुझाने की क्रिया

९ प्रश्न-दो भंते ! पुरिसा सरिसया जाव सरिसभंडमत्तोवगरणा अण्णमण्णेणं सद्धिं अगणिकायं समारंभंति, तत्थ णं एगे पुरिसे अगणिकायं उज्जालेइ, एगे पुरिसे अगणिकायं णिव्वावेइ, एएसि णं भंते ! दोण्हं पुरिसाणं कयरे पुरिसे महाकम्मतराए चेव, महाकिरियतराए चेव, महासवतराए चेव, महावेयणतराए चेव ? कयरे वा पुरिसे अप्पकम्मतराए चेव, जाव अप्पवेयणतराए चेव ?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जे वा से पुरिसे अगणिकायं उज्जालेइ, जे वा से पुरिसे अगणिकायं णिव्वावेइ ?

९ उत्तर-कालोदाई ! तत्थ णं जे से पुरिसे अगणिकायं उज्जालेइ से णं पुरिसे महाकम्मतराए चेव, जाव महावेयणतराए चेव। तत्थ णं जे से पुरिसे अगणिकायं णिव्वावेइ से णं पुरिसे अप्पकम्मतराए चेव जाव अप्पवेयणतराए चेव।

प्रश्न-से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ-तत्थ णं जे से पुरिसे जाव अप्पवेयणतराए चेव ?

उत्तर-कालोदाई ! तत्थ णं जे से पुरिसे अगणिकायं उज्जालेइ से णं पुरिसे बहुतरायं पुढविकायं समारंभइ, बहुतरायं आउक्कायं समारंभइ, अप्पतरायं तेउकायं समारंभइ, बहुतरायं वाउकायं समारंभइ, बहुतरायं वणस्सइकायं समारंभइ, बहुतरायं तसकायं समारंभइ। तत्थ णं जे से पुरिसे अगणिकायं णिव्वावेइ, से णं पुरिसे अप्पतरायं पुढविक्कायं समारंभइ, अप्पतरायं आउक्कायं समारंभइ, बहुतरायं तेउक्कायं समारंभइ, अप्पतरायं वाउकायं समारंभइ, अप्पतरायं वणस्सइकायं समारंभइ, अप्पतरायं तसकायं समारंभइ, से तेणट्ठेणं कालोदाई ! जाव अप्पवेयणतराए चेव।

कठिन शब्दार्थ-उज्जालेइ-जलाता है, णिव्वावेइ-बुझाता है, बहुतरायं-बहुत।

भावार्थ-९ प्रश्न-हे भगवन् ! समान उम्र के यावत् समान भाण्ड

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पात्रादि उपकरण वाले दो पुरुष, परस्पर एक दूसरे के साथ, अग्निकाय का समारम्भ करें। उनमें से एक पुरुष अग्निकाय को जलावे और एक पुरुष अग्निकाय को बुझावे, तो हे भगवन् ! उन दोनों पुरुषों में से कौनसा पुरुष महाकर्म वाला, महाक्रिया वाला, महाआश्रव वाला और महावेदना वाला होता है और कौनसा पुरुष अल्प कर्मवाला, अल्प क्रियावाला, अल्प आश्रव वाला और अल्प वेदना वाला होता है ? अर्थात् जो पुरुष अग्निकाय को जलाता है, वह महाकर्मवाला आदि होता है, या जो पुरुष अग्निकाय को बुझाता है, वह महाकर्म वाला आदि होता है ?

९ उत्तर-हे कालोदायी ! उन दोनों पुरुषों में से जो पुरुष अग्निकाय को जलाता है, वह पुरुष महाकर्म वाला यावत् महावेदना वाला होता है और जो पुरुष, अग्निकाय को बुझाता है, वह अल्प कर्म वाला यावत् अल्प वेदना वाला होता है।

प्रश्न-हे भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहते हैं कि उन दोनों पुरुषों में से जो पुरुष, अग्निकाय को जलाता है, वह महाकर्म वाला आदि होता है और जो अग्निकाय को बुझाता है, वह अल्प कर्म वाला आदि होता है ?

उत्तर-हे कालोदायिन् ! उन दोनों पुरुषों में से जो पुरुष, अग्निकाय को जलाता है, वह पृथ्वीकाय का बहुत समारम्भ करता है, अप्काय का बहुत समारम्भ करता है, अग्निकाय का अल्प समारंभ करता है, वायुकाय का बहुत समारम्भ करता है, वनस्पतिकाय का बहुत समारम्भ करता है और त्रसकाय का बहुत समारम्भ करता है। और जो पुरुष, अग्निकाय को बुझाता है, वह पृथ्वीकाय का अल्प समारम्भ करता है, अप्काय का अल्प समारम्भ करता है, वायुकाय का अल्प समारम्भ करता है, वनस्पतिकाय का अल्प समारम्भ करता है, एवं त्रसकाय का अल्प समारंभ करता है। किन्तु अग्निकाय का बहुत समारम्भ करता है। इसलिये हे कालोदायी ! जो पुरुष अग्निकाय को जलाता है, वह पुरुष महाकर्म वाला आदि है और जो पुरुष अग्निकाय को बुझाता है, वह अल्पकर्म वाला आदि है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन-दो पुरुष अग्निकाय का आरम्भ करते हैं, उनमें से एक पुरुष 'जलाने' का आरम्भ करता है और दूसरा 'बुझाने' का आरम्भ करता है। अग्नि जलाने से बहुत से अग्निकायिक जीवों की उत्पत्ति होती है, परन्तु उनमें से कुछ जीवों का विनाश भी होता है, अग्नि को जलाने वाला पुरुष, अग्निकाय के अतिरिक्त अन्य सभी कायों का महारम्भ करता है। इसलिए जलाने वाला पुरुष, ज्ञानावरणीय आदि महाकर्म उपार्जन करता है दाहरूप महाक्रिया करता है, कर्मबन्ध का हेतुभूत महा आश्रव करता है और जीवों को महावेदना उत्पन्न करता है। बुझाने वाला पुरुष, अग्निकाय के अतिरिक्त अन्य सब कायों का अल्प आरम्भ करता है। इसलिये वह जलाने वाले पुरुष की अपेक्षा अल्प कर्म वाला, अल्प क्रिया वाला, अल्प आश्रव वाला और अल्प वेदना वाला होता है।

अचित्त पुद्गलों का प्रकाश

१० प्रश्न-अत्थि णं भंते ! अचित्ता वि पोग्गला ओभासंति, उज्जोवेंति, तवेंति, पभासेंति ?

१० उत्तर-हंता, अत्थि।

११ प्रश्न-कयरे णं भंते ! अचित्ता वि पोग्गला ओभासंति, जाव पभासेंति ?

११ उत्तर-कालोदाई ! कुद्धस्स अणगारस्स तेयलेस्सा णिसट्ठा समाणी दूरं गया, दूरं णिपतइ, देसं गया देसं णिपतइ, जहिं जहिं च णं सा णिपतइ, तहिं तहिं णं ते अचित्ता वि पोग्गला ओभासंति, जाव पभासेंति, एएणं कालोदाई ! ते अचित्ता वि पोग्गला ओभासंति जाव पभासंति। तए णं से कालोदाई अण-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गारे समणं भगवं महावीरं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता वहूहिं चउत्थ-छट्ट-ऽट्ठम-जाव अप्पाणं भावेमाणे जहा पढमसए कालास-वेसियपुत्ते जाव सव्वदुक्खप्पहीणे ।

❀ सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति ❀

॥ सत्तमसयस्स दसमो उद्देसओ समत्तो ॥

॥ सत्तमं सयं समत्तं ॥

कठिन शब्दार्थ--**ओभासंति**--प्रकाशित होते हैं, **उज्जोवेंति**--वस्तु को उद्योतित-(प्रकाशित) करते हैं, **तवेंति**--पदार्थ को तप्त करते हैं, **पभासंति**--वस्तु को जला देने वाले होने से प्रभाव को प्राप्त करते हैं, **निसट्ठा**--निकलकर, **णिपतइ**--गिरती है।

भावार्थ--१० प्रश्न-हे भगवन् ! क्या अचित्त पुद्गल भी अवभासित होते हैं, उद्योत करते हैं, तपते हैं और प्रकाश करते हैं ?

१० उत्तर-हां, कालोदायी ! करते हैं।

११ प्रश्न-हे भगवन् ! कौन-से अचित्त पुद्गल अवभास करते हैं यावत् प्रकाश करते हैं ?

११ उत्तर-हे कालोदायिन् ! कुपित हुए साधु की तेजोलेश्या निकलकर दूर जाकर गिरती है, जाने योग्य देश (स्थान) में जाकर उस देश में गिरती है। जहां जहां वह गिरती है, वहां वहां अचित्त पुद्गल भी अवभास करते हैं यावत् प्रकाश करते हैं। इस कारण हे कालोदायिन् ! अचित्त पुद्गल भी अवभास करते है यावत् प्रकाश करते हैं। इसके बाद कालोदायी अनगार श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वन्दना नमस्कार करते हैं और बहुत चतुर्थ (उपवास), षष्ठ (दो उपवास), अष्टम (तीन उपवास) इत्यादि तप द्वारा अपनी आत्मा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

को भावित करते हुए विचरने लगे। यावत् प्रथम शतक के नौवें उद्देशक में वर्णित कालास्यवेसी पुत्र की तरह सिद्ध, बुद्ध, मुक्त यावत् समस्त दुःखों से मुक्त हुए।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है।

विवेचन—कुपित हुए अनगार से जो तेजोलेश्या निकलती है, उसके पुद्गल अचित्त होते है। सचित्त तेजस्काय के पुद्गल तो अवभासित यावत् प्रकाशित होते ही हैं, परन्तु क्या अचित्त पुद्गल भी अवभासित यावत् प्रकाशित होते हैं ? इस शंका के समाधान के लिये उपरोक्त प्रश्न किये गये। जिनका उत्तर भगवान् ने 'हाँ' में दिया है। कुपित अनगार की तेजोलेश्या दूर जाकर गिरती है अथवा गन्तव्य देश के भाग में जाकर गिरती है। तेजोलेश्या के पुद्गल अचित्त होते हैं।

॥ इति सातवें शतक का दसवाँ उद्देशक संपूर्ण ॥

॥ इति सातवाँ शतक सम्पूर्ण ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शतक ८

१–१ पोग्गल २ आसीविस ३ रुक्ख ४ किरिय ५ आजीव
६ फासुय ७ मदत्ते । ८ पडिणीय ९ बंध १० आराहणा
य दस अट्ठमंमि सए ॥

भावार्थ—१ पुद्गल २ आशीविष ३ वृक्ष ४ क्रिया ५ आजीविक ६ प्रासुक ७ अदत्त ८ प्रत्यनीक ९ बन्ध और १० आराधना । आठवें शतक के ये दस उद्देशक हैं ।

विवेचन—(१) पुद्गल के परिणाम के विषय में प्रथम उद्देशक है । (२)आशीविष आदि के सम्बन्ध में दूसरा उद्देशक है । (३) वृक्षादि के सम्बन्ध में तीसरा उद्देशक है । (४) कायिकी आदि क्रियाओं के सम्बन्ध में चौथा उद्देशक है । (५) आजीविक के विषय में पांचवा उद्देशक है । (६) प्रासुक दान आदि के विषय में छठा उद्देशक है । (७) अदत्तादान आदि के विषय में सातवाँ उद्देशक है । (८) प्रत्यनीक–गुर्वादि के द्वेषी विषयक आठवाँ उद्देशक है । (९) बन्ध–प्रयोग बन्ध आदि के विषय में नौवाँ उद्देशक है । (१०) आराधना आदि के विषय में दसवाँ उद्देशक है । यह संग्रह-गाथा का अर्थ है ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उद्देशक १

पुद्गलों का प्रयोग-परिणतादि स्वरूप

२ प्रश्न-रायगिहे जाव एवं वयासी-कइविहा णं भंते ! पोग्गला पण्णत्ता ?

२ उत्तर-गोयमा ! तिविहा पोग्गला पण्णत्ता, तं जहा-पओग-परिणया, मीससापरिणया, वीससापरिणया य ।

कठिन शब्दार्थ--पओगपरिणया--प्रयोग परिणत, मीससा परिणया--मिश्र परिणत, वीससा--विस्रसा (स्वाभाविक) ।

भावार्थ--२ प्रश्न--राजगृह नगर में यावत् गौतम स्वामी ने इस प्रकार पूछा-'हे भगवन् ! पुद्गल कितने प्रकार के कहे गये हैं ?'

२ उत्तर-हे गौतम ! पुद्गल तीन प्रकार के कहे गये हैं । यथा-प्रयोग-परिणत, मिश्र-परिणत, और विस्रसा-परिणत ।

विवेचन--जीव के व्यापार (क्रिया) से शरीर आदि रूप में परिणत पुद्गल--'प्रयोगपरिणत' कहलाते हैं । प्रयोग और विस्रसा (स्वभाव) इन दोनों द्वारा परिणत पुद्गल--'मिश्रपरिणत' कहलाते हैं । विस्रसा अर्थात् स्वभाव से परिणत पुद्गल--'विस्रसा परिणत' कहलाते हैं । प्रयोगपरिणाम को छोड़े बिना स्वभाव से परिणामान्तर को प्राप्त हुए, मृत-कलेवरादि पुद्गल 'मिश्र-परिणत' कहलाते हैं । अथवा विस्रसा (स्वभाव) से परिणत औदारिक आदि वर्गणाएँ, जब जीव के व्यापार प्रयोग (क्रिया) से औदारिकादि शरीर रूप मे परिणत होती हैं, तब वे 'मिश्रपरिणत' कहलाती हैं । यद्यपि औदारिकादि शरीर रूप से परिणत औदारिकादि वर्गणाएँ 'प्रयोगपरिणत' कहलाती हैं क्योंकि उस समय उनमें विस्रसा परिणाम की विवक्षा नहीं की गई है, परन्तु जब प्रयोग और विस्रसा इन दोनों परिणामों की विवक्षा की जाती है, तब वे 'मिश्रपरिणत' कहलाती हैं ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रथम दण्डक

३ प्रश्न-पओगपरिणया णं भंते ! पोग्गला कइविहा पण्णत्ता ?

३ उत्तर-गोयमा ! पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा-एगिंदियपओग-परिणया, बेइंदियपओगपरिणया, जाव पंचिंदियपओगपरिणया ।

४ प्रश्न-एगिंदियपओगपरिणया णं भंते ! पोग्गला कइविहा पण्णत्ता ?

४ उत्तर-गोयमा ! पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा-पुढविक्काइअ-एगिंदियपओगपरिणया, जाव वणस्सइकाइअएगिंदिअपओगपरि-णया ।

५ प्रश्न-पुढविक्काइअएगिंदियपओगपरिणया णं भंते ! पोग्गला कइविहा पण्णत्ता ?

५ उत्तर-गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा-सुहुमपुढवि-क्काइअ-एगिंदियपओग-परिणया, बादरपुढविक्काइअएगिंदिय-पओगपरिणया य । आउक्काइअएगिंदिअपयोगपरिणया एवं चेव, एवं दुयओ भेदो जाव वणस्सइकाइआ य ।

६ प्रश्न-बेइंदियपओगपरिणयाणं पुच्छा ।

६ उत्तर-गोयमा ! अणेगविहा पण्णत्ता, एवं तेइंदियपओग-परिणया, चउरिंदियपओगपरिणया वि ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

७ प्रश्न-पंचिंदियपयोगपरिणयाणं पुच्छा ।

७ उत्तर-गोयमा ! चउव्विहा पण्णत्ता । तं जहा-णेरइयपंचिंदियपयोगपरिणया, तिरिक्खजोणियपंचिंदियपयोगपरिणया, एवं मणुस्सपंचिंदियपयोगपरिणया, देवपंचिंदियपयोगपरिणया य ।

भावार्थ-३ प्रश्न-हे भगवन् ! प्रयोगपरिणत पुद्गल कितने प्रकार के कहे गये हैं ?

३ उत्तर-हे गौतम ! पांच प्रकार के कहे गये हैं । यथा-एकेन्द्रिय प्रयोग परिणत, बेइन्द्रिय प्रयोग परिणत यावत् पञ्चेन्द्रिय प्रयोग-परिणत ।

४ प्रश्न-हे भगवन् ! एकेन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल कितने प्रकार के कहे गये हैं ?

४ उत्तर-हे गौतम ! पांच प्रकार के कहे गये है । यथा-पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल यावत् वनस्पतिकायिक एकेन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल ।

५ प्रश्न-हे भगवन् ! पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल कितने प्रकार के कहे गये हैं ?

५ उत्तर-हे गौतम ! दो प्रकार के कहे गये हैं । यथा-सूक्ष्म पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल और बादर पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल । इसी प्रकार अप्कायिक एकेन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल दो प्रकार के जानने चाहिये । यावत् इसी तरह वनस्पतिकायिक एकेन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल दो प्रकार के जानने चाहिये ।

६ प्रश्न-हे भगवन् ! बेइन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल कितने प्रकार के कहे गये हैं ?

६ उत्तर-हे गौतम ! वे अनेक प्रकार के कहे गये हैं । इसी प्रकार तेइ-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

न्द्रिय, चउरिन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल भी जान लेने चाहिये ।

७ प्रश्न—हे भगवन् ! पञ्चेन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल कितने प्रकार के कहे गये हैं ?

७ उत्तर—हे गौतम ! वे चार प्रकार के कहे गये हैं । यथा—नारक पञ्चेन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल, तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल, मनुष्य पंचेन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल और देव पंचेन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल ।

८ प्रश्न—णेरइयापंचिंदियपओगपरिणयाणं पुच्छा ।

८ उत्तर—गोयमा ! सत्तविहा पण्णत्ता, तं जहा—रयणप्पभा-पुढविणेरइयपंचिंदियपयोगपरिणया वि, जाव अहेसत्तमपुढविणेरइअ-पयोगपरिणया वि ।

भावार्थ—८ प्रश्न—हे भगवन् ! नैरयिक पंचेन्द्रिय प्रयोगपरिणत पुद्गल कितने प्रकार के कहे गये हैं ?

८ उत्तर—हे गौतम ! नैरयिक पंचेन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल सात प्रकार के कहे गये हैं । यथा—रत्नप्रभा पृथ्वी नैरयिक पंचेन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल यावत् अधःसप्तम पृथ्वी नैरयिक पंचेन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल ।

९ प्रश्न—तिरिक्खजोणियपंचिंदियपयोगपरिणयाणं पुच्छा ।

९ उत्तर—गोयमा ! तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—जलयरपंचिंदिय-तिरिक्खजोणियपयोगपरिणया, थलयरपंचिंदिय० खहयरपंचिंदिय० ।

१० प्रश्न—जलयरतिरिक्खजोणियपयोगपरिणयाणं पुच्छा ।

१० उत्तर—गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—संमुच्छिमजल-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यर०, गब्भवक्कंतियजलयर० ।

११ प्रश्न—थलयरतिरिक्ख० पुच्छा ।

११ उत्तर–गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–चउप्पयथलयर०, परिसप्पथलयर० ।

१२ प्रश्न–चउप्पयथलयर० पुच्छा ।

१२ उत्तर–गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–संमुच्छिमचउप्पय-थलयर०, गब्भवक्कंतियचउप्पयथलयर० । एवं एएणं अभिलावेणं परिसप्पा, दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–उरपरिसप्पा य भुयपरिसप्पा य । उरपरिसप्पा दुविहा पण्णत्ता, तं जहा–संमुच्छिमा य गब्भवक्कंतिया य । एवं भुयपरिसप्पा वि, एवं खहयरा वि ।

कठिन शब्दार्थ—परिसप्पा—परिसर्प (रेंगकर चलने वाले प्राणी), **सम्मुच्छिमा**—सम्मूच्छिम माता-पिता के संयोग के बिना उत्पन्न होने वाले तिर्यञ्च और मनुष्य, **गब्भ-वक्कंतिया**—गर्भव्युत्क्रान्त–गर्भ से उत्पन्न होने वाले, **थलयर**—पृथ्वी पर चलने वाले, **चउप्पय**—चार पाँवों वाले, **अभिलावेणं**—अभिलाप–(पाठ), **उरपरिसप्प**—पेट से रेंगकर चलने वाले, **भुयपरिसप्प**—भुजा से से चलने वाले, **खहयरा**—खेचर (उड़ने वाले पक्षी)।

भावार्थ–९ प्रश्न–हे भगवन् ! तिर्यंच-योनिक पंचेन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल कितने प्रकार के कहे गये हैं ?

९ उत्तर–हे गौतम ! तिर्यंच-योनिक पंचेन्द्रिय प्रयोगपरिणत पुद्गल तीन प्रकार के कहे गये हैं, यथा–जलचर-तिर्यंच-योनिक पंचेन्द्रिय प्रयोग-परिणत-पुद्गल, स्थलचर तिर्यंचयोनिक पंचेन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल और खेचर-तिर्यंच-योनिक पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल ।

१० प्रश्न–हे भगवन् ! जलचर-तिर्यंच-योनिक पंचेन्द्रिय प्रयोग-परिणत

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पुद्गल कितने प्रकार के कहे गये हैं ?

१० उत्तर-हे गौतम ! वे दो प्रकार के कहे गये हैं । यथा-सम्मूच्छिम-जलचर-तिर्यंचयोनिक पंचेन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल और गर्भज-जलचर-तिर्यंच योनिक पंचेन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल ।

११ प्रश्न—हे भगवन् ! स्थलचर-तिर्यंच-योनिक पंचेन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल कितने प्रकार के कहे गये हैं ?

११ उत्तर-हे गौतम ! वे दो प्रकार के कहे गये हैं । यथा-चतुष्पद-स्थलचर-तिर्यंच योनिक पंचेन्द्रिय प्रयोग-परिण पुद्गलत और परिसर्प-स्थलचर-तिर्यंच योनिक पंचेन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल ।

१२ प्रश्न-हे भगवन् ! चतुष्पद-स्थलचर तिर्यंच-योनिक पंचेन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल कितने प्रकार के कहे गये हैं ?

१२ उत्तर-हे गौतम ! वे दो प्रकार के कहे गये हैं । यथा-सम्मूर्च्छिम-चतुष्पद स्थलचर तिर्यंच योनिक पंचेन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल और गर्भज-चतुष्पद-स्थलचर तिर्यंच-योनिक पंचेन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल । इसी अभिलाप (पाठ) द्वारा परिसर्प दो प्रकार के कहे गये हैं । यथा-उरपरिसर्प और भुजपरिसर्प । उरपरिसर्प दो प्रकार के कहे गये हैं । यथा-सम्मूच्छिम और गर्भज । इसी प्रकार भुजपरिसर्प और खेचर के भी दो दो भेद कहे गये हैं ।

१३ प्रश्न-मणुस्सपंचिंदियपओग० पुच्छा ।

१३ उत्तर-गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा-संमुच्छिम-मणुस्स०, गब्भवक्कंतिय मणुस्स० ।

भावार्थ-१३ प्रश्न-हे भगवन् ! मनुष्य-पंचेन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल कितने प्रकार के कहे गये हैं ?

१३ उत्तर-हे गौतम ! वे दो प्रकार के कहे गये हैं । यथा-सम्मूर्च्छिम-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मनुष्य-पंचेन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल और गर्भज-मनुष्य पंचेन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल ।

१४ प्रश्न-देवपंचिंदियपओग० पुच्छा ।

१४ उत्तर-गोयमा ! चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा-भवणवासिदेवपंचिंदियपओग०, एवं जाव वेमाणिया ।

१५ प्रश्न-भवणवासिदेवपंचिंदिय० पुच्छा ।

१५ उत्तर-गोयमा ! दसविहा पण्णत्ता, तं जहा-असुरकुमार०, जाव थणियकुमार० । एवं एएणं अभिलावेणं अट्ठविहा वाणमंतरा, पिसाया जाव गंधव्वा । जोइसिया पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा-चंदविमाणजोइसिया, जाव ताराविमाणजोइसिया देवा । वेमाणिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा-कप्पोवग० कप्पाईयगवेमाणिया । कप्पोवगा दुवालसविहा पण्णत्ता, तं जहा-सोहम्मकप्पोवग० जाव अच्चुयकप्पोवगवेमाणिया । कप्पाईयग० दुविहा पण्णत्ता, तं जहा-गेवेज्जगकप्पाईयग० अणुत्तरोववाईयकप्पायग० । गेवेज्जकप्पाईयग० णवविहा पण्णत्ता, तं जहा-हेट्ठिमहेट्ठिमगेवेज्जगकप्पाईयग०, जाव उवरिमउवरिमगेवेज्जगकप्पाईयग० ।

१६ प्रश्न-अणुत्तरोववाइयकप्पाईयगवेमाणियदेवपंचिंदियपयोगपरिणया णं भंते ! पोग्गला कइविहा पण्णत्ता ?

१६ उत्तर-गोयमा ! पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा-विजयअणु-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

त्तरोववाइय० जाव परिणया, जाव सव्वट्ठसिद्धअणुत्तरोववाइयदेव-पंचिंदिय०जाव परिणया। (दं. १)

कठिन शब्दार्थ-गेवेज्ज-ग्रैवेयक, **कप्पोवगा**-कल्पोपपन्न (जहां इन्द्रादि अधिकारी और छोटे बड़े, ऊँच, नीच आदि का व्यवहार है, जहां अधिकारी व अधीनस्थ हैं, और जिनके पारस्परिक व्यवहार नियमानुसार होते हैं) **कप्पातीत**-कल्पोत्पन्न देवों जैसे व्यवहार से सर्वथा मुक्त, सभी देव समान रूप से इन्द्र की तरह हैं, **हेट्ठिमहेट्ठिम**-नीचे की त्रिक में नीचे, **उवरिमउवरिम**-ऊपर की त्रिक में ऊपर, **अणुत्तरोववाइय**-सर्वोत्तम (जिससे उत्तम कोई स्थान नहीं है—ऐसे) देवलोक में उत्पन्न।

भावार्थ—१४ प्रश्न-हे भगवन् ! देव-पंचेन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल कितने प्रकार के कहे गये हैं ?

१४ उत्तर-हे गौतम ! वे चार प्रकार के कहे गये हैं। यथा-भवनवासी देव-पंचेंद्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल यावत् वैमानिक देव-पंचेन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल।

१५ प्रश्न-हे भगवन् ! भवनवासी देव-पंचेंद्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल कितने प्रकार के कहे गये हैं ?

१५ उत्तर-हे गौतम ! वे दस प्रकार के कहे गये हैं। यथा-असुरकुमार-देव प्रयोग-परिणत पुद्गल यावत् स्तनितकुमार प्रयोग-परिणत पुद्गल। इसी प्रकार इसी अभिलाप द्वारा आठ प्रकार के वाणव्यन्तर कहने चाहिये। यथा-पिशाच यावत् गन्धर्व। इसी प्रकार इसी अभिलाप द्वारा ज्योतिषी देवों के पांच भेद कहने चाहिये। यथा-चन्द्र-विमान ज्योतिष्क देव यावत् तारा-विमान ज्योतिष्क देव। वैमानिक देव दो प्रकार के कहे गये हैं। यथा-कल्पोपपन्न वैमानिक देव और कल्पातीत वैमानिक देव। कल्पोपपन्न वैमानिक देवों के बारह भेद कहे गये हैं। यथा-सौधर्म-कल्पोपपन्नक यावत् अच्युत-कल्पोपपन्नक। कल्पातीत वैमानिक देव दो प्रकार के कहे गये हैं। यथा-ग्रैवेयक-कल्पातीत वैमानिक और अनुत्तरौपपातिक कल्पातीत वैमानिक देव। ग्रैवेयक कल्पातीत वैमानिक देवों के नौ भेद कहे गये हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यथा—अधस्तन-अधस्तन (नीचे की त्रिक का नीचे का विमान प्रस्तट) ग्रैवेयक कल्पातीत वैमानिक देव यावत् उपरितन-उपरितन (ऊपर की त्रिक का ऊपर का विमान प्रस्तट) ग्रैवेयक-कल्पातीत वैमानिक देव ।

१६ प्रश्न—हे भगवन् ! अनुत्तरौपपातिक-कल्पातीत वैमानिकदेव पंचेंद्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल कितने प्रकार के कहे गये हैं ?

१६ उत्तर—हे गौतम ! वे पांच प्रकार के कहे गये हैं । यथा–विजय अनुत्तरौपपातिक-वैमानिक देव पचेन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल यावत् सर्वार्थ-सिद्ध अनुत्तरौपपातिक वैमानिक देव पंचेन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल । (दण्डक १)

विवेचन—अब नवदण्डक द्वारा प्रयोग–परिणत पुद्गलों का निरूपण किया जाता है । यहाँ विवक्षा विशेष से नव दण्डक (विभाग) किये गये हैं । यथा—सूक्ष्म एकेन्द्रिय से लेकर सर्वार्थसिद्ध देवों तक जीवों की विशेषता से प्रयोग-परिणत पुद्गलों का प्रथम दण्डक है । २ इस तरह सूक्ष्म पृथ्वी-कायिक जीवों से लेकर सर्वार्थसिद्ध देवों तक पर्याप्त और अपर्याप्त के भेद से दूसरा दण्डक है । ३ औदारिक आदि पांच शरीरों की अपेक्षा से तीसरा दण्डक कहा गया है । ४ पांच इन्द्रियों की अपेक्षा से चौथा दण्डक कहा गया है । ५ औदारिक आदि पांच शरीर और स्पर्शन आदि पांच इन्द्रियाँ, इन दोनों की सम्मिलित विवक्षा से पाँचवाँ दण्डक कहा गया है । ६ वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान की अपेक्षा से छठा दण्डक कहा गया है । ७ औदारिक आदि शरीर और वर्णादि की अपेक्षा से सातवाँ दण्डक कहा गया है । ८ इन्द्रिय और वर्णादि की अपेक्षा से आठवाँ दण्डक कहा गया है । ९ शरीर, इन्द्रिय और वर्णादि की अपेक्षा से नौवां दण्डक कहा गया है । इन नौ दण्डकों में से यहाँ प्रथम दण्डक का वर्णन किया गया है । सर्व प्रथम एकेन्द्रिय जीवों का कथन किया गया है । उनमें पृथ्वीकाय, अप्काय आदि पांचों स्थावरों के सूक्ष्म और बादर ये दो दो भेद किये गये हैं । बेइन्द्रिय जीव अनेक प्रकार के हैं । यथा—लट, गिण्डोला, शंख, शीप, कीड़ा, कृमि आदि । इसी प्रकार तेइन्द्रिय जीवों के भी अनेक भेद हैं । यथा—कुन्थु, पिपीलिका (चींटी) जूं, लीख, चांचड़ (गाय, भैंस आदि के चिपटने वाले जीव चिचड़) माकड़ (खटमल) आदि । चतुरिन्द्रिय जीव भी अनेक प्रकार के हैं । यथा—मक्खी, मच्छर आदि । पंचेन्द्रिय जीवों के नैरयिक, तिर्यंच, मनुष्य और देव, ये मुख्य चार भेद हैं । विवक्षा विशेष से इनके अवान्तर अनेक भेद हैं । सामान्यरूप से उनका कथन ऊपर किया गया है ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दूसरा दण्डक

१७ प्रश्न-सुहुमपुढविक्काइअएगिंदिअपयोगपरिणया णं भंते! पोग्गला कइविहा पण्णत्ता ?

१७ उत्तर-गोयमा! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा-(केया अपज्जत्तगं पढमं भणंति पच्छा पज्जत्तगं*) पज्जत्तगसुहुमपुढविक्काइअ० जाव परिणया य अपज्जत्तगसुहुमपुढविक्काइअ० जाव परिणया य। बादर-पुढविक्काइअएगिंदिय० एवं चेव, एवं जाव वणस्सइकाइया। एक्केक्का दुविहा सुहुमा य बायरा य पज्जत्तगा अपज्जत्तगा य भाणियव्वा।

१८ प्रश्न-बेइंदियपओगपरिणयाणं पुच्छा।

१८ उत्तर-गोयमा! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा-पज्जत्तगबेइं-दियपओगपरिणया य अपज्जत्तग० जाव परिणया य। एवं तेइंदिया वि एवं चउरिंदिया वि।

१९ प्रश्न-रयणप्पभापुढविणेरइअ० पुच्छा।

१९ उत्तर-गोयमा! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा-पज्जत्तगरयण-प्पभा० जाव परिणया य अपज्जत्तग० जाव परिणया य, एवं जाव अहेसत्तमा।

२० प्रश्न-संमुच्छिमजलयरतिरिक्ख० पुच्छा।

* यह पाठ वाचनान्तर से सम्बन्धित है—डोशी।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

२० उत्तर—गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—पज्जत्तग० अपज्जत्तग० । एवं गब्भवक्कंतिया वि । संमुच्छिमचउप्पयथलयरा एवं चेव; एवं गब्भवक्कंतिया वि । एवं जाव संमुच्छिमखहयर० गब्भवक्कंतिया य, एक्केक्के पज्जत्तगा अपज्जत्तगा य भाणियव्वा ।

२१ प्रश्न—संमुच्छिममणुस्सपंचिंदिय० पुच्छा ।

२१ उत्तर—गोयमा ! एगविहा पण्णत्ता, अपज्जत्तगा चेव ।

२२ प्रश्न—गब्भवक्कंतियमणुस्सपंचिंदिय० पुच्छा ।

२२ उत्तर—गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—पज्जत्तगगब्भवक्कंतिया वि, अपज्जत्तगगब्भवक्कंतिया वि ।

कठिन शब्दार्थ—अपज्जत्तगं—अपर्याप्तक ।

भावार्थ—१७ प्रश्न—हे भगवन् ! सूक्ष्म पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल कितने प्रकार के कहे गये हैं ?

१७ उत्तर—हे गौतम ! दो प्रकार के कहे गये हैं । यथा—पर्याप्त—सूक्ष्म-पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय प्रयोगपरिणत पुद्गल और अपर्याप्त सूक्ष्मपृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय प्रयोगपरिणत पुद्गल । (कोई कोई आचार्य अपर्याप्त को पहले और पर्याप्त को पीछे कहते हैं ।) इस प्रकार बादर पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय के भी दो भेद कहना चाहिये । यावत् वनस्पतिकायिक तक सबके सूक्ष्म और बादर, इनके पर्याप्त और अपर्याप्त भेद कहने चाहिये ।

१८ प्रश्न—हे भगवन् ! बेइन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल कितने प्रकार के कहे गये हैं ?

१८ उत्तर—हे गौतम ! दो प्रकार के कहे गये हैं । यथा—पर्याप्त बेइन्द्रिय-प्रयोग-परिणत पुद्गल और अपर्याप्त बेइन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल । इसी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रकार त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गलों के विषय में भी जानना चाहिये।

१९ प्रश्न—हे भगवन्! रत्नप्रभा पृथ्वी नैरयिक प्रयोग-परिणत पुद्गल कितने प्रकार के कहे गये हैं ?

१९ उत्तर—हे गौतम! वे दो प्रकार के कहे गये हैं। यथा—पर्याप्त रत्नप्रभा पृथ्वी नैरयिक प्रयोग-परिणत और अपर्याप्त रत्नप्रभा पृथ्वी नैरयिक प्रयोग-परिणत। इसी प्रकार यावत् अधः सप्तम पृथ्वी नैरयिक प्रयोग-परिणत तक कहना चाहिये।

२० प्रश्न—हे भगवन्! सम्मूच्छिम जलचर तिर्यंच-योनिक पंचेन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल कितने प्रकार के कहे गये हैं ?

२० उत्तर—हे गौतम! वे दो प्रकार के कहे गये हैं। यथा--पर्याप्त सम्मूच्छिम जलचर तिर्यंच-योनिक पंचेन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल और अपर्याप्त सम्मूच्छिम जलचर तिर्यंच-योनिक पंचेन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल। इसी प्रकार गर्भज जलचरों के विषय में भी जानना चाहिये। इसी प्रकार सम्मूच्छिम और गर्भज चतुष्पद स्थलचर जीवों के विषय में यावत् खेचर जीवों तक के विषय में भी जानना चाहिये। इन प्रत्येक के पर्याप्त और अपर्याप्त ये दो दो भेद कहने चाहिये।

२१ प्रश्न—हे भगवन्! सम्मूच्छिम मनुष्य पंचेन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल कितने प्रकार के कहे गये हैं ?

२१ उत्तर—हे गौतम! वे एक प्रकार के कहे गये हैं। यथा--अपर्याप्त-सम्मूच्छिम मनुष्य पंचेन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल।

२२ प्रश्न—हे भगवन्! गर्भज मनुष्य पंचेन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल कितने प्रकार के कहे गये हैं ?

२२ उत्तर—हे गौतम! वे दो प्रकार के कहे गये हैं। यथा--पर्याप्त गर्भज मनुष्य पंचेन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल और अपर्याप्त गर्भज मनुष्य पंचेन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

२३ प्रश्न-असुरकुमारभवणवासिदेवाणं पुच्छा ।

२३ उत्तर-गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा-पज्जत्तगअसुरकुमार० अपज्जत्तगअसुरकुमार०, एवं जाव थणियकुमारा पज्जत्तगा अपज्जत्तगा य । एवं एएणं अभिलावेणं दुयएणं भेएणं पिसाया, जाव गंधव्वा, चंदा, जाव ताराविमाणा, सोहम्मकप्पोवगा, जाव अच्चुओ; हेट्ठिमहेट्ठिमगेविज्जकप्पातीत० जाव उवरिमउवरिमगेविज्ज०; विजयअणुत्तरोववाइअ०, जाव अपराजिअ० ।

२४ प्रश्न-सव्वट्ठसिद्धकप्पाईय० पुच्छा ।

२४ उत्तर-गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा-पज्जत्तासव्वट्ठसिद्धअणुत्तरोववाइअ०, अपज्जत्तासव्वट्ठ० जाव परिणया वि (दं. २)

कठिन शब्दार्थ—एएणं—इस ।

भावार्थ—२३ प्रश्न—हे भगवन् ! असुरकुमार भवनवासी देव प्रयोग-परिणत पुद्गल कितने प्रकार के कहे गये हैं ?

२३ उत्तर-हे गौतम ! वे दो प्रकार के कहे गये हैं। यथा-पर्याप्त असुरकुमार भवनवासी देव प्रयोग-परिणत पुद्गल और अपर्याप्त असुरकुमार भवनवासी देव प्रयोग-परिणत पुद्गल। इसी प्रकार यावत् स्तनित कुमारों तक पर्याप्त और अपर्याप्त ऐसे दो दो भेद कहने चाहिये । इसी प्रकार पिशाच से लेकर गन्धर्व तक आठ प्रकार के वाणव्यन्तर देवों के तथा चन्द्र से लेकर तारा विमान पर्यन्त पांच प्रकार के ज्योतिषी देवों के एवं सौधर्म कल्पोपपन्नक यावत् अच्युत कल्पोपन्नक तक और अधस्तन-अधस्तन ग्रैवेयक कल्पातीत से लेकर उपरितन-उपरितन ग्रैवेयक कल्पातीत देव प्रयोग-परिणत पुद्गल के एवं विजय अनुत्तरौपपातिक कल्पातीत यावत् अपराजित अनुत्तरौपपातिक देवों के प्रत्येक के पर्याप्त

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

और अपर्याप्त ये दो दो भेद कहने चाहिये ।

२४ प्रश्न-हे भगवन् ! सर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरौपपातिक-कल्पातीत देव प्रयोग-परिणत पुद्गल कितने प्रकार के कहे गये हैं ?

२४ उत्तर-हे गौतम ! वे दो प्रकार के कहे गये हैं । यथा-पर्याप्त सर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरौपपातिक-कल्पातीत देव प्रयोग-परिणत पुद्गल और अपर्याप्त सर्वार्थसिद्ध प्रयोग-परिणत पुद्गल । (दण्डक २)

विवेचन-प्रथम दण्डक में पृथ्वीकाय से लेकर सर्वार्थसिद्ध तक जीवों का कथन किया गया है । उन्हीं जीवों में एकेन्द्रिय जीवों में के प्रत्येक के सूक्ष्म और बादर के भेद से दो दो भेद कहे गये हैं और फिर सूक्ष्म और बादर, इनके पर्याप्त और अपर्याप्त के भेद से दो दो भेद कहे गये हैं । इनके आगे के सब जीवों के प्रत्येक के पर्याप्त और अपर्याप्त ये दो दो भेद कहे गये हैं । सम्मूच्छिम मनुष्य का केवल एक अपर्याप्त भेद ही है ।

तीसरा दण्डक

जे अपज्जत्तासुहुमपुढविक्काइयएगिंदियपयोगपरिणया ते ओरालिय-तेयाकम्मगसरीरप्पयोगपरिणया । जे पज्जत्तसुहुम० जाव परिणया ते ओरालिय-तेयाकम्मगसरीरप्पयोगपरिणया, एवं जाव चउरिंदिया पज्जत्ता; णवरं जे पज्जत्ताबायरवाउकाइअएगिंदियप्पयोगपरिणया ते ओरालिय-वेउव्विय-तेया-कम्मसरीर० जाव परिणया; सेसं तं चेव । जे अपज्जत्तरयणप्पभापुढविणेरइयपंचिंदियपयोगपरिणया ते वेउव्वियतेया-कम्मसरीरप्पयोगपरिणया; एवं पज्जत्तगा वि, एवं जाव अहेसत्तमा । जे अपज्जत्तासंमुच्छिमजलयर० जाव परिणया ते ओरालिय-तेयाकम्मासरीर० जाव परिणया, एवं पज्ज-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

त्तगा वि। गब्भवक्कंतियअपज्जत्तगा एवं चेव, पज्जत्तगा णं एवं चेव। णवरं सरीरगाणि चत्तारि जहा बायरवाउक्काइआणं पज्जत्तगाणं; एवं जहा जलयरेसु चत्तारि आलावगा भणिया एवं चउप्पय-उरपरिसप्प-भुयपरिसप्प-खहयरेसु वि चत्तारि आलावगा भाणियव्वा। जे संमुच्छिममणुस्सपंचिंदियपओगपरिणया ते ओरालिय-तेया-कम्मसरीर० जाव परिणया। एवं गब्भवक्कंतिया वि; अपज्जत्तग-पज्जत्तगा वि एवं चेव, णवरं सरीरगाणि पंच भाणियव्वाणि। जे अपज्जत्ताअसुरकुमारभवणवासि० जहा णेरइया तहेव, एवं पज्जत्तगा वि; एवं दुयएणं भेएणं जाव थणियकुमारा। एवं पिसाया, जाव गंधव्वा, चंदा, जाव ताराविमाणा, सोहम्मकप्पो०, जाव अच्चुओ; हेट्ठिमहेट्ठिमगेवेज्जग०, जाव उवरिमउवरिमगेवेज्जग०, विजयअणुत्तरोववाइए, जाव सव्वट्ठसिद्धअणुत्तरोववाइए; एक्केक्के णं दुयओ भेओ भाणियव्वो, जाव जे य पज्जत्तासव्वट्ठसिद्धअणुत्तरोववाइअ०, जाव परिणया ते वेउव्विय-तेया-कम्मासरीरपओगपरिणया। (दं. ३)

कठिन शब्दार्थ-ओरालिय-औदारिक शरीर, तेया-तैजस् शरीर, कम्मग-कार्मण शरीर, वेउव्विय-वैक्रिय शरीर।

भावार्थ-जो पुद्गल अपर्याप्त सूक्ष्म-पृथ्वीकाय एकेन्द्रिय प्रयोग-परिणत हैं, वे औदारिक, तैजस् और कार्मण शरीर प्रयोग-परिणत हैं। जो पुद्गल पर्याप्त सूक्ष्म-पृथ्वीकाय एकेन्द्रिय प्रयोग-परिणत हैं, वे औदारिक, तैजस् और कार्मण शरीर प्रयोग-परिणत हैं। इसी प्रकार यावत् चतुरिन्द्रिय पर्याप्त तक जानना

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चाहिये। परन्तु विशेषता यह है कि जो पुद्गल पर्याप्त बादर वायुकायिक एकेन्द्रिय प्रयोग-परिणत हैं, वे औदारिक, वैक्रिय, तैजस और कार्मण शरीर प्रयोग परिणत हैं। शेष सब पूर्वोक्त कथनानुसार जानना चाहिये। जो पुद्गल अपर्याप्त रत्नप्रभा पृथ्वी नैरयिक पंचेन्द्रिय प्रयोग-परिणत हैं, वे वैक्रिय तैजस् और कार्मण शरीर प्रयोग-परिणत हैं। इसी प्रकार पर्याप्त नैरयिकों के सम्बन्ध में भी जानना चाहिये। इसी प्रकार यावत् अधःसप्तम पृथ्वी नैरयिक तक जानना चाहिये। जो पुद्गल अपर्याप्त सम्मूच्छिम जलचर प्रयोग-परिणत हैं, वे औदारिक, तैजस् और कार्मण शरीर प्रयोग-परिणत हैं। इसी प्रकार पर्याप्त सम्मूच्छिम जलचर के सम्बन्ध में भी जानना चाहिये। गर्भज अपर्याप्त जलचर में इसी तरह जानना चाहिये। गर्भज पर्याप्त जलचर के विषय में भी इसी तरह जानना चाहिये, परंतु विशेषता यह है कि उनमें पर्याप्त बादर वायु की तरह चार शरीर होते हैं। जिस प्रकार जलचरों में चार आलापक कहे गये है, उसी प्रकार चतुष्पद, उरपरिसर्प, भुजपरिसर्प और खेचरों में भी चार चार आलापक कहना चाहिये। जो पुद्गल सम्मूच्छिम मनुष्य पचेन्द्रिय प्रयोग-परिणत हैं, वे औदारिक, तैजस् और कार्मण शरीर प्रयोग-परिणत हैं। इसी प्रकार गर्भज के अपर्याप्त में कहना चाहिये। पर्याप्त के विषय में भी इसी तरह कहना चाहिये, परन्तु इतनी विशेषता है कि कि इनमें पांच शरीर होते हैं। जिस प्रकार नैरयिकों के विषय में कहा, उसी तरह असुरकुमारों से लेकर स्तनितकुमारों तक पर्याप्त और अपर्याप्त में इसी तरह कहना चाहिये। इसी तरह पिशाच से लेकर गन्धर्व पर्यन्त वाणव्यन्तर, चन्द्र से लेकर तारा पर्यन्त ज्योतिषी देव और सौधर्मकल्प से लेकर यावत् सर्वार्थसिद्ध कल्पातीत वैमानिक देवों तक पर्याप्त और अपर्याप्त में वैक्रिय, तैजस् और कार्मण शरीर प्रयोग-परिणत पुद्गल कहना चाहिये।

विवेचन—पृथ्वीकाय से लेकर सर्वार्थसिद्ध पर्यन्त सभी जीवों के प्रयोग-परिणत पुद्गलों में औदारिक आदि यथायोग्य शरीरों का कथन किया गया है। शरीर पांच हैं—औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस् और कार्मण। इस प्रकार शरीरों का वर्णन करने रूप यह तीसरा दण्डक हुआ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चौथा दण्डक

जे अपज्जत्तासुहुमपुढविक्काइय-एगिंदिय-पयोग-परिणया ते फासिंदियप्पयोगपरिणया। जे पज्जत्तासुहुमपुढविक्काइय० एवं चेव। जे अपज्जत्ताबायरपुढविक्काइय० एवं चेव, एवं पज्जत्तगा वि। एवं चउक्कएणं भेएणं जाव वणस्सइकाइया। जे अपज्जत्तावेइंदिय-पयोगपरिणया ते जिब्भिदियफासिंदियपयोगपरिणया, जे पज्जत्ता-बेइंदिय० एवं चेव, एवं जाव चउरिंदिया; णवरं एक्केक्कं इंदियं वड्ढेयव्वं, जाव अपज्जत्तरयणप्पभापुढविणेरइयपंचिंदियपयोगपरि-णया ते सोइंदिय-चक्खिंदिय-घाणिंदिय-जिब्भिदिय-फासिंदियपओग-परिणया। एवं पज्जत्तगा वि, एवं सव्वे भाणियव्वा तिरिक्ख-जोणिय-मणुस्स-देवा, जाव जे पज्जत्तासव्वट्ठसिद्धअणुत्तरोववाइअ० जाव परिणया ते सोइंदिय-चक्खिंदिय० जाव परिणया। (दं. ४)

कठिन शब्दार्थ—वड्ढेयव्वं—बढ़ानी चाहिये।

भावार्थ—जो पुद्गल अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय प्रयोग-परिणत हैं, वे स्पर्शनेन्द्रिय प्रयोग-परिणत हैं। जो पुद्गल पर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय प्रयोग-परिणत हैं, वे भी स्पर्शनेन्द्रिय प्रयोग-परिणत हैं। इसी प्रकार अपर्याप्त बादर पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय प्रयोग-परिणत और पर्याप्त बादर पृथ्वी-कायिक एकेन्द्रिय प्रयोग-परिणत हैं, वे भी स्पर्शनेन्द्रिय प्रयोग-परिणत हैं। इसी प्रकार वनस्पतिकायिक तक सूक्ष्म, बादर, पर्याप्त और अपर्याप्त, ये चारों भेद कहना चाहिये। ये सभी स्पर्शनेन्द्रिय प्रयोग-परिणत हैं। जो पुद्गल अपर्याप्त बेइंद्रिय प्रयोग-परिणत हैं, वे जिव्हेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय प्रयोग-परिणत हैं। इसी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रकार पर्याप्त बेइन्द्रिय प्रयोग-परिणत पुद्गल भी जिव्हा-इन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय प्रयोग-परिणत हैं। इसी प्रकार चतुरिन्द्रिय जीवों तक कहना चाहिये, किन्तु एक-एक इन्द्रिय बढ़ानी चाहिये। अर्थात् त्रीन्द्रिय जीवों के स्पर्शनेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, और घ्राणेन्द्रिय हैं तथा चतुरिन्द्रिय जीवों के स्पर्शनेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय और चक्षुरिन्द्रिय प्रयोग-परिणत हैं। यावत् जो पुद्गल अपर्याप्त रत्नप्रभा पृथ्वी नैरयिक पञ्चेन्द्रिय प्रयोग-परिणत हैं, वे श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, जिव्हेंद्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय प्रयोग-परिणत हैं। इसी प्रकार पर्याप्त नैरयिक प्रयोग-परिणत पुद्गलों के विषय में भी जानना चाहिये। पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च-योनिक, मनुष्य और देव, इन सब के विषय में भी जानना चाहिये। इस प्रकार यावत् जो पुद्गल पर्याप्त सर्वार्थसिद्ध अनुत्तरौपपातिक देव प्रयोग-परिणत हैं वे श्रोत्रेन्द्रिय यावत् स्पर्शनेन्द्रिय प्रयोग-परिणत हैं।

विवेचन—इस चौथे दण्डक में इन्द्रियों की अपेक्षा कथन किया है।

पांचवां दण्डक

जे अपज्जत्तासुहुमपुढविक्काइयएगिंदियओरालिय-तेया-कम्म-सरीरपयोगपरिणया ते फासिंदियप्पयोगपरिणया। जे पज्जत्तासुहुम० एवं चेव, बायरअपज्जत्ता एवं चेव, एवं पज्जत्तगा वि। एवं एएणं अभिलावेणं जस्स जइ इंदियाणि सरीराणि य ताणि भाणियव्वाणि, जाव जे पज्जत्तासव्वट्ठसिद्धअणुत्तरोववाइअ० जाव देवपंचिंदिय-वेउव्विय-तेया-कम्मासरीरप्पओगपरिणया ते सोइंदिय-चक्खिंदियजाव फासिंदियप्पयोगपरिणया। (दं. ५)

कठिन शब्दार्थ—भाणियव्वाणि—कहना चाहिये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ—जो पुद्गल अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय औदारिक, तैजस् और कार्मण शरीर प्रयोग-परिणत हैं, वे स्पर्शनेन्द्रिय प्रयोग-परिणत हैं। जो पुद्गल पर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय औदारिक, तैजस् और कार्मण शरीर प्रयोग-परिणत हैं, वे भी स्पर्शनेन्द्रिय प्रयोग परिणत हैं। इसी प्रकार अपर्याप्त बादर पृथ्वीकायिक और पर्याप्त बादर पृथ्वीकायिक के विषय में भी कहना चाहिये। इसी प्रकार के अभिलाप द्वारा जिस जीव के जितनी इन्द्रियाँ और जितने शरीर हों, उसके उतनी इन्द्रियाँ और उतने शरीरों का कथन करना चाहिये। यावत् जो पुद्गल पर्याप्त सर्वार्थसिद्ध अनुत्तरौपपातिक देव पंचेन्द्रिय वैक्रिय, तैजस् और कार्मण शरीर प्रयोग-परिणत हैं, वे श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय यावत् स्पर्शनेन्द्रिय प्रयोग-परिणत हैं।

विवेचन—पांचवें दण्डक में शरीर और इन्द्रिय, इन दोनों की अपेक्षा कथन किया गया है।

छठा दण्डक

जे अपज्जत्तासुहुम-पुढविकाइय-एगिंदिय-पओग-परिणया ते वण्णओ कालवण्णपरिणया वि, णील-लोहिय-हालिद्द-सुकिल०, गंधओ सुब्भिगंधपरिणया वि; दुब्भिगंधपरिणया वि; रसओ तित्तरस-परिणया वि, कडुयरसपरिणया वि, कसायरसपरिणया वि, अंबिल-रसपरिणया वि, महुररसपरिणया वि; फासओ कक्खडफासपरिणया वि, जाव लुक्खफासपरिणया वि; संठाणओ परिमण्डलसंठाणपरि-णया वि, वट्ट-तंस-चउरंस-आयय-संठाणपरिणया वि। जे पज्जत्त-सुहुमपुढवि० एवं चेव; एवं जहाणुपुव्वीए णेयव्वं, जाव जे पज्जत्ता-

सव्वट्ठसिद्धअणुत्तरोववाइअ० जाव परिणया ते वण्णओ काल वण्ण-परिणया वि, जाव आययसंठाणपरिणया वि । (दं. ६)

कठिन शब्दार्थ--वट्ट--वृत्त (गोल) तंस--त्र्यस्र (त्रिकोण) चउरंस--चतुरस्र (चतुष्कोण) तित्तरस--तिक्तरस, कडुक--कटुक, कसाय--कषैला, अंबिल--आम्ल (खट्टा) महुर--मधुर (मीठा) कक्खड-कर्कश, लुक्ख-रूक्ष, जहाणुपुव्वीए-यथानुपूर्वी (अनुक्रम से)।

भावार्थ-जो पुद्गल अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकाय एकेन्द्रिय प्रयोग परिणत हैं, वे वर्ण से काला, नीला, लाल, पीला और श्वेत, इन पाँचों वर्णपने परिणत हैं। गन्ध से सुरभिगन्ध और दुरभिगन्धपने परिणत हैं। रस से तीखा, कड़वा, कषैला, खट्टा और मीठा, इन पांचों रसपने परिणत हैं। स्पर्श से कर्कश, कोमल, शीत, उष्ण, हल्का, भारी, स्निग्ध और रूक्ष. इन आठों स्पर्शपने परिणत हैं। संस्थान से परिमण्डल, वृत्त, त्र्यस्र, चतुरस्र और आयत, इन पांचों संस्थापने परिणत हैं। जो पुद्गल पर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय प्रयोग-परिणत हैं, वे इसी प्रकार जानने चाहिये और इसी प्रकार यावत् सभी के विषय में क्रम-पूर्वक जानना चाहिये यावत् जो पुद्गल पर्याप्त सर्वार्थसिद्ध अनुत्तरौपपातिक देव प्रयोग-परिणत हैं, वे वर्ण से, काला वर्णपने यावत् संस्थान से आयत संस्थान तक परिणत हैं।

विवेचन--छठे दण्डक में वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान की अपेक्षा कथन किया गया है।

सातवाँ दण्डक

जे अपज्जत्तासुहुमपुढविकाइयएगिंदियओरालिय-तेया-कम्मा-सरीरप्पओगपरिणया ते वण्णओ कालवण्णपरिणया वि, जाव, आययसंठाणपरिणया वि । जे पज्जत्तासुहुमपुढविकाइय० एवं चेव । एवं जहाणुपुव्वीए णेयव्वं, जस्स जइ सरीराणि, जाव जे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पज्जत्ता-सव्वट्ठसिद्ध-अणुत्तरोववाइय-देवपंचिंदियवेउव्विय-तेया-कम्मा-सरीर-जाव परिणया ते वण्णओ कालवण्णपरिणया वि, जाव आयय-संठाणपरिणया वि। (दं. ७)

कठिन शब्दार्थ--णेयव्वा--जानना चाहिये।

भावार्थ—जो पुद्गल अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय औदारिक तैजस् कार्मण शरीर प्रयोग-परिणत हैं, वे वर्ण से काला वर्णपने भी परिणत हैं, यावत् आयत संस्थान रूप से भी परिणत हैं। इस प्रकार पर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वी-कायिक एकेन्द्रिय औदारिक तैजस् कार्मण शरीर प्रयोग-परिणत भी जानना चाहिये। इस प्रकार यथानुक्रम से जानना चाहिये। जिसके जितने शरीर हों उतने कहना चाहिये। यावत् जो पुद्गल पर्याप्त सर्वार्थसिद्ध अनुत्तरौपपातिक देव पञ्चेन्द्रिय वैक्रिय तैजस् कार्मण शरीर प्रयोग-परिणत हैं, वे वर्ण से काला वर्णपने यावत् संस्थान से आयत संस्थान रूप परिणत हैं।

विवेचन–औदारिक आदि शरीर और वर्णादि सहित यह सातवाँ दण्डक कहा गया है।

आठवाँ दण्डक

जे अपज्जत्तासुहुमपुढविकाइयएगिंदिय-फासिंदियपयोग-परिणया ते वण्णओ कालवण्णपरिणया, जाव आययसंठाणपरिणया वि। जे पज्जत्तासुहुमपुढविकाइय० एवं चेव। एवं जहाणुपुव्वीए जस्स जइ इंदियाणि तस्स तइ भाणियव्वाणि, जाव जे पज्जत्तासव्वट्ठसिद्धअणुत्त-रोववाइअ–जाव देवपंचिंदियसोइंदिय जाव–फासिंदियपयोगपरिणया ते वण्णओ कालवण्णपरिणया, जाव आययसंठाणपरिणया वि (दं. ८)।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ-जो पुद्गल अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय स्पर्शनेन्द्रिय प्रयोग-परिणत हैं, वे वर्ण से काला वर्णपने यावत् आयत संस्थानपने भी परिणत हैं। जो पुद्गल पर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय स्पर्शनेन्द्रिय प्रयोग-परिणत हैं। वे भी इसी प्रकार जानना चाहिये। इसी प्रकार अनुक्रम से सभी जानना चाहिये। जिसके जितनी इन्द्रियाँ हों, उसके उतनी कहनी चाहिये। यावत् जो पुद्गल पर्याप्त सर्वार्थसिद्ध अनुत्तरौपपातिक देव पंचेन्द्रिय श्रोत्रेन्द्रिय यावत् स्पर्शनेन्द्रिय प्रयोग-परिणत हैं, वे वर्ण से काला वर्णपने यावत् आयत संस्थानपने परिणत हैं।

विवेचन—इन्द्रिय वर्णादि विशिष्ट यह आठवाँ दण्डक कहा गया है।

नौवाँ दण्डक

जे अपज्जत्तासुहुमपुढविक्काइयएगिंदियओरालिय-तेया-कम्मा-फासिंदियपयोगपरिणया ते वण्णओ कालवण्णपरिणया वि, जाव आययसंठाणपरिणया वि। जे पज्जत्तासुहुमपुढविक्काइय० एवं चेव। एवं जहाणुपुव्वीए जस्स जइ सरीराणि इंदियाणि य तस्स तइ भाणियव्वाणि, जाव जे पज्जत्तासव्वट्ठसिद्धअणुत्तरोववाइय जाव देव पंचिंदियवेउव्विय-तेया-कम्मा-सोइंदिय-जाव फासिंदियपओगपरिणया ते वण्णओ कालवण्णपरिणया, जाव आययसंठाणपरिणया वि। एवं एए णव दंडगा।

भावार्थ-जो पुद्गल अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय औदारिक तैजस् कार्मण तथा स्पर्शनेन्द्रिय प्रयोग-परिणत हैं, वे वर्ण से काला वर्णपने भी यावत् आयत संस्थानपने भी परिणत हैं। वे जो पर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय औदारिक तैजस् कार्मण तथा स्पर्शनेन्द्रिय प्रयोग-परिणत हैं, वे भी इसी प्रकार

जानना चाहिये। इस प्रकार अनुक्रम से सभी जानना चाहिये। जिसके जितने शरीर और इन्द्रियां हों, उसके उतने शरीर और उतनी इन्द्रियाँ कहनी चाहिये। यावत् जो पुद्गल पर्याप्त सर्वार्थसिद्ध अनुत्तरौपपातिक देव पंचेन्द्रिय वैक्रिय तैजस् कार्मण तथा श्रोत्रेन्द्रिय यावत् स्पर्शनेन्द्रिय प्रयोग-परिणत हैं, वे वर्ण से काला वर्णपने यावत् संस्थान से आयत संस्थानपने परिणत हैं। इस प्रकार ये नव दण्डक कहे गये हैं।

विवेचन—शरीर, इन्द्रिय, वर्णादि विशिष्ट यह नौवां दण्डक कहा गया है।

मिश्रपरिणत पुद्गल विषयक नौ दण्डक

२५ प्रश्न–मीसापरिणया णं भंते ! पोग्गला कइविहा पण्णत्ता ?

२५ उत्तर–गोयमा ! पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा–एगिंदिय-मीसापरिणया, जाव पंचिंदियमीसापरिणया।

२६ प्रश्न–एगिंदियमीसापरिणया णं भंते ! पोग्गला कइविहा पण्णत्ता ?

२६ उत्तर–गोयमा ! एवं जहा पओगपरिणएहिं णव दंडगा भणिया, एवं मीसापरिणएहिं वि णव दंडगा भाणियव्वा, तहेव सव्वं णिरवसेसं, णवरं अभिलावो 'मीसापरिणया' भाणियव्वं, सेसं तं चेव, जाव जे पज्जत्तासव्वट्ठसिद्ध-अणुत्तरोववाइअ जाव आययसंठाणपरिणया वि।

कठिन शब्दार्थ--णिरवसेसं--सम्पूर्ण, णवरं—विशेषता।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ--२५ प्रश्न-हे भगवन् ! मिश्र-परिणत पुद्गल कितने प्रकार के कहे गये हैं ?

२५ उत्तर-हे गौतम ! पांच प्रकार के कहे गये हैं । यथा-एकेन्द्रियमिश्र-परिणत यावत् पंचेन्द्रिय मिश्रपरिणत ।

२६ प्रश्न-हे भगवन् ! एकेन्द्रिय मिश्र-परिणत पुद्गल कितने प्रकार के कहे गये हैं ?

२६ उत्तर-हे गौतम ! जिस प्रकार प्रयोग-परिणत पुद्गलों के विषय में नौ दण्डक कहे गये हैं, उसी प्रकार मिश्र-परिणत पुद्गलों के विषय में भी नौ दण्डक कहना चाहिये और उसी प्रकार सारा वर्णन कहना चाहिये । पूर्वोक्त वर्णन से इसमें अन्तर यह है कि- 'प्रयोग-परिणत' के स्थान पर 'मिश्र-परिणत'- कहना चाहिये । शेष सभी उसी प्रकार कहना चाहिये । यावत् जो पुद्गल पर्याप्त सर्वार्थसिद्ध अनुत्तरौपपातिक मिश्र-परिणत हैं, वे यावत् आयत संस्थान रूप से भी परिणत हैं ।

विस्रसा-परिणत पुद्गल

२७ प्रश्न--वीससापरिणया णं भंते ! पोग्गला कइविहा पण्णत्ता ?

२७ उत्तर-गोयमा ! पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा-वण्णपरिणया गंधपरिणया, रसपरिणया, फासपरिणया, संठाणपरिणया । जे वण्णपरिणया ते पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा-कालवण्णपरिणया, जाव सुक्किल्लवण्णपरिणया । जे गंधपरिणया ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहा-सुब्भिगंधपरिणया वि, दुब्भिगंधपरिणया वि एवं जहा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पण्णवणाए तहेव निरवसेसं जाव जे संठाणओ आययसंठाणपरिणया ते वण्णओ कालवण्णपरिणया वि, जाव लुक्खफासपरिणया वि ।

भावार्थ–२७ प्रश्न–हे भगवन् ! विस्रसा-परिणत पुद्गल कितने प्रकार के कहे गये हैं ?

२७ उत्तर–हे गौतम ! वे पांच प्रकार के कहे गये हैं । यथा–वर्ण-परिणत, गंध-परिणत, रस-परिणत, स्पर्श-परिणत और संस्थान-परिणत । वर्ण-परिणत पुद्गल पांच प्रकार के कहे गये हैं । यथा–काला वर्णपने परिणत यावत् शुक्ल वर्णपने परिणत । जो गन्ध-परिणत हैं, वे दो प्रकार के कहे गये हैं, यथा-सुरभिगंध परिणत और दुरभिगन्ध-परिणत । जिस प्रकार प्रज्ञापना सूत्र के पहले पद में कहा गया है, उसी प्रकार यहाँ भी कहना चाहिये । यावत् जो पुद्गल संस्थान से आयत संस्थान रूप परिणत हैं, वे वर्ण से काला वर्णपने भी परिणत हैं यावत् रूक्ष स्पर्शपने भी परिणत हैं ।

विवेचन—स्वभाव से परिणाम को प्राप्त पुद्गल 'विस्रसापरिणत' कहलाते हैं । उनके वर्ण की अपेक्षा पांच, गन्ध की अपेक्षा दो, रस की अपेक्षा पांच, स्पर्श की अपेक्षा आठ और संस्थान की अपेक्षा पांच भेद होते हैं । इनका विशेष विवरण प्रज्ञापना सूत्र के पहले पद में है ।

एक द्रव्य परिणाम

२८ प्रश्न–एगे भंते ! दव्वे किं पओगपरिणए, मीसापरिणए, वीससापरिणए ?

२८ उत्तर–गोयमा ! पओगपरिणए वा, मीसापरिणए वा,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वीससापरिणए वा ।

२९ प्रश्न–जइ पयोगपरिणए किं मणप्पयोगपरिणए, वयप्पयोग-परिणए, कायप्पयोगपरिणए ?

२९ उत्तर–गोयमा ! मणप्पओगपरिणए वा, वयप्पयोगपरिणए वा, कायप्पओगपरिणए वा ।

३० प्रश्न–जइ मणप्पओगपरिणए किं सच्चमणप्पयोगपरिणए, मोसमणप्पयोगपरिणए, सच्चामोसमणप्पयोगपरिणए, असच्चामोसमण-प्पओगपरिणए ?

३० उत्तर–गोयमा ! सच्चमणप्पयोगपरिणए वा, मोसमणप्पयोग-परिणए वा, सच्चामोसमणप्पओगपरिणए वा, असच्चामोसमणप्पओग-परिणए वा ।

३१ प्रश्न–जइ सच्चमणप्पओगपरिणए किं आरंभसच्चमणप्पयोग-परिणए, अणारंभसच्चमणप्पयोगपरिणए, सारंभसच्चमणप्पयोगपरिणए, असारंभसच्चमणप्पयोगपरिणए, समारंभसच्चमणप्पयोगपरिणए, असमारंभ-सच्चमणप्पयोगपरिणए ?

३१ उत्तर–गोयमा ! आरंभसच्चमणप्पयोगपरिणए वा, जाव असमारंभसच्चमणप्पयोगपरिणए वा ।

३२ प्रश्न–जइ मोसमणप्पयोगपरिणए किं आरंभमोसमणप्पओग-परिणए वा ?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

३२ उत्तर—एवं जहा सच्चेणं तहा मोसेण वि, एवं सच्चामोसमणप्पयोगेण वि, एवं असच्चामोसमणप्पयोगेण वि।

३३ प्रश्न—जइ वइप्पयोगपरिणए किं सच्चवइप्पयोगपरिणए, मोसवइप्पयोगपरिणए ?

३३ उत्तर—एवं जहा मणप्पयोगपरिणए तहा वइप्पयोगपरिणए वि, जाव असमारंभवइप्पयोगपरिणए वा।

कठिन शब्दार्थ—दव्वे—द्रव्य, जइ—यदि, आरंभ—हिंसा, अणारंभ—अहिंसा, सारंभ—हिंसा का संकल्प, समारंभ—परिताप उत्पन्न करना, सच्चमणप्पयोग—सत्य मन प्रयोग।

भावार्थ—२८ प्रश्न—हे भगवन् ! एक द्रव्य क्या प्रयोग-परिणत होता है, मिश्र-परिणत होता है, अथवा विस्रसा-परिणत होता है ?

२८ उत्तर—हे गौतम ! एक द्रव्य प्रयोग-परिणत होता है, अथवा मिश्र-परिणत होता है, अथवा विस्रसा-परिणत होता है।

२९ प्रश्न—हे भगवन् ! यदि एक द्रव्य प्रयोग-परिणत होता है, तो क्या मन प्रयोग-परिणत होता है, वचन प्रयोग-परिणत होता है, या काय प्रयोग-परिणत होता है ?

२९ उत्तर—हे गौतम ! वह मन प्रयोग-परिणत होता है, या वचन प्रयोग-परिणत होता है, या काय प्रयोग-परिणत होता है।

३० प्रश्न—हे भगवन् ! यदि एक द्रव्य मन प्रयोग-परिणत होता है, तो क्या सत्य-मन प्रयोग-परिणत होता है, मृषा-मन प्रयोग-परिणत होता है, सत्य-मृषा-मन प्रयोग-परिणत होता है, या असत्यामृषा-मन प्रयोग-परिणत होता है ?

३० उत्तर—हे गौतम ! वह सत्य-मन प्रयोग-परिणत होता है, या मृषा-मन प्रयोग-परिणत होता है, या सत्यमृषा-मन प्रयोग-परिणत होता है, या असत्यामृषा-मन प्रयोग-परिणत होता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

३१ प्रश्न–हे भगवन् ! यदि एक द्रव्य, सत्य-मन प्रयोग-परिणत होता है, तो क्या आरम्भ सत्य-मन प्रयोग-परिणत होता है, अनारम्भ सत्य-मन प्रयोग-परिणत होता है, सारम्भ सत्य-मन प्रयोग-परिणत होता है, असारम्भ सत्य-मन प्रयोग-परिणत होता है, समारम्भ सत्य-मन प्रयोग-परिणत होता है, या असमारम्भ सत्य-मन प्रयोग-परिणत होता है ?

३१ उत्तर—हे गौतम ! वह आरम्भ सत्य-मन प्रयोग-परिणत होता है, अथवा यावत् असमारम्भ सत्य मन प्रयोग-परिणत होता है।

३२ प्रश्न–हे भगवन् ! यदि एक द्रव्य, मृषा-मन प्रयोग-परिणत होता है, तो क्या आरंभमृषा-मन प्रयोग-परिणत होता है, यावत् असमारम्भ मृषा-मन प्रयोग-परिणत होता है ?

३२ उत्तर–हे गौतम ! जिस प्रकार सत्य-मन प्रयोग-परिणत के विषय में कहा है, उसी प्रकार मृषा-मन प्रयोग-परिणत के विषय में भी कहना चाहिये, तथा सत्य-मृषा-मन प्रयोग-परिणत के विषय में एवं असत्या-मृषा-मन प्रयोग-परिणत के विषय में भी कहना चाहिये।

३३ प्रश्न–हे भगवन् ! यदि एक द्रव्य, वचन-प्रयोग-परिणत होता है, तो क्या सत्य वचन प्रयोग-परिणत होता है, मृषा-वचन प्रयोग-परिणत होता है, सत्य-मृषा-वचन प्रयोग-परिणत होता है, या असत्यामृषा वचन-प्रयोग-परिणत होता है ?

३३ उत्तर–हे गौतम ! जिस प्रकार मन प्रयोग-परिणत के विषय में कहा है, उसी प्रकार वचन प्रयोग-परिणत के विषय में भी कहना चाहिये। यावत् वह असमारम्भ वचन प्रयोग-परिणत होता है—यहाँ तक कहना चाहिये।

विवेचन—मन, वचन और काया के व्यापार को 'योग' कहते हैं। वीर्यान्तराय के क्षय, या क्षयोपशम से मनोवर्गणा, वचनवर्गणा और कायवर्गणा के पुद्गलों का आलम्बन लेकर आत्म-प्रदेशों में होने वाले परिस्पन्द—कम्पन या हलन-चलन को भी 'योग' कहते हैं। इसी योग को 'प्रयोग' भी कहते हैं। आलम्बन के भेद से इसके तीन भेद हैं,—मन,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वचन और काया। इनमें मन के चार, वचन के चार और काया के सात, इस प्रकार कुल पन्द्रह भेद हो जाते हैं। मन के चार भेद ये हैं—(१) सत्यमनोयोग—मन का जो व्यापार सत् अर्थात् सज्जन पुरुष या साधुओं के लिये हितकारी हो, उन्हें मोक्ष की तरफ ले जाने वाला हो, उसे 'सत्यमनोयोग' कहते हैं, अथवा सत्पदार्थों के अर्थात् जीवादि पदार्थों के अनेकान्त रूप यथार्थ विचार को-'सत्यमनोयोग' कहते हैं।

(२) असत्यमनोयोग—सत्य से विपरीत अर्थात् संसार की तरफ ले जाने वाले मन के व्यापार को--'असत्यमनोयोग' कहते हैं, अथवा 'जीवादि पदार्थ नहीं है, इत्यादि मिथ्या विचार को 'असत्य मनोयोग' कहते हैं।

(३) सत्यमृषा (मिश्र) मनोयोग—व्यवहार नय से ठीक होने पर भी जो विचार निश्चय नय से पूर्ण सत्य न हो, जैसे—किसी उपवन में धव, खैर, पलाश आदि के कुछ पेड़ होने पर भी अशोक वृक्ष अधिक होने से उसे 'अशोकवन' कहना। वन में अशोक वृक्षों के होने से यह बात सत्य है और धव आदि के वृक्ष होने से यह बात मृषा (असत्य) भी है।

(४) असत्यामृषा मनोयोग--जो विचार सत्य भी नहीं है और असत्य भी नहीं है, उसे 'असत्यामृषा (व्यवहार) मनोयोग' कहते हैं। किसी प्रकार का विवाद खड़ा होने पर वीतराग सर्वज्ञ के बताये हुए सिद्धान्त के अनुसार विचार करने वाला 'आराधक' कहा जाता है। उसका विचार सत्य है। जो व्यक्ति सर्वज्ञ के सिद्धान्त से विपरीत विचारता है, जीवादि पदार्थों को एकान्त नित्य आदि बताता है, वह 'विराधक' है। उसका विचार असत्य है। जहाँ वस्तु को सत्य या असत्य किसी प्रकार सिद्ध करने की इच्छा नहीं हो, केवल वस्तु का स्वरूप मात्र दिखाया जाय। जैसे—देवदत्त! घड़ा लाओ। इत्यादि चिन्तन में वहाँ सत्य या असत्य कुछ नहीं होता, आराधक, विराधक की कल्पना भी वहाँ नहीं होती। इस प्रकार के विचार को 'असत्यामृषा मनोयोग' कहते हैं। यह भी व्यवहार नय की अपेक्षा से है। निश्चय नय से तो इसका सत्य या असत्य में समावेश हो जाता है।

वचन योग के भी मनोयोग की तरह चार भेद हैं। यथा—(१) सत्य वचन योग, (२) असत्य वचन योग, (३) सत्य-मृषा वचन योग और (४) असत्यामृषा वचन योग। इनका स्वरूप मनोयोग के समान ही समझना चाहिये। मनोयोग में केवल विचार मात्र का ग्रहण है और वचन योग में वाणी का ग्रहण है, अर्थात् मनोगत भावों को वचन द्वारा प्रकट करना।

औदारिक आदि काय-योग द्वारा मनोवर्गणा के द्रव्यों को ग्रहण करके उन्हें मनोयोग द्वारा मनपने परिणमाए हुए पुद्गल 'मनःप्रयोगपरिणत' कहलाते हैं। औदारिक आदि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

काय-योग द्वारा भाषा-द्रव्य को ग्रहण करके वचन-योग द्वारा भाषारूप में परिणत करके बाहर निकाले जाने वाले पुद्गल 'वचन प्रयोग-परिणत' कहलाते हैं। औदारिक आदि काय-योग द्वारा ग्रहण किये हुए औदारिकादि वर्गणाद्रव्य को औदारिकादि शरीररूप से परिणमाए हुए पुद्गल 'काय-योग परिणत' कहलाते हैं।

जीव हिंसा को 'आरम्भ' कहते हैं। हिंसा में मनःप्रयोग द्वारा परिणत पुद्गल 'आरम्भ सत्य-मनः प्रयोग-परिणत' कहलाते हैं। इसी तरह दूसरों के स्वरूप को भी समझ-लेना चाहिये, परन्तु इतनी विशेषता है कि जीव हिंसा के अभाव को 'अनारम्भ' कहते हैं। किसी जीव को मारने के लिये मानसिक संकल्प करना 'सारम्भ' (संरम्भ) कहलाता है। जीवों को परिताप उपजाना 'समारम्भ' कहालाता है। जीवों को प्राण से रहित कर देना 'आरम्भ' कहलाता है।

३४ प्रश्न-जइ कायप्पयोगपरिणए किं ओरालियसरीरकायप्पयोगपरिणए, ओरालियमीसासरीरकायप्पयोगपरिणए, वेउव्वियसरीरकायप्पयोगपरिणए वेउव्वियमीसासरीरकायप्पयोगपरिणए, आहारगसरीरकायप्पयोगपरिणए, आहारगमीसासरीरकायप्पयोगपरिणए, कम्मासरीरकायप्पयोगपरिणए ?

३४ उत्तर-गोयमा ! ओरालियसरीरकायप्पयोगपरिणए वा, जाव कम्मासरीरकायप्पयोगपरिणए वा।

३५ प्रश्न-जइ ओरालियसरीरकायप्पयोगपरिणए किं एगिंदिय ओरालियसरीरकायप्पयोगपरिणए, एवं जाव पंचिंदियओरालिय-जाव परिणए ?

३५ उत्तर-गोयमा ! एगिंदियओरालियसरीरकायप्पयोगपरि-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णए वा, बेइंदिय जाव परिणए वा, जाव पंचिंदियओरालियकायप्पयोगपरिणए वा ।

३६ प्रश्न-जइ एगिंदियओरालियसरीरकायप्पओगपरिणए किं पुढविक्काइयएगिंदिय जाव परिणए वा, जाव वणस्सइकाइयएगिंदियओरालियकायप्पओगपरिणए वा ?

३६ उत्तर-गोयमा ! पुढविक्काइयएगिंदिय जाव परिणए वा, जाव वणस्सइकाइयएगिंदिय जाव परिणए वा ।

३७ प्रश्न-जइ पुढविक्काइयएगिंदियओरालियसरीर जाव परिणए, किं सुहुमपुढविक्काइय जाव परिणए, बायरपुढविक्काइय जाव परिणए ?

३७ उत्तर-गोयमा ! सुहुमपुढविक्काइयएगिंदिय जाव परिणए वा, बायरपुढविक्काइय जाव परिणए वा ।

३८ प्रश्न-जइ सुहुमपुढविक्काइय जाव परिणए किं पज्जत्तसुहुमपुढविक्काइय जाव परिणए, अपज्जत्तसुहुमपुढविक्काइय जाव परिणए ?

३८ उत्तर-गोयमा ! पज्जत्तसुहुमपुढविक्काइय जाव परिणए वा, अपज्जत्तसुहुमपुढविक्काइय जाव परिणए वा; एवं बायरा वि, एवं जाव वणस्सइकाइयाणं चउक्कओ भेओ, बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदियाणं दुयओ भेओ-पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ-३४ प्रश्न-हे भगवन् ! यदि एक द्रव्य काय प्रयोग-परिणत होता है, तो क्या औदारिक-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है, औदारिकमिश्र-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है, वैक्रिय-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है, वैक्रिय मिश्र शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है, आहारक-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है, आहारक-मिश्र शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है, या कार्मणशरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है ?

३४ उत्तर-हे गौतम ! वह एक द्रव्य औदारिक-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है, अथवा यावत् कार्मणशरीर काय-प्रयोगपरिणत होता है ।

३५ प्रश्न-हे भगवन् ! यदि एक द्रव्य औदारिक-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है, तो क्या एकेन्द्रिय औदारिक-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है, अथवा यावत् पंचेन्द्रिय औदारिक-शरीर-काय-प्रयोग परिणत होता है ?

३५ उत्तर-हे गौतम ! वह एक द्रव्य एकेन्द्रिय औदारिक-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है, या बेइन्द्रिय औदारिक-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है अथवा यावत् पंचेन्द्रिय औदारिक-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है ।

३६ प्रश्न-हे भगवन् ! जो एक द्रव्य एकेन्द्रिय औदारिक-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है, तो क्या वह पृथ्वीकाय एकेन्द्रिय औदारिक-शरीर काय-प्रयोग परिणत होता है, अथवा यावत् वनस्पतिकायिक एकेन्द्रिय औदारिक-शरीर काय-प्रयोग परिणत होता है ?

३६ उत्तर-हे गौतम ! वह पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय औदारिक-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है अथवा यावत् वनस्पतिकायिक एकेन्द्रिय औदारिक-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है ।

३७ प्रश्न-हे भगवन् ! जो एक द्रव्य पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय औदारिक-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है, तो क्या वह सूक्ष्म पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय औदारिक-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है, अथवा बादर पृथ्वीकायिक एकेंद्रिय औदारिक-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है ?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

३७ उत्तर—हे गौतम ! वह सूक्ष्म पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय औदारिक-शरीर काय-प्रयोग परिणत होता है । अथवा बादर पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय औदारिक-शरीर काय-प्रयोग परिणत होता है ।

३८ प्रश्न—हे भगवन् ! जो एक द्रव्य सूक्ष्म पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय औदारिक-शरीर काय-प्रयोग परिणत होता है, तो क्या पर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक एकेंद्रिय औदारिक-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है, या अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय औदारिक-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है ?

३८ उत्तर—हे गौतम ! वह पर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय औदारिक-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है, या अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक एकेंद्रिय औदारिक-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है । इसी प्रकार बादर पृथ्वीकायिक के विषय में भी जानना चाहिये । इसी प्रकार यावत् वनस्पतिकायिक तक सभी के चार चार भेद (सूक्ष्म, बादर, पर्याप्त और अपर्याप्त) के विषय में जानना चाहिये । इसी प्रकार बेइंद्रिय तेइंद्रिय और चोइंद्रिय के दो दो भेद (पर्याप्त और अपर्याप्त) के विषय में कहना चाहिये ।

३९ प्रश्न—जइ पंचिंदियओरालियसरीरकायप्पयोगपरिणए किं तिरिक्खजोणियपंचिंदियओरालियसरीरकायप्पयोगपरिणए, मणुस्स-पंचिंदिय जाव परिणए ?

३९ उत्तर—गोयमा ! तिरिक्खजोणिय जाव परिणए वा, मणुस्सपंचिंदिय जाव परिणए वा ।

४० प्रश्न—जइ तिरिक्खजोणिय जाव परिणए किं जलयर-तिरिक्खजोणिय जाव परिणए वा, थलयर-खहयर जाव परिणए वा ?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

४० उत्तर-एवं चउक्कओ भेओ, जाव खहयराणं ।

४१ प्रश्न-जइ मणुस्सपंचिंदिय जाव परिणए किं संमुच्छिम-मणुस्सपंचिंदिय जाव परिणए, गब्भवक्कंतियमणुस्स जाव परिणए ?

४१ उत्तर-गोयमा ! दोसु वि ।

४२ प्रश्न-जइ गब्भवक्कंतियमणुस्स जाव परिणए किं पज्जत्त-गब्भवक्कंतिय जाव परिणए, अपज्जत्तगब्भवक्कंतियमणुस्सपंचिंदिय-ओरालियसरीरकायप्पयोगपरिणए ?

४२ उत्तर-गोयमा ! पज्जत्तगब्भवक्कंतिय जाव परिणए वा, अपज्जत्तगब्भवक्कंतिय जाव परिणए वा ।

४३ प्रश्न-जइ ओरालियमीसासरीरकायप्पओगपरिणए किं एगिंदियओरालियमीसासरीरकायप्पओगपरिणए, बेइंदिय जाव परिणए, जाव पंचिंदियओरालिय जाव परिणए ?

४३ उत्तर-गोयमा ! एगिंदियओरालिय एवं जहा ओरालिय-सरीरकायप्पयोगपरिणएणं आलावगो भणिओ, तहा ओरालियमीसा-सरीरकायप्पयोगपरिणएण वि आलावगो भाणियव्वो; णवरं बायर-वाउकाइय-गब्भवक्कंतिय-पंचिंदिय-तिरिक्खजोणिय-गब्भवक्कंतिय-मणुस्साणं एएसिणं पज्जत्तापज्जत्तगाणं, सेसाणं अपज्जत्तगाणं ।

भावार्थ-३९ प्रश्न-हे भगवन् ! यदि एक द्रव्य पञ्चेन्द्रिय औदारिक शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है, तो क्या तिर्यंच योनि पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

काय-प्रयोग-परिणत होता है, अथवा मनुष्य पञ्चेन्द्रिय औदारिक शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है ?

३९ उत्तर-हे गौतम ! वह तिर्यंचयोनिक पञ्चेन्द्रिय औदारिक-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है, अथवा मनुष्य पञ्चेन्द्रिय औदारिक-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है।

४० प्रश्न-हे भगवन् ! यदि एक द्रव्य तिर्यञ्चयोनिक पञ्चेन्द्रिय औदारिक-शरीर कायप्रयोग-परिणत होता है, तो क्या जलचर तिर्यंचयोनिक पंचेन्द्रिय औदारिक-शरीर कायप्रयोग-परिणत होता है, अथवा स्थलचर तिर्यंचयोनिक पञ्चेन्द्रिय औदारिक-शरीर कायप्रयोग-परिणत होता है, अथवा खेचर तिर्यंचयोनिक पंचेंद्रिय औदारिक-शरीर कायप्रयोग-परिणत होता है ?

४० उत्तर-हे गौतम ! यावत् खेचरों तक चार चार भेदों (सम्मूच्छिम, गर्भज, पर्याप्त, अपर्याप्त) के विषय में पहले कहे अनुसार जानना चाहिये।

४१ प्रश्न—हे भगवन् ! यदि एक द्रव्य मनुष्य पञ्चेन्द्रिय औदारिक शरीर कायप्रयोग-परिणत होता है, तो क्या सम्मूच्छिम मनुष्य पञ्चेन्द्रिय औदारिक-शरीर कायप्रयोग-परिणत होता है, अथवा गर्भज मनुष्य पञ्चेन्द्रिय औदारिक-शरीर कायप्रयोग-परिणत होता है ?

४१ उत्तर-हे गौतम ! वह सम्मूच्छिम, अथवा गर्भज मनुष्य पञ्चेन्द्रिय औदारिक-शरीर कायप्रयोग-परिणत होता है।

४२ प्रश्न-हे भगवन् ! यदि एक द्रव्य गर्भज मनुष्य पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर कायप्रयोग-परिणत होता है, तो क्या पर्याप्त गर्भज मनुष्य पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर कायप्रयोग-परिणत होता है, अथवा अपर्याप्त गर्भज मनुष्य पञ्चेन्द्रिय औदारिक-शरीर कायप्रयोग-परिणत होता है ?

४२ उत्तर-हे गौतम ! वह पर्याप्त गर्भज मनुष्य पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर कायप्रयोग-परिणत होता है, अथवा अपर्याप्त गर्भज मनुष्य पंचेन्द्रिय औदारिक-शरीर कायप्रयोग-परिणत होता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

४३ प्रश्न–हे भगवन् ! यदि एक द्रव्य औदारिक-मिश्र शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है, तो क्या एकेंद्रिय औदारिक-मिश्र-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है, बेइंद्रिय-औदारिक-मिश्र-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है, या यावत् पंचेन्द्रिय औदारिक-मिश्र-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है ।

४३ उत्तर–हे गौतम ! वह एकेन्द्रिय औदारिक-मिश्र-शरीर काय-प्रयोग परिणत होता है, अथवा बेइंद्रिय औदारिक-मिश्र-शरीर काय-प्रयोग परिणत होता है, अथवा यावत् पंचेन्द्रिय औदारिक-मिश्र-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है। जिस प्रकार औदारिक-शरीर काय-प्रयोग-परिणत के आलापक कहे हैं, उसी प्रकार औदारिक-मिश्र-शरीर काय-प्रयोग-परिणत के भी आलापक कहना चाहिये । किंतु इतनी विशेषता है कि औदारिक-मिश्र-शरीर काय-प्रयोग-परिणत का आलापक बादर वायुकायिक, गर्भज पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च और गर्भज मनुष्य के पर्याप्त और अपर्याप्त के विषय में कहना चाहिये और इसके सिवाय शेष सभी जीवों के अपर्याप्त के विषय में कहना चाहिये ।

विवेचन—काया की प्रवृत्ति को 'काय-योग' कहते हैं । इसके सात भेद हैं—

(१) औदारिक काय-योग—काय का अर्थ है 'समूह'। औदारिक-शरीर, पुद्गल-स्कन्धों का समूह है, इसलिये काय है। इससे होने वाले व्यापार को 'औदारिक-शरीर काय-योग' कहते हैं । यह योग मनुष्य और तिर्यञ्चों के होता है ।

(२) औदारिक-मिश्र काय-योग—औदारिक के साथ कार्मण, वैक्रिय या आहारक की सहायता से होने वाले वीर्य-शक्ति के व्यापार को 'औदारिक-मिश्र काय-योग' कहते हैं। यह योग उत्पत्ति के समय से लेकर जब तक शरीर पर्याप्ति पूर्ण न हो, तब तक सभी औदारिक शरीरधारी जीवों के होता है । वैक्रिय-लब्धिधारी मनुष्य और तिर्यञ्च जब वैक्रिय शरीर का त्याग करते हैं, तब भी औदारिक-मिश्र होता है । वैक्रिय बनाते समय तो वैक्रिय-मिश्र-काय-योग होता है । इसी प्रकार लब्धिधारी मुनिराज जब आहारक शरीर बनाते है, तब तो आहारक-मिश्र-काय-योग का प्रयोग होता है, किन्तु आहारक शरीर से निवृत्त होते समय अर्थात् वापिस स्वशरीर में प्रवेश करते समय 'औदारिक-मिश्र काय-योग' का प्रयोग होता है । केवली भगवान् जब केवली समुद्घात करते हैं, तब केवली समुद्घात के आठ समयों में से दूसरे, छठे और सातवें समय में 'औदारिक-मिश्र काय-योग' का प्रयोग होता है ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

४४ प्रश्न–जइ वेउव्वियसरीरकायप्पयोगपरिणए किं एगिंदिय-वेउव्वियसरीरकायप्पयोगपरिणए, जाव पंचिंदियवेउव्वियसरीर जाव परिणए ?

४४ उत्तर—गोयमा ! एगिंदिय जाव परिणए वा, पंचिंदिय जाव परिणए वा ।

४५ प्रश्न–जइ एगिंदिय जाव परिणए, किं वाउकाइयएगिंदिय जाव परिणए, अवाउकाइयएगिंदिय जाव परिणए ?

४५ उत्तर–गोयमा ! वाउकाइयएगिंदिय जाव परिणए, णो अवाउकाइय जाव परिणए; एवं एएणं अभिलावेणं जहा 'ओगाहणसंठाणे' वेउव्वियसरीरं भणियं तहा इह वि भाणियव्वं, जाव पज्जत्तसव्वट्ठसिद्धअणुत्तरोववाइयकप्पाईयवेमाणियदेवपंचिंदियवेउव्वियसरीरकायप्पओगपरिणए वा, अपज्जत्तसव्वट्ठसिद्ध अणुत्तरोववाईय जाव परिणए वा ।

४६ प्रश्न—जइ वेउव्वियमीसासरीरकायप्पयोगपरिणए किं एगिंदियमीसासरीरकायप्पयोगपरिणए जाव पंचिंदियमीसासरीर-कायप्पयोगपरिणए ?

४६ उत्तर–एवं जहा वेउव्वियं तहा वेउव्वियमीसगं वि, णवरं देव-णेरइयाणं अपज्जत्तगाणं, सेसाणं पज्जत्तगाणं तहेव, जाव णो पज्जत्त-सव्वट्ठसिद्धअणुत्तरोववाइय जाव परिणए, अपज्जत्तसव्वट्ठसिद्ध-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अणुत्तरोववाइयदेवपंचिंदियवेउव्वियमीसासरीरकायप्पयोगपरिणए ।

भावार्थ—४४ प्रश्न—हे भगवन् ! यदि एक द्रव्य वैक्रिय-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है, तो क्या एकेन्द्रिय वैक्रिय-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है, अथवा यावत् पंचेन्द्रिय वैक्रिय-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है ?

४४ उत्तर—हे गौतम ! वह एकेन्द्रिय वैक्रिय-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है, अथवा पंचेंद्रिय वैक्रिय-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है ।

४५ प्रश्न—हे भगवन् ! यदि एक द्रव्य एकेंद्रिय वैक्रिय-शरीर काय प्रयोग-परिणत होता है, तो क्या वायुकायिक एकेंद्रिय वैक्रिय-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है, अथवा अवायुकायिक (वायुकायिक जीवों के सिवाय) एकेंद्रिय वैक्रिय-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है ?

४५ उत्तर—हे गौतम ! वह एक द्रव्य वायुकायिक एकेंद्रिय वैक्रिय-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है। परंतु अवायुकायिक एकेंद्रिय वैक्रिय-शरीर काय-प्रयोग परिणत नहीं होता । इसी प्रकार इस अभिलाप द्वारा प्रज्ञापना सूत्र के इक्कीसवें 'अवगाहना संस्थान' पद में वैक्रिय-शरीर के सम्बन्ध में कथित वर्णन के अनुसार यहाँ भी कहना चाहिये । यावत् पर्याप्त सर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरौपपातिक कल्पातीत वैमानिक देव पंचेंद्रिय वैक्रिय-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है, या अपर्याप्त सर्वार्थसिद्ध अनुत्तरौपपातिक कल्पातीत वैमानिक देव पंचेंद्रिय वैक्रिय-शरीर कायप्रयोग-परिणत होता है ।

४६ प्रश्न—हे भगवन् ! यदि एक द्रव्य वैक्रिय-मिश्र-शरीर काय-प्रयोग परिणत होता है, तो क्या एकेंद्रिय वैक्रिय-मिश्र-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है, अथवा यावत् पंचेंद्रिय वैक्रिय-मिश्र-शरीर काय प्रयोग-परिणत होता है ?

४६ उत्तर—हे गौतम ! जिस प्रकार वैक्रिय-शरीर काय-प्रयोग-परिणत के विषय में कहा है, उसी प्रकार वैक्रिय-मिश्र-शरीर काय-प्रयोग-परिणत के विषय में भी कहना चाहिये। परन्तु विशेषता यह है कि वैक्रिय-मिश्र-शरीर काय-प्रयोग-देव और नैरयिक के अपर्याप्त के विषय में और शेष सभी जीवों के पर्याप्त के

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विषय में कहना चाहिये, यावत् पर्याप्त सर्वार्थसिद्ध-अनुत्तरौपपातिक कल्पातीत वैमानिक देव पंचेन्द्रिय वैक्रिय-मिश्र-शरीर काय-प्रयोग-परिणत नहीं होता, किंतु अपर्याप्त सर्वार्थसिद्ध अनुत्तरौपपातिक कल्पातीत वैमानिक देव पंचेन्द्रिय वैक्रिय-मिश्र-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है।

विवेचन-(३) वैक्रिय-काय-योग, वैक्रिय-शरीर द्वारा होने वाले वीर्यशक्ति के व्यापार को 'वैक्रिय काय-योग' कहते हैं। यह मनुष्यों के और तिर्यंचों के वैक्रिय लब्धि के बल से वैक्रिय-शरीर धारण कर लेने पर होता है। देव और नैरयिक जीवों के वैक्रिय-काय-योग 'भव प्रत्यय' होता है।

(४) वैक्रिय-मिश्र-काय-योग, वैक्रिय और कार्मण अथवा वैक्रिय और औदारिक, इन दो शरीरों के द्वारा होने वाले वीर्य-शक्ति के व्यापार को 'वैक्रिय-मिश्र काय-योग' कहते हैं। वैक्रिय और कार्मण सम्बन्धी वैक्रिय-मिश्र-काय-योग, देवों तथा नारकों को उत्पत्ति के समय से लेकर जब तक शरीर पर्याप्ति पूर्ण न हो तब तक रहता है। वैक्रिय और औदारिक, इन दो शरीरों सम्बन्धी वैक्रिय मिश्र-काय-योग, मनुष्यों और तिर्यंचों में तभी पाया जाता है जब कि वे लब्धि के बल से वैक्रिय शरीर का आरम्भ करते हैं। वैक्रियशरीर का त्याग करने में वैक्रिय-मिश्र नहीं होता, किन्तु औदारिक-मिश्र होता है। यहां पर कार्मण तथा औदारिक के सहयोग से ही वैक्रिय मिश्र काययोग माना है। भवधारणीय वैक्रिय शरीर के साथ उत्तर वैक्रिय शरीर के पुद्गलों के सम्मिश्रण को वैक्रियमिश्र काय योग नहीं माना है। इसीलिए देव नरक के पर्याप्तों में वैक्रिय मिश्र काय योग नहीं बताया है। प्रज्ञापना सूत्र के १६ वें प्रयोग पद में वैक्रिय का वैक्रिय के साथ ही मिश्रण होने के कारण देव नरक के पर्याप्त अवस्था में भी वैक्रिय मिश्र काय योग माना है।

४७ प्रश्न-जइ आहारगसरीरकायप्पयोगपरिणए किं मणुस्साहारगसरीरकायप्पयोगपरिणए, अमणुस्साहारग जाव परिणए?

४७ उत्तर-एवं जहा "ओगाहणसंठाणे" जाव इड्ढिपत्तपमत्तसंजयसम्मदिट्ठिपज्जत्तगसंखेज्जवासाउय जाव परिणए, णो अणिड्ढिपत्तपमत्तसंजयसम्मदिट्ठिपज्जत्तसंखेज्जवासाउय जाव परिणए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

४८ प्रश्न–जइ आहारगमीसासरीरकायप्पयोगपरिणए किं मणुस्साहारगमीसासरीर० ?

४८ उत्तर–एवं जहा आहारगं तहेव मीसगं पि णिरवसेसं भाणियव्वं ।

कठिन शब्दार्थ–इड्ढिपत्तपमत्तसंजय–ऋद्धि प्राप्त प्रमत्त संयत, अणिड्ढिपत्त–ऋद्धि अप्राप्त।

भावार्थ–४७ प्रश्न–हे भगवन् ! यदि एक द्रव्य आहारक-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है, तो क्या मनुष्य आहारक-शरीर काय-परिणत होता है, अथवा अमनुष्याहारक-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है ?

४७ उत्तर–हे गौतम ! इस विषय में प्रज्ञापना सूत्र के इक्कीसवें 'अवगाहना संस्थान' पद में जिस प्रकार कहा है, उसी प्रकार यहाँ भी जानना चाहिये । यावत् ऋद्धि प्राप्त प्रमत्त-संयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्त संख्येय-वर्षायुष्क मनुष्याहारक-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है, परन्तु अनृद्धि प्राप्त प्रमत्तसंयत सम्यग्दृष्टि पर्याप्त संख्येय वर्षायुष्क मनुष्याहारक-शरीर काय-प्रयोग-परिणत नहीं होता ।

३८ प्रश्न–हे भगवन् ! यदि एक द्रव्य आहारक-मिश्र-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है, तो क्या मनुष्याहारक-मिश्र-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है, अथवा अमनुष्याहारक-मिश्र-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है ?

४८ उत्तर–हे गौतम ! जिस प्रकार आहारक-शरीर काय-योग-परिणत के विषय में कहा गया है, उसी प्रकार आहारक-मिश्र-शरीर काय-प्रयोग-परिणत के विषय में भी कहना चाहिये ।

विवेचन–(५) आहारक-काय-योग = केवल आहारक शरीर की सहायता से होने वाला वीर्यशक्ति का व्यापार 'आहारक काय-योग' होता है ।

(६) आहारक-मिश्र-काययोग = आहारक और औदारिक इन दोनों शरीरों के द्वारा होने वाले वीर्य-शक्ति के व्यापार को आहारक-मिश्र-काय-योग कहते हैं। आहारक शरीर के धारण करने के समय अर्थात् उसको प्रारम्भ करने के समय तो आहारक-मिश्र-काय-योग

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

होता है और उसके त्याग के समय औदारिक-मिश्र-काय-योग होता है।

४९ प्रश्न-जइ कम्मासरीरकायप्पओगपरिणए किं एगिंदिय-कम्मासरीरकायप्पयोगपरिणए, जाव पंचिंदियकम्मासरीर जाव परिणए?

४९ उत्तर-गोयमा ! एगिंदियकम्मासरीरकायप्पयोगपरिणए, एवं जहा 'ओगाहणसंठाणे, कम्मगस्स भेओ तहेव इहावि, जाव पज्जत्तसव्वट्ठसिद्धअणुत्तरोववाइय जाव देवपंचिंदियकम्मासरीरकायप्प-योगपरिणए, अपज्जत्तसव्वट्ठसिद्धअणुत्तरोववाइय जाव परिणए वा।

भावार्थ-४९ प्रश्न-हे भगवन् ! यदि एक द्रव्य कार्मण-शरीर कायप्रयोग परिणत होता है, तो क्या एकेन्द्रिय कार्मण-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है, अथवा यावत् पंचेन्द्रिय कार्मण-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है ?

४९ उत्तर-हे गौतम ! वह एकेन्द्रिय कार्मण-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है। इस विषय में जिस प्रकार प्रज्ञापनासूत्र के इक्कीसवें 'अवगाहना संस्थान' पद में कार्मण के भेद कहे गये हैं, उसी प्रकार यहाँ भी जानना चाहिये। यावत् पर्याप्त सर्वार्थसिद्ध अनुत्तरौपपातिक कल्पातीत वैमानिक देव पंचेंद्रिय कार्मण-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है, अथवा अपर्याप्त सर्वार्थसिद्ध अनुत्तरौपपातिक कल्पातीत वैमानिक देव पंचेंद्रिय कार्मण-शरीर काय-प्रयोग-परिणत होता है।

विवेचन-(७) कार्मण काय-योग-केवल कार्मण-शरीर की सहायता से वीर्यशक्ति की जो प्रवृत्ति होती है, उसे 'कार्मण काय-योग' कहते हैं। यह योग विग्रहगति में अना-हारक अवस्था में सभी जीवों में होता है। केवली समुद्घात के तीसरे, चौथे और पांचवें समय में केवली भगवान् के होता है।

शंका-कार्मण काय-योग के समान तैजस्-काय-योग क्यों नहीं कहा गया ?

समाधान-कार्मण काय-योग के समान तैजस्-काय-योग इसलिये अलग नहीं माना कि तैजस् और कार्मण का सदा साहचर्य रहता है, अर्थात् औदारिक आदि अन्य शरीर, कभी कभी कार्मण-शरीर को छोड़ भी देते हैं, किंतु तैजस् शरीर उसे कभी नहीं छोड़ता। इसलिये

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वीर्यशक्ति का जो व्यापार कार्मण-शरीर द्वारा होता है, वही निश्चय से (नियमा) तैजस्-शरीर द्वारा भी होता रहता है। अतः कार्मण-काय-योग में ही तैजस्-काय-योग का समावेश हो जाता है। इसलिये उसको पृथक् नहीं गिना गया है।

५० प्रश्न-जइ मीसापरिणए किं मणमीसापरिणए, वयमीसापरिणए, कायमीसापरिणए ?

५० उत्तर-गोयमा ! मणमीसापरिणए वा, वयमीसापरिणए वा, कायमीसापरिणए वा।

५१ प्रश्न-जइ मणमीसापरिणए किं सच्चमणमीसापरिणए वा, मोसमणमीसापरिणए वा ?

५१ उत्तर-जहा पओगपरिणए तहा मीसापरिणए वि भाणियव्वं णिरवसेसं, जाव पज्जत्तसव्वट्ठसिद्धअणुत्तरोववाइय जाव देवपंचिंदियकम्मासरीरगमीसापरिणए वा, अपज्जत्तसव्वट्ठसिद्धअणुत्तरोववाइय जाव कम्मासरीरमीसापरिणए वा।

भावार्थ-५० प्रश्न-हे भगवन् ! यदि एक द्रव्य मिश्र परिणत होता है, तो क्या मनोमिश्र-परिणत होता है, या वचनमिश्र-परिणत होता है, या कायमिश्र-परिणत होता है ?

५० उत्तर-हे गौतम ! वह मनोमिश्र-परिणत होता है, या वचन-मिश्र-परिणत होता है, या कायमिश्र-परिणत होता है।

५१ प्रश्न-हे भगवन् ! यदि एक द्रव्य मनोमिश्र-परिणत होता है, तो क्या सत्यमनोमिश्र-परिणत होता है, मृषामनोमिश्र-परिणत होता है, सत्यमृषामनोमिश्र-परिणत होता है, या असत्यामृषामनोमिश्र-परिणत होता है ?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

५१ उत्तर-हे गौतम ! जिस प्रकार प्रयोग-परिणत पुद्गल के विषय में कहा है, उसी प्रकार मिश्र-परिणत पुद्गल के विषय में भी सभी कहना चाहिये, यावत् पर्याप्त सर्वार्थसिद्ध अनुत्तरौपपातिक कल्पातीत वैमानिक देव पंचेंद्रिय कार्मण-शरीर काय-मिश्र-परिणत होता है, या अपर्याप्त सर्वार्थसिद्ध अनुत्तरौपपातिक कल्पातीत वैमानिक देव पंचेंद्रिय कार्मण-शरीर काय-मिश्र-परिणत होता है।

५२ प्रश्न-जइ वीससापरिणए किं वण्णपरिणए, गंधपरिणए, रसपरिणए, फासपरिणए, संठाणपरिणए ?

५२ उत्तर-गोयमा ! वण्णपरिणए वा, गंधपरिणए वा, रसपरिणए वा, फासपरिणए वा, संठाणपरिणए वा ।

५३ प्रश्न-जइ वण्णपरिणए किं कालवण्णपरिणए, णील जाव सुक्किल्लवण्णपरिणए ?

५३ उत्तर-गोयमा ! कालवण्णपरिणए, जाव सुक्किल्लवण्णपरिणए ।

५४ प्रश्न-जइ गंधपरिणए किं सुब्भिगंधपरिणए, दुब्भिगंधपरिणए ?

५४ उत्तर-गोयमा ! सुब्भिगंधपरिणए वा, दुब्भिगंधपरिणए वा ।

५५ प्रश्न-जइ रसपरिणए किं तित्तरसपरिणए-पुच्छा ।

५५ उत्तर-गोयमा ! तित्तरसपरिणए वा, जाव महुररसपरिणए वा ।

५६ प्रश्न-जइ फासपरिणए किं कक्खडफासपरिणए, जाव

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लुक्खफासपरिणए ?

५६ उत्तर-गोयमा ! कक्खडफासपरिणए वा, जाव लुक्खफास-परिणए वा ।

५७ प्रश्न-जइ संठाणपरिणए-पुच्छा ।

५७ उत्तर-गोयमा ! परिमंडलसंठाणपरिणए वा, जाव आयय-संठाणपरिणए वा ।

भावार्थ-५२ प्रश्न-हे भगवन् ! यदि एक द्रव्य विस्रसा (स्वभाव) परिणत होता है, तो क्या वह-वर्ण-परिणत होता है, गन्ध-परिणत होता है, रस-परिणत होता है, स्पर्श-परिणत होता है, या संस्थान-परिणत होता है ।

५२ उत्तर—हे गौतम ! वह वर्ण-परिणत होता है, या गन्ध-परिणत होता है, या रस-परिणत होता है, या स्पर्श-परिणत होता है, या संस्थान-परिणत होता है ।

५३ प्रश्न—हे भगवन् ! यदि एक द्रव्य वर्ण-परिणत होता है, तो क्या काला वर्णपने परिणत होता है, नील-वर्णपने परिणत होता है, अथवा यावत् शुक्ल वर्णपने परिणत होता है ?

५३ उत्तर-हे गौतम ! वह काला वर्णपने परिणत होता है अथवा यावत् शुक्ल वर्णपने परिणत होता है ।

५४ प्रश्न-हे भगवन् ! यदि एक द्रव्य गन्धपने परिणत होता है, तो क्या सुरभि-गन्ध (सुगन्ध) पने परिणत होता है, या दुरभिगन्ध (दुर्गन्ध) पने परिणत होता है ?

५४ उत्तर-हे गौतम ! वह सुरभि-गन्धपने परिणत होता है, अथवा दुरभि-गन्धपने परिणत होता है ।

५५ प्रश्न-हे भगवन् ! यदि एक द्रव्य रसपने परिणत होता है, तो क्या

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तीखे रसपने परिणत होता है, अथवा यावत् मीठे रसपने परिणत होता है ?

५५ उत्तर-हे गौतम ! वह तीखे रसपने परिणत होता है, अथवा यावत् मीठे रसपने परिणत होता है।

५६ प्रश्न—हे भगवन् ! यदि एक द्रव्य स्पर्श परिणत होता है, तो क्या कर्कश-स्पर्शपने परिणत होता है, अथवा यावत् रुक्ष-स्पर्शपने परिणत होता है ?

५६ उत्तर—हे गौतम ! वह कर्कश-स्पर्शपने परिणत होता है, अथवा यावत् रुक्षस-पर्शपने परिणत होता है।

५७ प्रश्न-हे भगवन् ! यदि एक द्रव्य संस्थान-परिणत होता है, तो क्या परिमण्डल संस्थानपने परिणत होता है, अथवा यावत् आयत संस्थानपने परिणत होता है ?

५७ उत्तर-हे गौतम ! वह परिमण्डल संस्थानपने परिणत होता है, अथवा यावत् आयत संस्थानपने परिणत होता है।

दो द्रव्यों के परिणाम

५८ प्रश्न-दो भंते ! दव्वा किं पओगपरिणया, मीसापरिणया, वीससापरिणया ?

५८ उत्तर-गोयमा ! पओगपरिणया वा, मीसापरिणया वा, वीससापरिणया वा; अहवा एगे पओगपरिणए एगे मीसापरिणए; अहवा एगे पओगपरिणए एगे वीससापरिणए; अहवा एगे मीसा-परिणए एगे वीससापरिणए एवं (६)।

५९ प्रश्न-जइ पओगपरिणया किं मणप्पयोगपरिणया, वइप्प-योगपरिणया, कायप्पयोगपरिणया ?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

५९ उत्तर-गोयमा ! मणप्पयोगपरिणया, वइप्पयोगपरिणया कायप्पओगपरिणया वा; अहवा एगे मणप्पयोगपरिणए एगे वयप्पयोगपरिणए; अहवा एगे मणप्पयोगपरिणए एगे कायप्पयोगपरिणए; अहवा एगे वयप्पयोगपरिणए एगे कायप्पयोगपरिणए।

६० प्रश्न-जइ मणप्पओगपरिणया किं सच्चमणप्पयोगपरिणया, असच्चमणप्पयोगपरिणया, सच्चमोसमणप्पयोगपरिणया, असच्चामोसमणप्पयोगपरिणया ?

६० उत्तर-गोयमा ! सच्चमणप्पओगपरिणया वा, जाव असच्चामोसमणप्पओगपरिणया; अहवा एगे सच्चमणप्पओगपरिणए एगे मोसमणप्पयोगपरिणए, अहवा एगे सच्चमणप्पओगपरिणए एगे सच्चमोसमणप्पओगपरिणए अहवा एगे सच्चमणप्पओगपरिणए एगे असच्चमोसमणप्पओगपरिणए; अहवा एगे मोसमणप्पओगपरिणए एगे सच्चमोसमणप्पओगपरिणए अहवा एगे मोसमणप्पओगपरिणए एगे असच्चमोसमणप्पओगपरिणए, अहवा एगे सच्चामोसमणप्पओगपरिणए एगे असच्चामोसमणप्पओगपरिणए।

भावार्थ-५८ प्रश्न-हे भगवन् ! क्या दो द्रव्य प्रयोग परिणत होते हैं, या मिश्र-परिणत होते हैं, या विस्रसा परिणत होते हैं ?

५८ उत्तर-हे गौतम ! वे प्रयोग-परिणत होते हैं, या मिश्र परिणत होते हैं, या विस्रसा-परिणत होते हैं। अथवा एक द्रव्य प्रयोग-परिणत होता हैं और दूसरा मिश्र-परिणत होता हैं अथवा एक द्रव्य प्रयोग-परिणत होता हैं। और

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दूसरा द्रव्य विस्रसा परिणत होता है। अथवा एक द्रव्य मिश्र परिणत होता है। और दूसरा विस्रसा परिणत होता है।

५९ प्रश्न-हे भगवन् ! यदि वे दो द्रव्य प्रयोग-परिणत होते हैं, तो क्या मनः प्रयोग-परिणत होते है, या वचन प्रयोग-परिणत होते हैं, या काय-प्रयोग परिणत होते है ?

५९ उत्तर-हे गौतम ! (१) वे दो द्रव्य मनःप्रयोग-परिणत होते हैं, (२) या वचन-प्रयोग परिणत होते है, (३) या काय-प्रयोग-परिणत होते हैं, अथवा उनमें से एक द्रव्य (४) मनःप्रयोग-परिणत होता है और दूसरा वचन-प्रयोग-परिणत होता है। अथवा (५) एक द्रव्य मनःप्रयोग-परिणत होता है और दूसरा काय-प्रयोग-परिणत होता है। अथवा (६) एक द्रव्य वचन-प्रयोग-परिणत होता है और दूसरा काय-प्रयोग-परिणत होता है।

६० प्रश्न-हे भगवन् ! यदि वे दो द्रव्य मनःप्रयोग-परिणत होते हैं, तो क्या सत्य मनःप्रयोग-परिणत होते हैं, या असत्य मनःप्रयोग-परिणत होते हैं, या सत्यमृषा मनःप्रयोग-परिणत होते हैं, या असत्यामृषा मनःप्रयोग-परिणत होते हैं।

६० उत्तर-हे गौतम ! (१-४) वे सत्य मनःप्रयोग-परिणत होते हैं, अथवा यावत् असत्यामृषा मनःप्रयोग-परिणत होते है। अथवा (५) उनमें से एक द्रव्य सत्य मनःप्रयोग-परिणत होता है और दूसरा मृषा मनःप्रयोग-परिणत होता है। अथवा (६) एक द्रव्य सत्य मनःप्रयोग-परिणत होता है और दूसरा सत्य-मृषा मनःप्रयोग-परिणत होता है। अथवा (७) एक द्रव्य सत्य मनःप्रयोग-परिणत होता है और दूसरा असत्यामृषा मनःप्रयोग-परिणत होता है। अथवा (८) एक द्रव्य मृषा मनःप्रयोग-परिणत होता है और दूसरा सत्यमृषा मनःप्रयोग-परिणत होता है। अथवा (९) एक द्रव्य मृषा मनःप्रयोग-परिणत होता है और दूसरा असत्या-मृषा मनःप्रयोग-परिणत होता है। अथवा (१०) एक द्रव्य सत्यमृषा मनःप्रयोग-परिणत होता है और दूसरा असत्यामृषा मनःप्रयोग-परिणत होता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

६१ प्रश्न-जइ सच्चमणप्पओगपरिणया किं आरंभसच्चमणप्पओगपरिणया, जाव असमारंभसच्चमणप्पओगपरिणया ?

६१ उत्तर-गोयमा ! आरंभसच्चमणप्पओगपरिणया वा, जाव असमारंभसच्चमणप्पओगपरिणया वा; अहवा एगे आरंभसच्चमणप्पओगपरिणए एगे अणारंभसच्चमणप्पओगपरिणए । एवं एएणं गमेणं दुयासंजोएणं णेयव्वं, सव्वे संजोगा जत्थ जत्तिया उट्ठेंति ते भाणियव्वा, जाव सव्वट्ठसिद्धगत्ति ।

६२ प्रश्न-जइ मीसापरिणया किं मणमीसापरिणया० ?

६२ उत्तर-एवं मीसापरिणया वि ।

६३ प्रश्न-जइ वीससापरिणया किं वण्णपरिणया गंधपरिणया०?

६३ उत्तर-एवं वीससापरिणया वि, जाव अहवा एगे चउरंससंठाणपरिणए, एगे आययसंठाणपरिणए वा ।

कठिन शब्दार्थ-जत्तिया-जितने, उट्ठेंति-उठते हैं-पैदा होते हैं ।

भावार्थ-६१ प्रश्न हे भगवन् ! यदि वे दो द्रव्य सत्यमनःप्रयोग-परिणत होते हैं तो क्या आरंभ सत्यमनः प्रयोग-परिणत होते हैं, या अनारम्भ सत्यमनः प्रयोग-परिणत होते हैं या सारम्भ (संरम्भ) सत्यमनः प्रयोग-परिणत होते हैं, या असारम्भ सत्यमनः प्रयोग-परिणत होते हैं, या समारम्भ सत्यमनः प्रयोग-परिणत होते हैं, या असमारम्भ सत्यमनः प्रयोग-परिणत होते हैं ?

६१ उत्तर-हे गौतम ! (१-६) वे दो द्रव्य आरम्भ सत्यमनः प्रयोग-परिणत होते हैं, अथवा यावत् असमारम्भ सत्यमनः प्रयोग-परिणत होते हैं, अथवा एक द्रव्य आरम्भ सत्यमनः प्रयोग-परिणत होता है और दूसरा अनारम्भ सत्यमनः

प्रयोग-परिणत होता है । इस प्रकार द्विक संयोगी भांगे करने चाहिये । जहां जितने द्विक संयोगी भांगे होते हैं, वहां उतने सभी कहना चाहिये । यावत् सर्वार्थसिद्ध वैमानिक देव पर्यंत कहना चाहिये ।

६२ प्रश्न—हे भगवन् ! यदि वे दो द्रव्य, मिश्र-परिणत होते हैं, तो क्या वे मनोमिश्र-परिणत होते हैं ? इत्यादि प्रश्न ।

६२ उत्तर—हे गौतम ! जिस प्रकार प्रयोग-परिणत के विषय में कहा है, उसी प्रकार मिश्र-परिणत के सम्बन्ध में भी कहना चाहिये ।

६३ प्रश्न—हे भगवन् ! यदि दो द्रव्य, विस्रसा-परिणत होते हैं, तो क्या वर्णपने परिणत होते हैं, अथवा यावत् संस्थानपने परिणत होते हैं ?

६३ उत्तर—हे गौतम ! जिस प्रकार पहले कहा है, उसी प्रकार विस्रसा-परिणत के विषय में भी कहना चाहिए । यावत् एक द्रव्य, चतुरस्र संस्थानपने परिणत होता है और दूसरा आयत संस्थानपने परिणत होता है ।

विवेचन—दो द्रव्यों के विषय में प्रयोग-परिणत, मिश्र-परिणत और विस्रसा-परिणत इन तीन पदों के असंयोगी (एक) तीन भंग होते है और द्विक-संयोगी भी तीन भंग होते हैं । इस प्रकार ये छह भंग होते हैं । सत्यमनः प्रयोग-परिणत, मृषामनः प्रयोग-परिणत, सत्य-मृषामनः प्रयोग-परिणत और असत्या-मृषामनः प्रयोग-परिणत, इन चार पदों के असंयोगी चार भंग होते हैं और द्विक-संयोगी छह भंग होते हैं । इस प्रकार इनके कुल दस भंग होते हैं । 'आरम्भ सत्यमनः प्रयोग-परिणत' आदि छह पद हैं । इनमें असंयोगी छह भंग होते हैं और द्विक-संयोगी पन्द्रह भंग होते हैं । ये आरम्भ सत्यमनः प्रयोग-परिणत के कुल इक्कीस भंग होते हैं । इसी प्रकार अनारम्भ सत्यमनः प्रयोग-परिणत आदि पांच पदों के भी प्रत्येक के इक्कीस इक्कीस भंग होते हैं । इस प्रकार सत्यमनः प्रयोग-परिणत के आरम्भ, अनारम्भ आदि छह पदों के साथ कुल एक सौ छब्बीस भंग होते हैं । मृषामनः प्रयोग-परिणत, सत्य-मृषामनः प्रयोग-परिणत, और असत्या-मृषामनः प्रयोग-परिणत, इन तीन पदों के आरम्भ आदि छह पदों के साथ प्रत्येक के एक सौ छब्बीस, एक सौ छब्बीस भंग होते हैं । इस प्रकार सत्य-मनःप्रयोग-परिणत के कुल ५०४ भंग होते हैं ।

जिस प्रकार मनःप्रयोग-परिणत के पांच सौ चार भंग कहे गये हैं, उसी प्रकार वचन प्रयोग-परिणत के भी पांच सौ चार भंग होते हैं ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

औदारिक शरीर काय-प्रयोग-परिणत आदि सात पद हैं इनके असंयोगी सात भंग होते हैं और द्विक संयोगी इक्कीस भंग होते हैं। इस प्रकार एक पद के अट्ठाईस भंग होते हैं। सातों पदों के कुल १९६ (२८×७=१९६) भंग होते हैं। प्रयोग-परिणत के दो द्रव्यों के कुल बारह सौ चार भंग होते हैं।

जिस प्रकार प्रयोग-परिणत दो द्रव्यों के भंग कहे गये हैं, उसी प्रकार मिश्र-परिणत दो द्रव्यों के भी कहना चाहिये।

जिस रीति से प्रयोग-परिणत दो द्रव्यों के भंग कहे गये हैं, उसी रीति से विस्रसा-परिणत दो द्रव्यों के वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और संस्थान के असंयोगी और द्विक संयोगी भंग भी यथायोग्य समझ लेना चाहिए।

तीन द्रव्यों के परिणाम

६४ प्रश्न-तिण्णि भंते ! दव्वा किं पओगपरिणया, मीसा-परिणया, वीससापरिणया ?

६४ उत्तर-गोयमा ! पओगपरिणया वा, मीसापरिणया वा, वीससापरिणया वा; अहवा एगे पओगपरिणए दो मीसापरिणया, अहवा एगे पओगपरिणए दो वीससापरिणया, अहवा दो पओग-परिणया एगे मीससापरिणए, अहवा दो पओगपरिणया एगे वीससा-परिणए, अहवा एगे मीसापरिणए दो वीससापरिणया, अहवा दो मीससापरिणया एगे वीससापरिणए, अहवा एगे पओगपरिणए एगे मीसापरिणए एगे वीससापरिणए।

६५ प्रश्न-जइ पओगपरिणया किं मणप्पओगपरिणया, वयप्प-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ओगपरिणया, कायप्पओगपरिणया ?

६५ उत्तर-गोयमा ! मणप्पओगपरिणया वा, एवं एक्कगसंयोगो, दुयासंजोगो, तियासंजोगो भाणियव्वो ।

६६ प्रश्न-जइ मणप्पओगपरिणया किं सच्चमणप्पओगपरिणया, असच्चमणप्पओगपरिणया, सच्चामोसमणप्पओगपरिणया, असच्चामोसमणप्पओगपरिणया ?

६६ उत्तर-गोयमा ! सच्चमणप्पओगपरिणया वा, जाव असच्चामोसमणप्पओगपरिणया वा; अहवा एगे सच्चमणप्पओगपरिणए दो मोसमणप्पओगपरिणया वा । एवं दुयासंजोगो, तियासंजोगो भाणियव्वो एत्थ वि तहेव; जाव अहवा एगे तंसंसंठाणपरिणए एगे चउरंससंठाणपरिणए एगे आययसंठाणपरिणए वा ।

कठिन शब्दार्थ—दुयासंजोगो—द्विकसंयोगी ।

भावार्थ—६४ प्रश्न—हे भगवन् ! क्या तीन द्रव्य, प्रयोग-परिणत होते हैं, मिश्र-परिणत होते हैं, या विस्रसा-परिणत होते हैं ?

६४ उत्तर—हे गौतम ! तीनों द्रव्य प्रयोग-परिणत होते हैं, या मिश्र-परिणत होते हैं, या विस्रसा-परिणत होते हैं । अथवा एक द्रव्य प्रयोग-परिणत होता है और दो द्रव्य मिश्र-परिणत होते हैं । अथवा एक द्रव्य प्रयोग-परिणत होता है और दो द्रव्य विस्रसा-परिणत होते हैं । अथवा दो द्रव्य प्रयोग-परिणत होते हैं और एक द्रव्य मिश्र परिणत होता है । अथवा दो द्रव्य प्रयोग-परिणत होते हैं और एक द्रव्य विस्रसा-परिणत होता है । अथवा एक द्रव्य मिश्र-परिणत होता है और दो द्रव्य विस्रसा-परिणत होते हैं । अथवा दो द्रव्य मिश्र-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

परिणत होते हैं। और एक द्रव्य विस्रसा-परिणत होता है। अथवा एक द्रव्य प्रयोग-परिणत होता है, एक द्रव्य मिश्र-परिणत होता है और एक द्रव्य विस्रसा-परिणत होता है।

६५ प्रश्न-हे भगवन् ! यदि तीन द्रव्य प्रयोग-परिणत होते हैं, तो क्या मनः प्रयोग-परिणत होते हैं, या वचन प्रयोग-परिणत होते हैं, या काय प्रयोग-परिणत होते हैं ?

६५ उत्तर-हे गौतम ! वे मनः प्रयोग-परिणत होते हैं, या वचन प्रयोग-परिणत होते हैं, या काय प्रयोग-परिणत होते हैं। इस प्रकार एक संयोगी, द्विक संयोगी और त्रिक संयोगी भंग कहना चाहिये।

६६ प्रश्न—हे भगवन् ! यदि तीन द्रव्य मनः प्रयोग-परिणत होते हैं, तो क्या सत्यमन प्रयोग-परिणत होते हैं, इत्यादि प्रश्न ?

६६ उत्तर-हे गौतम ! वे तीनों द्रव्य सत्यमनः प्रयोग-परिणत होते हैं, अथवा यावत् असत्या-मृषामनः प्रयोग-परिणत होते हैं। अथवा उनमें से एक द्रव्य सत्यमनः प्रयोग-परिणत होता है और दो द्रव्य मृषामनः प्रयोग-परिणत होते हैं। इसी प्रकार यहाँ भी द्विक संयोगी और त्रिक संयोगी भंग कहना चाहिये, संस्थान भी इसी प्रकार यावत् एक त्र्यस्र संस्थापने परिणत होता है, एक चतुरस्र संस्थानपने परिणत होता है और एक आयत संस्थानपने परिणत होता है।

विवेचन—प्रयोग-परिणत आदि तीन पदों के असंयोगी तीन भंग होते हैं और द्विकसंयोगी छह भंग होते हैं, तथा त्रिक-संयोगी एक भंग होता है। इस प्रकार कुल दस भंग होते हैं।

सत्यमनः प्रयोग-परिणत आदि चार पद हैं। इनके असंयोगी (एक-एक) चार भंग होते हैं। द्विक संयोगी बारह भंग होते हैं और त्रिक संयोगी चार भंग होते हैं। ये सभी बीस भंग होते हैं। इसी प्रकार मृषामनः प्रयोग-परिणत के भी कहना चाहिये। इसी प्रकार मृषामनः प्रयोग-परिणत के भी कहना चाहिये। इसी प्रकार वचन प्रयोग-परिणत और काय प्रयोग-परिणत के भी कहना चाहिये।

प्रयोग-परिणत की तरह मिश्र-परिणत के भी भंग कहना चाहिये और इसी रीति से वर्णादि के भेद से विस्रसा-परिणत के भी भंग कहना चाहिये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चार आदि द्रव्यों के परिणाम

६७ प्रश्न-चत्तारि भंते ! दव्वा किं पओगपरिणया, मीसापरिणया, वीससापरिणया ?

६७ उत्तर-गोयमा ! पओगपरिणया वा, मीसापरिणया वा, वीससापरिणया वा । अहवा एगे पओगपरिणए तिण्णि मीसापरिणया; अहवा एगे पओगपरिणए तिण्णि वीससापरिणया; अहवा दो पओगपरिणया दो मीसापरिणया, अहवा दो पओगपरिणया दो वीससापरिणया; अहवा तिण्णि पओगपरिणया एगे मीसापरिणए, अहवा तिण्णि पओगपरिणया एगे वीससापरिणए, अहवा एगे मीससापरिणए तिण्णि वीससापरिणया; अहवा दो मीससापरिणया दो वीससापरिणया; अहवा तिण्णि मीसापरिणया एगे वीससापरिणए; अहवा एगे पओगपरिणए एगे मीसापरिणए दो वीससापरिणया; अहवा एगे पओगपरिगए दो मीसापरिणया एगे वीससापरिणए; अहवा दो पओगपरिणया एगे मीसापरिणए एगे वीससापरिणए ।

६८ प्रश्न-जइ पओगपरिणया किं मणप्पओगपरिणया, वयप्पओगपरिणया, कायप्पओगपरिणया ?

६८ उत्तर-एवं एएणं कमेणं पंच छ सत्त जाव दस संखेज्जा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

असंखेज्जा अणंता य दव्वा भाणियव्वा दुयासंजोएणं, तिया-संजोएणं, जाव दससंजोएणं, बारससंजोएणं उवजुंजिऊणं जत्थ जत्तिया संजोगा उट्ठेंति ते सव्वे भाणियव्वा; एए पुण जहा णवम-सए पवेसणए भणिहामो तहा उवजुंजिऊण भाणियव्वा, जाव असंखेज्जा अणंता एवं चेव, णवरं एक्कं पदं अब्भहियं, जाव अहवा अणंता परिमंडलसंठाणपरिणया, जाव अणंता आययसंठाणपरि-णया।

कठिन शब्दार्थ—उवजुंजिऊणं—उपयोग लगाकर, भणिहामो—कहेंगे।

भावार्थ–६७ प्रश्न–हे भगवन् ! क्या चार द्रव्य प्रयोग-परिणत होते हैं, या मिश्र-परिणत होते हैं, या विस्रसा-परिणत होते हैं ?

६७ उत्तर–हे गौतम ! चार द्रव्य प्रयोग-परिणत होते हैं, या मिश्र-परिणत होते हैं, या विस्रसा-परिणत होते हैं। अथवा (१) एक प्रयोग-परिणत होता है और तीन मिश्र-परिणत होते हैं। अथवा (२) एक प्रयोग-परिणत होता है और तीन विस्रसा-परिणत होते हैं। अथवा (३) दो द्रव्य प्रयोग-परिणत होते हैं और दो मिश्र-परिणत होते हैं। अथवा (४) दो द्रव्य प्रयोग-परिणत होते हैं और दो विस्रसा-परिणत होते हैं। अथवा (५) तीन द्रव्य प्रयोग-परिणत होते हैं और एक मिश्र-परिणत होता है। अथवा (६) तीन द्रव्य प्रयोग-परिणत होते हैं और एक विस्रसा-परिणत होता है। अथवा (७) एक मिश्र-परिणत होता है और तीन विस्रसा-परिणत होते हैं। अथवा (८) दो द्रव्य मिश्र-परिणत होते हैं और दो द्रव्य विस्रसा-परिणत होते हैं। अथवा (९) तीन द्रव्य मिश्र-परिणत होते हैं और एक द्रव्य विस्रसा-परिणत होता है। अथवा (१०) एक द्रव्य प्रयोग-परिणत होता है, एक द्रव्य मिश्र-परिणत होता है और दो द्रव्य विस्रसा-परिणत होते हैं। अथवा (११) एक द्रव्य प्रयोग-परिणत होता है, दो

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

द्रव्य मिश्र-परिणत होते हैं और एक द्रव्य विस्रसा-परिणत होता है। अथवा (१२) दो द्रव्य प्रयोग-परिणत होते हैं, एक मिश्र-परिणत होता है और एक विस्रसा-परिणत होता है।

६८ प्रश्न-हे भगवन् ! यदि चार द्रव्य प्रयोग-परिणत होते हैं, तो क्या मनः प्रयोग-परिणत होते हैं, या वचन प्रयोग-परिणत होते हैं, या काय प्रयोग-परिणत होते हैं ?

६८ उत्तर-हे गौतम ! ये सब पहले की तरह कहना चाहिये। इसी क्रम द्वारा पांच, छह, सात, आठ, नव, दस, संख्यात, असंख्यात और अनन्त द्रव्यों के द्विक-संयोगी, त्रिक-संयोगी यावत् दस-संयोगी, बारह-संयोगी आदि सभी भंग उपयोग पूर्वक कहना चाहिये। जहां जितने संयोग होते हैं, वहां उतने सभी संयोग कहना चाहिये। ये सभी संयोग नौवें शतक के प्रवेशनक नामक बत्तीसवें उद्देशक में जिस प्रकार आगे कहे जायेंगे, उसी प्रकार उपयोग पूर्वक यहां पर भी कहना चाहिये। यावत् असंख्यात और अनन्त द्रव्यों के परिणाम कहना चाहिये, परंतु एक पद अधिक करके कहना चाहिये। यावत् अथवा अनंत द्रव्य परिमण्डल संस्थानपने परिणत होते हैं, यावत् अनंत द्रव्य आयत संस्थानपने परिणत होते हैं।

विवेचन--चार आदि द्रव्यों के परिणाम के विषय में कथन किया जा रहा है। चार द्रव्यों के प्रयोग-परिणत आदि तीन के असंयोगी तीन भंग होते हैं और द्विक संयोगी नौ भंग होते हैं। त्रिक संयोगी तीन भंग होते हैं। इस तरह ये सभी पन्द्रह भंग होते हैं। आगे के भंगों के कथन के लिये पूर्वोक्त कथनानुसार संस्थान पर्यन्त यथायोग्य भंग कहना चाहिये।

पांच द्रव्यों के असंयोगी तीन भंग होते हैं और द्विक संयोगी बारह भंग होते हैं और त्रिक संयोगी छह भंग होते हैं। इस तरह ये इक्कीस भंग होते हैं।

इस प्रकार पांच, छह, आदि यावत् अनन्त द्रव्यों के भी यथायोग्य भंग कहन चाहिये। सूत्र के मूलपाठ में ग्यारह संयोगी भंग नहीं बतलाया है। इसका कारण यह कि पूर्वोक्त पदों में ग्यारह संयोगी भंग नहीं बनता।

नौवें शतक के बत्तीसवें उद्देशक में गांगेय अनगार के प्रवेशनक सम्बन्धी भंग क जावेंगे, तदनुसार यहाँ भी उपयोग लगाकर भंग कहना चाहिये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

परिणामों का अल्प बहुत्व

६९ प्रश्न–एएसिणं भंते ! पोग्गलाणं पओगपरिणयाणं मीसापरिणयाणं, वीससापरिणयाण य कयरे कयरेहिंतो जाव विसेसाहिया वा ?

६९ उत्तर–गोयमा ! सव्वत्थोवा पोग्गला पओगपरिणया, मीसापरिणया अणंतगुणा, वीससापरिणया अणंतगुणा ।

❀ सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति ❀

॥ अट्ठमसए पढमो उद्देसो समत्तो ॥

भावार्थ–६९ प्रश्न–हे भगवन् ! प्रयोग-परिणत, मिश्र-परिणत और विस्रसापरिणत, इन तीनों प्रकार के पुद्गलों में कौन किस से अल्प, बहुत, तुल्य और विशेषाधिक है ?

६९ उत्तर–हे गौतम ! सब से थोड़े पुद्गल प्रयोग-परिणत है, उनसे मिश्र-परिणत पुद्गल अनन्तगुणे है और उनसे विस्रसा-परिणत पुद्गल अनन्त गुणे हैं।

हे भगवन् ! यह इस प्रकार है । हे भगवन् ! यह इस प्रकार है । ऐसा कह कर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं ।

विवेचन—सब से थोड़े पुद्गल प्रयोग-परिणत हैं । अर्थात् मन, वचन और कायारूप योगों से परिणत पुद्गल सबसे थोड़े हैं, क्योंकि जीव और पुद्गल का सम्बन्ध अल्पकालीन हैं । प्रयोग-परिणत पुद्गलों से मिश्र-परिणत पुद्गल अनन्त गुणे हैं । क्योंकि प्रयोग-परिणाम द्वारा कृत आकार को न छोड़ते हुए विस्रसा-परिणाम द्वारा परिणामान्तर को प्राप्त हुए मृतकलेवर आदि अवयवरूप पुद्गल अनन्तानत हैं । विस्रसा-परिणत पुद्गल तो उनसे भी अनन्त गुणे हैं । क्योंकि जीव के द्वारा ग्रहण न किये जा सकने योग्य परमाणु आदि पुद्गल भी अनन्त गुणे हैं ।

॥ इति आठवें शतक का प्रथम उद्देशक समाप्त ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शतक ८ उद्देशक २

आशीविष

१ प्रश्न—कइविहा णं भंते ! आसीविसा पण्णत्ता ?

१ उत्तर—गोयमा ! दुविहा आसीविसा पण्णत्ता, तं जहा—जाइआसीविसा य कम्मआसीविसा य ।

२ प्रश्न—जाइआसीविसा णं भंते ! कइविहा पण्णत्ता ?

२ उत्तर—गोयमा ! चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा—विच्छुयजाइ-आसीविसे, मंडुक्कजाइआसीविसे, उरगजाइआसीविसे, मणुस्सजाइ-आसीविसे ।

३ प्रश्न—विच्छुयजाइआसीविसस्स णं भंते ! केवइए विसए पण्णत्ते ?

३ उत्तर—गोयमा ! पभू णं विच्छुयजाइआसीविसे अद्धभरह-प्पमाणमेत्तं बोंदिं विसेणं विसपरिगयं विसट्टमाणं पकरेत्तए, विसए से विसट्टयाए, णो चेव णं संपत्तीए करेंसु वा, करेंति, वा, करिस्संति वा ।

४ प्रश्न—मंडुक्कजाइआसीविस—पुच्छा ।

४ उत्तर—गोयमा ! पभू णं मंडुक्कजाइआसीविसे भरहप्प-माणमेत्तं बोंदिं विसेणं विसपरिगयं, सेसं तं चेव जाव करिस्संति वा । एवं उरगजाइआसीविसस्स वि, नवरं जंबुद्दीवप्पमाणमेत्तं बोंदिं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विसेणं विसपरिगयं, सेसं तं चेव जाव करिस्संति वा। मणुस्सजाइ-आसीविसस्स वि एवं चेव, णवरं समयखेत्तप्पमाणमेत्तं बोंदिं विसेणं विसपरिगयं, सेसं तं चेव जाव करिस्संति वा।

कठिन शब्दार्थ---आसीविस---आशीविष (प्राणियों की दाढ़ा में होने वाला विष) बोंदि--शरीर को, पभू--समर्थ, विसेणं--विष से, विसपरिगयं—विष से व्याप्त, विसट्टमाण - विकसित होता हुआ, संपत्तीए—सम्प्राप्ति से।

भावार्थ-१ प्रश्न-हे भगवन् ! आशीविष कितने प्रकार का कहा गया है ?

१ उत्तर—हे गौतम ! आशीविष दो प्रकार का कहा गया है। यथा-जाति-आशीविष और कर्म-आशीविष।

२ प्रश्न-हे भगवन् ! जाति-आशीविष कितने प्रकार का कहा गया है ?

२ उत्तर--हे गौतम ! वह चार प्रकार का कहा गया है। यथा---१ वृश्चिक-जाति-आशीविष, २ मण्डूक-जाति-आशीविष, ३ उरग-जाति-आशीविष और ४ मनुष्य-जाति-आशीविष।

३ प्रश्न—हे भगवन् ! वृश्चिक-जाति-आशीविष का कितना विषय कहा गया है, अर्थात् वृश्चिकजाति आशीविष का सामर्थ्य कितना है ?

३ उत्तर-हे गौतम ! वृश्चिक-जाति-आशीविष अर्द्ध भरत-क्षेत्र प्रमाण शरीर को विषयुक्त एवं विष से व्याप्त करने में समर्थ है। यह उस विष का सामर्थ्य मात्र है, परन्तु सम्प्राप्ति द्वारा अर्थात् क्रियात्मक प्रयोग द्वारा उसने ऐसा कभी किया नहीं, करता नहीं और करेगा भी नहीं।

४ प्रश्न-हे भगवन् ! मण्डूकजाति-आशीविष का विषय कितना है ?

४ उत्तर-हे गौतम ! मण्डूकजाति-आशीविष अपने विष द्वारा भरतक्षेत्र प्रमाण शरीर को व्याप्त कर सकता है। यह उसका सामर्थ्य मात्र है, परन्तु सम्प्राप्ति द्वारा उसने ऐसा कभी किया नहीं, करता नहीं और करेगा भी नहीं।

उरगजाति-आशीविष जम्बूद्वीप प्रमाण शरीर को अपने विष द्वारा व्याप्त

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कर सकता है। यह उसका सामर्थ्य मात्र है, किन्तु सम्प्राप्ति द्वारा उसने ऐसा कभी किया नहीं, करता नहीं और करेगा भी नहीं।

मनुष्यजाति-आशीविष, समय-क्षेत्र प्रमाण (मनुष्य-क्षेत्र प्रमाण—अढ़ाई द्वीप प्रमाण) शरीर को अपने विष द्वारा व्याप्त कर सकता है। किन्तु यह उसका सामर्थ्य मात्र है। सम्प्राप्ति द्वारा उसने कभी ऐसा किया नहीं, करता नहीं और करेगा भी नहीं।

५ प्रश्न—जइ कम्मआसीविसे किं णेरइयकम्मआसीविसे, तिरिक्खजोणियकम्मआसीविसे, मणुस्सकम्मआसीविसे, देवकम्मासीविसे ?

५ उत्तर–गोयमा ! णो णेरइयकम्मासीविसे, तिरिक्खजोणियकम्मासीविसे वि, मणुस्सकम्मासीविसे वि, देवकम्मासीविसे वि।

६ प्रश्न–जइ तिरिक्खजोणियकम्मासीविसे किं एगिंदियतिरिक्खजोणियकम्मासीविसे, जाव पंचिंदियतिरिक्खजोणियकम्मासीविसे ?

६ उत्तर–गोयमा ! णो एगिंदियतिरिक्खजोणियकम्मासीविसे, जाव णो चउरिंदियतिरिक्खजोणियकम्मासीविसे, पंचिंदियतिरिक्खजोणियकम्मासीविसे।

७ प्रश्न–जइ पंचिंदियतिरिक्खजोणियकम्मासीविसे किं संमुच्छिमपंचिंदियतिरिक्खजोणियकम्मासीविसे, गब्भवक्कंतियपंचिंदियतिरिक्खजोणियकम्मासीविसे ?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

७ उत्तर-एवं जहा वेउव्वियसरीरस्स भेओ, जाव पज्जत्तसंखेज्जवासाउयगब्भवक्कंतियपंचिंदियतिरिक्खजोणियकम्मासीविसे, णो अपज्जत्तसंखेज्जवासाउय-जाव कम्मासीविसे।

८ प्रश्न-जइ मणुस्सकम्मासीविसे किं संमुच्छिममणुस्सकम्मासीविसे, गब्भवक्कंतियमणुस्सकम्मासीविसे ?

८ उत्तर-गोयमा ! णो संमुच्छिममणुस्सकम्मासीविसे, गब्भवक्कंतियमणुस्सकम्मासीविसे, एवं जहा वेउव्वियसरीरं, जाव पज्जत्तसंखेज्जवासाउयकम्मभूमगगब्भवक्कंतियमणुस्सकम्मासीविसे, णो अपज्जत्त जाव कम्मासीविसे।

५ प्रश्न-हे भगवन् ! यदि कर्म-आशीविष है, तो क्या नैरयिक कर्म-आशीविष है, या तिर्यंच-योनिक कर्म-आशीविष है, या मनुष्य कर्म-आशीविष है, या देव कर्म-आशीविष है ?

५ उत्तर-हे गौतम ! नैरयिक कर्म-आशीविष नहीं, किन्तु तिर्यंच योनिक कर्म-आशीविष है, मनुष्य कर्म-आशीविष है और देव कर्म-आशीविष है।

६ प्रश्न—हे भगवन् ! यदि तिर्यंचयोनिक कर्म-आशीविष है, तो क्या एकेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक कर्म-आशीविष है, अथवा यावत् पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिक कर्म-आशीविष है ?

६ उत्तर-हे गौतम ! एकेन्द्रिय, बेइंद्रिय, तेइन्द्रिय और चउरिन्द्रिय तिर्यंचयोनिक कर्म-आशीविष नहीं, परन्तु पंचेंद्रिय तिर्यंचयोनिक कर्म-आशीविष है।

७ प्रश्न-हे भगवन् ! यदि पंचेंद्रिय तिर्यंचयोनिक कर्म-आशीविष है, तो क्या सम्मूर्च्छिम पंचेंद्रिय तिर्यंचयोनिक कर्म-आशीविष है, या गर्भज पंचेंद्रिय

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तिर्यंचयोनिक कर्म-आशीविष है ?

७ उत्तर-हे गौतम ! प्रज्ञापनासूत्र के इक्कीसवें शरीर पद में वैक्रिय-शरीर के सम्बन्ध में जिस प्रकार कहा है, उसी प्रकार कहना चाहिये । यावत् पर्याप्त संख्यात वर्ष की आयुष्य वाला गर्भज कर्मभूमिज पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक कर्म-आशीविष होता है, परन्तु अपर्याप्त संख्यात वर्ष की आयुष्य वाला यावत् कर्म-आशीविष नहीं होता ।

८ प्रश्न-हे भगवन् ! यदि मनुष्य कर्म-आशीविष है, तो क्या सम्मूच्छिम मनुष्य कर्म-आशीविष है, या गर्भज मनुष्य कर्म-आशीविष है ?

८ उत्तर—हे गौतम ! सम्मूच्छिम मनुष्य कर्म-आशीविष नहीं होता, किन्तु गर्भज मनुष्य कर्म आशीविष होता है प्रज्ञापनासूत्र के इक्कीसवें शरीर पद में वैक्रिय-शरीर के सम्बन्ध में जिस प्रकार जीव के भेद कहे गये है, उसी प्रकार यहाँ भी कहना चाहिये । यावत् पर्याप्त संख्यात वर्ष की आयुष्य वाले कर्मभूमिज गर्भज मनुष्य कर्म-आशीविष होते है, परन्तु अपर्याप्त, संख्यात वर्ष की आयुवाले यावत् कर्म-आशीविष नहीं होते ।

९ प्रश्न-जइ देवकम्मासीविसे किं भवणवासिदेवकम्मासीविसे, जाव वेमाणियदेवकम्मासीविसे ?

९ उत्तर-गोयमा ! भवणवासिदेवकम्मासीविसे, वाणमंतरजोइसिय-वेमाणियदेवकम्मासीविसे वि ।

१० प्रश्न-जइ भवणवासिदेवकम्मासीविसे, किं असुरकुमारभवणवासिदेवकम्मासीविसे, जाव थणियकुमार जाव कम्मासीविसे ?

१० उत्तर-गोयमा ! असुरकुमार भवणवासिदेवकम्मासीविसे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वि, जाव थणियकुमार जाव कम्मासीविसे वि।

११ प्रश्न—जइ असुरकुमार जाव कम्मासीविसे, किं पज्जत्त-असुरकुमार-भवणवासि-देवकम्मासीविसे, अपज्जत्तअसुरकुमार जाव कम्मासीविसे ?

११ उत्तर—गोयमा ! णो पज्जत्तअसुरकुमार—जाव कम्मासीविसे, अपज्जत्तअसुरकुमार जाव कम्मासीविसे, एवं जाव थणियकुमाराणं।

१२ प्रश्न—जइ वाणमंतरदेवकम्मासीविसे किं पिसायवाणमंतर-देवकम्मासीविसे ?

१२ उत्तर—एवं सव्वेसिं पि अपज्जत्तगाणं, जोइसियाणं सव्वेसिं अपज्जत्तगाणं।

भावार्थ-९ प्रश्न—हे भगवन् ! यदि देव कर्म-आशीविष होते हैं, तो क्या भवनवासी देव कर्म-आशीविष होते हैं, अथवा यावत् वैमानिक देव कर्म-आशीविष होते हैं।

९ उत्तर—हे गौतम ! भवनवासी, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक देव, ये चारों प्रकार के देव कर्म-आशीविष होते हैं।

१० प्रश्न—हे भगवन् ! यदि भवनवासी देव कर्म-आशीविष होते हैं, तो क्या असुरकुमार भवनवासी देव कर्म आशीविष होते हैं, अथवा यावत् स्तनित-कुमार भवनवासी देव कर्म-आशीविष होते हैं ?

१० उत्तर—हे गौतम ! असुरकुमार भवनवासी देव भी कर्म-आशीविष होते हैं, यावत् स्तनितकुमार भवनवासी देव भी कर्म-आशीविष होते हैं।

११ प्रश्न—हे भगवन् ! यदि असुरकुमार यावत् स्तनितकुमार भवनवासी देव कर्म-आशीविष हैं तो क्या पर्याप्त असुरकुमारादि भवनवासी देव कर्म-आशी-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विष हैं, अथवा अपर्याप्त असुरकुमारादि भवनवासी देव कर्म-आशीविष हैं?

११ उत्तर—हे गौतम ! पर्याप्त असुरकुमार भवनवासी देव कर्म-आशीविष नहीं, परन्तु अपर्याप्त असुरकुमार भवनवासी देव कर्म-आशीविष हैं। इस प्रकार यावत् स्तनितकुमारों तक जानना चाहिये ।

१२ प्रश्न—हे भगवन् ! यदि वाणव्यन्तर देव कर्म आशीविष हैं, तो क्या पिशाच वाणव्यन्तर देव कर्म-आशीविष हैं इत्यादि प्रश्न ?

१२ उत्तर—हे गौतम ! वे सभी अपर्याप्त अवस्था में कर्म-आशीविष हैं। इस प्रकार सभी ज्योतिषी देव भी अपर्याप्त अवस्था में कर्म-आशीविष हैं ।

१३ प्रश्न—जइ वेमाणियदेवकम्मासीविसे किं कप्पोवगवेमाणियदेवकम्मासीविसे, कप्पाईयवेमाणियदेवकम्मासीविसे ?

१३ उत्तर—गोयमा ! कप्पोवगवेमाणियदेवकम्मासीविसे, णो कप्पाईयवेमाणियदेवकम्मासीविसे ।

१४ प्रश्न—जइ कप्पोवगवेमाणियदेवकम्मासीविसे किं सोहम्मकप्पोवग जाव कम्मासीविसे, जाव अच्चुयकप्पोवग जाव कम्मासीविसे ?

१४ उत्तर—गोयमा ! सोहम्मकप्पोवगवेमाणियदेवकम्मासीविसे वि, जाव सहस्सारकप्पोवगवेमाणियदेवकम्मासीविसे वि, णो आणयकप्पोवग, जाव णो अच्चुयकप्पोवगवेमाणियदेवकम्मासीविसे ।

१५ प्रश्न—जइ सोहम्मकप्पोवग जाव कम्मासीविसे किं पज्जत्तसोहम्मकप्पोवगवेमाणिय, अपज्जत्त-सोहम्मकप्पोवग-वेमाणियदेव-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कम्मासीविसे ?

१५ उत्तर-गोयमा ! णो पज्जत्तसोहम्मकप्पोवगवेमाणियदेवकम्मासीविसे, अपज्जत्तसोहम्मकप्पोवगवेमाणियदेवकम्मासीविसे, एवं जाव णो पज्जत्तसहस्सारकप्पोवगवेमाणिय जाव कम्मासीविसे, अपज्जत्तसहस्सारकप्पोवग जाव कम्मासीविसे ।

भावार्थ-१३ प्रश्न-हे भगवन् ! यदि वैमानिक देव कर्म-आशीविष हैं, तो क्या कल्पोपपन्नक वैमानिक देव कर्म-आशीविष हैं, या कल्पातीत वैमानिक देव कर्म-आशीविष हैं ?

१३ उत्तर-हे गौतम ! कल्पोपपन्नक वैमानिक देव कर्म-आशीविष हैं । परन्तु कल्पातीत वैमानिक देव कर्म-आशीविष नहीं हैं ।

१४ प्रश्न-हे भगवन् ! यदि कल्पोपपन्नक वैमानिक देव कर्म-आशीविष हैं, तो क्या सौधर्म-कल्पोपपन्नक वैमानिक देव कर्म-आशीविष हैं, अथवा यावत् अच्युत-कल्पोपपन्नक वैमानिक देव कर्म-आशीविष हैं ?

१४ उत्तर-हे गौतम ! सौधर्म-कल्पोपपन्नक वैमानिक देव यावत् सहस्रार-कल्पोपपन्नक वैमानिक देव कर्म-आशीविष हैं । परन्तु आणत, प्राणत, आरण और अच्युत कल्पोपपन्नक वैमानिक देव, कर्म-आशीविष नहीं हैं ।

१५ प्रश्न-हे भगवन् ! यदि सौधर्म-कल्पोपपन्नक वैमानिक देव कर्म-आशीविष हैं, तो तो क्या पर्याप्त सौधर्म-कल्पोपन्नक वैमानिक देव कर्म-आशीविष हैं, अथवा अपर्याप्त सौधर्म-कल्पोपपन्नक वैमानिक देव कर्म आशीविष हैं ?

१५ उत्तर-हे गौतम ! पर्याप्त सौधर्म-कल्पोपपन्नक देव कर्म-आशीविष नहीं, परन्तु अपर्याप्त सौधर्म-कल्पोपपन्नक वैमानिक देव कर्म-आशीविष हैं । इस प्रकार यावत् पर्याप्त सहस्रार-कल्पोपन्नक वैमानिक देव कर्म-आशीविष नहीं । परन्तु अपर्याप्त सहस्रार-कल्पोपपन्नक वैमानिक देव कर्म-आशीविष हैं ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेचन–आशीविष–'आशी' का अर्थ है-'दाढ़' (दंष्ट्रा)। जिन जीवों की दाढ़ में विष होता है, उनको 'आशीविष' कहते हैं। आशीविष प्राणियों के दो भेद हैं–१ जाति-आशीविष और २ कर्म-आशीविष। सांप, विच्छू आदि प्राणी जाति (जन्म) से ही आशीविष होते हैं। इसलिये उन्हें 'जाति-आशीविष' कहते हैं। जो कर्म अर्थात् शाप (श्राप) आदि द्वारा प्राणियों का नाश करते हैं, उन्हें 'कर्म-आशीविष' कहते हैं। पर्याप्त तिर्यंच पंचेंद्रिय और मनुष्य को तपश्चर्या आदि से अथवा अन्य किसी गुणों के कारण 'आशीविष लब्धि' उत्पन्न हो जाती है। इसलिये वे शाप देकर दूसरे का नाश करने की शक्तिवाले होते हैं। ये जीव आशीविष लब्धि के स्वभाव से आठवें देवलोक से आगे उत्पन्न नहीं हो सकते। उन्होंने पूर्व-भव में आशीविष-लब्धि का अनुभव किया था। अतः वे देव, अपर्याप्त अवस्था में आशीविष युक्त होते हैं।

इन विषों का जो विषय परिमाण बतलाया गया है, उसका आशय यह है कि असत्कल्पना से जैसे किसी मनुष्य ने अपना शरीर अर्द्ध भरत प्रमाण बनाया हो, उसके पैर में बिच्छू डंक दे, तो उसके मस्तक तक उसका जहर चढ़ जाता है। इसी प्रकार भरत प्रमाण, जम्बूद्वीप प्रमाण और ढ़ाई द्वीप प्रमाण का अर्थ समझना चाहिये। यह इनका सामर्थ्यमात्र है, परन्तु इन्होंने ऐसा कभी किया नहीं, करते नहीं और करेंगे भी नहीं।

छद्मस्थ द्वारा अज्ञेय

१६ दस ठाणाइं छउमत्थे सव्वभावेणं ण जाणइ ण पासइ, तं जहा–१ धम्मत्थिकायं, २ अधम्मत्थिकायं, ३ आगासत्थिकायं, ४ जीवं असरीरपडिबद्धं, ५ परमाणुपोग्गलं, ६ सद्दं, ७ गंधं, ८ वायं, ९ अयं जिणे भविस्सइ वा ण वा भविस्सइ, १० अयं सव्वदुक्खाणं अंतं करेस्सइ वा ण वा करेस्सइ। एयाणि चेव उप्पण्णणाण-दंसणधरे अरहा जिणे केवली सव्वभावेणं जाणइ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पासइ, तं जहा-धम्मत्थिकायं, जाव करेस्सइ वा ण वा करेस्सइ ।

कठिन शब्दार्थ—छउमत्थे—छद्मस्थ (जो सर्वज्ञ नहीं = अपूर्ण ज्ञानी) **सव्वभावेणं**-सभी भावों से अर्थात् अनन्त पर्यायों से ।

भावार्थ--१६ छद्मस्थ पुरुष इन दस वस्तुओं को सर्वभाव से नहीं जानता और नहीं देखता । यथा--१ धर्मास्तिकाय, २ अधर्मास्तिकाय, ३ आकाशास्तिकाय, ४ शरीर रहित जीव, ५ परमाणु पुद्गल, ६ शब्द, ७ गन्ध ८ वायु, ९ यह जीव जिन होगा या नहीं, १० यह जीव सभी दुःखों का अन्त करेगा या नहीं। इन दस बातों को उत्पन्न ज्ञान-दर्शन के धारक, अरिहन्त-जिन-केवली ही सर्वभाव से जानते और देखते हैं । यथा-धर्मास्तिकाय यावत् यह जीव समस्त दुःखों का अन्त करेगा या नहीं ।

विवेचन—छद्मस्थ का सामान्यतया अर्थ है—'केवलज्ञान रहित'। किन्तु यहाँ पर छद्मस्थ का अर्थ है-'अवधिज्ञान आदि विशिष्ट ज्ञान रहित ।' क्योंकि विशिष्ट अवधिज्ञानी अमूर्त होने से धर्मास्तिकाय आदि को नहीं जानता नहीं देखता, किन्तु परमाणु आदि मूर्त हैं, उनको वह जानता है । क्योंकि विशिष्ट अवधिज्ञान का विषय सर्वमूर्त्त द्रव्य है । यहाँ यदि कोई यह शंका करे कि छद्मस्थ, परमाणु आदि को कथंचित् जानता है, परन्तु समस्त पर्यायों से नहीं जानता, इसलिये मूलपाठ में-'सव्व भावेणं ण जाणइ ण पासइ'--कहा है, अर्थात् 'वह सर्वभाव से नहीं जानता और नहीं देखता ।' इसका उत्तर यह है कि यदि इसका ऐसा अर्थ किया जायेगा, तो छद्मस्थ के लिये अज्ञेय दस संख्या का नियम नहीं रहेगा । क्योंकि घटादि बहुत पदार्थों को छद्मस्थ, अनन्त पर्याय रूप से जानने में असमर्थ है । इसलिये 'सव्वभावेणं' अर्थात् सर्व-भाव का अर्थ है—'साक्षात्' (प्रत्यक्ष) । यह अर्थ करने से ही इस सूत्र का अर्थ संगत होगा कि 'अवध्यादि विशिष्ट ज्ञान रहित छद्मस्थ, धर्मास्तिकाय आदि दस वस्तुओं को प्रत्यक्ष रूप से नहीं जानता और नहीं देखता । इन दस बातों को जानने वाले का कथन करते हुए कहा है कि उत्पन्न केवलज्ञान-दर्शन के धारक अरिहन्त-जिन-केवली, केवलज्ञान के द्वारा इन दस बातों को सर्वभाव से अर्थात् साक्षात् रूप से जानते हैं और देखते हैं ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञान के भेद

१७ प्रश्न–कइविहे णं भंते ! णाणे पण्णत्ते ?

१७ उत्तर–गोयमा ! पंचविहे णाणे पण्णत्ते, तं जहा–आभिणिबोहियणाणे, सुयणाणे, ओहिणाणे, मणपज्जवणाणे, केवलणाणे।

१८ प्रश्न–से किं तं आभिणिबोहियणाणे ?

१८ उत्तर–आभिणिबोहियणाणे चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा–उग्गहो, ईहा, अवाओ, धारणा; एवं जहा 'रायप्पसेणइज्जे' णाणाणं भेओ तहेव इह भाणियव्वो; जाव सेत्तं केवलणाणे।

कठिन शब्दार्थ--उग्गहो--अवग्रह (सम्बन्ध मात्र होने वाला-एक समय मात्र के लिए संबंध से होने वाला, आभास) ईहा--विचार करना, अवाओ--विचार कर निश्चित करना, धारणा--स्मृति में रखना।

भावार्थ–१७ प्रश्न–हे भगवन् ! ज्ञान कितने प्रकार का कहा गया है ?

१७ उत्तर–हे गौतम ! ज्ञान पांच प्रकार का कहा गया है। यथा—आभिनिबोधिक ज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान।

१८ प्रश्न—हे भगवन् ! आभिनिबोधिकज्ञान कितने प्रकार का कहा गया है ?

१८ उत्तर—हे गौतम ! आभिनिबोधिक ज्ञान चार प्रकार का कहा गया है। यथा–अवग्रह, ईहा, अवाय (अपाय) और धारणा। जिस प्रकार राजप्रश्नीय सूत्र में ज्ञान के भेद कहे गये हैं, उसी प्रकार यावत् केवलज्ञान पर्यन्त कहना चाहिये।

१९ प्रश्न–अण्णाणे णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते ?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१९ उत्तर–गोयमा ! तिविहे पण्णत्ते, तं जहा–मइअण्णाणे, सुयअण्णाणे, विभंगणाणे।

२० प्रश्न–से किं तं मइअण्णाणे ?

२० उत्तर–मइअण्णाणे चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा–उग्गहे जाव धारणा।

२१ प्रश्न–से किं तं उग्गहे ?

२१ उत्तर–उग्गहे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–अत्थोग्गहे य वंजणोग्गहे य, एवं जहेव आभिणिबोहियणाणं तहेव, णवरं एगट्ठियवज्जं जाव नोइंदियधारणा। सेत्तं धारणा, सेत्तं मइअण्णाणे।

२२ प्रश्न–से किं तं सुयअण्णाणे ?

२२ उत्तर–जं इमं अण्णाणिएहिं मिच्छादिट्ठिएहिं जहा णंदीए जाव चत्तारि वेया संगोवंगा, सेत्तं सुयअण्णाणे।

२३ प्रश्न–से किं तं विभंगणाणे ?

२३ उत्तर–विभंगणाणे अणेगविहे पण्णत्ते, तं जहा–गामसंठिए, णयरसंठिए, जाव सण्णिवेससंठिए, दीवसंठिए समुद्दसंठिए, वाससंठिए, वासहरसंठिए, पव्वयसंठिए, रुक्खसंठिए, थूभसंठिए, हयसंठिए, गयसंठिए णरसंठिए, किण्णरसंठिए, किंपुरिससंठिए महोरगसंठिए, गंधव्वसंठिए, उसभसंठिए, पसु-पसय-विहग-वाणर-णाणासंठाणसंठिए पण्णत्ते।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ—संगोवंगा-सांगोपांग-अंग उपांग सहित, अत्थोग्गहे—अर्थ अवग्रह वंजणोग्गहे—व्यञ्जन अवग्रह, एगट्ठियवज्जं—एकार्थिक छोड़कर, नोइंदिय—मन, वास-संठिए—वर्ष के आकार का, वासहरसंठिए—वर्षधर पर्वत के आकार, थूभसंठिए—स्तूप के आकार का, हयसंठिए—घोड़े के आकार का, गय—हाथी, पसु—पशु, पसय—पशु-विशेष (दो खुरवाला पशु), विहग—पक्षी।

भावार्थ-१९ प्रश्न-हे भगवन् ! अज्ञान कितने प्रकार का कहा गया है ?

१९ उत्तर-हे गौतम ! अज्ञान तीन प्रकार का कहा गया है। यथा—मतिअज्ञान, श्रुतअज्ञान और विभंगज्ञान।

२० प्रश्न-हे भगवन् ! मतिअज्ञान कितने प्रकार का कहा गया है ?

२० उत्तर-हे गौतम ! मतिअज्ञान चार प्रकार का कहा गया है। यथा-अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा।

२१ प्रश्न-हे भगवन् ! अवग्रह कितने प्रकार का कहा गया है ?

२१ उत्तर-हे गौतम ! अवग्रह दो प्रकार का कहा गया है। यथा—अर्थावग्रह और व्यंजनावग्रह। जिस प्रकार नन्दीसूत्र में आभिनिबोधिक ज्ञान के विषय में कहा है, उसी प्रकार यहाँ भी जान लेना चाहिये। किन्तु वहां आभि-निबोधिक ज्ञान के प्रकरण में अवग्रह आदि के एकार्थिक (समानार्थक) शब्द कहे हैं। उनको छोड़कर यावत् नोइन्द्रिय धारणा तक कहना चाहिये। इस प्रकार धारणा का और मतिअज्ञान का यह कथन किया गया है।

२२ प्रश्न-हे भगवन् ! श्रुतअज्ञान कितने प्रकार का कहा गया है ?

२२ उत्तर-हे गौतम ! जिस प्रकार नन्दीसूत्र में कहा है-'जो अज्ञानी मिथ्यादृष्टियों द्वारा प्ररूपित है,' इत्यादि यावत् सांगोपांग चार वेद तक श्रुत-अज्ञान है। इस प्रकार यह श्रुतअज्ञान का वर्णन किया गया है।

२३ प्रश्न—हे भगवन् ! विभंगज्ञान कितने प्रकार का कहा गया है ?

२३ उत्तर—हे गौतम ! विभंगज्ञान अनेक प्रकार का कहा गया है। यथा-ग्राम संस्थित अर्थात् ग्राम के आकार, नगर संस्थित अर्थात् नगर के आकार यावत् सन्निवेश संस्थित, द्वीप संस्थित, समुद्र संस्थित, वर्ष संस्थित (भरतादि क्षेत्र

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

के आकार), वर्षधर संस्थित (क्षेत्र की मर्यादा करने वाले पर्वतों के आकार), सामान्य पर्वताकार, वृक्ष के आकार, स्तूप के आकार, घोडे के आकार, हाथी के आकार, मनुष्य के आकार, किन्नर के आकार, किम्पुरुष के आकार, महोरग के आकार, गन्धर्व के आकार, वृषभ (बैल) के आकार, पशु के आकार, पशय अर्थात् दो खुर वाले एक प्रकार के जंगली जानवर के आकार, विहग अर्थात् पक्षी के आकार और वानर के आकार, इस प्रकार विभंगज्ञान, नाना संस्थान संस्थित कहा गया है।

२४ प्रश्न—जीवाणं भंते ! किं णाणी अण्णाणी ?

२४ उत्तर—गोयमा ! जीवा णाणी वि अण्णाणी वि; जे णाणी ते अत्थेगइया दुण्णाणी अत्थेगइया तिण्णाणी, अत्थेगइया चउ-णाणी, अत्थेगइया एगणाणी। जे दुण्णाणी ते आभिणिबोहियणाणी य सुयणाणी य। जे तिण्णाणी ते आणिबोहियणाणी, सुयणाणी, ओहिणाणी; अहवा आभिणिबोहियणाणी, सुयणाणी, मणपज्जवणाणी। जे चउणाणी ते आभिणिबोहियणाणी, सुयणाणी, ओहिणाणी, मण-पज्जवणाणी, जे एगणाणी ते णियमा केवलणाणी। जे अण्णाणी ते अत्थेगइया दुअण्णाणी, अत्थेगइया तिअण्णाणी। जे दुअण्णाणी ते मइअण्णाणी सुयअण्णाणी य। जे तिअण्णाणी ते मइअण्णाणी, सुयअण्णाणी विभंगणाणी।

कठिन शब्दार्थ—अत्थेगइया—कुछ लोग (कितने ही)।

भावार्थ—२४ प्रश्न—हे भगवन् ! जीव ज्ञानी है, या अज्ञानी है ?

२४ उत्तर—हे गौतम ! जीव ज्ञानी भी है और अज्ञानी भी है। जो जीव

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञानी हैं, उनमें से कुछ जीव, दो ज्ञान वाले हैं, कुछ जीव तीन ज्ञान वाले हैं, कितनेक जीव चार ज्ञान वाले हैं और कुछ जीव एक ज्ञान वाले हैं। जो दो ज्ञान वाले हैं, वे मतिज्ञान और श्रुतज्ञान वाले हैं। जो तीन ज्ञान वाले हैं, वे मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान वाले हैं, अथवा मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और मनःपर्ययज्ञान वाले हैं। जो जीव चार ज्ञान वाले हैं, वे मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्यय ज्ञान वाले हैं। जो जीव, एक ज्ञान वाले हैं, वे अवश्य ही केवलज्ञान वाले हैं। जो जीव अज्ञानी हैं, उनमें कुछ जीव दो अज्ञान वाले हैं और कुछ जीव तीन अज्ञान वाले हैं। जो दो अज्ञान वाले हैं, वे मति अज्ञान और श्रुत अज्ञान वाले हैं। जो तीन अज्ञान वाले हैं, वे मति अज्ञान, श्रुत अज्ञान और विभंगज्ञान वाले हैं।

विवेचन–आभिनिबोधिक ज्ञान (मतिज्ञान) इन्द्रिय और मन की सहायता से, योग्य देश में रही हुई वस्तु को जानने वाला ज्ञान 'आभिनिबोधिक ज्ञान' कहलाता है।

श्रुतज्ञान–वाच्य वाचक भाव सम्बन्ध द्वारा शब्द से सम्बद्ध अर्थ का ग्रहण कराने वाला, इन्द्रिय मन कारणक ज्ञान श्रुतज्ञान है। जैसे–इस प्रकार कम्बुग्रीवादि आकार वाली वस्तु जलधारणादि क्रिया में समर्थ है और 'घट' शब्द से कही जाती है, इत्यादि रूप से शब्दार्थ की पर्यालोचना के बाद होने वाले त्रैकालिक सामान्य परिणाम को प्रधानता देने वाला ज्ञान, श्रुतज्ञान है।

अथवा–मतिज्ञान के अनन्तर होने वाला और शब्द तथा अर्थ की पर्यालोचना जिसमें हो ऐसा ज्ञान 'श्रुतज्ञान' कहलाता है। जैसे कि–घट शब्द के सुनने पर अथवा आँख से घड़े के देखने पर उसके बनाने वाले का, उसके रंग का और इसी प्रकार तत् सम्बन्धी भिन्न-भिन्न विषयों का विचार करना 'श्रुतज्ञान' है।

अवधिज्ञान–इन्द्रिय तथा मन की सहायता के बिना मर्यादा को लिये हुए रूपी द्रव्य का ज्ञान करना–'अवधिज्ञान' कहलाता है।

मनःपर्ययज्ञान–इन्द्रिय और मन की सहायता के बिना मर्यादा को लिये हुए, संज्ञी जीवों के मनोगत भावों को जानना–'मनःपर्यय ज्ञान' है।

केवलज्ञान–मति आदि ज्ञान की अपेक्षा बिना त्रिकाल एवं त्रिलोकवर्ती समस्त पदार्थों का युगपत् हस्तामलकवत् जानना 'केवलज्ञान' है।

मतिज्ञान के चार भेद–१ अवग्रह, २ ईहा, ३ अवाय, और ४ धारणा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अवग्रह-इन्द्रिय और पदार्थों के योग्य स्थान में रहने पर सामान्य प्रतिभास रूप दर्शन के बाद होने वाला, अवान्तर सत्ता सहित वस्तु के सर्व प्रथम ज्ञान को 'अवग्रह' कहते हैं। जैसे—दूर से किसी चीज का ज्ञान होना।

ईहा-अवग्रह से जाने हुए पदार्थ के विषय में उत्पन्न हुए संशय को दूर करते हुए विशेष की जिज्ञासा को 'ईहा' कहते हैं। जैसे-अवग्रह से किसी दूरस्थ वस्तु का ज्ञान होने पर संशय होता है कि 'यह दूरस्थ वस्तु मनुष्य है, या स्थाणु।' ईहा-ज्ञानवान् व्यक्ति, विशेष धर्म विषयक विचारणा द्वारा इस संशय को दूर करता है और यह जान लेता है कि यह मनुष्य होना चाहिये। यह ज्ञान, दोनों पक्षों में रहने वाले संशय को दूर कर एक ओर झुकता है। परन्तु यह इतना कमजोर होता है कि ज्ञाता को इससे पूर्ण निश्चय नहीं होता और उसको तद्विषयक निश्चयात्मक ज्ञान की आकांक्षा बनी ही रहती है।

अवाय-ईहा से जाने हुए पदार्थों में 'यह वही है, अन्य नहीं है," ऐसे निश्चयात्मक ज्ञान को 'अवाय' कहते हैं। जैसे—यह मनुष्य है, स्थाणु (ठूंठ) नहीं।

धारणा—अवाय से जाना हुआ पदार्थों का ज्ञान, इतना दृढ़ हो जाय कि कालान्तर में भी उसका विस्मरण न हो, तो उसे 'धारणा' कहते हैं।

अवग्रह के दो भेद हैं। १ अर्थावग्रह और २ व्यञ्जनावग्रह।

अर्थावग्रह-पदार्थ के अव्यक्त ज्ञान को अर्थावग्रह कहते हैं। अर्थावग्रह में पदार्थ के वर्ण, गन्ध आदि का अव्यक्त ज्ञान होता है। इसकी स्थिति एक समय की है।

व्यञ्जनावग्रह-अर्थावग्रह से पहले होने वाला अत्यन्त अव्यक्त ज्ञान 'व्यञ्जनावग्रह' है। तात्पर्य यह है कि इन्द्रियों का पदार्थ के साथ जब सम्बन्ध होता है, तब 'किमपीदम्' (यह कुछ है)। ऐसा अस्पष्ट ज्ञान होता है। यही ज्ञान अर्थावग्रह है। इससे पहले होने वाला अत्यन्त अस्पष्ट ज्ञान, व्यञ्जनावग्रह कहलाता है। दर्शन के बाद व्यंजनावग्रह होता है। यह चक्षु और मन को छोड़कर शेष चार इन्द्रियों से ही होता है। इसकी जघन्य स्थिति आवलिका के असंख्यातवें भाग की है और उत्कृष्ट दो से नव श्वासोच्छ्वास की है।

नन्दीसूत्र में अवग्रह आदि के पांच पांच एकार्थक नाम दिये गये हैं। यथा-अवग्रह के पांच नाम-१ अवग्रहणता, २ उपाधारणता, ३ श्रवणता, ४ अवलम्बनता, ५ मेधा। ईहा के पांच नाम-१ आभोगनता, २ मार्गणता, ३ गवेषणता, ४ चिन्ता, ५ विमर्श। अवाय के पांच नाम-१ आवर्तनता, २ प्रत्यावर्तनता, ३ अवाय, ४ बुद्धि, ५ विज्ञान। धारणा के पांच नाम-१ धरणा, २ धारणा, ३ स्थापना, ४ प्रतिष्ठा, ५ कोष्ठ। ये सब मिलाकर बीस भेद

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

होते हैं। इन की स्थिति इस प्रकार बतलाई गई है।

उग्गहे इक्कसमइए, अंतोमुहुत्तिया ईहा।

अंतोमुहुत्तिए अवाए, धारणा संखेज्जं वा कालं असंखेज्जं वा कालं ।।

अर्थ-अवग्रह की स्थिति एक समय की है। ईहा की अन्तर्मुहूर्त की, अवाय की अन्तर्मुहूर्त की और धारणा की स्थिति संख्यात वर्ष की आयुष्य वालों की अपेक्षा संख्यात काल की है और असंख्यात वर्ष की आयुष्य वालों की अपेक्षा असंख्यात काल की है।

श्रुतज्ञान के अक्षरश्रुत, अनक्षरश्रुत आदि चौदह भेद हैं।

अवधिज्ञान के भवप्रत्यय और गुणप्रत्यय—ये दो भेद हैं।

मनःपर्यवज्ञान के ऋजुमति और विपुलमति—ये दो भेद हैं।

केवलज्ञान का दूसरा कोई भेद नहीं है। यह एक ही भेद वाला है।

मतिज्ञान से विपरीत ज्ञान को 'मतिअज्ञान' कहते हैं। अर्थात् अविशेषित मति, सम्यग्-दृष्टि के लिये मतिज्ञान है और मिथ्यादृष्टि के लिये मतिअज्ञान है। इसी तरह अविशेषित श्रुत, सम्यग्दृष्टि के लिये श्रुतज्ञान है और मिथ्यादृष्टि के लिये 'श्रुतअज्ञान' है। अवधिज्ञान से विपरीत ज्ञान को 'विभंगज्ञान' कहते हैं। ज्ञान में अवग्रह आदि के एकार्थक नाम कहे गये हैं, वे यहाँ अज्ञान के प्रकरण में नहीं कहने चाहिये।

ज्ञानी अज्ञानी

२५ प्रश्न-णेरइया णं भंते ! किं णाणी, अण्णाणी ?

२५ उत्तर-गोयमा ! णाणी वि, अण्णाणी वि। जे णाणी ते णियमा तिण्णाणी, तं जहा-आभिणिबोहियणाणी, सुयणाणी, ओहिणाणी। जे अण्णाणी ते अत्थेगइया दुअण्णाणी, अत्थेगइया तिअण्णाणी; एवं तिण्णि अण्णाणाणि भयणाए।

२६ प्रश्न-असुरकुमारा णं भंते ! किं णाणी, अण्णाणी ?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

२६ उत्तर-जहेव णेरइया तहेव, तिण्णि णाणाणि णियमा, तिण्णि य अण्णाणाणि भयणाए, एवं जाव थणियकुमारा।

कठिन शब्दार्थ--भयणाए—भजना से (विकल्प से)।

भावार्थ-२५ प्रश्न-हे भगवन्! नैरयिक जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी हैं ?

२५ उत्तर—हे गौतम! नैरयिक जीव ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी हैं। उनमें जो ज्ञानी हैं, वे नियमा (अवश्य) तीन ज्ञान वाले होते हैं। यथा-मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी। उनमें जो अज्ञानी हैं, उनमें से कुछ दो अज्ञान वाले हैं, और कुछ तीन अज्ञान वाले हैं। इस प्रकार तीन अज्ञान भजना (विकल्प) से होते हैं।

२६ प्रश्न—हे भगवन्! असुरकुमार ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ?

२६ उत्तर—हे गौतम! जिस प्रकार नैरयिकों का कथन किया गया है, उसी प्रकार असुरकुमारों का भी कथन करना चाहिये। अर्थात् जो ज्ञानी हैं, वे अवश्य ही तीन ज्ञान वाले हैं और जो अज्ञानी हैं, वे भजना से तीन अज्ञान वाले हैं। इस प्रकार स्तनितकुमारों तक कहना चाहिये।

२७ प्रश्न-पुढविकाइया णं भंते! किं णाणी, अण्णाणी ?

२७ उत्तर-गोयमा! णो णाणी, अण्णाणी। जे अण्णाणी ते णियमा दुअण्णाणी-मइअण्णाणी य सुयअण्णाणी य। एवं जाव वणस्सइकाइया।

२८ प्रश्न-बेइंदियाणं पुच्छा।

२८ उत्तर-गोयमा! णाणी वि अण्णाणी वि। जे णाणी ते णियमा दुण्णाणी, तं जहा-आभिणिबोहियणाणी य सुयणाणी य।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जे अण्णाणी ते णियमा दुअण्णाणी, तं जहा-मइअण्णाणी य सुय-अण्णाणी य। एवं तेइंदिय-चउरिंदिया वि।

२९ प्रश्न-पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं पुच्छा।

२९ उत्तर-गोयमा! णाणी वि अण्णाणी वि। जे णाणी ते अत्थेगइया दुण्णाणी, अत्थेगइया तिण्णाणी। एवं तिण्णि णाणाणि तिण्णि अण्णाणाणि य भयणाए। मणुस्सा जहा जीवा, तहेव पंच णाणाइं तिण्णि अण्णाणाणि य भयणाए। वाणमंतरा जहा णेरइया। जोइसिय-वेमाणियाणं तिण्णि णाणाणि तिण्णि अण्णाणाणि णियमा।

३० प्रश्न-सिद्धाणं भंते! पुच्छा?

३० उत्तर-गोयमा! णाणी, णो अण्णाणी, णियमा एगणाणी केवलणाणी।

भावार्थ-२७ प्रश्न-हे भगवन्! पृथ्वीकायिक जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी?

२७ उत्तर—हे गौतम! वे ज्ञानी नहीं, किन्तु अज्ञानी हैं। वे नियमा दो अज्ञान वाले हैं। यथा—मतिअज्ञान और श्रुतअज्ञान। इस प्रकार यावत् वनस्पतिकायिक पर्यन्त कहना चाहिये।

२८ प्रश्न—हे भगवन्! बेइंद्रिय जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी हैं?

२८ उत्तर—हे गौतम! वे ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी हैं। जो ज्ञानी हैं वे नियमा दो ज्ञान वाले हैं। यथा-मतिज्ञान और श्रुतज्ञान। जो अज्ञानी हैं, वे नियमा दो अज्ञान (मतिअज्ञान और श्रुतअज्ञान) वाले हैं। इस प्रकार तेइंद्रिय और चौइन्द्रिय जीवों के विषय में भी कहना चाहिये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

२९ प्रश्न-हे भगवन् ! पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिक जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी हैं ?

२९ उत्तर--हे गौतम ! वे ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी हैं। जो ज्ञानी हैं उनमें से कितने ही दो ज्ञान वाले हैं और कितने ही तीन ज्ञान वाले हैं। इस प्रकार तीन ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से जानने चाहिये। औघिक जीवों के समान मनुष्यों में पांच ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से होते हैं। वाणव्यन्तरों का कथन नैरयिकों के समान जानना चाहिए। ज्योतिषी और वैमानिकों में नियमा तीन ज्ञान और तीन अज्ञान होते हैं।

३० प्रश्न—हे भगवन् ! सिद्ध भगवान् ज्ञानी हैं, या अज्ञानी हैं ?

३० उत्तर-हे गौतम ! सिद्ध भगवान् ज्ञानी हैं, अज्ञानी नहीं। वे नियमा एक केवलज्ञान वाले हैं।

विवेचन--सम्यग्दृष्टि नैरयिक जीवों को भवप्रत्यय अवधिज्ञान होता है। इसलिये वे नियमा (अवश्य) तीन ज्ञान वाले होते हैं। जो अज्ञानी होते हैं, उनमें कितने ही दो अज्ञान वाले होते हैं। जब कोई असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च, नरक में उत्पन्न होता है, तब उसको अपर्याप्त अवस्था में विभंगज्ञान नहीं होता। इसलिये दो अज्ञान ही होते हैं। जो मिथ्यादृष्टि संज्ञी पञ्चेन्द्रिय, नरक में उत्पन्न होता है, तो उसको अपर्याप्त अवस्था में भी विभंगज्ञान होता है। इसलिये उसकी अपेक्षा तीन अज्ञान कहे गये हैं।

बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चौइन्द्रिय जीवों में जिस औपशमिक सम्यग्दृष्टि मनुष्य ने अथवा तिर्यञ्च ने, विकलेन्द्रिय का आयुष्य पहले बांध लिया है, वह उपशम समकित का वमन करता हुआ उनमें उत्पन्न होता है। उस जीव को अपर्याप्त अवस्था में सास्वादन सम्यग्दर्शन होता है। वह जघन्य एक समय और उत्कृष्ट छह आवलिका तक रहता है, तबतक वह ज्ञानी कहलाता है। इसके बाद वह मिथ्यात्व को प्राप्त होकर अज्ञानी बन जाता है। इसलिये विकलेन्द्रियों में ज्ञान का कथन किया गया है।

ज्ञान अज्ञान की भजना के बीस द्वार

३१ प्रश्न-णिरयगइया णं भंते ! जीवा किं णाणी, अण्णाणी ?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

३१ उत्तर-गोयमा ! णाणी वि अण्णाणी वि; तिण्णि णाणाइं णियमा, तिण्णि अण्णाणाइं भयणाए ।

३२ प्रश्न-तिरियगइया णं भंते ! जीवा किं णाणी अण्णाणी ?

३२ उत्तर-गोयमा ! दो णाणा, दो अण्णाणा णियमा ।

३३ प्रश्न-मणुस्सगइया णं भंते ! जीवा किं णाणी, अण्णाणी ?

३३ उत्तर-गोयमा ! तिण्णि णाणाइं भयणाए, दो अण्णाणाइं णियमा । देवगइया जहा णिरयगइया ।

३४ प्रश्न-सिद्धगइया णं भंते० !

३४ उत्तर-जहा सिद्धा ।

कठिन शब्दार्थ--णिरयगइया--नरक गति में जाते हुए।

भावार्थ-३१ प्रश्न-हे भगवन् ! निरयगतिक (नरक में जाते हुए) जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी हैं ?

३१ उत्तर-हे गौतम ! वे ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी हैं । जो ज्ञानी हैं, वे नियमा तीन ज्ञान वाले हैं और जो अज्ञानी हैं, वे भजना से तीन अज्ञान वाले हैं ।

३२ प्रश्न-हे भगवन् ! तिर्यञ्चगतिक (तिर्यञ्चगति में जाते हुए) जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी हैं ?

३२ उत्तर-हे गौतम ! उनको नियमा दो ज्ञान या दो अज्ञान होते हैं ।

३३ प्रश्न-हे भगवन् ! मनुष्यगतिक जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी हैं ?

३३ उत्तर-हे गौतम ! उनको भजना से तीन ज्ञान होते हैं और नियमा दो अज्ञान होते हैं । देवगतिक जीवों का वर्णन, निरयगतिक जीवों के समान जानना चाहिये ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

३४ प्रश्न-हे भगवन् ! सिद्धगतिक जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी ?

३४ उत्तर-हे गौतम ! उनका कथन सिद्धों की तरह करना चाहिये अर्थात् वे नियमा एक केवलज्ञान वाले होते हैं ।

३५ प्रश्न-सइंदिया णं भंते ! जीवा किं णाणी अण्णाणी ?

३५ उत्तर-गोयमा ! चत्तारि णाणाइं, तिण्णि अण्णाणाइं भयणाए ।

३६ प्रश्न-एगिंदिया णं भंते ! जीवा किं णाणी० ?

३६ उत्तर-जहा पुढविक्काइया, बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदिया ण दो णाणा, दो अण्णाणा णियमा । पंचिंदिया जहा सइंदिया ।

३७ प्रश्न-अणिंदिया णं भंते ! जीवा किं णाणी० ?

३७ उत्तर-जहा सिद्धा ।

३८ प्रश्न-सकाइया णं भंते ! जीवा किं णाणी अण्णाणी ?

३८ उत्तर-गोयमा ! पंच णाणाणि तिण्णि अण्णाणाइं भयणाए । पुढविक्काइया जाव वणस्सइकाइया णो णाणी, अण्णाणी, णियमा दुअण्णाणी, तं जहा-मइअण्णाणी य सुयअण्णाणी य । तसकाइया जहा सकाइया ।

३९ प्रश्न-अकाइया णं भंते ! जीवा किं णाणी० ?

३९ उत्तर-जहा सिद्धा ।

कठिन शब्दार्थ-अकाइया-(जिनके काया-शरीर नहीं, ऐसे सिद्ध) ।

भावार्थ-३५ प्रश्न-हे भगवन् ! सेन्द्रिय (इन्द्रिय वाले) जीव ज्ञानी हैं,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

या अज्ञानी हैं ?

३५ उत्तर-हे गौतम ! उनको भजना से चार ज्ञान और तीन अज्ञान होते हैं।

३६ प्रश्न-हे भगवन् ! एकेन्द्रिय जीव, ज्ञानी हैं, या अज्ञानी हैं ?

३६ उत्तर-हे गौतम ! एकेन्द्रिय जीवों का कथन (सत्ताईसवें सूत्र में कथित) पृथ्वीकायिक जीवों की तरह कहना चाहिये। बेइंद्रिय, तेइन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवों में नियमा दो ज्ञान या दो अज्ञान होते हैं। पञ्चेन्द्रिय जीवों का कथन सइन्द्रिय जीवों की तरह जानना चाहिये।

३७ प्रश्न-हे भगवन् ! अनिन्द्रिय (इन्द्रिय रहित) जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी हैं ?

३७ उत्तर-हे गौतम ! उनका कथन सिद्ध जीवों (३० वें सूत्र) की तरह जानना चाहिये।

३८ प्रश्न-हे भगवन् ! सकायिक जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी हैं ?

३८ उत्तर-हे गौतम ! सकायिक जीवों को पांच ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से होते हैं। पृथ्वीकायिक यावत् वनस्पतिकायिक जीव ज्ञानी नहीं, अज्ञानी होते हैं। वे नियमा दो अज्ञान (मति-अज्ञान और श्रुतअज्ञान) वाले हैं। त्रसकायिक जीवों का कथन सकायिक जीवों की तरह जानना चाहिये।

३९ प्रश्न-हे भगवन् ! अकायिक (काया रहित) जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी हैं ?

३९ उत्तर-हे गौतम ! इनका कथन सिद्धों की तरह जानना चाहिये ?

४० प्रश्न-सुहुमा णं भंते ! जीवा किं णाणी० ?

४० उत्तर-जहा पुढविक्काइया।

४१ प्रश्न-बायरा णं भंते ! जीवा किं णाणी०?

४१ उत्तर-जहा सकाइया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

४२ प्रश्न-णोसुहुमा णोबायरा णं भंते ! जीवा० ?

४२ उत्तर-जहा सिद्धा ।

कठिन शब्दार्थ-णोसुहुमा णोबायरा-जो न तो सूक्ष्म हैं और न बादर हैं (सिद्ध)।

भावार्थ-४० प्रश्न-हे भगवन् ! सूक्ष्म जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी ?

४० उत्तर-हे गौतम ! इनका कथन पृथ्वीकायिक जीवों के समान जानना चाहिये।

४१ प्रश्न-हे भगवन् ! बादर जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी ?

४१ उत्तर-हे गौतम ! इनका कथन सकायिक जीवों के समान जानना चाहिये।

४२ प्रश्न-हे भगवन् ! नोसूक्ष्म नोबादर जीव, ज्ञानी है, या अज्ञानी ?

४२ उत्तर-हे गौतम ! इनका कथन सिद्ध जीवों की तरह जानना चाहिये।

४३ प्रश्न-पज्जत्ता णं भंते ! जीवा किं णाणी० ?

४३ उत्तर-जहा सकाइया ।

४४ प्रश्न-पज्जत्ता णं भंते ! णेरइया किं णाणी ?

४४ उत्तर-तिण्णि णाणा, तिण्णि अण्णाणा णियमा, जहा णेरइआ, एवं जाव थणियकुमारा । पुढविकाइया जहा एगिंदिया । एवं जाव चउरिंदिया ।

४५ प्रश्न-पज्जत्ता णं भंते ! पंचिंदियतिरिक्खजोणिया किं णाणी अण्णाणी ?

४५ उत्तर-तिण्णि णाणा, तिण्णि अण्णाणा भयणाए। मणुस्सा

जहा सकाइया । वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिया जहा णेरइया ।

४६ प्रश्न-अपज्जत्ता णं भंते ! जीवा किं णाणी, अण्णाणी ?

४६ उत्तर-तिण्णि णाणा, तिण्णि अण्णाणा भयणाए ।

४७ प्रश्न-अपज्जत्ता णं भंते ! णेरइया किं णाणी, अण्णाणी ?

४७ उत्तर-तिण्णि णाणा णियमा, तिण्णि अण्णाणा भयणाए । एवं जाव थणियकुमारा । पुढविक्काइया जाव वणस्सइकाइया जहा एगिंदिया ।

भावार्थ—४३ प्रश्न—हे भगवन् ! पर्याप्त जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी हैं ?

४३ उत्तर--हे गौतम ! इनका कथन सकायिक जीवों के समान जानना चाहिये ।

४४ प्रश्न-हे भगवन् ! पर्याप्त नैरयिक जीव ज्ञानी हैं; या अज्ञानी हैं ?

४४ उत्तर-हे गौतम ! इनको नियमा तीन ज्ञान या तीन अज्ञान होते हैं । नैरयिक जीवों के कथन के समान यावत् स्तनितकुमार देवों तक जानना चाहिये । पृथ्वीकायिक जीवों का कथन और बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय तक के जीवों का कथन एकेन्द्रिय (सू. ३६ में कथित) जीवों के समान जानना चाहिये ।

४५ प्रश्न—हे भगवन् ! पर्याप्त पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी हैं ?

४५ उत्तर—हे गौतम ! इनके तीन ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से होते हैं । मनुष्यों का कथन सकायिक (सू. ३८) की तरह जानना चाहिये । वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिकों का कथन नैरयिक जीवों (सू. २५) की तरह जानना चाहिए ।

४६ प्रश्न—हे भगवन् ! अपर्याप्त जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी हैं ?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

४६ उत्तर-हे गौतम ! इनके तीन ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से होते हैं।

४७ प्रश्न—हे भगवन् ! अपर्याप्त नैरयिक ज्ञानी हैं, या अज्ञानी हैं ?

४७ उत्तर-हे गौतम ! इनमें तीन ज्ञान नियम से और तीन अज्ञान भजना से होते हैं। इसी प्रकार यावत् स्तनित कुमार देवों तक जानना चाहिये। अपर्याप्त पृथ्वीकायिक यावत् वनस्पतिकायिक तक के जीवों का कथन एकेन्द्रिय (सू. ३६) जीवों के समान जानना चाहिये।

४८ प्रश्न-बेइंदियाणं पुच्छा।

४८ उत्तर-दो णाणा, दो अण्णाणा णियमा। एवं जाव पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं।

४९ प्रश्न-अपज्जत्तगा णं भंते ! मणुस्सा किं णाणी, अण्णाणी ?

४९ उत्तर-तिण्णि णाणाइं भयणाए, दो अण्णाणाइं णियमा। वाणमंतरा जहा णेरइया। अपज्जत्तगाणं जोइसिय-वेमाणियाणं तिण्णि णाणा, तिण्णि अण्णाणा णियमा।

५० प्रश्न-णोपज्जत्तगा णोअपज्जत्तगा भंते ! जीवा किं णाणी० ?

५० उत्तर-जहा सिद्धा।

भावार्थ-४८ प्रश्न-हे भगवन् ! अपर्याप्त बेइन्द्रिय जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी ?

४८ उत्तर-हे गौतम ! इन्हें दो ज्ञान या दो अज्ञान नियमा होते हैं। इसी प्रकार यावत् पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चयोनिक तक जानना चाहिये।

४९ प्रश्न-हे भगवन् ! अपर्याप्त मनुष्य ज्ञानी हैं, या अज्ञानी ?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

४९ उत्तर—हे गौतम ! उनमें तीन ज्ञान भजना से और दो अज्ञान नियमा होते हैं। वाणव्यन्तरों का कथन नैरयिक (सूत्र ४७) जीवों की तरह जानना चाहिये। अपर्याप्त ज्योतिषी और वैमानिकों में तीन ज्ञान और तीन अज्ञान नियमा होते हैं।

५० प्रश्न–हे भगवन् ! नोपर्याप्त नोअपर्याप्त जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी ?

५० उत्तर–हे गौतम ! उनका कथन सिद्ध जीवों के समान (सूत्र ३०) जानना चाहिये।

५१ प्रश्न–णिरयभवत्था णं भंते ! जीवा किं णाणी अण्णाणी ?

५१ उत्तर–जहा णिरयगइया।

५२ प्रश्न–तिरयभवत्था णं भंते ! जीवा किं णाणी अण्णाणी ?

५२ उत्तर–तिण्णि णाणा, तिण्णि अण्णाणा, भयणाए।

५३ प्रश्न–मणुस्सभवत्था णं० ?

५३ उत्तर–जहा सकाइया।

५४ प्रश्न–देवभवत्था णं भंते !० ?

५४ उत्तर–जहा णिरयभवत्था। अभवत्था जहा सिद्धा।

कठिन शब्दार्थ—तिरयभवत्था—तिर्यंच भव में रहे हुए।

भावार्थ–५१ प्रश्न–हे भगवन् ! निरय-भवस्थ–नरकगति में रहे हुए जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी ?

५१ उत्तर–हे गौतम ! इनका कथन निरयगतिक जीवों (सू. ३१) के समान जानना चाहिये।

५२ प्रश्न–हे भगवन् ! तिर्यग्भवस्थ जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी ?

५२ उत्तर–हे गौतम ! उनके तीन ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

होते हैं।

५३ प्रश्न—हे भगवन् ! मनुष्य-भवस्थ जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी ?

५३ उत्तर—हे गौतम ! इनका कथन सकायिक जीवों (सू. ३८) के समान जानना चाहिये।

५४ प्रश्न—हे भगवन् ! देव-भवस्थ जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी ?

५४ उत्तर—हे गौतम ! इनका कथन निरयभवस्थ जीवों (सू. ५१) के समान जानना चाहिये। अभवस्थ जीवों का कथन सिद्धों (सू. ३०) के समान जानना चाहिये।

५५ प्रश्न—भवसिद्धिया णं भंते ! जीवा किं णाणी० ?

५५ उत्तर—जहा सकाइया।

५६ प्रश्न—अभवसिद्धियाणं पुच्छा।

५६ उत्तर—गोयमा ! णो णाणी, अण्णाणी, तिण्णि अण्णाणाइं भयणाए।

५७ प्रश्न—णोभवसिद्धिया णोअभवसिद्धिया णं भंते ! जीवा० ?

५७ उत्तर—जहा सिद्धा।

५८ प्रश्न—सण्णीणं पुच्छा।

५८ उत्तर—जहा सइंदिया। असण्णी जहा बेइंदिया। णोसण्णी णोअसण्णी जहा सिद्धा।

कठिन शब्दार्थ—सण्णी—मन वाले जीव।

भावार्थ—५५ प्रश्न—हे भगवन् ! भवसिद्धिक (भव्य) जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी ?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

५५ उत्तर-हे गौतम ! उनका कथन सकायिक जीवों (सू. ३८) के समान जानना चाहिये।

५६ प्रश्न-हे भगवन् ! अभवसिद्धिक जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी हैं ?

५६ उत्तर-हे गौतम ! ये ज्ञानी नहीं, किन्तु अज्ञानी हैं। इनमें तीन अज्ञान भजना से होते हैं।

५७ प्रश्न-हे भगवन् ! नोभवसिद्धिक-नोअभवसिद्धिक जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी ?

५७ उत्तर-हे गौतम ! उनका कथन सिद्ध जीवों (सू. ३०)के समान जानना चाहिये।

५८ प्रश्न-हे भगवन् ! संज्ञी जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी ?

५८ उत्तर-हे गौतम ! इनका कथन सेन्द्रिय जीवों (सू. ३५)के समान जानना चाहिये। असंज्ञी जीवों का कथन बेइन्द्रिय जीवों (सू. २८)के समान जानना चाहिये। नोसंज्ञी-नोअसंज्ञी जीवों का कथन सिद्ध जीवों (सू. ३०) के समान जानना चाहिये।

विवेचन—कौन-से जीव, कितने ज्ञान वाले और कितने अज्ञान वाले होते हैं, यह बात यहां बतलाई गई है। इसे 'ज्ञानलब्धि' भी कहते हैं। इसका कथन बीस द्वारों से किया गया है। द्वार गाथा यह है—

गइइंदिए य काए, सुहुमे पज्जत्तए भवत्थे य।
भवसिद्धिए य सण्णी, लद्धि उवओग जोगे य ॥ १ ॥

लेस्सा कसाय वेए आहारे, णाणगोयरे काले।
अंतर अप्पाबहुयं च, पज्जवा चेव दाराइं ॥ २ ॥

अर्थ—१ गति, २ इन्द्रिय, ३ काय, ४ सूक्ष्म, ५ पर्याप्त, ६ भवस्थ, ७ भवसिद्धिक, ८ संज्ञी, ९ लब्धि, १० उपयोग, ११ योग, १२ लेश्या, १३ कषाय, १४ वेद, १५ आहार, १६ ज्ञान गोचर (विषय), १७ काल, १८ अन्तर, १९ अल्पबहुत्व और २० पर्याय।

१ गतिद्वार-गतिद्वार में सबसे प्रथम निरयगति का कथन किया गया है। निरय

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अर्थात् नरक में गति अर्थात् गमन जिन जीवों का हो, वे 'निरयगतिक' कहलाते हैं। तात्पर्य यह है कि पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च और मनुष्य, वे सम्यग्दृष्टि हों अथवा मिथ्यादृष्टि, ज्ञानी हों अथवा अज्ञानी, जो नरकगति में उत्पन्न होने वाले हैं, अर्थात् यहाँ से मर कर नरक में जाने के लिये विग्रह गति में (अन्तराल गति में) चल रहे हैं। वे जीव यहाँ 'निरयगति' शब्द से लिये गये हैं। इसी अर्थ को बतलाने के लिये 'निरय' शब्द के साथ-'गति' शब्द का प्रयोग किया गया है। निरयगतिक जीव यदि ज्ञानी हों, तो नियम से तीन ज्ञानवाले होते हैं। क्योंकि उन्हें अवधिज्ञान भवप्रत्यय होने के कारण विग्रह गति में भी होता है। यदि वे अज्ञानी हों, तो तीन अज्ञान भजना से होते हैं। क्योंकि जब असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय तिर्यंच, नरक में जाता है, तो अपर्याप्त अवस्था तक उसे विभंगज्ञान नहीं होता। उस समय उसके दो अज्ञान ही होते हैं। मिथ्यादृष्टि संज्ञी को अन्तराल अवस्था से ही तीन अज्ञान होते हैं। क्योंकि उसको भवप्रत्यय विभंगज्ञान होता है। इसलिये तीन अज्ञान भजना से कहे गये हैं।

तिर्यचगति में जाते हुए बीच में विग्रह-गति में रहा हुआ जीव 'तिर्यञ्च-गतिक' कहलाता है। उसे नियम से दो ज्ञान या दो अज्ञान होते हैं। क्योंकि सम्यग्दृष्टि जीव अवधिज्ञान से गिरने के बाद ही मति-श्रुत ज्ञान सहित तिर्यचगति में जाता है। इसलिये उसे नियमा दो ज्ञान होते हैं। मिथ्यादृष्टि जीव, विभंगज्ञान से गिरने के बाद मति अज्ञान, श्रुत अज्ञान सहित तिर्यंच गति में जाता है। इसलिये नियम से वह दो अज्ञान वाला होता है।

मनुष्यगति में जाते हुए विग्रहगति में चलता हुआ जीव--'मनुष्यगतिक' कहलाता है। उसमें भजना से तीन ज्ञान होते हैं अथवा दो अज्ञान नियम से होते हैं। मनुष्यगति में जाते हुए जीव जो ज्ञानी होते हैं, उनमें से कितने ही तीर्थंकर की तरह अवधिज्ञान सहित मनुष्य-गति में जाते हैं, उन्हें तीन ज्ञान होते हैं। कितने ही जीव अवधिज्ञान रहित मनुष्य गति में जाते हैं, उन्हें दो ज्ञान होते हैं। इसलिये यहाँ तीन ज्ञान भजना से कहे गये हैं। जो मिथ्यादृष्टि हैं, वे विभंगज्ञान रहित ही मनुष्य गति में उत्पन्न होते हैं, इसलिये उन्हें दो अज्ञान नियम से होते हैं।

देवगति में जाते हुए विग्रहगति में वर्तता हुआ जीव-'देव-गतिक' कहलाता है। उनका कथन नरकगतिक जीवों की तरह जानना चाहिये। क्योंकि देवगति में जाने वालों में जो ज्ञानी हैं, उन्हें देवायु के प्रथम समय में ही भवप्रत्यय अवधिज्ञान उत्पन्न हो जाता है। इसलिये नैरयिकों की तरह उनके तीन ज्ञान नियम से होते हैं। जो अज्ञानी हैं और

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

असंज्ञी से देव गति में उत्पन्न होते हैं, उन्हें अपर्याप्त अवस्था में विभंगज्ञान नहीं होता, इसलिये उनमें दो अज्ञान होते हैं। जो अज्ञानी संज्ञी से आकर देवगति में उत्पन्न होते हैं, उन्हें भवप्रत्यय विभंगज्ञान होता है, इसलिए वे तीन अज्ञान वाले होते हैं। अतएव तीन अज्ञान भजना से कहे गये हैं।

सिद्ध और सिद्धगतिक जीवों में कोई भेद नहीं है, तथापि यहाँ गति-द्वार का प्रकरण चल रहा है, इस क्रम के कारण सिद्धगतिक जीवों का पृथक् निर्देश कर दिया गया है।

२ इन्द्रिय द्वार--सन्द्रिय का अर्थ है--'इन्द्रिय वाले जीव' अर्थात् इन्द्रियों के उपयोग से काम लेने वाले जीव। ये ज्ञानी और अज्ञानी दोनों प्रकार के होते हैं। इनमें से ज्ञानी जीवों को चार ज्ञान भजना से होते हैं अर्थात् किन्हीं को दो, कुछ को तीन और कुछ को चार ज्ञान होते हैं, उन्हें केवलज्ञान नहीं होता, क्योंकि केवलज्ञान तो अतीन्द्रिय ज्ञान है। यहाँ दो, तीन आदि ज्ञानों का कथन किया गया है, वह लब्धि की अपेक्षा समझना चाहिये। क्योंकि उपयोग की अपेक्षा तो सभी जीवों को एक समय में एक ही ज्ञान होता है। अज्ञानी सेन्द्रिय जीवों को तीन अज्ञान भजना से होते हैं, अर्थात् किन्हीं जीवों को दो और किन्हीं जीवों को तीन अज्ञान होते हैं।

एकेन्द्रिय जीव मिथ्यादृष्टि होते हैं, अतएव वे अज्ञानी ही होते हैं। उनमें नियम से दो अज्ञान होते हैं। बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चौरिन्द्रिय में दो ज्ञान या दो अज्ञान नियम से होते हैं, क्योंकि उनमें सास्वादन गुणस्थान होना सम्भव है। उस अवस्था में दो ज्ञान पाये जाते हैं। इसकी स्थिति उत्कृष्ट छह आवलिका की है। इसके अतिरिक्त दो अज्ञान होते हैं।

अनिन्द्रिय अर्थात् इन्द्रियों के उपयोग से रहित जीव केवलज्ञानी होते हैं। उनका कथन सिद्ध जीवों के समान है अर्थात् उनमें एक मात्र केवलज्ञान पाया जाता है।

३ काय द्वार--काया अर्थात् औदारिकादि शरीर, अथवा पृथ्वीकायिक आदि छह काय। काय सहित को 'सकायिक' जीव कहते हैं। वे केवली भी होते हैं, इसलिये सकायिक सम्यग्दृष्टि जीव में पांच ज्ञान भजना से होते हैं और मिथ्यादृष्टि जीवों में तीन अज्ञान भजना से होते हैं। जिनके औदारिक आदि काय नहीं है, अथवा जो पृथ्वीकाय आदि छहों काय में से किसी भी काय में नहीं हैं, वे 'अकायिक' कहलाते हैं। अकायिक जीव सिद्ध होते हैं, उनमें एक केवलज्ञान होता है।

४ सूक्ष्म द्वार--सूक्ष्म जीव, पृथ्वीकायिक के समान मिथ्यादृष्टि होते हैं। अतः उनमें

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दो अज्ञान होते हैं । सकायिक जीवों की तरह बादर जीव केवलज्ञानी भी होते हैं । अतः सकायिक की तरह उनमें पांच ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से पाये जाते हैं ।

५ पर्याप्त द्वार--पर्याप्त जीव केवलज्ञानी भी होते हैं । इसलिये उनमें सकायिक जीवों की तरह पांच ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से पाये जाते हैं । पर्याप्त नैरयिकों में तीन ज्ञान या तीन अज्ञान नियमा होते हैं । क्योंकि असंज्ञी जीवों से आये हुए नैरयिकों में अपर्याप्त अवस्था में विभंगज्ञान का अभाव होता है, किन्तु पर्याप्त अवस्था में तो उन्हें तीन अज्ञान नियम से होते हैं । इसी प्रकार भवनपति और वाणव्यन्तर देवों में भी जानना चाहिये । पर्याप्त विकलेन्द्रियों में नियम से दो अज्ञान होते हैं । पर्याप्त पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च जीवों में कितने ही जीवों को अवधिज्ञान होता है और कितने ही जीवों को नहीं होता । तथा कितने ही जीवों को विभंगज्ञान होता है और कितने ही जीवों को नहीं होता । इसलिये उनमें तीन ज्ञान तीन अज्ञान भजना से पाये जाते हैं ।

नैरयिक और भवनपति देवों के अपर्याप्त में तीन ज्ञान नियम से और तीन अज्ञान भजना से पाये जाते हैं । अपर्याप्त बेइन्द्रिय आदि जीवों में से कितने ही जीवों को सास्वादन सम्यग्दर्शन का सम्भव होने से उनमें दो ज्ञान पाये जाते हैं, शेष में दो अज्ञान पाये जाते हैं ।

सम्यग्दृष्टि मनुष्यों में अपर्याप्त अवस्था में तीर्थङ्कर आदि के समान अवधिज्ञान होना सम्भव है । इसलिये उनमें तीन ज्ञान भजना से पाये जाते हैं । मिथ्यादृष्टि जीवों को अपर्याप्त अवस्था में विभंगज्ञान नहीं होता । इसलिये उनमें नियम से दो अज्ञान पाये जाते हैं । अपर्याप्त वाणव्यन्तर देव, नैरयिकों के समान नियम से तीन ज्ञान वाले, दो अज्ञान वाले या तीन अज्ञान वाले होते हैं । क्योंकि असंज्ञी जीवों में से आकर जो उनमें उत्पन्न होता है, उसमें अपर्याप्त अवस्था में विभंगज्ञान का अभाव होता है, शेष में अवधिज्ञान अथवा विभंगज्ञान नियम से होता है ।

ज्योतिषी और वैमानिक देवों में संज्ञी जीवों में से ही आकर उत्पन्न होते हैं, इसलिये उनमें अपर्याप्त अवस्था में भी भवप्रत्यय अवधिज्ञान अथवा विभंगज्ञान अवश्य होता है । इसलिये उनमें नियम से तीन ज्ञान, या तीन अज्ञान होते हैं ।

नोपर्याप्त नोअपर्याप्त अर्थात् पर्याप्त और अपर्याप्त भाव से रहित जीव सिद्ध होते हैं । क्योंकि वे अपर्याप्त और नाम कर्म से रहित हैं । उनमें एक मात्र केवलज्ञान पाया जाता है ।

६ भवस्थ द्वार--निरयभवस्थ का अर्थ है--नरकगति में उत्पत्ति स्थान को प्राप्त हुए ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उनका कथन निरयगतिक जीवों के समान जानना चाहिये। अर्थात् वे नियम से तीन ज्ञान वाले या भजना से तीन अज्ञान वाले होते हैं, शेष कथन ऊपर आ चुका है।

७ भवसिद्धिक द्वार-भवसिद्धिक (भव्य) जीव सकायिक जीवों के समान पांच ज्ञान वाले अथवा तीन अज्ञान वाले भजना से होते हैं। अर्थात् सम्यग्दृष्टि जीवों में पांच ज्ञान की भजना है और मिथ्यादृष्टि जीवों में तीन अज्ञान की भजना है।

अभवसिद्धिक जीवों में तीन अज्ञान की भजना है, उनमें ज्ञान नहीं होता। क्योंकि वे सदा मिथ्यादृष्टि ही रहते हैं।

८ संज्ञी द्वार-संज्ञी जीवों का कथन सइन्द्रिय जीवों के समान है। अर्थात् उनमें चार ज्ञान अथवा तीन अज्ञान भजना से पाये जाते हैं। असंज्ञी जीवों का कथन बेइन्द्रिय जीवों के समान है अर्थात् अपर्याप्त अवस्था में उनमें सास्वादन सम्यग्दर्शन का सम्भव होने से दो ज्ञान भी पाये जाते हैं। पर्याप्त अवस्था में तो उनमें नियम से दो अज्ञान ही होते हैं।

इससे आगे ज्ञानादि लब्धि द्वार का कथन किया जाता है।

ज्ञान-दर्शनादि लब्धि

५९ प्रश्न-कइविहा णं भंते ! लद्धी पण्णत्ता ?

५९ उत्तर-गोयमा ! दसविहा लद्धी पण्णत्ता, तं जहा-१णाणलद्धी, २ दंसणलद्धी, ३ चरित्तलद्धी, ४ चरित्ताचरित्तलद्धी, ५ दाणलद्धी, ६ लाभलद्धी, ७ भोगलद्धी, ८ उवभोगलद्धी, ९ वीरियलद्धी१० इंदियलद्धी।

६० प्रश्न-णाणलद्धी णं भंते ! कइविहा पण्णत्ता ?

६० उत्तर-गोयमा ! पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा-आभिणिबोहियणाणलद्धी, जाव केवलणाणलद्धी।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

६१ प्रश्न—अण्णाणलद्धी णं भंते ! कइविहा पण्णत्ता ?

६१ उत्तर—गोयमा ! तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—मइअण्णाणलद्धी, सुयअण्णाणलद्धी, विभंगणाणलद्धी ।

कठिन शब्दार्थ—लद्धी—लब्धि-प्राप्ति ।

भावार्थ—५९ प्रश्न—हे भगवन् ! लब्धि कितने प्रकार की कही गई है ?

५९ उत्तर—हे गौतम ! दस प्रकार की कही गई है । यथा—१ ज्ञानलब्धि, २ दर्शनलब्धि, ३ चारित्रलब्धि, ४ चारित्राचारित्रलब्धि, ५ दानलब्धि, ६ लाभलब्धि, ७ भोगलब्धि, ८ उपभोगलब्धि, ९ वीर्यलब्धि और १० इन्द्रियलब्धि ।

६० प्रश्न—हे भगवन् ! ज्ञान-लब्धि कितने प्रकार की कही गई है ?

६० उत्तर—हे गौतम ! ज्ञानलब्धि पाँच प्रकार की कही गई है । यथा—आभिनिबोधिकज्ञान लब्धि यावत् केवलज्ञान लब्धि ।

६१ प्रश्न—हे भगवन् ! अज्ञान-लब्धि कितने प्रकार की कही गई है ?

६१ उत्तर—हे गौतम ! अज्ञान-लब्धि तीन प्रकार की कही गई है । यथा—मतिअज्ञान लब्धि, श्रुतअज्ञान लब्धि और विभंगज्ञान लब्धि ।

६२ प्रश्न—दंसणलद्धी णं भंते ! कइविहा पण्णत्ता ?

६२ उत्तर—गोयमा ! तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—सम्मदंसणलद्धी, मिच्छादंसणलद्धी, सम्मामिच्छादंसणलद्धी ।

भावार्थ—६२ प्रश्न—हे भगवन् ! दर्शन-लब्धि, कितने प्रकार की कही गई है ?

६२ उत्तर—हे गौतम ! दर्शन-लब्धि तीन प्रकार की कही गई है । यथा—१ सम्यग्दर्शन लब्धि, २ मिथ्यादर्शन लब्धि और ३ सम्यग्मिथ्यादर्शन लब्धि ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

६३ प्रश्न–चरित्तलद्धी णं भंते ! कइविहा पण्णत्ता ?

६३ उत्तर–गोयमा ! पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा–सामाइयचरित्तलद्धी, छेओवट्ठावणियचरित्तलद्धी, परिहारविसुद्धिचरित्तलद्धी, सुहुमसंपरायचरित्तलद्धी, अहक्खायचरित्तलद्धी ।

कठिन शब्दार्थ—अहक्खायचरित्तलद्धी—यथाख्यात चारित्र लब्धि।

भावार्थ–६३ प्रश्न–हे भगवन् ! चारित्र-लब्धि कितने प्रकार की कही गई है ।

६३ उत्तर—हे गौतम ! चारित्र-लब्धि पांच प्रकार की कही गई है । यथा—१ सामायिक चारित्र-लब्धि, २ छेदोपस्थापनीय चारित्र-लब्धि ३ परिहारविशुद्धि चारित्र-लब्धि, ४ सूक्ष्म-सम्पराय चारित्र-लब्धि और ५ यथाख्यात चारित्र-लब्धि ।

६४ प्रश्न–चरित्ताचरित्तलद्धी णं भंते ! कइविहा पण्णत्ता ?

६४ उत्तर–गोयमा ! एगागारा पण्णत्ता, एवं जाव उवभोगलद्धी एगागारा पण्णत्ता ।

कठिन शब्दार्थ—एगागारा—एक प्रकार की ।

भावार्थ—६४ प्रश्न—हे भगवन् ! चारित्राचारित्र लब्धि कितने प्रकार की कही गई हैं ?

६४ उत्तर—हे गौतम ! वह एक ही प्रकार की कही गई है । इसी प्रकार दानलब्धि, लाभलब्धि, भोगलब्धि और उपभोगलब्धि, ये सब एक एक प्रकार की कही गई है ।

६५ प्रश्न–वीरियलद्धी णं भंते ! कइविहा पण्णत्ता ?

६५ उत्तर–गोयमा ! तिविहा पण्णत्ता, तं जहा–बालवीरियलद्धी,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पंडियवीरियलद्धी, बालपंडियवीरियलद्धी ।

भावार्थ-६५ प्रश्न-हे भगवन् ! वीर्य-लब्धि कितने प्रकार की कही गई है ?

६५ उत्तर-हे गौतम ! वीर्य-लब्धि तीन प्रकार की कही गई है । यथा-१ बालवीर्य लब्धि, २ पण्डितवीर्य लब्धि और ३ बालपण्डितवीर्य लब्धि ।

६६ प्रश्न-इंदियलद्धी णं भंते ! कइविहा पण्णत्ता ?

६६ उत्तर-गोयमा ! पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा-सोइंदियलद्धी, जाव फासिंदियलद्धी ।

भावार्थ--६६ प्रश्न--हे भगवन् ! इन्द्रिय-लब्धि कितने प्रकार की कही गई है ?

६६ उत्तर-हे गौतम ! इन्द्रिय-लब्धि पांच प्रकार की कही गई है । यथा-श्रोत्रेन्द्रिय लब्धि यावत् स्पर्शनेन्द्रिय लब्धि ।

६७ प्रश्न-णाणलद्धिया णं भंते ! जीवा किं णाणी, अण्णाणी ?

६७ उत्तर-गोयमा ! णाणी, णो अण्णाणी । अत्थेगइया दुण्णाणी एवं पंच णाणाइं भयणाए ।

६८ प्रश्न-तस्स अलद्धीया णं भंते ! जीवा किं णाणी, अण्णाणी ?

६८ उत्तर-गोयमा ! णो णाणी, अण्णाणी । अत्थेगइया दुअण्णाणी, तिण्णि अण्णाणाइं भयणाए ।

६९ प्रश्न-आभिणिबोहियणाणलद्धीया णं भंते ! जीवा किं णाणी, अण्णाणी ?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

६९ उत्तर-गोयमा ! णाणी, णो अण्णाणी। अत्थेगइया दुण्णाणी, तिण्णाणी, चत्तारि णाणाइं भयणाए।

७० प्रश्न-तस्स अलद्धिया णं भंते ! जीवा किं णाणी, अण्णाणी ?

७० उत्तर-गोयमा ! णाणी वि अण्णाणी वि। जे णाणी ते णियमा एगणाणी-केवलणाणी। जे अण्णाणी ते अत्थेगइया दुअण्णाणी, तिण्णि अण्णाणाइं भयणाए। एवं सुयणाणलद्धीया वि। तस्स अलद्धीया वि जहा आभिणिबोहियणाणस्स अलद्धीया।

७१ प्रश्न-ओहिणाणलद्धीयाणं पुच्छा।

७१ उत्तर-गोयमा ! णाणी, णो अण्णाणी। अत्थेगइया तिण्णाणी,अत्थेगइया चउणाणी। जे तिण्णाणी ते आभिणिबोहियणाणी, सुयणाणी, ओहिणाणी, जे चउणाणी ते आभिणिबोहियणाणी, सुयणाणी, ओहिणाणी, मणपज्जवणाणी।

७२ प्रश्न-तस्स अलद्धियाणं पुच्छा।

७२ उत्तर-गोयमा ! णाणी वि अण्णाणी वि। एवं ओहिणाणवज्जाइं चत्तारि णाणाइं तिण्णि अण्णाणाइं भयणाए।

७३ प्रश्न-मणपज्जवणाणलद्धियाणं पुच्छा।

७३ उत्तर-गोयमा ! णाणी, णो अण्णाणी। अत्थेगइया तिण्णाणी, अत्थेगइया चउणाणी। जे तिण्णाणी ते आभिणिबो-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हियणाणी, सुयणाणी, मणपज्जवणाणी। जे चउणाणी ते आभिणिबोहियणाणी, सुयणाणी, ओहिणाणी, मणपज्जवणाणी।

७४ प्रश्न—तस्स अलद्धियाणं पुच्छा।

७४ उत्तर—गोयमा ! णाणी वि, अण्णाणी वि; मणपज्जवणाणवज्जाइं चत्तारि णाणाइं, तिण्णि अण्णाणाइं भयणाए।

७५ प्रश्न—केवलणाणलद्धिया णं भंते ! जीवा किं णाणी, अण्णाणी।

७५ उत्तर—गोयमा ! णाणी, णो अण्णाणी। णियमा एगणाणी—केवलणाणी।

७६ प्रश्न—तस्स अलद्धियाणं पुच्छा।

७६ उत्तर—गोयमा ! णाणी वि, अण्णाणी वि। केवलणाणवज्जाइं चत्तारि णाणाइं, तिण्णि अण्णाणाइं भयणाए।

७७ प्रश्न—अण्णाणलद्धियाणं पुच्छा।

७७ उत्तर—गोयमा ! णो णाणी, अण्णाणी। तिण्णि अण्णाणाइं भयणाए।

७८ प्रश्न—तस्स अलद्धियाणं पुच्छा।

७८ उत्तर—गोयमा ! णाणी, णो अण्णाणी। पंच णाणाइं भयणाए, जहा अण्णाणस्स लद्धिया अलद्धिया य भणिया एवं मइअण्णाणस्स सुयअण्णाणस्स य लद्धियो अलद्धिया य भाणियव्वा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विभंगणाणलद्धीयाणं तिण्णि अण्णाणाइं णियमा। तस्स अलद्धीयाणं पंच णाणाइं भयणाए, दो अण्णाणाइं णियमा।

कठिन शब्दार्थ—अत्थेगइया—कुछ, अलद्धिया—अप्राप्ति वाले।

भावार्थ—६७ प्रश्न—हे भगवन् ! ज्ञानलब्धि वाले जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी ?

६७ उत्तर—हे गौतम ! वे ज्ञानी हैं, अज्ञानी नहीं। उनमें से कितने ही दो ज्ञान वाले होते हैं। इस प्रकार उनमें पांच ज्ञान भजना से पाये जाते हैं।

६८ प्रश्न—हे भगवन् ! ज्ञानलब्धि रहित जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी ?

६८ उत्तर—हे गौतम ! वे ज्ञानी नहीं, अज्ञानी हैं। उनमें से कितने ही दो अज्ञान वाले होते हैं और कितने ही जीव तीन अज्ञान वाले होते हैं। इस प्रकार उनमें तीन अज्ञान भजना से पाये जाते हैं।

६९ प्रश्न—हे भगवन् ! आभिनिबोधिक ज्ञान-लब्धि वाले जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी ?

६९ उत्तर—हे गौतम ! वे ज्ञानी हैं, अज्ञानी नहीं। उनमें से कितने ही जीव दो ज्ञान वाले होते हैं, कितने ही तीन ज्ञान वाले और कितनेक चार ज्ञान वाले होते हैं। इस तरह उनमें चार ज्ञान भजना से पाये जाते हैं।

प्रश्न—हे भगवन् ! आभिनिबोधिक ज्ञान-लब्धि रहित जीव, ज्ञानी हैं, या अज्ञानी ?

उत्तर—हे गौतम ! वे ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी। जो ज्ञानी हैं, वे नियम से एक केवलज्ञान वाले हैं और जो अज्ञानी हैं, उनमें कितने ही दो अज्ञान वाले हैं और कितनेक तीन अज्ञान वाले हैं। अर्थात् उनमें तीन अज्ञान भजना से पाये जाते हैं। इस प्रकार श्रुतज्ञान लब्धिवाले जीवों का कथन आभिनिबोधिक ज्ञान लब्धिवाले जीवों के समान कहना चाहिये और श्रुतज्ञान-लब्धि रहित जीवों का कथन आभिनिबोधिक ज्ञान-लब्धि रहित जीवों के समान

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जानना चाहिये ।

७१ प्रश्न-हे भगवन् ! अवधिज्ञान-लब्धि वाले जीव, ज्ञानी हैं, या अज्ञानी ?

७१ उत्तर-हे गौतम ! वे ज्ञानी हैं, अज्ञानी नहीं । उनमें से कितने ही तीन ज्ञान वाले हैं और कई चार ज्ञान वाले हैं । जो तीन ज्ञान वाले हैं, वे आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान वाले हैं और जो चार ज्ञान-वाले हैं, वे आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान वाले हैं ।

७२ प्रश्न-हे भगवन् ! अवधिज्ञान-लब्धि रहित जीव, ज्ञानी हैं, या अज्ञानी ?

७२ उत्तर-हे गौतम ! वे ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी हैं । इस प्रकार उनमें अवधिज्ञान के सिवाय चार ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से होते हैं ।

७३ प्रश्न-हे भगवन् ! मनःपर्ययज्ञान-लब्धि वाले जीव, ज्ञानी हैं, या अज्ञानी ?

७३ उत्तर-हे गौतम ! वे ज्ञानी हैं, अज्ञानी नहीं । उनमें से कितने ही तीन ज्ञानवाले हैं और कितने ही चार ज्ञानवाले हैं । जो तीन ज्ञान वाले हैं, वे आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान और मनःपर्ययज्ञान वाले हैं । जो चार ज्ञान वाले हैं, वे आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान वाले हैं ।

७४ प्रश्न-हे भगवन् ! मनःपर्ययज्ञान लब्धि रहित जीव, ज्ञानी हैं, या अज्ञानी ?

७४ उत्तर-हे गौतम ! वे ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी । उनमें मनः-पर्ययज्ञान के सिवाय चार ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से पाये जाते हैं ।

७५ प्रश्न-हे भगवन् ! केवलज्ञान-लब्धि वाले जीव, ज्ञानी हैं, या अज्ञानी ?

७५ उत्तर—हे गौतम ! वे ज्ञानी हैं, अज्ञानी नहीं । वे नियम से एक केवलज्ञान वाले हैं ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

७६ प्रश्न--हे भगवन् ! केवलज्ञान-लब्धि रहित जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी ?

७६ उत्तर-हे गौतम ! वे ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी । उनमें केवलज्ञान के सिवाय चार ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से पाये जाते हैं ।

७७ प्रश्न--हे भगवन् ! अज्ञानलब्धि वाले जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी ?

७७ उत्तर--हे गौतम ! वे ज्ञानी नहीं, अज्ञानी हैं । उनमें तीन अज्ञान भजना से पाये जाते हैं ।

७८ प्रश्न--हे भगवन् ! अज्ञान-लब्धि रहित जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी ?

७८ उत्तर--हे गौतम ! वे ज्ञानी हैं, अज्ञानी नहीं । उनमें पांच ज्ञान भजना से पाये जाते हैं । जिस प्रकार अज्ञान-लब्धि वाले और अज्ञान-लब्धि रहित जीवों का कथन किया है, उसी प्रकार मतिज्ञान, श्रुतज्ञान लब्धि वाले तथा इन लब्धि से रहित जीवों का कथन करना चाहिये । अर्थात् सूत्र ७७ में कथित अज्ञान-लब्धि वाले जीवों की तरह मतिअज्ञान और श्रुतअज्ञान लब्धि वाले जीवों का कथन करना चाहिये । और सूत्र ७८ में कथित अज्ञान-लब्धि रहित जीवों की तरह मतिअज्ञान लब्धि रहित और श्रुतअज्ञान लब्धि रहित जीवों का कथन करना चाहिये । विभंगज्ञान लब्धि वाले जीवों में नियम से तीन अज्ञान होते हैं और विभंगज्ञान लब्धि रहित जीवों में पांच ज्ञान भजना से और दो अज्ञान नियमा पाये जाते हैं ।

७९ प्रश्न--दंसणलद्धिया णं भंते ! जीवा किं णाणी, अण्णाणी ?

७९ उत्तर--गोयमा ! णाणी वि, अण्णाणी वि; पंच णाणाइं तिण्णि अण्णाणाइं भयणाए ।

८० प्रश्न--तस्स अलद्धिया णं भंते ! जीवा किं णाणी, अण्णाणी ?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

८० उत्तर-गोयमा ! तस्स अलद्धिया णत्थि। सम्मादंसण-लद्धियाणं पंच णाणाइं भयणाए। तस्स अलद्धियाणं तिण्णि अण्णाणाइं भयणाए।

८१ प्रश्न-मिच्छादंसणलद्धीया णं भंते ! पुच्छा।

८१ उत्तर-तिण्णि अण्णाणाइं भयणाए। तस्स अलद्धीयाणं पंच णाणाइं, तिण्णि य अण्णाणाइं भयणाए। सम्मामिच्छादंसण-लद्धिया, अलद्धिया य जहा मिच्छादंसणलद्धीया अलद्धीया तहेव भाणियव्वा।

भावार्थ—७९ प्रश्न—हे भगवन् ! दर्शन-लब्धि वाले जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी ?

७९ उत्तर-हे गौतम ! वे ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी। जो ज्ञानी हैं, वे भजना से पांच ज्ञान वाले हैं और जो अज्ञानी हैं वे भजना से तीन अज्ञान वाले हैं।

८० प्रश्न-हे भगवन् ! दर्शनलब्धि रहित जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी ?

८० उत्तर-हे गौतम ! दर्शनलब्धि रहित कोई भी जीव नहीं होता। सम्यग्दर्शन-लब्धि वाले जीवों में पांच ज्ञान भजना से होते हैं। सम्यग्दर्शन-लब्धि रहित जीवों में तीन अज्ञान भजना से होते हैं।

८१ प्रश्न-हे भगवन् ! मिथ्यादर्शन-लब्धि वाले जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी ?

८१ उत्तर-हे गौतम ! वे ज्ञानी नहीं, अज्ञानी होते हैं। उनमें तीन अज्ञान भजना से पाये जाते हैं। मिथ्यादर्शन-लब्धि रहित जीवों में पांच ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से होते हैं। सम्यग्मिथ्यादर्शन लब्धि (मिश्रदृष्टि) वाले जीवों का कथन मिथ्यादर्शन लब्धि वाले जीवों के समान जानना चाहिये और सम्यग्मिथ्यादर्शन लब्धि रहित जीवों का कथन मिथ्यादर्शन लब्धि रहित जीवों की तरह जानना चाहिये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

८२ प्रश्न-चरित्तलद्धिया णं भंते ! जीवा किं णाणी, अण्णाणी ?

८२ उत्तर-गोयमा ! पंच णाणाइं भयणाए । तस्स अलद्धीयाणं मणपज्जवणाणवज्जाइं चत्तारि णाणाइं, तिण्णि य अण्णाणाइं भयणाए ।

८३ प्रश्न-सामाइयचरित्तलद्धिया णं भंते ! जीवा किं णाणी, अण्णाणी ?

८३ उत्तर-गोयमा ! णाणी, केवलवज्जाइं चत्तारि णाणाइं भयणाए । तस्स अलद्धियाणं पंच णाणाइं, तिण्णि य अण्णाणाइं भयणाए । एवं जहा सामाइयचरित्तलद्धीया अलद्धीया य भणिया, एवं जाव अहक्खायचरित्तलद्धीया अलद्धीया य भाणियव्वा, णवरं अहक्खायचरित्तलद्धीयाणं पंच णाणाइं भयणाए ।

८४ प्रश्न-चरित्ताचरित्तलद्धीया णं भंते ! जीवा किं णाणी, अण्णाणी ?

८४ उत्तर-गोयमा ! णाणी, णो अण्णाणी । अत्थेगइया दुण्णाणी, अत्थेगइया तिण्णाणी । जे दुण्णाणी ते आभिणिबोहिय-णाणी य सुयणाणी य । जे तिण्णाणी ते आभिणिबोहियणाणी, सुय-णाणी, ओहिणाणी । तस्स अलद्धियाणं पंच णाणाइं तिण्णि अण्णा-णाइं भयणाए ।

दाणलद्धियाणं पंच णाणाइं, तिण्णि अण्णाणाइं भयणाए ।

८५ प्रश्न-तस्स अलद्धीयाणं पुच्छा ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

८५ उत्तर-गोयमा ! णाणी, णो अण्णाणी। णियमा एगणाणी केवलणाणी। एवं जाव वीरियस्स लद्धी अलद्धी य भाणियव्वा। बालवीरियलद्धियाणं तिण्णि णाणाइं, तिण्णि अण्णाणाइं भयणाए। तस्स अलद्धियाणं पंच णाणाइं भयणाए। पंडियवीरियलद्धीयाणं पंच णाणाइं भयणाए। तस्स अलद्धीयाणं मणपज्जवणाणवज्जाइं णाणाइं, अण्णाणाणि तिण्णि य भयणाए। बालपंडियवीरियलद्धियाणं तिण्णि णाणाइं भयणाए। तस्स अलद्धीयाणं पंच णाणाइं, तिण्णि अण्णाणाइं भयणाए।

कठिन शब्दार्थ-चरित्ताचरित्त-कुछ चारित्र और कुछ अचारित्र (देश-चारित्र)।

भावार्थ-८२ प्रश्न-हे भगवन् ! चारित्रलब्धि वाले जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी ?

८२ उत्तर—हे गौतम ! वे ज्ञानी होते हैं, अज्ञानी नहीं। उनमें पांच ज्ञान भजना से पाये जाते हैं। चारित्रलब्धि रहित जीवों में मनःपर्यय ज्ञान के सिवाय चार ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से पाये जाते हैं।

८३ प्रश्न—हे भगवन् ! सामायिक-चारित्रलब्धि वाले जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी ?

८३ उत्तर—हे गौतम ! वे ज्ञानी हैं, अज्ञानी नहीं। उनमें केवलज्ञान के सिवाय चार ज्ञान की भजना है। सामायिक-चारित्रलब्धि रहित जीवों में पांच ज्ञान और तीन अज्ञान की भजना है। इस प्रकार सामायिक-चारित्र लब्धि वाले जीवों के समान यावत् यथाख्यातचारित्र वाले जीवों का कथन करना चाहिये, किन्तु यथाख्यात चारित्र वाले जीवों में पांच ज्ञान भजना से पाये जाते हैं। सामायिक-चारित्र-लब्धि रहित जीवों की तरह यावत् यथाख्यात चारित्र लब्धि रहित जीवों का कथन करना चाहिये।

८४ प्रश्न-हे भगवन् ! चारित्राचारित्र (देशचारित्र) लब्धि वाले जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी ?

८४ उत्तर-हे गौतम ! वे ज्ञानी हैं, अज्ञानी नहीं। उनमें से कितने ही दो ज्ञान वाले हैं और कितने ही तीन ज्ञान वाले हैं। जो दो ज्ञान वाले हैं, वे आभिनिबोधिकज्ञान और श्रुतज्ञान वाले हैं। जो तीन ज्ञान वाले हैं, वे आभिनिबोधिक ज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञानवाले हैं। चारित्राचारित्र (देशचारित्र) लब्धि रहित जीवों में पांच ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से होते हैं। दानलब्धि वाले जीवों में पांच ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से पाये जाते हैं।

८५ प्रश्न-हे भगवन् ! दानलब्धि रहित जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी ?

८५ उत्तर-हे गौतम ! वे ज्ञानी हैं, अज्ञानी नहीं। उनमें नियम से एक केवलज्ञान होता है। इस प्रकार यावत् वीर्यलब्धि वाले और वीर्यलब्धि रहित जीवों का कथन करना चाहिये। बालवीर्य-लब्धि वाले जीवों में तीन ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से पाये जाते हैं। बालवीर्यलब्धि रहित जीवों में पांच ज्ञान भजना से पाये जाते हैं। पण्डितवीर्यलब्धि वाले जीवों में पांच ज्ञान भजना से होते हैं। पण्डितवीर्यलब्धि रहित जीवों में मनःपर्ययज्ञान के सिवाय चार ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से होते हैं। बालपण्डितवीर्यलब्धि वाले जीवों में तीन ज्ञान भजना से होते हैं और बालपण्डितवीर्यलब्धि रहित जीवों में पांच ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से पाये जाते हैं।

८६ प्रश्न-इंदियलद्धिया णं भंते ! जीवा किं णाणी, अण्णाणी ?

८६ उत्तर-गोयमा ! चत्तारि णाणाइं, तिण्णि य अण्णाणाइं भयणाए।

८७ प्रश्न-तस्स अलद्धीयाणं पुच्छा।

८७ उत्तर-गोयमा ! णाणी, णो अण्णाणी। णियमा एग-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णाणी-केवलणाणी। सोइंदियलद्धिया णं जहा इंदियलद्धिया।

८८ प्रश्न-तस्स अलद्धियाणं पुच्छा।

८८ उत्तर-गोयमा ! णाणी वि अण्णाणी वि। जे णाणी ते अत्थेगइया दुण्णाणी, अत्थेगइया एगणाणी। जे दुण्णाणी ते आभिणिबोहियणाणी, सुयणाणी। जे एगणाणी ते केवलणाणी। जे अण्णाणी ते णियमा दुअण्णाणी, तं जहा-मइअण्णाणी य सुयअण्णाणी य। चक्खिंदिय-घाणिंदियाणं लद्धी अलद्धी य जहेव सोइंदियस्स। जिब्भिंदियलद्धियाणं चत्तारि णाणाइं, तिण्णि य अण्णाणाणि भयणाए।

८९ प्रश्न-तस्स अलद्धियाणं पुच्छा।

८९ उत्तर-गोयमा ! णाणी वि अण्णाणी वि। जे णाणी ते णियमा एगणाणी केवलणाणी। जे अण्णाणी ते णियमा दुअण्णाणी, तं जहा-मइअण्णाणी य सुयअण्णाणी य। फासिंदियलद्धिया अलद्धिया जहा इंदियलद्धिया य अलद्धिया य।

भावार्थ-८६ प्रश्न-हे भगवन् ! इन्द्रिय-लब्धि वाले जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी ?

८६ उत्तर-हे गौतम ! उनमें चार ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से पाये जाते हैं।

८७ प्रश्न-हे भगवन् ! इन्द्रिय-लब्धि रहित जीव ज्ञानी है, या अज्ञानी ?

८७ उत्तर-हे गौतम ! वे ज्ञानी हैं, अज्ञानी नहीं। वे नियम से

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एक केवलज्ञान वाले हैं । श्रोत्रेन्द्रिय-लब्धि वाले जीवों का कथन इन्द्रिय-लब्धि वाले जीवों (सू. ८६) के समान जानना चाहिये ।

८८ प्रश्न—हे भगवन् ! श्रोत्रेन्द्रिय-लब्धि रहित जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी ?

८८ उत्तर—हे गौतम ! वे ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी हैं । जो ज्ञानी हैं, उनमें कितने ही दो ज्ञान वाले हैं और कितने ही एक ज्ञान वाले हैं । जो दो ज्ञान वाले हैं, वे आभिनिबोधिकज्ञान और श्रुतज्ञान वाले हैं। जो एक ज्ञान वाले हैं वे एक केवलज्ञान वाले हैं । जो अज्ञानी हैं, वे नियमा दो अज्ञान वाले हैं । यथा—मतिअज्ञान और श्रुतअज्ञान। चक्षुरिन्द्रिय और घ्राणेन्द्रिय लब्धि वाले जीवों का कथन श्रोत्रेन्द्रिय-लब्धि वाले जीवों (सू. ८७) के समान करना चाहिये । उनमें चार ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से पाये जाते हैं। चक्षुरिन्द्रिय और घ्राणेन्द्रिय लब्धि रहित जीवों का कथन श्रोत्रेन्द्रिय-लब्धि रहित जीवों की तरह कहना चाहिये । अर्थात् उनमें ज्ञान दो तथा एक और अज्ञान दो पाये जाते हैं । जिव्हेन्द्रिय लब्धि वाले जीवों में चार ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से पाये जाते हैं ।

८९ प्रश्न—हे भगवन् ! जिव्हेन्द्रिय लब्धि रहित जीव, ज्ञानी होते हैं, या अज्ञानी ?

८९ उत्तर—हे गौतम ! वे ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी हैं । जो ज्ञानी हैं, वे नियम से एक केवलज्ञानी हैं । जो अज्ञानी हैं, वे नियम से दो अज्ञान (मतिअज्ञान, श्रुतअज्ञान) वाले हैं । स्पर्शनेन्द्रिय लब्धि वाले जीवों का कथन, इन्द्रिय लब्धिवाले जीवों (सू. ८६) के समान कहना चाहिये । उनमें चार ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से पाये जाते हैं । स्पर्शनेन्द्रियलब्धि रहित जीवों का कथन इन्द्रिय-लब्धि रहित जीवों (सू. ८७) के समान कहना चाहिये । उनमें एक केवलज्ञान होता है ।

विवेचन—लब्धि—ज्ञानादि के प्रतिबन्धक ज्ञानावरणीय आदि कर्मों के क्षय, क्षयोपशम या उपशम से आत्मा में ज्ञानादि गुणों का प्रकट होना—'लब्धि' है। इसके दस भेद हैं। यथा—

(१) ज्ञानलब्धि—ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम आदि से आत्मा में आभिनि-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बोधिक ज्ञान (मतिज्ञान) आदि का प्रकट होना।

(२) दर्शनलब्धि—सम्यक्, मिथ्या या मिश्र-श्रद्धानरूप आत्मा का परिणाम—'दर्शनलब्धि' है।

(३) चारित्र लब्धि—चारित्रमोहनीय कर्म के क्षय, क्षयोपशम या उपशम से होने वाला आत्मा का परिणाम 'चारित्र-लब्धि' है।

(४) चारित्राचारित्र लब्धि—अप्रत्याख्यानी कर्म के क्षयोपशम से होने वाले आत्मा के देशविरति रूप परिणाम को 'चारित्राचारित्र लब्धि' कहते हैं।

(५) दान लब्धि—दानान्तराय के क्षयादि से होने वाली लब्धि।

(६) लाभ लब्धि—लाभान्तराय के क्षयादि से होने वाली लब्धि।

(७) भोग लब्धि—भोगान्तराय के क्षयादि से होने वाली लब्धि।

(८) उपभोग लब्धि—उपभोगान्तराय के क्षयादि से होने वाली लब्धि।

(९) वीर्य लब्धि—वीर्यान्तराय के क्षयादि से होने वाली लब्धि।

(१०) इन्द्रिय लब्धि—मतिज्ञानावरणीय के क्षयोपशम से प्राप्त हुई भावेन्द्रियों का होना तथा जातिनामकर्म और पर्याप्तनामकर्म के उदय से द्रव्येन्द्रियों का होना—'इन्द्रियलब्धि' कहलाती है।

ज्ञानलब्धि के विपरीत अज्ञान-लब्धि होती है। उसके तीन भेद हैं। यथा—१ मति-अज्ञानलब्धि, २ श्रुतअज्ञानलब्धि और ३ विभंगज्ञानलब्धि।

दर्शनलब्धि के तीन भेद कहे गये हैं। यथा—सम्यग्दर्शनलब्धि—मिथ्यात्व-मोहनीय कर्म के क्षय, उपशम या क्षयोपशम से आत्मा में जो परिणाम होता है, उसे—'सम्यग्दर्शन-लब्धि' कहते हैं। सम्यग्दर्शन हो जाने पर मति आदि अज्ञान भी सम्यग्ज्ञान रूप में परिणत हो जाते हैं।

मिथ्यादर्शनलब्धि—मिथ्यात्व-मोहनीय कर्म के उदय से—अदेव में देव बुद्धि, अधर्म में धर्म बुद्धि और अगुरु (कुगुरु) में गुरुबुद्धि रूप आत्मा के विपरीत श्रद्धान को—'मिथ्यादर्शनलब्धि' कहते हैं। अर्थात् मिथ्यात्व के अशुद्ध पुद्गल के वेदन से उत्पन्न विपर्यास रूप जीव-परिणाम को मिथ्यादर्शन लब्धि कहते हैं।

सम्यग्मिथ्या (मिश्र) दर्शन-लब्धि—मिथ्यात्व के अर्द्धविशुद्ध पुद्गल के वेदन रूप मिश्र-मोहनीय कर्म के उदय से उत्पन्न मिश्ररुचि मिश्र-रूप (कुछ अयथार्थ तत्त्व श्रद्धान रूप) जीव के परिणाम को 'सम्यग्मिथ्यादर्शन-लब्धि' कहते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चारित्रलब्धि--चारित्रमोहनीय कर्म के क्षय, उपशम या क्षयोपशम से होने वाले विरति परिणाम को 'चारित्र' कहते हैं। अथवा अन्य जन्म में ग्रहण किये हुए कर्ममल को दूर करने के लिये मोक्षाभिलाषी आत्मा का सर्व-सावद्य योग से निवृत्त होना--'चारित्र' कहलाता है। चारित्र के पाँच भेद हैं। उनका अर्थ इस प्रकार है--

(१) सामायिक चारित्र—'सम' अर्थात् राग-द्वेष रहित आत्मा के प्रतिक्षण अपूर्व निर्जरा से होने वाली आत्मविशुद्धि का प्राप्त होना—'सामायिक' है।

भवाटवी के भ्रमण से पैदा होने वाले क्लेश को प्रतिक्षण नाश करने वाले, चिन्तामणि, कामधेनु और कल्पवृक्ष के सुखों से भी बढ़कर निरुपम सुख देने वाले, ऐसे ज्ञान, दर्शन, चारित्ररूप पर्यायों को प्राप्त कराने वाले, राग-द्वेष रहित आत्मा के क्रियानुष्ठान को—'सामायिक चारित्र' कहते हैं।

सर्वसावद्य व्यापार का त्याग करना एवं निरवद्य व्यापार का सेवन करना--'सामायिक चारित्र' है।

यों तो चारित्र के सभी भेद सावद्ययोग विरति रूप हैं। इसलिये सामान्यतः सभी चारित्र सामायिक ही हैं, किन्तु चारित्र के दूसरे भेदों के साथ छेद आदि विशेषण लगे हुए होने से नाम और अर्थ से भिन्न-भिन्न बताये गये हैं। छेद आदि विशेषणों के न होने से पहले चारित्र का नाम सामान्य रूप से सामायिक ही दिया गया है।

सामायिक के दो भेद--१ इत्वरकालिक सामायिक और २ यावत्कथिक सामायिक।

इत्वरकालिक सामायिक—इत्वर काल का अर्थ है—अल्पकाल अर्थात् भविष्य में दूसरी बार फिर सामायिक व्रत का व्यपदेश होने से जो अल्पकाल की सामायिक हो, उसे इत्वरकालिक सामायिक कहते हैं। पहले एवं अन्तिम तीर्थङ्कर भगवान् के तीर्थ में जब तक शिष्य में महाव्रत का आरोपण नहीं किया जाता, तब तक उस शिष्य के 'इत्वर कालिक सामायिक' समझनी चाहिये।

यावत्कथिक सामायिक—यावज्जीवन की सामायिक को 'यावत्कथिक सामायिक' कहते हैं। प्रथम और अन्तिम तीर्थङ्कर के सिवाय शेष बाईस तीर्थङ्कर भगवान् एवं महाविदेह क्षेत्र के तीर्थङ्करों के साधुओं के यावत्कथिक सामायिक होती है। क्योंकि इन तीर्थङ्करों के शिष्यों को दूसरी बार सामायिक व्रत नहीं दिया जाता। वे ऋजु और प्राज्ञ होने से उनके चारित्र में दोष का संभव नहीं है। इसलिये उनके प्रारंभ से ही यावत्कथिक सामायिक चारित्र होता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यदि कोई यहां शंका करे कि इत्वरिक सामायिक वाले साधु ने यावज्जीवन के लिये सावद्य योग का त्याग किया है, फिर छेदोपस्थापनीय चारित्र को अंगीकार करने पर पूर्व चारित्र का त्याग हो जाने से पूर्व गृहीत प्रतिज्ञा का भंग क्यों नहीं होगा ?

समाधान—छेदोपस्थापनीय चारित्र में भी सावद्य योगों का त्याग होता है। इसलिये इत्वर-कालिक सामायिक के समय गृहीत सर्व सावद्य योग त्यागरूप प्रतिज्ञा का भंग नहीं होता, अपितु चारित्र की विशेष शुद्धि होने से नाम मात्र का भेद होता है।

(२) छेदोपस्थापनीय चारित्र—जिस चारित्र में पूर्व पर्याय का छेद एवं महाव्रतों में उपस्थान—आरोपण होता है, उसे 'छेदोपस्थापनीय चारित्र' कहते हैं।

अथवा—पूर्व पर्याय का छेद करके जो महाव्रत दिये जाते हैं, उसे 'छेदोपस्थापनीय चारित्र' कहते हैं।

यह चारित्र भरतक्षेत्र और ऐरावत क्षेत्र के प्रथम और चरम तीर्थंकरों के तीर्थ में ही होता है, शेष तीर्थंकरों के तीर्थ में नहीं होता। छेदोपस्थापनीय चारित्र के दो भेद हैं—

१ निरतिचार छेदोपस्थापनीय—इत्वर सामायिक वाले शिष्य के एवं एक तीर्थ से दूसरे तीर्थ में जाने वाले (तेईसवें तीर्थङ्कर के शासन से चौबीसवें तीर्थङ्कर के शासन में जाने वाले) साधुओं के जो व्रतों का आरोपण होता है, वह—'निरतिचार छेदोपस्थापनीय चारित्र' है।

२ सातिचार छेदोपस्थापनीय—मूल गुणों का घात करने वाले साधु के जो पुनः महाव्रतों का आरोपण होता है, वह—'सातिचार छेदोपस्थापनीय चारित्र' है।

(३) परिहार-विशुद्धि चारित्र—जिस चारित्र में परिहार (तप विशेष) से कर्म निर्जरा रूप शुद्धि होती है, उसे—'परिहार-विशुद्धि चारित्र' कहते हैं। अथवा—जिस चारित्र में अनेषणीयादि का परित्याग विशेषरूप से शुद्ध होता है, वह 'परिहार-विशुद्धि चारित्र' है।

स्वयं तीर्थंकर भगवान् के पास, या जिसने तीर्थंकर भगवान् के पास रहकर पहले परिहार विशुद्धि चारित्र अंगीकार किया है, उसके पास यह चारित्र अंगीकार किया जाता है। नौ साधुओं का गण, परिहार तप अंगीकार करता है। इनमें से चार साधु पहले तप करते हैं, वे 'पारिहारिक' कहलाते हैं, चार वैयावृत्य करते हैं, वे 'आनुपारिहारिक' कहलाते हैं और एक साधु कल्पस्थित अर्थात् गुरु रूप में वाचनाचार्य रहता है, जिसके पास पारि-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हारिक और आनुपारिहारिक साधु आलोचना प्रत्याख्यान आदि करते हैं। पारिहारिक साधु ग्रीष्म ऋतु में जघन्य एक उपवास, मध्यम दो उपवास और उत्कृष्ट तीन उपवास का तप करते हैं। शिशिर काल में जघन्य बेला, मध्यम तेला और उत्कृष्ट चोला का तप करते हैं। वर्षाकाल में जघन्य तेला, मध्यम चोला और उत्कृष्ट पचोला तप करते हैं। ये पारणे में आयंबिल करते हैं। शेष चार आनुपारिहारिक और कल्पस्थित (गुरु रूप में स्थित वाचनाचार्य) ये पांच साधु, सदा आयंबिल करते हैं। इस प्रकार पारिहारिक साधु छह मास तक तप करते हैं। छह मास तक तप कर लेने के बाद वे आनुपारिहारिक अर्थात् वैयावृत्य करने वाले हो जाते हैं और वैयावृत्य करने वाले (आनुपारिहारिक) साधु, पारिहारिक बन जाते हैं अर्थात् तप करने लग जाते हैं। यह क्रम भी छह मास तक तक पूर्ववत् चलता है। इस प्रकार आठ साधुओं के तप कर लेने पर उनमें से एक गुरुपद पर स्थापित किया जाता है और शेष सात साधु वैयावृत्य करते हैं और गुरुपद पर रहा हुआ साधु, तप करना प्रारम्भ करता है। यह भी छह मास तक तप करता है। इस प्रकार अठारह मास में यह परिहार तप का कल्प पूरा होता है। परिहार तप पूर्ण होने पर वे साधु, या तो इसी कल्प को पुनः प्रारम्भ करते हैं, या जिनकल्प धारण कर लेते हैं अथवा पुनः गच्छ में आ जाते हैं। यह चारित्र, छेदोपस्थापनीय चारित्र वालों के ही होता है, दूसरों के नहीं।

निर्विश्यमानक और निर्विष्टकायिक के भेद से परिहारविशुद्धि चारित्र दो प्रकार का है।

तप करने वाले पारिहारिक साधु—'निर्विश्यमानक' कहलाते हैं। उनका चारित्र 'निर्विश्यमानक परिहार-विशुद्धि चारित्र' कहलाता है। तप करके वैयावृत्य करने वाले आनुपारिहारिक साधु तथा तप करने के बाद गुरुपद पर रहा साधु—'निर्विष्टकायिक' कहलाता है। इनका चारित्र 'निर्विष्ट-कायिक परिहार-विशुद्धि चारित्र' कहलाता है।

जघन्य नौवें पूर्व की तीसरी आचार वस्तु तक और उत्कृष्ट किञ्चिन्न्यून दस पूर्व तक का ज्ञान, सूत्र और अर्थ रूप से जिन्हें हो तथा जिनके द्रव्यादि का अभिग्रह हो और रत्नावली आदि तप किये हुए हों, वे ही परिहार तप अंगीकार कर सकते हैं। इससे कम ज्ञान वाला, परिहार तप अंगीकार नहीं कर सकता और जिसके दस पूर्व पूरे हो गये हों, उनको भी परिहार-विशुद्धि तप करने की आवश्यता नहीं रहती।

(४) सूक्ष्मसम्पराय चारित्र—सम्पराय का अर्थ है—'कषाय'। जिस चारित्र में सूक्ष्म सम्पराय अर्थात् संज्वलन लोभ का सूक्ष्म अंश रहता है, उसे—'सूक्ष्मसम्पराय चारित्र

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कहते हैं।

विशुद्धयमान और संक्लिश्यमान के भेद से सूक्ष्म-सम्पराय चारित्र के दो भेद हैं। क्षपक-श्रेणी और उपशम-श्रेणी पर चढ़ने वाले साधु के परिणाम उत्तरोत्तर शुद्ध रहने के कारण उनका सूक्ष्म-सम्पराय चारित्र–'विशुद्धयमान' कहलाता है। उपशम-श्रेणी से गिरते हुए साधु के परिणाम संक्लेश युक्त होते हैं, इसलिये उनका सूक्ष्म-सम्पराय चारित्र 'संक्लिश्यमान' कहलाता है।

(५) यथाख्यात चारित्र–कषाय का सर्वथा उदय न होने से अतिचार रहित, पारमार्थिक रूप से प्रसिद्ध चारित्र–'यथाख्यात चारित्र' कहलाता है, अथवा अकषायी साधु का (जो निरतिचार एवं यथार्थ होता है) चारित्र–'यथाख्यात चारित्र' कहलाता है।

छद्मस्थ और केवली के भेद से यथाख्यात चारित्र के दो भेद हैं, अथवा उपशांत-मोह और क्षीण-मोह, या प्रतिपाती और अप्रतिपाती के भेद से इसके दो भेद हैं।

सयोगी केवली और अयोगी केवली के भेद से–केवली यथाख्यात चारित्र के दो भेद हैं।

(४-८) चारित्राचारित्र लब्धि अर्थात् देश-विरति लब्धि। यहां मूल गुण और उत्तरगुण तथा उनके भेदों की विवक्षा नहीं की है, किन्तु अप्रत्याख्यान कषाय के क्षयोपशम-जन्य परिणाम मात्र की विवक्षा की गई है। इसलिये यह लब्धि एक ही प्रकार की कही गई है। इसी प्रकार दानलब्धि, लाभलब्धि, भोगलब्धि और उपभोगलब्धि के भी भेदों की विवक्षा न करने से ये लब्धियाँ भी एक एक प्रकार की ही कही गई हैं।

(९) वीर्यलब्धि के तीन भेद कहे गये हैं। उनका अर्थ इस प्रकार है–बालवीर्य-लब्धि–बाल अर्थात् संयम रहित जीव की असंयमरूप जो प्रवृत्ति होती है, उसे–'बाल-वीर्य लब्धि' कहते हैं। यह लब्धि, चारित्र-मोहनीय कर्म के उदय से और वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम से प्रकट होती है। पण्डितवीर्य लब्धि –जिससे संयम के विषय में प्रवृत्ति होती है, उसे–'पण्डित वीर्यलब्धि' कहते हैं और जिससे देश-विरति में प्रवृत्ति होती है, उसे 'बाल पण्डित वीर्यलब्धि' कहते हैं।

(१०) इन्द्रियलब्धि के श्रोत्रेन्द्रियादि पांच भेद हैं, जो ऊपर बतला दिये गये हैं।

ज्ञानलब्धि वाले जीव ज्ञानी होते हैं और ज्ञान के अलब्धि वाले (ज्ञान लब्धि रहित) जीव अज्ञानी होते हैं। आभिनिबोधिक ज्ञान लब्धिवाले जीवों में चार ज्ञान भजना से पाये जाते हैं। क्योंकि केवली के आभिनिबोधिक ज्ञान नहीं होता। मतिज्ञान की अलब्धिवाले

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जो ज्ञानी हैं, वे एक मात्र केवलज्ञान वाले हैं और जो अज्ञानी हैं, वे दो अज्ञानवाले या तीन अज्ञान वाले हैं। इसी प्रकार श्रुतज्ञान की लब्धि और अलब्धिवाले जीवों के विषय में भी जानना चाहिये।

अवधिज्ञान लब्धिवाले तीन ज्ञान वाले (मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान) अथवा चार ज्ञान वाले (केवलज्ञान के सिवाय) होते हैं। अवधिज्ञान की अलब्धिवाले जो ज्ञानी हैं, वे दो ज्ञान वाले (मतिज्ञान, श्रुतज्ञान) हैं अथवा तीन ज्ञान (मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और मनःपर्यवज्ञान) वाले हैं। अथवा एक ज्ञान (केवलज्ञान) वाले हैं। जो अज्ञानी हैं, वे दो अज्ञान (मति अज्ञान, श्रुत अज्ञान) अथवा तीन अज्ञान वाले हैं। मनःपर्ययज्ञान लब्धिवाले तीन ज्ञान (मति, श्रुत और मनःपर्याय) वाले अथवा चार ज्ञान (केवलज्ञान के सिवाय) वाले हैं। मनःपर्यय ज्ञान की अलब्धिवाले जो ज्ञानी हैं, वे दो ज्ञान वाले (मति और श्रुत) या तीन ज्ञान वाले (प्रथम के तीन ज्ञान) हैं, अथवा एक केवलज्ञान वाले हैं। इनमें जो अज्ञानी हैं, वे दो अज्ञान अथवा तीन अज्ञान वाले हैं। केवलज्ञान लब्धिवाले तो एक मात्र केवलज्ञान वाले हैं। केवलज्ञान की अलब्धि वाले जो ज्ञानी हैं, उनमें पहले के दो ज्ञान, अथवा पहले के तीन ज्ञान, अथवा मति, श्रुत और मनःपर्यव, ये तीन ज्ञान अथवा चार ज्ञान पाये जाते हैं। जो अज्ञानी हैं, उनमें पहले के दो अज्ञान अथवा तीन अज्ञान होते हैं।

अज्ञानलब्धि वाले जीव अज्ञानी ही होते हैं, ज्ञानी नहीं होते। उनमें भजना से तीन अज्ञान होते हैं, अर्थात् कितने ही में पहले के दो अज्ञान और कितने ही में तीन अज्ञान होते हैं। ज्ञानलब्धि वाले जीव, ज्ञानी ही होते हैं। उनमें भजना से पांच ज्ञान पाये जाते हैं। मति अज्ञान और श्रुत अज्ञान की लब्धिवाले जीवों में भजना से तीन अज्ञान पाये जाते हैं। मति अज्ञान, श्रुत अज्ञान की अलब्धि वाले जीवों में पूर्वोक्त रीति से पांच ज्ञान भजना से पाये जाते हैं। विभंगज्ञान लब्धिवाले जीवों में नियमा तीन अज्ञान पाये जाते हैं। विभंगज्ञान अलब्धि वाले ज्ञानी जीवों में पांच ज्ञान भजना से और अज्ञानी जीवों में नियम से दो अज्ञान पाये जाते हैं।

दर्शन अर्थात् श्रद्धान। ज्ञानपूर्वक जो श्रद्धा होती है, वह-'सम्यक्श्रद्धान' है और जो अज्ञानपूर्वक होती है, वह 'मिथ्याश्रद्धान' है। सम्यक्श्रद्धान वाले ज्ञानी ही होते हैं। उनमें पांच ज्ञान भजना से पाये जाते हैं। मिथ्याश्रद्धान वाले अज्ञानी ही होते हैं। उनमें तीन अज्ञान भजना से पाये जाते हैं। दर्शन-लब्धि से रहित कोई भी जीव नहीं होता। क्योंकि सम्यग्, मिथ्या, मिश्र-इन तीनों में से कोई न कोई दर्शन सभी जीवों में पाया ही

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जाता है। क्योंकि दर्शन तो रुचि (श्रद्धा) रूप है और रुचि सभी जीवों में होती है।

सम्यग्दर्शन लब्धि वालों में पांच ज्ञान भजना से पाये जाते हैं। सम्यग्दर्शन लब्धि रहित जीव, या तो मिथ्यादृष्टि होते हैं, या मिश्रदृष्टि। उनमें तीन अज्ञान भजना से पाये जाते हैं। मिश्र-दृष्टि में भी तात्त्विक सद्बोध नहीं होने के कारण अज्ञान ही होता है।

मिथ्यादर्शन लब्धि वाले जीव अज्ञानी ही होते हैं। उनमें तीन अज्ञान भजना से पाये जाते हैं। मिथ्यादर्शन लब्धि रहित जीव, या तो सम्यग्दृष्टि होते हैं, या मिश्र-दृष्टि होते हैं। सम्यग्दृष्टि जीवों में पांच ज्ञान भजना से और मिश्र-दृष्टि जीवों में तीन अज्ञान भजना से पाये जाते हैं।

सम्यग्मिथ्यादर्शन लब्धि वाले तथा अलब्धि वाले जीवों का कथन मिथ्यादर्शन लब्धि वाले और अलब्धि वाले जीवों के समान कहना चाहिये।

चारित्र लब्धि वाले जीव ज्ञानी ही होते हैं। उनमें पांच ज्ञान भजना से पाये जाते हैं। क्योंकि केवली भगवान् भी चारित्री ही हैं। चारित्र अलब्धि वाले जीव, ज्ञानी और अज्ञानी दोनों तरह के होते हैं। जो ज्ञानी हैं, उनमें भजना से चार ज्ञान (मनःपर्यव ज्ञान के सिवाय) होते हैं। क्योंकि असंयती जीवों में पहले के दो अथवा तीन ज्ञान होते हैं और सिद्ध भगवान् में केवलज्ञान होता है। सिद्धों में चारित्रलब्धि नहीं है, वे 'नोचारित्री नोअचारित्री' हैं। चारित्र लब्धि रहित जो अज्ञानी हैं, उनमें तीन अज्ञान भजना से पाये जाते हैं।

चारित्र के सामायिक चारित्र आदि पांच भेद कहे गये हैं। उनके स्वरूप का वर्णन पहले कर दिया गया है। सामायिक चारित्र लब्धि वाले जीव ज्ञानी ही होते हैं। उनमें चार ज्ञान (केवलज्ञान के सिवाय) भजना से पाये जाते हैं। सामायिक चारित्र अलब्धि वाले जीवों में से जो ज्ञानी हैं, उनमें पांच ज्ञान भजना से पाये जाते हैं। क्योंकि उनमें छेदोपस्थापनीय आदि चारित्र पाये जाते हैं, तथा सिद्ध भगवान् में भी सामायिक चारित्र नहीं है। सामायिक चारित्र अलब्धि वाले जो अज्ञानी हैं, उनमें तीन अज्ञान भजना से पाये जाते हैं।

जिस प्रकार सामायिक चारित्र लब्धि और अलब्धि वाले जीवों का कथन किया गया है, उसी प्रकार छेदोपस्थापनीय, परिहार-विशुद्धि, सूक्ष्म-सम्पराय और यथाख्यात चारित्र लब्धि वाले और अलब्धिवाले जीवों का भी कथन करना चाहिये। विशेषता यह है कि यथाख्यात चारित्र लब्धि वाले जीवों में पांच ज्ञान भजना से पाये जाते हैं। तात्पर्य यह है कि सामा-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यिक आदि चार चारित्र लब्धि वाले जीव, छद्मस्थ ही होते हैं। इसलिये उनमें चार ज्ञान भजना से पाये जाते हैं। यथाख्यात चारित्र ग्यारहवें गुणस्थान से चौदहवें गुणस्थान तक के जीवों में होता है। इनमें से ग्यारहवें और बारहवें गुणस्थानवर्ती जीव छद्मस्थ है। तेरहवें और चौदहवें गुणस्थानवर्ती जीव केवली है। इसलिये यथाख्यात चारित्रलब्धि वाले जीवों में पांच ज्ञान भजना से पाये जाते हैं।

चारित्राचारित्र लब्धि वाले जीव ज्ञानी ही होते हैं। उनमें तीन ज्ञान भजना से पाये जाते हैं। चारित्राचारित्र लब्धि रहित जीव जो ज्ञानी हैं, उनमें पांच ज्ञान भजना से और अज्ञानी में तीन अज्ञान भजना से पाये जाते हैं।

दानान्तराय कर्म के क्षय और क्षयोपशम से दान लब्धि प्राप्त होती है। इस लब्धि वाले जीव जो ज्ञानी हैं, उनमें पांच ज्ञान भजना से पाये जाते हैं। क्योंकि केवलज्ञानियों में भी दान-लब्धि पाई जाती है। दानलब्धि वाले जो अज्ञानी जीव हैं, उनमें तीन अज्ञान भजना से पाये जाते हैं। दान-लब्धि रहित जीव सिद्ध होते हैं। यद्यपि उनके दानान्तराय कर्म का क्षय हो चुका है, तथापि वहाँ दानव्य पदार्थ का अभाव होने से, तथा दान ग्रहण करने वाले जीवों के न होने से, और कृतकृत्य हो जाने के कारण किसी प्रकार का प्रयोजन न होने से उनमें दान-लब्धि नहीं मानी गई। उनमें नियमा एक केवलज्ञान पाया जाता है।

जिस प्रकार दान-लब्धि और अलब्धि वाले जीवों का कथन किया गया है, उसी प्रकार लाभ-लब्धि, भोग-लब्धि, उपभोग-लब्धि और वीर्य-लब्धि तथा इनकी अलब्धि वाले जीवों का कथन करना चाहिये। इन सबकी अलब्धिवाले जीव, पूर्वोक्त न्याय से 'सिद्ध' ही हैं। यद्यपि उनमें दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य, इन पांचों तरह के अन्तराय कर्म का सर्वथा क्षय हो चुका है, तथापि वे भगवान् सर्वथा कृतकृत्य हो चुके हैं। इसलिये उनको दान लाभादि किसी प्रकार का प्रयोजन नहीं है अर्थात् कृतकृत्य हो जाने से तथा प्रयोजन के अभाव से दानादि में उनकी प्रवृत्ति नहीं होती।

वीर्यलब्धि के तीन भेद हैं। उनका स्वरूप बतला दिया गया है। बालवीर्यलब्धि वाले जीव असंयत (अविरत) कहलाते हैं। उनमें से ज्ञानी जीवों में पहले के तीन ज्ञान भजना से और अज्ञानी जीवों में तीन अज्ञान भजना से पाये जाते हैं। बालवीर्य लब्धि रहित जीव सर्वविरत, देशविरत और सिद्ध होते हैं। इनमें पांच ज्ञान भजना से पाये जाते हैं। पण्डितवीर्य लब्धि वाले जीव ज्ञानी ही होते हैं। उनमें पांच ज्ञान भजना से पाये जाते हैं। पण्डितवीर्य लब्धि रहित जीव असंयत, देशसंयत और सिद्ध होते हैं। इनमें से असंयत जीवों

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

में पहले के तीन ज्ञान या तीन अज्ञान भजना से पाये जाते हैं। देशसंयत में पहले के तीन ज्ञान भजना से होते हैं। सिद्ध जीवों में एकमात्र केवलज्ञान ही होता है। मनःपर्ययज्ञान केवल पण्डितवीर्य लब्धिवाले जीवों में ही होता है। सिद्ध जीव पण्डितवीर्य लब्धि रहित हैं, क्योंकि अहिंसादि धर्म कार्यों में सर्वथा प्रवृत्ति करना पण्डितवीर्य कहलाता है और यह प्रवृत्ति सिद्ध जीवों में नहीं है। बालपण्डितवीर्य लब्धि वाले जीवों में अर्थात् देशसंयत जीवों में पहले के तीन ज्ञान भजना से होते हैं। बालपण्डितवीर्य लब्धि रहित जीव असंयत, सर्व-विरत और सिद्ध जीव होते हैं। इनमें पांच ज्ञान तथा तीन अज्ञान भजना से पाये जाते हैं।

इन्द्रिय-लब्धि के पांच भेद पहले कहे गये हैं। इन्द्रिय-लब्धि वाले ज्ञानी जीवों में पहले के चार ज्ञान भजना से पाये जाते हैं। इनमें केवलज्ञान नहीं होता, क्योंकि केवल-ज्ञानी जीवों में इन्द्रियों का उपयोग नहीं होता। इन्द्रिय-लब्धि वाले अज्ञानी जीवों में तीन अज्ञान भजना से पाये जाते हैं। इन्द्रिय-लब्धि से रहित एक केवलज्ञानी जीव ही होते हैं, उनमें एक केवलज्ञान ही पाया जाता है।

जिस प्रकार इन्द्रिय-लब्धि वाले जीवों का कथन किया गया, उसी प्रकार श्रोत्रेन्द्रिय लब्धि वाले जीवों का कथन करना चाहिए। श्रोत्रेन्द्रिय-लब्धि रहित जीवों में जो ज्ञानी हैं, वे दो ज्ञान वाले या एक ज्ञान वाले होते हैं। जो दो ज्ञान वाले होते हैं, वे अपर्याप्त अवस्था में सास्वादन सम्यग्दृष्टि विकलेन्द्रिय जीव हैं, और जो एक ज्ञान वाले हैं, वे एक केवल-ज्ञान वाले हैं। क्योंकि वे इन्द्रियोपयोग रहित होने से श्रोत्रेन्द्रिय-लब्धि रहित हैं। श्रोत्रे-न्द्रिय लब्धि रहित अज्ञानी जीवों में पहले के दो अज्ञान पाये जाते हैं।

जिस प्रकार श्रोत्रेन्द्रिय-लब्धि वाले तथा अलब्धि वाले जीवों का कथन किया गया, उसी प्रकार चक्षुरिन्द्रिय और घ्राणेन्द्रिय लब्धि वाले तथा इनकी अलब्धि वाले जीवों का कथन करना चाहिये। चक्षुरिन्द्रिय और घ्राणेन्द्रिय लब्धि वाले जो पञ्चेन्द्रिय जीव हैं, उनमें चार ज्ञान (केवलज्ञान के सिवाय) और तीन अज्ञान भजना से पाये जाते हैं। तथा जो विकलेन्द्रिय जीव है, उनमें सास्वादन सम्यग्दर्शन के सद्भाव में पहले के दो ज्ञान और सास्वा-दन सम्यग्दर्शन के अभाव में पहले के दो अज्ञान पाये जाते हैं। चक्षुरिन्द्रिय लब्धि से रहित जीव एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय और तेइन्द्रिय तथा केवली होते हैं। घ्राणेन्द्रिय-लब्धि से रहित जीव—एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय और केवली होते हैं। उनमें से बेइन्द्रिय और तेइन्द्रिय जीवों में सास्वादन सम्यग्दर्शन के सद्भाव में पहले के दो ज्ञान होते हैं और सास्वादन सम्यग्दर्शन के अभाव में पहले के दो अज्ञान होते हैं। केवलियों में एक केवलज्ञान होता है। जिव्हेन्द्रिय

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लब्धि वाले जीवों में चार ज्ञान, या तीन अज्ञान भजना से पाये जाते हैं। जिव्हेन्द्रिय लब्धि रहित जीव ज्ञानी भी होते हैं और अज्ञानी भी होते हैं। जो ज्ञानी हैं, वे केवलज्ञानी है। उनमें एक केवलज्ञान पाया जाता है। जो अज्ञानी हैं, वे एकेन्द्रिय हैं। उनमें दो अज्ञान नियम से पाये जाते हैं। विभंगज्ञान का उनमें अभाव है। एकेन्द्रिय जीवों में सास्वादन सम्यग्दर्शन का अभाव होने से ज्ञान का अभाव है।

जिस प्रकार इन्द्रिय-लब्धि वाले और अलब्धि वाले जीवों का कथन किया गया है, उसी प्रकार स्पर्शनेन्द्रिय लब्धि और अलब्धिवाले जीवों का कथन करना चाहिये अर्थात् स्पर्शनेन्द्रिय लब्धि वालों में चार ज्ञान (केवलज्ञान के सिवाय) और तीन अज्ञान भजना से पाये जाते हैं। स्पर्शनेन्द्रिय लब्धि रहित केवली ही होते हैं, उनमें एक केवल-ज्ञान ही होता है।

योग उपयोगादि में ज्ञान अज्ञान

९० प्रश्न—सागारोवउत्ता णं भंते ! जीवा किं णाणी अण्णाणी ?

९० उत्तर—पंच णाणाइं तिण्णि अण्णाणाइं भयणाए।

९१ प्रश्न—आभिणिबोहियणाण-सागारोवउत्ता णं भंते !० ?

९१ उत्तर—चत्तारि णाणाइं भयणाए। एवं सुयणाण-सागारोवउत्ता वि। ओहिणाण-सागारोवउत्ता जहा ओहिणाणलद्धीया। मणपज्जवणाण-सागारोवउत्ता जहा मणपज्जवणाणलद्धीया। केवलणाण-सागारोवउत्ता जहा केवलणाणलद्धीया। मइअण्णाण-सागारोवउत्ताणं तिण्णि अण्णाणाइं भयणाए। एवं सुयअण्णाण-सागारोवउत्ता वि। विभंगणाण-सागारोवउत्ताणं तिण्णि अण्णाणाइं णियमा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

९२ प्रश्न-अणागारोवउत्ता णं भंते ! जीवा किं णाणी, अण्णाणी ?

९२ उत्तर-पंच णाणाइं तिण्णि अण्णाणाइं भयणाए। एवं चक्खुदंसण-अचक्खुदंसण-अणागारोवउत्ता वि; णवरं चत्तारि णाणाइं तिण्णि अण्णाणाइं भयणाए।

९३ प्रश्न-ओहिदंसण-अणागारोवउत्ताणं पुच्छा।

९३ उत्तर-गोयमा ! णाणी वि अण्णाणी वि। जे णाणी ते अत्थेगइया तिण्णाणी अत्थेगइया चउणाणी। जे तिण्णाणि ते आभिणिबोहियणाणी, सुयणाणी, ओहिणाणी। जे चउणाणी ते आभिणिबोहियणाणी, जाव मणपज्जवणाणी। जे अण्णाणी ते णियमा तिअण्णाणी, तं जहा-मइअण्णाणी, सुयअण्णाणी, विभंगणाणी। केवलदंसण-अणागारोवउत्ता जहा केवलणाणलद्धीया।

कठिन शब्दार्थ—सागारोवउत्ता—साकारोपयुक्त (ज्ञानोपयोग वाले) अणागारोवउत्ता—अनाकारोपयुक्त-दर्शनोपयोग वाले।

भावार्थ-९० प्रश्न-हे भगवन् ! साकारोपयोगवाले जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी ?

९० उत्तर-हे गौतम ! वे ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी। जो ज्ञानी हैं उनमें पांच ज्ञान भजना से हैं, और जो अज्ञानी हैं, उनमें तीन अज्ञान भजना से हैं।

९१ प्रश्न-हे भगवन् ! आभिनिबोधिक ज्ञान साकारोपयोग वाले जीव, ज्ञानी हैं या अज्ञानी ?

९१ उत्तर-हे गौतम ! वे ज्ञानी हैं, अज्ञानी नहीं। उनमें चार ज्ञान

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भजना से पाये जाते हैं। श्रुतज्ञान साकारोपयोगवाले जीव भी इसी प्रकार हैं। अवधिज्ञान साकारोपयोग वाले जीवों का कथन अवधिज्ञान लब्धिवाले जीवों (सू. ७१) के समान जानना चाहिये अर्थात् उनमें तीन या चार ज्ञान पाये जाते हैं। मनःपर्यवज्ञान साकारोपयोग वाले जीवों का कथन, मनःपर्यवज्ञान लब्धि वाले जीवों (सू. ७३) के समान जानना चाहिये अर्थात् उनमें मति, श्रुत और मनःपर्याय, ये तीन ज्ञान, अथवा अवधि सहित चार ज्ञान पाये जाते हैं। केवलज्ञान साकारोपयोग वाले जीवों का कथन केवलज्ञान लब्धि वाले जीवों (सू. ७५) के समान जानना चाहिये, अर्थात् उनमें एक केवलज्ञान ही पाया जाता है। मतिअज्ञान साकारोपयोगवाले और श्रुतअज्ञान साकारोपयोग वाले जीवों में तीन अज्ञान भजना से पाये जाते हैं। विभंगज्ञान साकारोपयोगवाले जीवों में नियम से तीन अज्ञान पाये जाते हैं।

९२ प्रश्न-हे भगवन् ! अनाकारोपयोगवाले जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी ?

९२ उत्तर-हे गौतम ! वे ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी। उनमें पांच ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से होते हैं। इस प्रकार चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शन अनाकारोपयोगवाले जीवों के विषय में भी जान लेना चाहिये। परन्तु उनमें चार ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से होते हैं।

९३ प्रश्न-हे भगवन् ! अवधिदर्शन अनाकारोपयोग वाले जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी ?

९३ उत्तर-हे गौतम ! वे ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी। उनमें जो ज्ञानी हैं, उनमें से कितने ही तीन ज्ञानवाले (पहले के तीन ज्ञान वाले) और कितने ही चार ज्ञानवाले होते हैं। जो अज्ञानी हैं, उनमें नियम से तीन अज्ञान पाये जाते हैं। यथा-मतिअज्ञान, श्रुतअज्ञान और विभंगज्ञान। केवलदर्शन अनाकारोपयोगवाले जीवों का कथन केवलज्ञान लब्धि वाले जीवों (सूत्र ७५) की तरह जानना चाहिये। वे मात्र एक केवलज्ञान वाले होते हैं।

९४ प्रश्न-सजोगी णं भंते ! जीवा किं णाणी० ?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

९४ उत्तर-जहा सकाइया। एवं मणजोगी, वइजोगी, कायजोगी वि। अजोगी जहा सिद्धा।

९५ प्रश्न-सलेस्सा णं भंते ! ० ?

९५ उत्तर-जहा सकाइया।

९६ प्रश्न-कण्हलेस्सा णं भंते ! ० ?

९६ उत्तर-जहा सइंदिया। एवं जाव पम्हलेस्सा, सुक्कलेस्सा जहा सलेस्सा। अलेस्सा जहा सिद्धा।

९७ प्रश्न-सकसाई णं भंते ! ० ?

९७ उत्तर-जहा सइंदिया ! एवं जाव लोभकसाई।

९८ प्रश्न-अकसाई णं भंते ! किं णाणी ० ?

९८ उत्तर-पंच णाणाइं भयणाए।

९९ प्रश्न-सवेयगा णं भंते ! ० ?

९९ उत्तर-जहा सइंदिया। एवं इत्थिवेयगा वि, एवं पुरिसवेयगा वि, एवं णपुंसग वेयगा वि। अवेयगा जहा अकसाई।

१०० प्रश्न-आहारगा णं भंते ! जीवा ० ?

१०० उत्तर-जहा सकसाई, णवरं केवलणाणं वि।

१०१ प्रश्न-अणाहारगा णं भंते ! जीवा किं णाणी, अण्णाणी?

१०१ उत्तर-मणपज्जवणाणवज्जाइं णाणाइं अण्णाणाणि य तिण्णि भयणाए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ सलेस्सा—जिसमें कृष्णादि छह लेश्या में की कोई लेश्या हो, अलेस्सा—लेश्या रहित, सकसाई—क्रोधादि चार कषाय युक्त, सवेयगा—स्त्री, पुरुष और नपुंसक वेद-भावयुक्त।

भावार्थ-९४ प्रश्न-हे भगवन् ! सयोगी जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी ?

९४ उत्तर-हे गौतम ! उनका कथन सकायिक जीवों (सूत्र ३८) के समान जानना चाहिये। मनयोगी, वचनयोगी और काययोगी जीवों का कथन भी इसी तरह जानना चाहिये। अयोगी अर्थात् योग रहित जीवों का कथन सिद्धों (सूत्र ३०) के समान जानना चाहिये ।

९५ प्रश्न—हे भगवन् ! सलेशी जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी ?

९५ उत्तर-हे गौतम ! उनका कथन सकायिक जीवों (सूत्र ३८) के समान जानना चाहिये।

९६ प्रश्न—हे भगवन् ! कृष्णलेशी जीव ज्ञानी है, या अज्ञानी ?

९६ उत्तर-हे गौतम ! उनका कथन सेन्द्रिय-जीवों (सूत्र ३५) के समान जानना चाहिये। इसी प्रकार नीललेश्या, कापोतलेश्या, तेजोलेश्या और पद्म लेश्या वाले जीवों का कथन जानना चाहिये। शुक्ललेश्या वाले जीवों का कथन सलेशी जीवों (सूत्र ९५) के समान जानना चाहिये। और अलेशी जीवों का कथन (सूत्र ३०) की तरह जानना चाहिये।

९७ प्रश्न-हे भगवन् ! सकषायी जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी ?

९७ उत्तर-हे गौतम ! उनका कथन सेन्द्रिय जीवों (सूत्र ३५) के समान जानना चाहिये। इसी प्रकार क्रोध-कषायी, मान-कषायी, मायाकषायी और लोभकषायी जीवों के विषय में भी जान लेना चाहिये।

९८ प्रश्न-हे भगवन् ! अकषायी जीव ज्ञानी हैं, अज्ञानी हैं ?

९८ उत्तर-हे गौतम ! वे ज्ञानी हैं, अज्ञानी नहीं। उनमें पांच ज्ञान भजना से पाये जाते हैं।

९९ प्रश्न-हे भगवन् ! सवेदक (वेद सहित) जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी ?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

९९ उत्तर–हे गौतम ! वे भी सेन्द्रिय जीवों (सूत्र ३५) की तरह हैं। इसी प्रकार स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी और नपुंसकवेदी जीवों के विषय में भी जानना चाहिये। अवेदक जीवों का वर्णन अकषायी जीवों (सूत्र ९८) के समान है।

१०० प्रश्न–हे भगवन् ! आहारक जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी ?

१०० उत्तर–हे गौतम ! आहारक जीव, सकषायी जीवों (सूत्र ९७) के समान हैं। परन्तु इतनी विशेषता है कि उनमें केवलज्ञान भी पाया जाता है।

१०१ प्रश्न–हे भगवन् ! अनाहारक जीव ज्ञानी हैं, या अज्ञानी ?

१०१ उत्तर–हे गौतम ! वे ज्ञानी भी हैं और अज्ञानी भी। उनमें चार ज्ञान (मनःपर्यय के सिवाय) और तीन अज्ञान भजना से पाये जाते हैं।

विवेचन—उपयोग द्वार–आकार का अर्थ है–'विशेषता सहित बोध होना' अर्थात् विशेष ग्राहक को 'साकार-उपयोग' कहते हैं। साकारोपयोग वाले जीव ज्ञानी और अज्ञानी दोनों तरह के होते हैं। उनमें से ज्ञानी जीवों में पांच ज्ञान भजना से होते हैं, अर्थात् कुछ जीवों में दो, कुछ जीवों में तीन, कुछ जीवों में चार और कुछ जीवों में एक केवलज्ञान होता है। इनका कथन ज्ञान-लब्धि की अपेक्षा है। उपयोग की अपेक्षा तो एक समय में एक ही ज्ञान अथवा एक ही अज्ञान होता है। अज्ञानी जीवों में तीन अज्ञान भजना से पाये जाते हैं।

आभिनिबोधिक (मति) ज्ञानादि साकारोपयोग के भेद हैं। आभिनिबोधिक आदि साकारोपयोग वाले जीवों में ज्ञान, अज्ञान आदि का कथन ऊपर किया गया है। इनका वर्णन तत्तद् लब्धि वाले जीवों के समान जानना चाहिये।

जिस ज्ञान में आकार अर्थात् जाति, गुण, क्रिया आदि स्वरूप विशेष का प्रतिभास (बोध) न हो, उसे 'अनाकारोपयोग' (दर्शनोपयोग) कहते हैं। अनाकारोपयोग वाले जीव ज्ञानी और अज्ञानी दोनों प्रकार के होते हैं। ज्ञानी जीवों में लब्धि की अपेक्षा पांच ज्ञान भजना से और अज्ञानी जीवों में तीन अज्ञान भजना से पाये जाते हैं। अनाकारोपयोग वालों की तरह चक्षु-दर्शन और अचक्षुदर्शन, अनाकारोपयोग वालों के विषय में भी जानना चाहिये। किन्तु चक्षुदर्शन और अचक्षु-दर्शन वाले जीव केवली नहीं होते। इसलिये उनमें चार ज्ञान तीन अज्ञान भजना से पाये जाते हैं।

अवधिदर्शन अनाकारोपयोग वाले जीव, ज्ञानी और अज्ञानी दोनों तरह के होते हैं। क्योंकि दर्शन का विषय सामान्य है। सामान्य अविशेषरूप होने से दर्शन में ज्ञानी और

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अज्ञानी भेद नहीं होता ।

योग द्वार--सयोगी जीव, सकायिक जीवों के समान है । उनमें पांच ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से होते हैं । इसी प्रकार मन योगी, वचन योगी और काय योगी जीवों के विषय में भी जानना चाहिये । क्योंकि केवली में भी मनयोगादि होते हैं । मिथ्यादृष्टि जीवों में तीन अज्ञान भजना से होते हैं । अयोगी जीवों में एक केवलज्ञान ही होता है ।

लेश्या द्वार-सलेशी जीवों का वर्णन सकायिक जीवों के समान है । उनमें पांच ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से पाये जाते हैं । क्योंकि केवली में भी शुक्ल लेश्या होने के कारण वे सलेशी हैं । कृष्ण लेश्या, नील लेश्या, कापोत लेश्या, तेजो लेश्या और पद्म लेश्या वाले जीवों का कथन, सेन्द्रिय जीवों के समान है । उनमें चार ज्ञान, तीन अज्ञान भजना से पाये जाते हैं । शुक्ल लेश्या वाले जीवों का कथन सलेशी जीवों के समान है । अलेशी जीवों में एक केवलज्ञान ही होता है ।

कषाय द्वार-सकषायी, क्रोध कषायी, मान कषायी, माया कषायी और लोभ कषायी जीवों का कथन, सेन्द्रिय जीवों के समान है । उनमें चार ज्ञान (केवलज्ञान के सिवाय) और तीन अज्ञान भजना से पाये जाते हैं । अकषायी जीवों में पांच ज्ञान भजना से पाये जाते हैं । अकषायी, छद्मस्थ वीतराग और केवली होते हैं । उनमें से छद्मस्थ वीतराग में पहले के चार ज्ञान भजना से पाये जाते हैं और केवली में एक केवलज्ञान ही पाया जाता है ।

वेद द्वार-सवेदक का कथन, सेन्द्रिय के समान है । उनमें चार ज्ञान (केवलज्ञान के सिवाय) और तीन अज्ञान भजना से पाये जाते हैं । अवेदक-वेद रहित जीवों का कथन अकषायी के समान है । उनमें पांच ज्ञान भजना से पाये जाते हैं । क्योंकि 'अनिवृत्ति बादर' नामक नौवें गुणस्थान से चौदहवें गुणस्थान तक के जीव अवेदक होते हैं । उनमें से बारहवें गुणस्थान तक के जीव छद्मस्थ होते हैं और उनमें चार ज्ञान भजना से पाये जाते हैं । तेरहवें चौदहवें गुणस्थानवर्ती अवेदक, केवली होते हैं और उनमें एक केवलज्ञान पाया जाता है ।

आहारक द्वार-आहारक जीवों का कथन सकषायी जीवों के समान है । सकषायी जीवों में चार ज्ञान और तीन अज्ञान कहे गये हैं, परन्तु आहारक जीवों में केवलज्ञान भी होता है । क्योंकि केवलज्ञानी आहारक भी होते हैं । अनाहारक जीवों में मनःपर्यय ज्ञान के सिवाय चार ज्ञान और तीन अज्ञान भजना से पाये जाते है । विग्रह गति, केवली-समुद्घात और अयोगी दशा में जीव अनाहारक होते हैं । शेष अवस्था में जीव आहारक होते हैं । मनःपर्ययज्ञान, आहारक जीवों को ही होता है । अनाहारक जीवों को पहले के

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तीन ज्ञान या तीन अज्ञान विग्रह गति में होते हैं। अनाहारक केवलज्ञानी को केवलीसमुद्घात और अयोगी अवस्था में एक केवलज्ञान ही होता है। इस कारण अनाहारक जीवों में मनःपर्यय ज्ञान के सिवाय चार ज्ञान और तीन अज्ञान कहे गये हैं।

ज्ञान की व्यापकता (विषय द्वार)

१०२ प्रश्न—आभिणिबोहियणाणस्स णं भंते ! केवइए विसए पण्णत्ते ?

१०२ उत्तर—गोयमा ! से समासओ चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—दव्वओ, खेत्तओ, कालओ, भावओ। दव्वओ णं आभिणिबोहियणाणी आएसेणं सव्वदव्वाइं जाणइ पासइ, खेत्तओ णं आभिणिबोहियणाणी, आएसेणं सव्वखेत्तं जाणइ पासइ, एवं कालओ वि, एवं भावओ वि।

१०३ प्रश्न—सुयणाणस्स णं भंते ! केवइए विसए पण्णत्ते ?

१०३ उत्तर—गोयमा ! से समासओ चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—दव्वओ, खेत्तओ, कालओ, भावओ। दव्वओ णं सुयणाणी उवउत्ते सव्वदव्वाइं जाणइ, पासइ; एवं खेत्तओ वि, कालओ वि। भावओ णं सुयणाणी उवउत्ते सव्वभावे जाणइ, पासइ।

१०४ प्रश्न—ओहिणाणस्स णं भंते ! केवइए विसए पण्णत्ते ?

१०४ उत्तर—गोयमा ! से समासओ चउव्विहे पण्णत्ते, तं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जहा-दव्वओ, खेत्तओ, कालओ, भावओ। दव्वओ णं ओहिणाणी रूविदव्वाइं जाणइ पासइ, जहा णंदीए, जाव भावओ।

१०५ प्रश्न-मणपज्जवणाणस्स णं भंते! केवइए विसए पण्णत्ते ?

१०५ उत्तर-गोयमा! से समासओ चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा-दव्वओ, खेत्तओ, कालओ, भावओ। दव्वओ णं उज्जुमइ अणंते अणंतपएसिए, जहा णंदीए, जाव भावओ।

१०६ प्रश्न-केवलणाणस्स णं भंते! केवइए विसए पण्णत्ते ?

१०६ उत्तर-गोयमा! से समासओ चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा-दव्वओ, खेत्तओ, कालओ, भावओ। दव्वओ णं केवलणाणी सव्वदव्वाइं जाणइ पासइ, एवं जाव भावओ।

कठिन शब्दार्थ--आएसेणं--आदेश से-ओघरूप से अर्थात् सामान्य विशेष की विवक्षा किये बिना-मात्र द्रव्य रूप से, समासओ--संक्षेप से, उवउत्ते--उपयुक्त।

भावार्थ--१०२ प्रश्न--हे भगवन्! आभिनिबोधिक ज्ञान का विषय कितना कहा गया है ?

१०२ उत्तर-हे गौतम! आभिनिबोधिक ज्ञान का विषय संक्षेप से चार प्रकार का कहा गया है। यथा-द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से और भाव से। द्रव्य से आभिनिबोधिक ज्ञानी, सामान्य रूप से सभी द्रव्यों को जानता देखता है। क्षेत्र से आभिनिबोधिक ज्ञानी आदेश से (सामान्य से) सभी क्षेत्र को जानता और देखता है। इसी प्रकार काल और भाव से भी जानना चाहिये।

१०३ प्रश्न-हे भगवन्! श्रुतज्ञान का विषय कितना कहा गया है ?

१०३ उत्तर-हे गौतम! वह संक्षेप से चार प्रकार का कहा है। यथा-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से और भाव से । द्रव्य से उपयुक्त (उपयोग सहित) श्रुतज्ञानी, सभी द्रव्यों को जानता और देखता है । इस प्रकार क्षेत्र से, काल से भी जानना चाहिये । भाव से उपयुक्त श्रुतज्ञानी सभी भावों को जानता और देखता है ।

१०४ प्रश्न—हे भगवन् ! अवधिज्ञान का विषय कितना कहा है ?

१०४ उत्तर—हे गौतम ! संक्षेप से चार प्रकार का कहा गया है । यथा—द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से और भाव से । द्रव्य से अवधिज्ञानी रूपी द्रव्यों को जानता और देखता है । इत्यादि जिस प्रकार नन्दी सूत्र में कहा है, उसी प्रकार यावत् भाव पर्यन्त कहना चाहिये ।

१०५ प्रश्न—हे भगवन् ! मनःपर्यय ज्ञान का विषय कितना कहा गया है ?

१०५ उत्तर—हे गौतम ! वह संक्षेप से चार प्रकार का कहा गया है । यथा—द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से और भाव से । द्रव्य से ऋजुमति मनःपर्यय ज्ञानी, मनपने परिणत अनन्त प्रादेशिक अनन्त स्कंधों को जानता और देखता है । इत्यादि जिस प्रकार नन्दी सूत्र में कहा है उसी प्रकार यावत् भाव तक जानना चाहिये ।

१०६ प्रश्न—हे भगवन् ! केवलज्ञान का विषय कितना कहा गया है ?

१०६ उत्तर—हे गौतम ! संक्षेप से चार प्रकार का कहा गया है । यथा—द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से और भाव से । द्रव्य से केवलज्ञानी सभी द्रव्यों को जानता और देखता है । इस प्रकार यावत् भाव से केवलज्ञानी समस्त भावों को जानता और देखता है ।

१०७ प्रश्न—मइअण्णाणस्स णं भंते ! केवइए विसए पण्णत्ते ?

१०७ उत्तर—गोयमा ! से समासओ चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—दव्वओ, खेत्तओ, कालओ, भावओ । दव्वओ णं मइअण्णाणी मइ-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अण्णाणपरिगयाइं दव्वाइं जाणइ पासइ, एवं जाव भावओ णं मइअण्णाणी मइअण्णाणपरिगए भावे जाणइ पासइ।

१०८ प्रश्न-सुयअण्णाणस्स णं भंते ! केवइए विसए पण्णत्ते ?

१०८ उत्तर-गोयमा ! से समासओ चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा-दव्वओ, खेत्तओ, कालओ, भावओ। दव्वओ णं सुयअण्णाणी सुयअण्णाणपरिगयाइं दव्वाइं आघवेइ, पण्णवेइ, परूवेइ। एवं खेत्तओ, कालओ, भावओ णं सुयअण्णाणी सुयअण्णाणपरिगए भावे आघवेइ तं चेव।

१०९ प्रश्न-विभंगणाणस्स णं भंते ! केवइए विसए पण्णत्ते ?

१०९ उत्तर-गोयमा ! से समासओ चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा-दव्वओ, खेतओ, कालओ, भावओ। दव्वओ णं विभंगणाणी विभंगणाणपरिगयाइं दव्वाइं जाणइ पासइ एवं जाव भावओ णं विभंगणाणी विभंगणाणपरिगए भावे जाणइ पासइ।

कठिन शब्दार्थ-आघवेइ-कहता है, पण्णवेइ-बतलाता है, परूवेइ-प्ररूपित करता है।

भावार्थ-१०७ प्रश्न-हे भगवन् ! मतिअज्ञान का विषय कितना कहा गया है ?

१०७ उत्तर-हे गौतम ! वह संक्षेप से चार प्रकार का कहा गया है। यथा-द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से और भाव से। द्रव्य से मतिअज्ञानी, मतिअज्ञान के विषयभूत द्रव्यों को जानता और देखता है। इस प्रकार यावत् भाव से मतिअज्ञानी मतिअज्ञान के विषयभूत भावों को जानता और देखता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१०८ प्रश्न-हे भगवन् ! श्रुतअज्ञान का विषय कितना कहा गया है ?

१०८ उत्तर-हे गौतम ! वह संक्षेप से चार प्रकार का कहा गया है। यथा-द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से और भाव से। द्रव्य से श्रुतअज्ञानी, श्रुतअज्ञान के विषयभूत द्रव्यों को कहता है, बतलाता है और प्ररूपित करता है। इस प्रकार क्षेत्र से और काल से भी जानना चाहिये। भाव की अपेक्षा श्रुतअज्ञानी, श्रुतअज्ञान के विषयभूत भावों को कहता है, बतलाता है और प्ररूपित करता है।

१०९ प्रश्न-हे भगवन् ! विभंगज्ञान का विषय कितना कहा गया है ?

१०९ उत्तर-हे गौतम ! वह संक्षेप से चार प्रकार का कहा गया है, यथा-द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से और भाव से। द्रव्य की अपेक्षा विभंगज्ञानी, विभंगज्ञान के विषयभूत द्रव्यों को जानता और देखता है। यावत् भाव से विभंगज्ञानी विभंगज्ञान के विषयभूत भावों को जानता और देखता है।

विवेचन-ज्ञान विषयद्वार-आभिनिबोधिक ज्ञान का विषय चार प्रकार का बतलाया गया है। यथा-द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से और भाव से। द्रव्य का अर्थ है-धर्मास्तिकाय आदि द्रव्य। क्षेत्र का अर्थ है-द्रव्यों का आधारभूत आकाश। काल का अर्थ है-द्रव्यों के पर्यायों की स्थिति। भाव का अर्थ है-औदयिक आदि भाव अथवा द्रव्य के पर्याय। इनमें से द्रव्य की अपेक्षा जो आभिनिबोधिक ज्ञान हो, वह धर्मास्तिकाय आदि द्रव्यों को आदेश से अर्थात् ओघरूप से (सामान्यतया) द्रव्य-मात्र जानता है। परन्तु उसमें रही हुई सभी विशेषताओं से नहीं जानता। अथवा आदेश का अर्थ-'श्रुतज्ञान जनित संस्कार,' इसके द्वारा अवाय और धारणा की अपेक्षा जानता है। क्योंकि अवाय और धारणा ज्ञान रूप है। *तथा अवग्रह और ईहा से देखता है। क्योंकि अवग्रह और ईहा-दर्शनरूप है।* श्रुतज्ञान जन्य संस्कार द्वारा लोकालोक रूप सर्व-क्षेत्र को जानता है। इस प्रकार काल से सभी काल को और भाव से औदयिक आदि पांच भावों को जानता है।

शंका-मतिज्ञान के अट्ठाईस भेद कहे गये हैं। किन्तु अवाय और धारणा को ही ज्ञानरूप मानने से श्रोत्रादि के भेद से मतिज्ञान के बारह ही भेद रह जायेंगे। तथा श्रोत्रादि के भेद से अवग्रह और ईहा के बारह भेद तथा व्यञ्जनावग्रह के चार भेद ये कुल सोलह भेद चक्षु आदि दर्शन के होंगे ? फिर मतिज्ञान के अट्ठाईस भेद किस प्रकार घटित होंगे ?

समाधान-शंका ठीक है, किन्तु यहां मतिज्ञान और चक्षु आदि दर्शन इन दोनों के

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भेद की विवक्षा नहीं करने से मतिज्ञान के अट्ठाईस भेद कहे गये हैं।

उपयोग सहित श्रुतज्ञानी (सम्पूर्ण दसपूर्वधर आदि श्रुतकेवली) धर्मास्तिकाय आदि सभी द्रव्यों को विशेष रूप से जानता है और श्रुतानुसारी मानस–अचक्षु दर्शन द्वारा सभी अभिलाप्य द्रव्यों को देखता है। इस प्रकार क्षेत्रादि के विषय में भी जानना चाहिये। भाव से उपयुक्त श्रुतज्ञानी, औदयिक आदि समस्त भावों को अथवा सभी अभिलाप्य भावों को जानता है। यद्यपि अभिलाप्य भावों का अनन्तवां भाग ही श्रुत प्रतिपादित है, तथापि प्रसंगानुप्रसंग से सभी अभिलाप्य भाव श्रुतज्ञान के विषय हैं। इसलिये उनकी अपेक्षा 'सर्व भावों को जानता है'–ऐसा कहा गया है।

द्रव्य से अवधिज्ञानी जघन्य तैजस् और भाषा द्रव्यों के अन्तरालवर्ती सूक्ष्म अनन्त पुद्गल द्रव्यों को जानता है। उत्कृष्ट बादर और सूक्ष्म, सभी द्रव्यों को जानता है। अवधिदर्शन से देखता है। क्षेत्र से अवधिज्ञानी जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग को जानता और देखता है। उत्कृष्ट समस्त लोक और लोक सरीखे असंख्यात खण्ड अलोक में हों, तो उनको भी जानने और देखने की शक्ति है। काल से अवधिज्ञानी, जघन्य आवलिका के असंख्यातवें भाग को और उत्कृष्ट असंख्यात उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी अतीत, अनागत काल को जानता और देखता है। अर्थात् इतने काल में रहे हुए रूपी द्रव्यों को जानता और देखता है। भाव से अवधिज्ञानी, जघन्य अनन्त भावों को जानता और देखता है। परन्तु प्रत्येक द्रव्य के अनन्त भावों को नहीं जानता, नहीं देखता। उत्कृष्ट से भी अनन्त भावों को जानता और देखता है। परन्तु वे भाव समस्त पर्यायों के अनन्तवें भाग रूप जानने चाहिये।

मनःपर्यय ज्ञान के दो भेद हैं। ऋजुमति और विपुलमति। सामान्यग्राही मति को 'ऋजुमति मनःपर्याय ज्ञान' कहते हैं। जैसे कि 'इसने घट का चिन्तन किया है।' इस प्रकार का सामान्य कितनेक पर्याय विशिष्ट मनोद्रव्य का ज्ञान। द्रव्य से ऋजुमति मनःपर्ययज्ञानी ढ़ाई द्वीप में रहे हुए संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त जीवों के मन रूप से परिणत मनोवर्गणा के अनन्त स्कन्धों को साक्षात् जानता, देखता है। परन्तु उसके द्वारा चिन्तित घटादि रूप पदार्थ को (इस प्रकार के आकार वाला मनोद्रव्य का परिणाम, इस प्रकार के चिन्तन के बिना घटित नहीं हो सकता–इस प्रकार की अन्यथानुपपत्ति रूप अनुमान से) जानता है। इसलिये 'पासइ–पश्यति–देखता है'–ऐसा कहा गया है।

विपुलमति मनःपर्ययज्ञान–विपुल का अर्थ है–'अनेक विशेषग्राही' अर्थात् अनेक विशेषता युक्त मनोद्रव्य के ज्ञान को विपुलमति मनःपर्यय ज्ञान कहते हैं। जैसे कि–'इसने

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जिस घट का चिन्तन किया. वह द्रव्य से मिट्टी का बना हुआ है, क्षेत्र से पाटलीपुत्र (पटना) में है। काल से वसन्त-ऋतु का है और भाव से पीले रंग का है। इत्यादि विशेषताओं को जानता है।

ऋजुमति मनःपर्ययज्ञानी क्षेत्र से जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट तिर्यग्मनुष्यलोक (ढाई द्वीप और दो समुद्र) में रहे हुए संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त जीवों के मनोगत भावों को जानता देखता है। विपुलमति उससे ढाई अंगुल अधिक क्षेत्र में रहे हुए जीवों के मनोगत भावों को विशेष प्रकार से, विशुद्ध रूप से जानता देखता है। तात्पर्य यह है कि ऋजुमति मनःपर्यय ज्ञानी, क्षेत्र से जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग को और उत्कृष्ट अधोदिशा में रत्नप्रभा पृथ्वी के उपरितन तल के नीचे के क्षुल्लक प्रतरों को जानता-देखता है। ऊर्ध्वदिशा में ज्योतिषी के उपरितल को जानता देखता है। तिर्यक् दिशा में ढाई अंगुल कम ढाई द्वीप और दो समुद्र के संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त जीवों के मनोगतभावों को जानता देखता है। विपुलमति, क्षेत्र की अपेक्षा सम्पूर्ण ढाई द्वीप और दो समुद्र को जानता-देखता है। काल से ऋजुमति जघन्य पल्योपम के असंख्यातवें भाग को और उत्कृष्ट पल्योपम के असंख्यातवें भाग जितने अतीत अनागत काल को जानता-देखता है। विपुलमति मनःपर्ययज्ञानी भी इसी को स्पष्ट रूप से जानता देखता है। भाव से ऋजुमति सभी भावों के अनन्तवें भाग में रहे हुए अनन्त भावों को जानता-देखता है। विपुलमति इन्हें विशुद्ध और स्पष्ट रूप से जानता-देखता है।

केवलज्ञान के दो भेद हैं। भवस्थ केवलज्ञान और सिद्ध केवलज्ञान। केवलज्ञानी सर्व द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव को जानता-देखता है।

मति अज्ञानी, मतिअज्ञान द्वारा गृहीत द्रव्यों को—द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से जानता-देखता है। श्रुत अज्ञानी, श्रुतअज्ञान द्वारा गृहीत द्रव्यों को द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से कहता है। उनके भेद-प्रभेद करके बतलाता है। और हेतु, युक्ति द्वारा प्ररूपणा करता है विभंगज्ञानी विभंगज्ञान द्वारा गृहीत द्रव्यों को द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से जानता देखता है।

ज्ञानादि का काल

११० प्रश्न—णाणी णं भंते ! 'णाणी' त्ति कालओ केवच्चिरं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

होइ ?

११० उत्तर-गोयमा ! णाणी दुविहे पण्णत्ते, तं जहा-साइए वा अपज्जवसिए, साइए वा सपज्जवसिए। तत्थ णं जे से साइए सपज्जवसिए से जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं छावट्ठिं सागरोवमाइं सातिरेगाइं।

१११ प्रश्न-आभिणिबोहियणाणी णं भंते ! ० ?

१११ उत्तर-आभिणिबोहिय० एवं णाणी, आभिणिबोहियणाणी, जाव केवलणाणी। अण्णाणी, मइअण्णाणी, सुयअण्णाणी, विभंगणाणी-एएसिं दसण्ह वि संचिट्ठणा जहा कायट्ठिईए। अंतरं सव्वं जहा जीवाभिगमे अप्पाबहुगाणि तिण्णि जहा बहुवत्तव्वयाए।

कठिन शब्दार्थ-केवच्चिरं-कहां तक, **साइए**-आदि सहित, **अपज्जवसिए**-पर्यवसान (अंत) रहित, **सपज्जवसिए**-अंतसहित, **संचिट्ठणा**-अवस्थिति काल।

भावार्थ—११० प्रश्न—हे भगवन् ! ज्ञानी, ज्ञानीपने कितने काल तक रहता है ?

११० उत्तर—हे गौतम ! ज्ञानी दो प्रकार के कहे गये हैं। यथा-सादि-अपर्यवसित और सादि-सपर्यवसित। सादि-सपर्यवसित ज्ञानी जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट कुछ अधिक छासठ सागरोपम तक ज्ञानीपने रहते हैं।

१११ प्रश्न—हे भगवन् ! आभिनिबोधिक ज्ञानी, आभिनिबोधिक ज्ञानीपने कितने काल तक रहता है ?

१११ उत्तर-हे गौतम ! ज्ञानी, आभिनिबोधिकज्ञानी यावत् केवली-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

११३ प्रश्न-हे भगवन् ! श्रुतज्ञान के कितने पर्याय कहे गये हैं ?

११३ उत्तर-हे गौतम ! श्रुतज्ञान के अनन्त पर्याय कहे गये हैं। इसी प्रकार अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान के भी अनन्त पर्याय कहे गये हैं। इसी प्रकार मतिअज्ञान और श्रुतअज्ञान के भी अनन्त पर्याय कहे गये हैं।

११४ प्रश्न-हे भगवन् ! विभंगज्ञान के कितने पर्याय कहे गये हैं ?

११४ उत्तर--हे गौतम ! विभंगज्ञान के अनन्त पर्याय कहे गये हैं।

११५ प्रश्न-एएसिणं भंते ! आभिणिबोहियणाणपज्जवाणं, सुयणाणपज्जवाणं, ओहिणाणपज्जवाणं, मणपज्जवणाणपज्जवाणं, केवलणाणपज्जवाण य कयरे कयरेहिंतो जाव विसेसाहिया वा ?

११५ उत्तर-गोयमा ! सव्वत्थोवा मणपज्जवणाणपज्जवा, ओहिणाणपज्जवा अणंतगुणा, सुयणाणपज्जवा अणंतगुणा, आभिणिबोहियणाणपज्जवा अणंतगुणा, केवलणाणपज्जवा अणंतगुणा।

११६ प्रश्न-एएसि णं भंते ! मइअण्णाणपज्जवाणं सुयअण्णाणपज्जवाणं विभंगणाणपज्जवाण य कयरे कयरेहिंतो जाव विसेसाहिया वा ?

११६ उत्तर-गोयमा ! सव्वत्थोवा विभंगणाणपज्जवा, सुयअण्णाणपज्जवा अणंतगुणा, मइअण्णाणपज्जवा अणंतगुणा।

११७ प्रश्न-एएसि णं भंते ! आभिणिबोहियणाणपज्जवाणं, जाव केवलणाणपज्जवाणं, मइअण्णाणपज्जवाणं सुयअण्णाण-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

११३ प्रश्न–हे भगवन् ! श्रुतज्ञान के कितने पर्याय कहे गये हैं ?

११३ उत्तर–हे गौतम ! श्रुतज्ञान के अनन्त पर्याय कहे गये हैं। इसी प्रकार अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान के भी अनन्त पर्याय कहे गये हैं। इसी प्रकार मतिअज्ञान और श्रुतअज्ञान के भी अनन्त पर्याय कहे गये हैं।

११४ प्रश्न–हे भगवन् ! विभंगज्ञान के कितने पर्याय कहे गये हैं ?

११४ उत्तर--हे गौतम ! विभंगज्ञान के अनन्त पर्याय कहे गये हैं।

११५ प्रश्न–एएसिणं भंते ! आभिणिबोहियणाणपज्जवाणं, सुयणाणपज्जवाणं, ओहिणाणपज्जवाणं, मणपज्जवणाणपज्जवाणं, केवलणाणपज्जवाण य कयरे कयरेहिंतो जाव विसेसाहिया वा ?

११५ उत्तर–गोयमा ! सव्वत्थोवा मणपज्जवणाणपज्जवा, ओहिणाणपज्जवा अणंतगुणा, सुयणाणपज्जवा अणंतगुणा, आभिणिबोहियणाणपज्जवा अणंतगुणा, केवलणाणपज्जवा अणंतगुणा।

११६ प्रश्न–एएसि णं भंते ! मइअण्णाणपज्जवाणं सुयअण्णाणपज्जवाणं विभंगणाणपज्जवाण य कयरे कयरेहिंतो जाव विसेसाहिया वा ?

११६ उत्तर–गोयमा ! सव्वत्थोवा विभंगणाणपज्जवा, सुयअण्णाणपज्जवा अणंतगुणा, मइअण्णाणपज्जवा अणंतगुणा।

११७ प्रश्न–एएसि णं भंते ! आभिणिबोहियणाणपज्जवाणं, जाव केवलणाणपज्जवाणं, मइअण्णाणपज्जवाणं सुयअण्णाण-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पज्जवाणं, विभंगणाणपज्जवाण य कयरे कयरेहिंतो जाव विसेसाहिया वा ?

११७ उत्तर-गोयमा ! सव्वत्थोवा मणपज्जवणाणपज्जवा, विभंगणाणपज्जवा अणंतगुणा, ओहिणाणपज्जवा अणंतगुणा, सुयअण्णाणपज्जवा अणंतगुणा, सुयणाणपज्जवा विसेसाहिया, मइअण्णाणपज्जवा अणंतगुणा, आभिणिबोहियणाणपज्जवा विसेसाहिया, केवलणाणपज्जवा अणंतगुणा ।

❀ सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति ❀

॥ अट्ठमसए बीओ उद्देसो समत्तो ॥

भावार्थ-११५ प्रश्न-हे भगवन् ! पूर्व कथित आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान के पर्यायों में किसके पर्याय किससे अल्प, बहुत, तुल्य, या विशेषाधिक हैं ?

११५ उत्तर-हे गौतम ! मनःपर्ययज्ञान के पर्याय सब से थोडे हैं, उनसे अवधिज्ञान के पर्याय अनन्त गुणा हैं । उनसे श्रुतज्ञान के पर्याय अनन्त गुण हैं । उनसे आभिनिबोधिक ज्ञान के पर्याय अनन्त गुण हैं । उनसे केवलज्ञान के पर्याय अनन्त गुण हैं ।

११६ प्रश्न-हे भगवन् ! मतिअज्ञान, श्रुतअज्ञान और विभंगज्ञान के पर्यायों में किसके पर्याय, किसके पर्यायों से यावत् विशेषाधिक हैं ?

११६ उत्तर-हे गौतम ! सबसे थोडे विभंगज्ञान के पर्याय हैं । उनसे श्रुतअज्ञान के पर्याय अनन्त गुण हैं । उनसे मतिअज्ञान के पर्याय अनन्त गुण हैं ।

११७ प्रश्न-हे भगवन् ! इन आभिनिबोधिकज्ञान यावत् केवलज्ञान,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तथा मतिअज्ञान, श्रुतअज्ञान और विभंगज्ञान के पर्यायों में किसके पर्याय किसके पर्यायों से यावत् विशेषाधिक हैं ?

११७ उत्तर-हे गौतम ! सबसे थोडे मनःपर्ययज्ञान के पर्याय हैं। उनसे विभंगज्ञान के पर्याय अनन्त गुण हैं। उनसे अवधिज्ञान के पर्याय अनन्त गुण हैं। उनसे श्रुतअज्ञान के पर्याय अनन्त गुण हैं। उनसे श्रुतज्ञान के पर्याय विशेषाधिक हैं। उनसे मतिअज्ञान के पर्याय अनन्त गुण हैं। उनसे मतिज्ञान के पर्याय विशेषाधिक हैं। उनसे केवलज्ञान के पर्याय अनन्त गुण हैं।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है। ऐसा कहकर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं।

विवेचन-काल द्वार-यहाँ ज्ञानी के दो भेद कहे गये हैं। यथा-'सादि अपर्यवसित-जिसकी आदि तो है, किन्तु अन्त नहीं, ऐसा ज्ञानी तो केवलज्ञानी होता है। दूसरा भेद है- सादि सपर्यवसित'-जिसके ज्ञान की आदि भी है और अन्त भी है। ऐसा ज्ञानी, मति आदि ज्ञान वाला होता है। इनमें से केवलज्ञान का काल सादि अपर्यवसित है; शेष मति आदि चार ज्ञानों का काल सादि सपर्यवसित है। इनमें से मतिज्ञान और श्रुतज्ञान का जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है। अवधिज्ञान और मनःपर्यय ज्ञान का जघन्य काल एक समय है। आदि के तीन ज्ञानों का उत्कृष्ट काल साधिक छासठ सागरोपम है। मनःपर्यय ज्ञान का उत्कृष्ट काल देशोन करोड़ पूर्व का है। केवलज्ञान का तो सादि अपर्यवसित है। अर्थात् केवलज्ञान उत्पन्न होकर फिर कभी नष्ट नहीं होता।

ज्ञानी-आभिनिबोधिक ज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी और केवलज्ञानी; अज्ञानी-मति अज्ञानी, श्रुत अज्ञानी और विभंगज्ञानी-इन का स्थिति काल प्रज्ञापना सूत्र के अठारहवें कायस्थितिपद में कहे अनुसार जानना चाहिये। यद्यपि ज्ञानी का स्थिति काल पूर्वोक्त (सू. ११०) सूत्र में कहा गया है, तथापि यहाँ प्रकरण से सम्बन्धित होने के कारण फिर कहा गया है। आभिनिबोधिक ज्ञान और श्रुतज्ञान का काल जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट साधिक छासठ सागरोपम है। अवधिज्ञान का उत्कृष्ट काल भी इतना ही है, किन्तु जघन्य काल एक समय का है। जब किसी विभंगज्ञानी को सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती है, तब सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के प्रथम समय में ही विभंगज्ञान, अवधिज्ञान के रूप में परिणत हो जाता है। इसके बाद तुरन्त ही दूसरे समय में वह अवधिज्ञान से गिरजाता है, तब केवल

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एक समय ही अवधिज्ञान रहता है। मनःपर्यवज्ञानी का अवस्थिति काल जघन्य एक समय और उत्कृष्ट कुछ कम कोटि-पूर्व होता है। अप्रमत्त गुणस्थान में रहे हुए किसी संयत (मुनि) को मनःपर्यय ज्ञान उत्पन्न होता है और तुरन्त ही दूसरे समय में नष्ट हो जाता है। उत्कृष्ट किञ्चिन्न्यून पूर्व-कोटि वर्ष का अवस्थिति काल है। किसी पूर्व-कोटि वर्ष की आयुष्य वाले मनुष्य ने चारित्र अंगीकार किया। चारित्र अंगीकार करने के पश्चात् उसे शीघ्र ही मनःपर्ययज्ञान उत्पन्न हो जाय और यावज्जीवन रहे, उसका स्थिति काल उत्कृष्ट किञ्चिन्न्यून कोटि वर्ष होता है। केवलज्ञान का स्थिति काल सादि अनन्त है। अर्थात् केवलज्ञान की उत्पत्ति की आदि तो है, किन्तु वह उत्पन्न होने के बाद वापिस कभी नहीं जाता। इसलिये उसका कभी अन्त नहीं होता।

अज्ञान–मतिअज्ञान और श्रुतअज्ञान का स्थिति-काल तीन प्रकार का है। यथा–१ अनादिअनन्त (अभव्य जीवों की अपेक्षा) २ अनादि-सान्त (भव्य जीवों की अपेक्षा) ३ सादि-सान्त (सम्यग्दर्शन से गिरे हुए जीवों की अपेक्षा)। इनमें से सादि-सान्त का काल जघन्य अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि कोई जीव, सम्यग्दर्शन से गिरकर अन्तर्मुहूर्त के बाद ही पुनः सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लेता है। उत्कृष्ट अनन्तकाल है, क्योंकि कोई जीव, सम्यक्त्व से गिर-कर फिर अनन्त काल बाद पुनः सम्यक्त्व को प्राप्त करता है। विभंगज्ञान का स्थिति काल जघन्य एक समय है, क्योंकि उत्पन्न होने के बाद दूसरे समय में ही वह विनष्ट हो जाता है। उत्कृष्ट किंचिन्न्यून पूर्व-कोटि अधिक तेतीस सागरोपम है, क्योंकि कोई मनुष्य किंचिन्न्यून पूर्व-कोटि वर्ष विभंगज्ञानी पने रहकर सातवीं नरक में उत्पन्न हो जाता है।

अन्तर द्वार–यहाँ पाँच ज्ञान और तीन अज्ञान के अन्तर के लिये जीवाभिगम सूत्र की भलामण (अतिदेश) दी गई है। वहाँ इस प्रकार बतलाया गया है–आभिनिबोधिक ज्ञान का पारस्परिक अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट कुछ कम अर्द्ध पुद्गल-परावर्तन है। इस प्रकार श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्यय ज्ञान के विषय में भी जानना चाहिये। केवल-ज्ञान का अन्तर नहीं होता। मतिअज्ञान और श्रुतअज्ञान का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट कुछ अधिक छासठ सागरोपम है। विभंगज्ञान का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अनन्त काल (वनस्पति काल जितना) है।

अल्पबहुत्व द्वार–पाँच ज्ञान का अल्पबहुत्व इस प्रकार है–सबसे थोड़े मनःपर्यय-ज्ञानी। उनसे अवधिज्ञानी असंख्यात गुण हैं। उनसे आभिनिबोधिकज्ञानी और श्रुतज्ञानी दोनों विशेषाधिक हैं और परस्पर तुल्य हैं। उनसे केवलज्ञानी अनन्त गुण हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञानी जीवों के अल्प-बहुत्व में मनःपर्ययज्ञानी सबसे थोड़े बतलाये गये हैं। इसका कारण यह है कि मनःपर्यय ज्ञान, संयत जीवों के ही होता है। अवधिज्ञानी जीव चारों गति में पाये जाते हैं। इसलिये वे उनसे असंख्यात गुण हैं। उनसे आभिनिबोधिक ज्ञानी और श्रुतज्ञानी विशेषाधिक हैं। इसका कारण यह है कि अवधि आदि ज्ञान से रहित होने पर भी कितने ही पंचेन्द्रिय जीव और कितने ही विकलेन्द्रिय जीव (जिन्हें सास्वादन सम्यग्-दर्शन हो) भी आभिनिबोधिक ज्ञानी और श्रुतज्ञानी होते हैं। आभिनिबोधिक ज्ञान और श्रुतज्ञान का परस्पर साहचर्य होने से ये दोनों तुल्य हैं। इन सभी से सिद्ध अनन्त गुण होने से केवलज्ञानी जीव अनन्त गुण हैं।

तीन अज्ञान का अल्प-बहुत्व—सबसे थोड़े विभंगज्ञानी हैं। उनसे मतिअज्ञानी और श्रुत-अज्ञानी अनन्त गुण हैं और ये दोनों परस्पर तुल्य हैं।

अज्ञानी जीवों की अल्प-बहुत्व में विभंगज्ञानी सबसे थोड़े बतलाये गये हैं। क्योंकि विभंगज्ञान पंचेन्द्रिय जीवों को ही होता है और वे सबसे थोड़े हैं। उनसे मतिअज्ञानी और श्रुतअज्ञानी अनन्त गुण बतलाये हैं। इसका कारण यह है कि एकेंद्रिय जीव भी मति-अज्ञानी श्रुतअज्ञानी होते हैं और वे अनन्त हैं। ये परस्पर तुल्य हैं। क्योंकि मतिअज्ञान और श्रुतअज्ञान का परस्पर साहचर्य है।

ज्ञानी और अज्ञानी जीवों का सम्मिलित अल्प-बहुत्व—सबसे थोड़े मनःपर्ययज्ञानी हैं। उनसे अवधिज्ञानी असंख्यात गुण हैं। उनसे आभिनिबोधिक ज्ञानी और श्रुतज्ञानी विशेषाधिक हैं और वे परस्पर तुल्य हैं। उनसे विभंगज्ञानी असंख्यात गुण हैं, क्योंकि सम्यग्दृष्टि देव और नारक जीवों से मिथ्यादृष्टि असंख्यात गुण हैं। उनसे केवलज्ञानी अनन्त गुण हैं। क्योंकि एकेंद्रिय जीवों के सिवाय शेष सभी जीवों से सिद्ध अनन्त गुण हैं। उनसे मतिअज्ञानी और श्रुतअज्ञानी अनन्त गुण हैं और वे परस्पर तुल्य हैं। क्योंकि साधा-रण वनस्पतिकायिक जीव भी मतिअज्ञानी और श्रुतअज्ञानी होते हैं और वे सिद्धों से अनन्त गुण हैं।

पर्यायों का अल्प-बहुत्व—भिन्न-भिन्न अवस्थाओं के भेदों को 'पर्याय' कहते हैं। उसके दो भेद हैं। यथा—स्वपर्याय और पर-पर्याय। क्षयोपशम की विचित्रता से मतिज्ञान के अवग्रहादिक के अनन्त भेद होते हैं। वे स्वपर्याय कहलाते हैं। अथवा मतिज्ञान के विषय-भूत ज्ञेय पदार्थ अनन्त हैं और ज्ञेय के भेद से ज्ञान के भी अनन्त भेद हो जाते हैं। इस प्रकार मतिज्ञान के अनन्त पर्याय हैं अथवा केवलज्ञान द्वारा मतिज्ञान के अंश किये जायें, तो

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अनन्त अंश होते हैं । इस अपेक्षा से भी मतिज्ञान के अनन्त पर्याय कहे जाते हैं । मतिज्ञान के सिवाय दूसरे पदार्थों के जो पर्याय हैं, वे 'पर-पर्याय' कहलाते हैं, ऐसे पर-पर्याय, स्वपर्याय से अनन्त गुण हैं ।

शङ्का—यदि वे परपर्याय हैं, तो 'वे मतिज्ञान के हैं'-ऐसा कैसे कहा जा सकता है ? यदि वे मतिज्ञान के हैं, तो पर -पर्याय कैसे कहे जा सकते हैं ?

समाधान—पर-पदार्थों के पर्यायों का मतिज्ञान के विषय से सम्बन्ध नहीं है । इसलिये वे पर-पर्याय कहे जा सकते हैं । परन्तु मतिज्ञान के स्व-पर्यायों का बोध कराने में तथा पर-पर्यायों से उन्हें भिन्न बतलाने में प्रतियोगी रूप से उनका उपयोग है । इसलिये वे मतिज्ञान के 'पर-पर्याय' कहलाते हैं ।

श्रुतज्ञान के भी स्व-पर्याय और पर-पर्याय अनन्त हैं । उनमें से श्रुतज्ञान के अक्षर-श्रुत और अनक्षर-श्रुत आदि जो भेद हैं, वे 'स्व-पर्याय' कहलाते हैं और वे अनन्त हैं । क्योंकि श्रुतज्ञान के क्षयोपशम की विचित्रता से तथा श्रुतज्ञान के विषयभूत ज्ञेय-पदार्थ अनन्त होने से श्रुतज्ञान के (श्रुतानुसारीबोध के) भी अनन्त भेद हो जाते हैं । अथवा केवलज्ञान के द्वारा श्रुतज्ञान के अनन्त अंश होते हैं और वे उसके स्व-पर्याय कहलाते हैं । उनसे भिन्न पदार्थों के विशेष धर्म, श्रुतज्ञान के परपर्याय कहलाते हैं ।

अवधिज्ञान के स्व-पर्याय अनन्त हैं । क्योंकि उसके भव-प्रत्यय और क्षायोपशमिक—इन दो भेदों के कारण उसके स्वामी देव और नैरयिक तथा मनुष्य और तिर्यञ्च के भेद से, असंख्य क्षेत्र और काल के भेद से, अनन्त द्रव्य-पर्याय के भेद से और उसके केवलज्ञान द्वारा अनन्त अंश होने से अवधिज्ञान के अनन्त भेद होते हैं । इसी प्रकार मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान के विषयभूत अनन्तपदार्थ होने से तथा उनके अनन्त अंशों की कल्पना से अनन्त पर्याय होते है ।

यहाँ जो पर्यायों का अल्पबहुत्व बतलाया गया है, वह स्वपर्यायों की अपेक्षा से समझना चाहिये । क्योंकि सभी ज्ञानों के स्व-पर्याय और पर-पर्याय परस्पर तुल्य हैं । सब से थोड़े मनःपर्ययज्ञान के पर्याय हैं । क्योंकि उसका विषय केवल मन ही हैं । उससे अवधिज्ञान के पर्याय अनन्त गुण हैं । क्योंकि मनःपर्ययज्ञान की अपेक्षा अवधिज्ञान का विषय द्रव्य और पर्यायों से अनन्त गुण है । उनसे श्रुतज्ञान के पर्याय अनन्त गुण हैं । क्योंकि उसका विषय, रूपी और अरूपी द्रव्य होने से वे उनसे अनन्तगुण हैं । उनसे आभिनिबोधिकज्ञान के पर्याय अनन्त गुण हैं । क्योंकि उनका विषय अभिलाप्य और अनभिलाप्य पदार्थ होने से

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वे उनसे अनन्त गुण हैं। उनसे केवलज्ञान के पर्याय अनन्त गुण हैं, क्योंकि उसका विषय समस्त द्रव्य और समस्त पर्याय होने से वे उनसे अनन्त गुण हैं। इसी प्रकार अज्ञानों के भी अल्प-बहुत्व का कारण जान लेना चाहिये।

ज्ञान और अज्ञान के पर्यायों के सम्मिलित अल्प बहुत्व में बतलाया गया है कि सब से थोड़े मनःपर्यायज्ञान के पर्याय हैं। उनसे विभंगज्ञान के पर्याय अनन्त गुण हैं। क्योंकि उपरिम (नवम) ग्रैवेयक से लेकर सातवीं नरक तक में और तिर्यक् असंख्यात द्वीप समुद्रों में रहे हुए कितने ही रूपी द्रव्य और उनके कितने ही पर्याय, विभंगज्ञान का विषय है और वे मनःपर्ययज्ञान के विषय की अपेक्षा अनन्त गुण हैं। विभंगज्ञान के पर्यायों से अवधिज्ञान के पर्याय अनन्त गुण हैं। क्योंकि अवधिज्ञान का विषय सम्पूर्ण रूपी द्रव्य और प्रत्येक द्रव्य के असंख्यात पर्याय हैं। वे विभंगज्ञान की अपेक्षा अनन्त गुण हैं। उनसे श्रुतअज्ञान के पर्याय अनन्त गुण है। क्योंकि श्रुतअज्ञान का विषय, श्रुतज्ञान की तरह सामान्यादेश से सभी मूर्त और अमूर्त द्रव्य तथा सभी पर्याय होने से अवधिज्ञान की अपेक्षा अनन्त गुण हैं। उनसे श्रुतज्ञान के पर्याय विशेषाधिक हैं, क्योंकि श्रुतअज्ञान के अगोचर (अविषयभूत) कितने ही पर्यायों को श्रुतज्ञान जानता है। उनसे मतिअज्ञान के पर्याय अनन्त गुण हैं, क्योंकि श्रुतज्ञान तो अभिलाप्य वस्तु विषयक होता है और मतिअज्ञान उनसे अनंत गुण अनभिलाप्य वस्तु विषयक भी होता है। उनसे मतिज्ञान के पर्याय विशेषाधिक हैं, क्योंकि मतिअज्ञान के अगोचर कितने ही पर्यायों को मतिज्ञान जानता है। उनसे केवलज्ञान के पर्याय अनंत गुण हैं, क्योंकि वह सभी काल में रहे हुए समस्त द्रव्यों और उनकी समस्त पर्यायों को जानता है।

॥ इति आठवें शतक का दूसरा उद्देशक सम्पूर्ण ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शतक ८ उद्देशक ३

वृक्ष के भेद

१ प्रश्न—कइविहा णं भंते ! रुक्खा पण्णत्ता ?

१ उत्तर—गोयमा ! तिविहा रुक्खा पण्णत्ता, तं जहा—संखेज्ज जीविया, असंखेज्जजीविया, अणंतजीविया।

२ प्रश्न—से किं तं संखेज्जजीविया ?

२ उत्तर—संखेज्जजीविया अणेगविहा पण्णत्ता, तं जहा—ताले, तमाले, तक्कलि, तेतलि—जहा पण्णवणाए जाव णालिएरी। जे यावण्णे तहप्पगारा। सेत्तं संखेज्जजीविया।

३ प्रश्न—से किं तं असंखेज्जजीविया ?

३ उत्तर—असंखेज्जजीविया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—एगट्ठिया य बहुबीयगा य।

४ प्रश्न—से किं तं एगट्ठिया ?

४ उत्तर—एगट्ठिया अणेगविहा पण्णत्ता, तं जहा—णिंबंब-जंबु०—एवं जहा पण्णवणापए जाव फला बहुबीयगा। सेत्तं बहुबीयगा। सेत्तं असंखेज्जजीविया।

५ प्रश्न—से किं तं अणंतजीविया ?

५ उत्तर—अणंतजीविया अणेगविहा पण्णत्ता, तं जहा—आलुए, मूलए, सिंगबेरे—एवं जहा सत्तमसए जाव सिउंढी मुसुंढी जे यावण्णे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तहप्पगारा । सेत्तं अणंतजीविया ।

कठिन शब्दार्थ--एगट्ठिया--एकास्थिक (एक बीज वाले) बहुबीयगा--बहुबीजक (बहुत बीजों वाले फल) ।

भावार्थ-१ प्रश्न-हे भगवन् ! वृक्ष कितने प्रकार के कहे गये हैं ?

१ उत्तर-हे गौतम ! वृक्ष तीन प्रकार के कहे गये हैं । यथा-संख्यात जीव वाले, असंख्यात जीव वाले और अनन्त जीव वाले ।

२ प्रश्न-हे भगवन् ! संख्यात जीव वाले वृक्ष कितने प्रकार के कहे गये हैं ?

२ उत्तर-हे गौतम ! संख्यात जीव वाले वृक्ष अनेक प्रकार के कहे गये हैं । यथा-ताड़, तमाल, तक्कलि, तेतलि इत्यादि प्रज्ञापना सूत्र के पहले पद में कहे अनुसार यावत् नालिकेर पर्यन्त जानना चाहिये । इसके अतिरिक्त इस प्रकार के जितने भी वृक्ष विशेष हैं, वे सब संख्यात जीव वाले हैं ।

३ प्रश्न-हे भगवन् ! असंख्यात जीव वाले वृक्ष कितने प्रकार के कहे हैं ?

३ उत्तर-हे गौतम ! असंख्यात जीव वाले वृक्ष दो प्रकार के कहे गये हैं । यथा-एकास्थिक अर्थात् एक बीज वाले और बहुबीजक-बहुत बीजों वाले ।

४ प्रश्न-हे भगवन् ! एकास्थिक वृक्ष कितने प्रकार के कहे गये हैं ?

४ उत्तर-हे गौतम ! एकास्थिक वृक्ष अनेक प्रकार के कहे गये हैं । यथा--नीम, आम, जामुन आदि । प्रज्ञापना सूत्र के पहले पद में कहे अनुसार यावत् बहुबीज वाले फलों तक कहना चाहिये । इस प्रकार असंख्यात जीविक वृक्ष कहे गये हैं ।

५ प्रश्न--हे भगवन् ! अनन्त जीव वाले वृक्ष कितने प्रकार के कहे गये हैं ?

५ उत्तर--हे गौतम ! अनन्त जीव वाले वृक्ष अनेक प्रकार के कहे गये हैं । यथा--आलू, मूला, शृंगबेर (अदरख) आदि । भगवती सूत्र के सातवें शतक के तीसरे उद्देशक में कहे अनुसार यावत् सिउंढी, मुसुंढी तक जानना चाहिये ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इसके अतिरिक्त इस प्रकार के दूसरे वृक्ष भी जान लेने चाहिये। इस प्रकार अनन्त जीव वाले वृक्षों का कथन किया गया है।

विवेचन—जिनमें संख्यात जीव हों, वे 'संख्यात जीविक' वृक्ष कहलाते हैं। इसी तरह जिनमें असंख्यात जीव होते हैं, वे 'असंख्यात जीविक' वृक्ष और जिनमें अनन्त जीव पाये जाते हैं, वे 'अनन्त जीविक' वृक्ष कहलाते हैं। जिनमें एक बीज होता है, वे—'एकास्थिक' फल कहलाते हैं और जिनमें बहुत जीव पाये हैं, वे—'अनेकास्थिक'—बहु बीजक फल कहलाते हैं। इन वृक्ष और फल सम्बन्धी विस्तृत कथन प्रज्ञापना सूत्र के पहले पद में है। वहां इनके उदाहरण रूप नाम भी बतलाये गये हैं।

जीव प्रदेशों पर शस्त्रादि का स्पर्श

६ प्रश्न—अह भंते ! कुम्मे, कुम्मावलिया, गोहा, गोहावलिया, गोणा, गोणावलिया, मणुस्से, मणुस्सावलिया, महिसे, महिसावलिया—एएसि णं दुहा वा तिहा वा संखेज्जहा वा छिण्णाणं जे अंतरा ते वि णं तेहिं जीवपएसेहिं फुडा ?

६ उत्तर—हंता फुडा।

७ प्रश्न—पुरिसे णं भंते ! अंतरं हत्थेण वा, पाएण वा, अंगुलियाए वा, सलागाए वा, कट्ठेण वा, किलिंचेण वा, आमुसमाणे वा, संमुसमाणे वा, आलिहमाणे वा, विलिहमाणे वा, अण्णयरेण वा तिक्खेणं सत्थजाएणं आछिंदमाणे वा, विछिंदमाणे वा, अगणिकाएणं वा समोडहमाणे तेसिं जीवपएसाणं किंचि आबाहं वा

विबाहं वा उप्पाएइ, छविच्छेयं वा करेइ ?

७ उत्तर—णो इणट्ठे समट्ठे, णो खलु तत्थ सत्थं कमइ ।

कठिन शब्दार्थ—कुम्मे—कूर्म—कछुआ, गोणा—गाय, महिसे—महिष (भैंसा) छिण्णाणं—खंडित (टुकड़े किये हुए) अंतरा—बीच का, फुडा—स्पर्शित—स्पर्श किया हुआ, सलागाए—सलाई से, कट्ठेण—काष्ठ से, किलिंचेण—छोटी लकड़ी से, आमुसमाणे—स्पर्शता हुआ संमुसमाणे—विशेष स्पर्श करता हुआ, आलिहमाणे विलिहमाणे—अल्प या विशेष आकर्षित करता हुआ, अण्णयरेण—कोई अन्य, तिक्खेण—तीक्ष्ण, सत्थजाएणं—शस्त्र समूह से, आछिदमाणे—काटता हुआ, समोडहमाणे—जलाता हुआ, किंचि—कुछ भी, आबाहं विबाहं—पीड़ा करता है, विशेष पीड़ा करता है, छविच्छेयं—अवयवछेदन ।

भावार्थ—६ प्रश्न—हे भगवन् ! कछुआ, कछुए की श्रेणि, गोधा (गोह) गोधा की पंक्ति, गाय, गाय की पंक्ति, मनुष्य, मनुष्य की पंक्ति, भैंसा, भैंसों की पंक्ति, इन सबके दो, तीन या संख्यात खण्ड किये जाय, तो उनके बीच का भाग क्या जीव प्रदेशों से स्पृष्ट है ?

६ उत्तर—हाँ, गौतम ! स्पृष्ट है ।

७ प्रश्न—हे भगवन् ! कोई पुरुष, उन कछुए आदि के खण्डों के बीच के भाग को हाथ से, अंगुलि से, शलाका से, काष्ठ से और लकडी के छोटे टुकडे से स्पर्श करे, विशेष स्पर्श करे, थोड़ा या विशेष खींचे अथवा किसी तीक्ष्ण शस्त्र समूह से छेदे, विशेष रूप से छेदे, अग्नि से जलावे, तो क्या उन जीव प्रदेशों को थोडी, या अधिक पीडा होती है, या उनके किसी अवयव का छेद होता है ?

७ उत्तर—हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं । क्योंकि जीव प्रदेशों पर शस्त्र आदि का प्रभाव नहीं होता ।

विवेचन—किसी जीव के शरीर का खण्ड हो जाने पर भी तत्काल उसका कोई भी अवयव, जीव प्रदेशों से स्पृष्ट रहता है । उन जीव प्रदेशों पर कोई पुरुष शस्त्रादि से प्रहार करे या हस्तादि से स्पर्शादि करे तो उन जीव प्रदेशों पर उसका प्रभाव नहीं होता ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आठ पृथ्वियों का उल्लेख

८ प्रश्न-कइ णं भंते ! पुढवीओ पण्णत्ताओ ?

८ उत्तर-गोयमा ! अट्ठ पुढवीओ पण्णत्ताओ, तं जहा-रयणप्पभा, जाव अहे सत्तमा, इसीपब्भारा ।

९ प्रश्न-इमा णं भंते ! रयणप्पभापुढवी किं चरिमा अचरिमा ?

९ उत्तर-चरिमपदं निरवसेसं भाणियव्वं । जाव वेमाणिया णं भंते ! फासचरिमेणं किं चरिमा, अचरिमा ? गोयमा ! चरिमा वि अचरिमा वि ।

❀ सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति ❀

॥ अट्ठमसए तइओ उद्देसो समत्तो ॥

कठिन शब्दार्थ-चरिम-अंतिम, फासचरिमेणं-स्पर्श चरम द्वारा, अचरिम-मध्यवर्ती।

भावार्थ-८ प्रश्न-हे भगवन् ! पृथ्वियाँ कितनी कही गई हैं ?

८ उत्तर-हे गौतम ! पृथ्वियाँ आठ कही गई हैं। यथा-रत्नप्रभा, यावत् अधःसप्तम पृथ्वी और ईषत्प्राग्भारा (सिद्ध शिला)।

९ प्रश्न-हे भगवन् ! यह रत्नप्रभा पृथ्वी क्या चरम (अन्तिम) है, या अचरम (मध्यवर्ती) है ?

९ उत्तर-यहाँ प्रज्ञापना सूत्र का चरम नामक दसवाँ पद कहना चाहिये। यावत्-हे भगवन् ! वैमानिक स्पर्श चरम द्वारा क्या चरम है, या अचरम है ? हे गौतम ! वे चरम भी हैं और अचरम भी हैं।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ऐसा कहकर गौतमस्वामी यावत् विचरते हैं।

विवेचन—चरम का अर्थ है अन्तवर्ती। वह अन्तवर्तीपना अन्य द्रव्य की अपेक्षा समझना चाहिये। जैसे-पूर्व शरीर की अपेक्षा चरम-शरीरी। अचरम का अर्थ हैं मध्यवर्ती। यह अचरमपना भी आपेक्षिक है अर्थात् अन्य द्रव्य की अपेक्षा से है। जैसे-अन्तिम शरीर की अपेक्षा मध्य शरीर।

रत्नप्रभा पृथ्वी के सम्बन्ध में एकवचनान्त और बहुवचनान्त चरम और अचरम के चार प्रश्न किये गये हैं। इसी प्रकार चरमान्त प्रदेश और अचरमान्त प्रदेश के दो प्रश्न किये गये हैं। ये सब मिलकर छह प्रश्न हुए। भगवान् ने उत्तर दिया कि— 'हे गौतम ! रत्नप्रभा पृथ्वी चरम भी नहीं है और अचरम भी नहीं है।' चरम का अर्थ है-'पर्यन्तवर्ती' और अचरम का अर्थ है-'मध्यवर्ती'। चरमपना और अचरमपना अन्य वस्तु सापेक्ष है। यहाँ अन्य वस्तु का कथन नहीं किया गया है। अतः रत्नप्रभा पृथ्वी चरम या अचरम नहीं कही जा सकती और इसी कारण बहुवचनान्त चरम, अचरम, चरमान्त प्रदेश, अचरमान्त प्रदेश भी नहीं कहे जा सकते। रत्नप्रभा पृथ्वी असंख्यात प्रदेशावगाढ़ है। इसलिये उसके अनेक अवयवों की अपेक्षा वे चरमरूप कहे जा सकते हैं। इसी प्रकार अन्यवर्ती अवयवों की अपेक्षा वे अचरम रूप भी कहे जा सकते हैं। इसी प्रकार बहुवचनान्त चरम रूप, अचरम रूप, चरमान्त प्रदेशरूप और अचरमान्त प्रदेशरूप कहे जा सकते हैं, क्योंकि रत्न-प्रभा के अन्त-भाग में अवस्थित खण्डों की बहुत्व रूप से विवक्षा की जाय, तो 'बहुवचनान्त' चरम कहा जा सकता है और मध्यवर्ती खण्डों का एकत्व विवक्षित किया जाय, तब एक वचनान्त अचरम कहा जा सकता है। इसी प्रकार प्रदेशों की विवक्षा से, चरमान्त प्रदेश और अचरमान्त प्रदेशरूप से भी कहे जा सकते हैं। इसका विस्तृत कथन प्रज्ञापना सूत्र के दसवें 'चरमपद' में है।

॥ इति आठवें शतक का तीसरा उद्देशक सम्पूर्ण ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शतक ८ उद्देशक ४

पांच क्रिया

१ प्रश्न-रायगिहे जाव एवं वयासी--कइ णं भंते ! किरियाओ पण्णत्ताओ ?

१ उत्तर-गोयमा ! पंच किरियाओ पण्णत्ताओ, तं जहा-काइया, अहिगरणिया; एवं किरियापदं णिरवसेसं भाणियव्वं, जाव मायावत्तियाओ किरियाओ विसेसाहियाओ।

❀ सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति ❀

॥ अट्ठमसए चउत्थो उद्देसो समत्तो ॥

कठिन शब्दार्थ — किरियाओ — क्रिया (मन, वचन और काया की वह प्रवृत्ति कि जिससे कर्मों का बंध हो) काइया--शरीर सम्बंधी, अहिगरणिया--अधिकरण (शस्त्र से होने वाली) निरवसेसं---परिपूर्ण. मायावत्तिया--कषाय प्रत्ययक।

भावार्थ--१ प्रश्न-राजगृह नगर में यावत् गौतम स्वामी ने इस प्रकार पूछा कि-हे भगवन् ! क्रियाएँ कितनी कही गई हैं ?

१ उत्तर-हे गौतम ! क्रियाएँ पांच कही गई हैं। यथा---कायिकी, अधिकरणिकी, प्राद्वेषिकी, पारितापनिकी और प्राणातिपातिकी। यहां प्रज्ञापना सूत्र का बाईसवां सम्पूर्ण क्रियापद कहना चाहिए यावत् 'मायाप्रत्ययिक क्रियाएँ विशेषाधिक हैं'--यहां तक कहना चाहिए।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है। ऐसा कह कर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं।

विवेचन-कर्मबन्ध की कारणभूत चेष्टा को अथवा दुष्ट व्यापार विशेष को 'क्रिया' कहते हैं। अथवा-कर्म बन्ध के कारणरूप कायिकी आदि पांच-पांच करके पच्चीस क्रियाएँ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हैं। वे जैनागमों में 'क्रिया' शब्द से कही गई हैं। यहाँ कायिकी आदि पांच क्रियाओं का वर्णन किया गया है। उनका सामान्यतः अर्थ इस प्रकार है;—

कायिकी क्रिया के दो भेद हैं—अनुपरतकायिकी और दुष्प्रयुक्त कायिकी। हिंसादि सावद्य योग से देशतः अथवा सर्वतः अनिवृत्त जीवों को अनुपरतकायिकी क्रिया लगती है। यह क्रिया सभी अविरत जीवों को लगती है। कायादि के दुष्प्रयोग द्वारा होने वाली क्रिया को 'दुष्प्रयुक्त कायिकी' क्रिया कहते हैं। यह क्रिया प्रमत्त संयत को भी लगती है। अधिकरणिकी क्रिया के दो भेद हैं—संयोजनाधिकरणिकी और निर्वर्तनाधिकरणिकी। पहले से बने हुए अस्त्र शस्त्र आदि हिंसा के साधनों को एकत्रित कर तैयार रखना संयोजनाधिकरणिकी क्रिया है। नवीन अस्त्र शस्त्रादि बनवाना निर्वर्तनाधिकरणिकी क्रिया है। अपने स्वयं का, दूसरों का और उभय (स्व और पर दोनों) का अशुभ चिन्तन करना—'प्राद्वेषिकी क्रिया' है। अपने आपको, दूसरों को अथवा उभय को परिताप उपजाना, दुःख देना—'पारितापनिकी क्रिया' है। अपने आपको, दूसरों को अथवा उभय को जीवन रहित करना—'प्राणातिपातिकी क्रिया' है।

इन क्रियाओं के अतिरिक्त आरम्भिकी आदि क्रियाओं का स्वरूप और उनका पारस्परिक अल्पबहुत्व इत्यादि बातों का विस्तृत कथन प्रज्ञापना सूत्र के २२ वें क्रियापद में है।

॥ इति आठवें शतक का चौथा उद्देशक सम्पूर्ण ॥

शतक ८ उद्देशक ५

श्रावक के भाण्ड

१ प्रश्न—रायगिहे जाव एवं वयासी—आजीविया णं भंते ! थेरे भगवंते एवं वयासी—समणोवासगस्स णं भंते ! सामाइयकडस्स समणोवस्सए अच्छमाणस्स केइ भंडं अवहरेज्जा, सेणं भंते

तं भंडं अणुगवेसमाणे किं सयं भंडं अणुगवेसइ, परायगं भंडं अणुगवेसइ ?

१ उत्तर–गोयमा ! सयं भंडं अणुगवेसइ, णो परायगं भंडं अणुगवेसइ ।

२ प्रश्न–तस्स णं भंते ! तेहिं सीलव्वय-गुण-वेरमण-पच्चक्खाण-पोसहोववासेहिं से भंडे अभंडे भवइ ?

२ उत्तर–हंता भवइ ।

प्रश्न–से केणं खाइ णं अट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ–सयं भंडं अणुगवेसइ णो परायगं भंडं अणुगवेसइ ?

उत्तर–गोयमा ! तस्स णं एवं भवइ–णो मे हिरण्णे, णो मे सुवण्णे, णो मे कंसे, णो मे दूसे, णो मे विपुलधण-कणग-रयण-मणि-मोत्तिय-संख-सिल-प्पवाल-रत्तरयणमाईए संतसारसावएज्जे, ममत्तभावे पुण से अपरिण्णाए भवइ, से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ सयं भंडं अणुगवेसइ, णो परायगं भंडं अणुगवेसइ ।

कठिन शब्दार्थ - **आजीविया**—आजीविक अर्थात् गोशालक के मतानुयायी, **समणोवासग**—श्रमण की उपासना करने वाला (जैन), **सामाइयकडस्स**—सामायिक किया हुआ, **अच्छमाणस्स**—रहा हुआ, **भंडं**—वस्तु, **अवहरेज्जा**—अपहरण करे, **अणुगवेसमाणे**—खोज करते हुए, **परायगं**—दूसरे के, **संतसारसावएज्जे**—विद्यमान प्रधान (सारभूत द्रव्य) **अपरिण्णाए**—त्याग नहीं किया ।

भावार्थ—१ प्रश्न–राजगृह नगर में यावत् गौतमस्वामी ने इस प्रकार

पूछा। हे भगवन् ! आजीविक अर्थात् गोशालक के शिष्यों ने स्थविर भगवन्तों से इस प्रकार पूछा कि कोई श्रावक, सामायिक करके उपाश्रय में बैठा है। उस श्रावक के वस्त्र आदि कोई चुरा ले जाय और (सामायिक पूर्ण होने पर उसे पार कर) वह उन वस्तुओं का अन्वेषण करे, तो क्या वह श्रावक अपनी वस्तु का अन्वेषण करता है, या दूसरों की वस्तु का अन्वेषण करता है ?

१ उत्तर-हे गौतम ! वह श्रावक अपनी वस्तु का अन्वेषण करता है, दूसरों की वस्तु का अन्वेषण नहीं करता।

२ प्रश्न---हे भगवन् ! शीलव्रत, गुणव्रत, विरमण, प्रत्याख्यान और पौषधोपवास अंगीकार किये हुए श्रावक के वे अपहृत (चुराये हुए) भाण्ड क्या उसके लिए अभाण्ड हो जाते हैं ?

२ उत्तर---हाँ, गौतम ! वे उसके लिये अभाण्ड हो जाते हैं।

प्रश्न-हे भगवन् ! यदि उसके लिये वे अभाण्ड हो जाते हैं, तो आप ऐसा क्यों कहते हैं कि वह श्रावक अपने भाण्ड का अन्वेषण करता है, दूसरे के भाण्ड का अन्वेषण नहीं करता ?

उत्तर—हे गौतम ! सामायिक करने वाले उस श्रावक के मन में ऐसे परिणाम होते हैं कि 'हिरण्य (चांदी) मेरा नहीं है, स्वर्ण मेरा नहीं है, कांस्य (कांसी के बर्तन) मेरे नहीं हैं, वस्त्र मेरे नहीं हैं, विपुल धन, कनक, रत्न, मणि, मोती, शंख, शिलाप्रवाल (विद्रुम मणि) तथा रक्तरत्न अर्थात् पद्मरागादि मणि इत्यादि विद्यमान सारभूत द्रव्य मेरे नहीं हैं।' परन्तु उसने ममत्वभाव का प्रत्याख्यान नहीं किया है, इस कारण हे गौतम ! ऐसा कहता हूँ कि वह श्रावक अपने भाण्ड का अन्वेषण करता है, दूसरों के भाण्ड का अन्वेषण नहीं करता।

३ प्रश्न-समणोवासगस्स णं भंते ! सामाइयकडस्स समणो-वस्सए अच्छमाणस्स केइ जायं चरेज्जा, से णं भंते ! किं जायं चरइ,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अजायं चरइ ?

३ उत्तर-गोयमा ! जायं चरइ, णो अजायं चरइ ।

४ प्रश्न-तस्स णं भंते ! तेहिं सीलव्वय-गुण-वेरमण-पच्चक्खाण-पोसहोववासेहिं सा जाया अजाया भवइ ?

४ उत्तर-गोयमा ! हंता भवइ ।

प्रश्न-से केणं खाइणं अट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ-जायं चरइ णो अजायं चरइ ?

उत्तर-गोयमा ! तस्स णं एवं भवइ-णो मे माया, णो मे पिया, णो मे भाया, णो मे भगिणी, णो मे भज्जा, णो मे पुत्ता, णो मे धूया णो मे सुण्हा; पेज्ज बंधणे पुण से अवोच्छिण्णे भवइ, से तेणट्ठेणं गोयमा ! जाव णो अजायं चरइ ।

कठिन शब्दार्थ—जायं चरेज्जा-स्त्री का सेवन करे, **अजायं**-अपत्नी को, **अवोच्छिण्णे**-टूटा नहीं ।

भावार्थ-३ प्रश्न-हे भगवन् ! कोई एक श्रावक सामायिक करके श्रमणोपाश्रय में बैठा है । उस समय यदि कोई व्यभिचारी लम्पट पुरुष, उस श्रावक की जाया (स्त्री) को भोगता है, तो क्या वह जाया (श्रावक की स्त्री) को भोगता है, या अजाया (श्रावक की स्त्री नहीं दूसरों की स्त्री) को भोगता है ?

३ उत्तर-हे गौतम ! वह पुरुष उस श्रावक की जाया को भोगता है, अजाया को नहीं भोगता ।

४ प्रश्न-हे भगवन् ! शीलव्रत, गुणव्रत, विरमण, प्रत्याख्यान और पौषधोपवास कर लेने से उस श्रावक की जाया क्या 'अजाया' हो जाती है ?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

४ उत्तर-हाँ, गौतम ! अजाया हो जाती है ।

प्रश्न-हे भगवन् ! जब वह उस श्रावक के लिये अजाया हो जाती है, तो आप ऐसा क्यों कहते हैं कि वह लम्पट उसकी जाया को भोगता है, अजाया को नहीं भोगता ?

उत्तर-हे गौतम ! शीलव्रतादि को अंगीकार करने वाले उस श्रावक के मन में ऐसे परिणाम होते हैं कि 'माता मेरी नहीं है, पिता मेरे नहीं है, भाई मेरे नहीं हैं, बहन मेरी नहीं है, स्त्री मेरी नहीं है, पुत्र मेरे नहीं है, पुत्री मेरी नहीं है और स्नुषा (पुत्रवधु) मेरी नहीं है ।' ऐसा होते हुए भी उनके साथ उसका प्रेम बन्धन टूटा नहीं, इस कारण हे गौतम ! ऐसा कहता हूँ कि वह पुरुष उस श्रावक की जाया को भोगता है, अजाया को नहीं भोगता ।

विवेचन—सामायिक, पौषधोपवास आदि किये हुए श्रावक ने यद्यपि भाण्ड (वस्त्रादि) का त्याग कर दिया है, तथा सोना, चाँदी तथा माता, पिता, पुत्र, स्त्री आदि के प्रति भी उसके मन में यही परिणाम होता है कि ये सब मेरे नहीं हैं, किंतु अभी उसने उनके प्रति ममत्व का त्याग नहीं किया, अपितु उनके प्रति उसका प्रेम बन्धन रहा हुआ है । इसलिये वे वस्त्रादि तथा स्त्री आदि उसी के कहलाते हैं ।

श्रावक व्रत के भंग

५ प्रश्न-समणोवासगस्स णं भंते ! पुव्वामेव थूलए पाणाइवाए अपच्चक्खाए भवइ, से णं भंते ! पच्छा पच्चाइक्खमाणे किं करेइ ?

५ उत्तर-गोयमा ! तीयं पडिक्कमइ, पडुप्पण्णं संवरेइ, अणागयं पच्चक्खाइ ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

६ प्रश्न–तीयं पडिक्कममाणे किं–१ तिविहं तिविहेणं पडिक्कमइ, २ तिविहं दुविहेणं पडिक्कमइ, ३ तिविहं एगविहेणं पडिक्कमइ; ४ दुविहं तिविहेणं पडिक्कमइ, ५ दुविहं दुविहेणं पडिक्कमइ, ६ दुविहं एगविहेणं पडिक्कमइ; ७ एगविहं तिविहेणं पडिक्कमइ, ८ एगविहं दुविहेणं पडिक्कमइ, ९ एगविहं एगविहेणं पडिक्कमइ ?

६ उत्तर–गोयमा ! तिविहं तिविहेणं पडिक्कमइ, तिविहं वा दुविहेणं पडिक्कमइ, एवं चेव जाव एगविहं वा एगविहेणं पडिक्कमइ। १ तिविहं तिविहेणं पडिक्कममाणे ण करेइ, ण कारवेइ, करेंतं णाणुजाणइ मणसा वयसा कायसा। २ तिविहं दुविहेणं पडिक्कममाणे ण करेइ, ण कारवेइ, करेंतं णाणुजाणइ मणसा वयसा; ३ अहवा ण करेइ, ण कारवेइ, करेंतं णाणुजाणइ मणसा कायसा; ४ अहवा ण करेइ, ण कारवेइ, करेंतं णाणुजाणइ वयसा कायसा। तिविहं एगविहेणं पडिक्कममाणे ५ ण करेइ, ण कारवेइ, करेंतं णाणुजाणइ मणसा; ६ अहवा ण करेइ, ण कारवेइ, करेंतं णाणुजाणइ वयसा; ७ अहवा ण करेइ, ण कारवेइ, करेंतं णाणुजाणइ कायसा। दुविहं तिविहेणं पडिक्कममाणे ८ ण करेइ, ण कारवेइ मणसा वयसा कायसा; ९ अहवा ण करेइ, करेंतं णाणुजाणइ मणसा वयसा कायसा; १० अहवा ण कारवेइ, करेंतं णाणुजाणइ मणसा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वयसा कायसा। दुविहं दुविहेणं पडिक्कममाणे ११ ण करेइ, ण कारवेइ मणसा वयसा, १२ अहवा ण करेइ, ण कारवेइ मणसा कायसा; १३ अहवा ण करेइ, ण कारवेइ वयसा कायसा; १४ अहवा ण करेइ, करेंतं णाणुजाणइ मणसा वयसा; १५ अहवा ण करेइ, करेंतं णाणुजाणइ मणसा कायसा; १६ अहवा ण करेइ, करेंतं णाणुजाणइ वयसा कायसा; १७ अहवा ण कारवेइ, करेंतं णाणुजाणइ मणसा वयसा; १८ अहवा ण कारवेइ, करेंतं णाणुजाणइ मणसा कायसा; १९ अहवा ण कारवेइ, करेंतं णाणुजाणइ वयसा कायसा। दुविहं एगविहेणं पडिक्कममाणे २० ण करेइ ण कारवेइ मणसा; २१ अहवा ण करेइ ण कारवेइ वयसा; २२ अहवा ण करेइ, ण कारवेइ कायसा; २३ अहवा ण करेइ, करेंतं णाणुजाणइ मणसा; २४ अहवा ण करेइ, करेंतं णाणुजाणइ वयसा; २५ अहवा ण करेइ, करेंतं णाणुजाणइ कायसा; २६ अहवा ण कारवेइ, करेंतं णाणुजाणइ मणसा; २७ अहवा ण कारवेइ करेंतं णाणुजाणइ वयसा; २८ अहवा ण कारवेइ, करेंतं णाणुजाणइ कायसा। एगविहं तिविहेणं पडिक्कममाणे २९ ण करेइ मणसा वयसा कायसा; ३० अहवा ण कारवेइ मणसा वयसा कायसा; ३१ अहवा करेंतं णाणुजाणइ मणसा वयसा कायसा। एगविहं दुविहेणं पडिक्कममाणे ३२ ण करेइ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मणसा वयसा; ३३ अहवा ण करेइ मणसा कायसा; ३४ अहवा ण करेइ वयसा कायसा; ३५ अहवा ण कारवेइ मणसा वयसा; ३६ अहवा ण कारवेइ मणसा कायसा; ३७ अहवा ण कारवेइ वयसा कायसा; ३८ अहवा करेंतं णाणुजाणइ मणसा वयसा; ३९ अहवा करेंतं णाणुजाणइ मणसा कायसा; ४० अहवा करेंतं णाणुजाणइ वयसा कायसा । एगविहं एगविहेणं पडिक्कममाणे ४१ ण करेइ मणसा, ४२ अहवा ण करेइ वयसा ४३ अहवा ण करेइ कायसा; ४४ अहवा ण कारवेइ मणसा; ४५ अहवा ण कारवेइ वयसा; ४६ अहवा ण कारवेइ कायसा; ४७ अहवा करेंतं णाणुजाणइ मणसा; ४८ अहवा करेंतं णाणुजाणइ वयसा; ४९ अहवा करेंतं णाणुजाणइ कायसा ।

कठिन शब्दार्थ--पुव्वामेव-पहले, थूलए-स्थूल (मोटे), पाणाइवाए-प्राणातिपात (हिंसा), अपच्चक्खाए-प्रत्याख्यान (त्याग) नहीं है, तीयं-अतीत (भूतकालीन), पडिक्कमइ-प्रतिक्रमण करता है, पडुप्पण्णं-प्रत्युत्पन्न (वर्तमान-कालीन), अणागयं-अनागत (भविष्यकालीन), अणुजाणइ-अनुमोदन करता है, तिविहं तिविहेणं-तीन करण तीन योग से ।

भावार्थ--५ प्रश्न--हे भगवन् ! जिस श्रमणोपासक ने पहले स्थूल प्राणातिपात का प्रत्याख्यान नहीं किया, वह पीछे उसका प्रत्याख्यान करता हुआ क्या करता है ?

५ उत्तर--हे गौतम ! वह अतीतकाल में किये हुए प्राणातिपात का प्रतिक्रमण करता है अर्थात् उस पाप की निन्दा करके उससे निवृत्त होता है । प्रत्युत्पन्न अर्थात् वर्तमानकालीन प्राणातिपात का संवर (निरोध) करता है । अनागत (भविष्यत्कालीन) प्राणातिपात का प्रत्याख्यान करता है अर्थात् उसे न करने

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

की प्रतिज्ञा करता है।

६ प्रश्न—हे भगवन् ! अतीतकाल के प्राणातिपातादि का प्रतिक्रमण करता हुआ श्रमणोपासक—१ क्या त्रिविध त्रिविध (तीन करण, तीन योग से) या २ त्रिविध द्विविध, ३ त्रिविध एकविध, ४ द्विविध त्रिविध, ५ द्विविध द्विविध या ६ द्विविध एकविध, ७ एकविध त्रिविध, ८ एकविध द्विविध अथवा ९ एकविध एकविध प्रतिक्रमण करता है ?

६ उत्तर—हे गौतम ! त्रिविध त्रिविध प्रतिक्रमण करता है, या त्रिविध द्विविध प्रतिक्रमण करता है, अथवा यावत् एकविध एकविध भी प्रतिक्रमण करता है। १ जब त्रिविध त्रिविध प्रतिक्रमण करता है, तब स्वयं करता नहीं, दूसरे से करवाता नहीं और करनेवाले का अनुमोदन भी नहीं करता—मन से, वचन से और काया से। २ जब त्रिविध द्विविध प्रतिक्रमण करता है, तब स्वयं करता नहीं, दूसरे से करवाता नहीं, करने वाले का अनुमोदन करता नहीं—मन और वचन से। ३ अथवा स्वयं करता नहीं, दूसरे से करवाता नहीं और करने वाले का अनुमोदन करता नहीं, मन और काया से। ४ अथवा स्वयं करता नहीं, दूसरे से करवाता नहीं और करनेवाले का अनुमोदन भी नहीं करता—वचन और काया से।

जब त्रिविध एकविध (तीन करण एक योग से) प्रतिक्रमण करता है, तब ५ स्वयं करता नहीं, दूसरों से करवाता नहीं, करते हुए का अनुमोदन करता नहीं—मन से। ६ अथवा स्वयं करता नहीं, दूसरों से करवाता नहीं, करते हुए का अनुमोदन करता नहीं—वचन से। ७ अथवा स्वयं करता नहीं, दूसरों से करवाता नहीं, करते हुए का अनुमोदन करता नहीं—काया से।

जब द्विविध त्रिविध (दो करण तीन योग से) प्रतिक्रमण करता है, तब ८ स्वयं करता नहीं, दूसरों से करवाता नहीं—मन, वचन और काया से। ९ अथवा स्वयं करता नहीं, करते हुए का अनुमोदन करता नहीं—मन, वचन और काया से। १० अथवा दूसरों से करवाता नहीं, करते हुए का अनुमोदन करता नहीं—मन, वचन और काया से।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जब द्विविध द्विविध प्रतिक्रमण करता है, तब-११ स्वयं करता नहीं, दूसरों से करवाता नहीं-मन और वचन से। १२ अथवा स्वयं करता नहीं, दूसरों से करवाता नहीं-मन और काया से। १३ अथवा-स्वयं करता नहीं, दूसरों से करवाता नहीं-वचन और काया से। १४ अथवा स्वयं करता नहीं, करते हुए का अनुमोदन करता नहीं-मन और वचन से। १५ अथवा-स्वयं करता नहीं, करते हुए का अनुमोदन करता नहीं-मन और काया से। १६ अथवा-स्वयं करता नहीं, करते हुए का अनुमोदन करता नहीं-वचन और काया से। १७ अथवा दूसरों से करवाता नहीं, करते हुए का अनुमोदन करता नहीं-मन और वचन से। १८ अथवा-दूसरों से करवाता नहीं, करते हुए का अनुमोदन करता नहीं-मन और काया से। १९ अथवा-दूसरों से करवाता नहीं, करते हुए का अनुमोदन करता नहीं-वचन और काया से।

जब द्विविध एकविध प्रतिक्रमण करता है, तब २० स्वयं करता नहीं, दूसरों से करवाता नहीं-मन से। २१ अथवा स्वयं करता नहीं, दूसरों से करवाता नहीं-वचन से। २२ अथवा--स्वयं करता नहीं, दूसरों से करवाता नहीं--काया से। २३ अथवा--स्वयं करता नहीं, करते हुए का अनुमोदन करता नहीं-मन से। २४ अथवा-स्वयं करता नहीं, करते हुए का अनुमोदन करता नहीं-वचन से। २५ अथवा स्वयं करता नहीं, करते हुए का अनुमोदन करता नहीं-काया से। २६ अथवा दूसरों से करवाता नहीं, करते हुए का अनुमोदन करता नहीं-मन से। २७ अथवा दूसरों से करवाता नहीं, करते हुए का अनुमोदन करता नहीं-वचन से। २८ अथवा दूसरों से करवाता नहीं, करते हुए का अनुमोदन करता नहीं--काया से।

जब एकविध त्रिविध प्रतिक्रमण करता है, तब २९ स्वयं करता नहीं--मन, वचन और काया से। ३० अथवा दूसरों से करवाता नहीं-मन, वचन और काया से। ३१ अथवा करते हुए का अनुमोदन करता नहीं--मन, वचन

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

और काया से।

जब एकविध द्विविध प्रतिक्रमण करता है, तब ३२ स्वयं करता नहीं--मन और वचन से। ३३ अथवा स्वयं करता नहीं--मन और काया से। ३४ अथवा स्वयं करता नहीं--वचन और काया से। ३५ अथवा दूसरों से करवाता नहीं--मन और वचन से। ३६ अथवा दूसरों से करवाता नहीं--मन और काया से। ३७ अथवा दूसरों से करवाता नहीं--वचन और काया से। ३८ अथवा करते हुए का अनुमोदन करता नहीं--मन और वचन से। ३९ अथवा करते हुए का अनुमोदन करता नहीं--मन और काया से। ४० अथवा करते हुए का अनुमोदन करता नहीं--वचन और काया से।

जब एकविध एकविध प्रतिक्रमण करता है, तब ४१ स्वयं करता नहीं--मन से। ४२ अथवा स्वयं करता नहीं--वचन से। ४३ अथवा स्वयं करता नहीं--काया से। ४४ अथवा दूसरों से करवाता नहीं--मन से। ४५ अथवा दूसरों से करवाता नहीं--वचन से। ४६ अथवा दूसरों से करवाता नहीं--काया से। ४७ अथवा करते हुए का अनुमोदन करता नहीं--मन से। ४८ अथवा अनुमोदन करता नहीं--वचन से। ४९ अथवा अनुमोदन करता नहीं--काया से।

७ प्रश्न—पडुप्पण्णं संवरेमाणे किं तिविहं तिविहेणं संवरेइ ?

७ उत्तर—एवं जहा पडिक्कममाणेणं एगूणपण्णं भंगा भणिया एवं संवरमाणेण वि एगूणपण्णं भंगा भाणियव्वा।

८ प्रश्न—अणागयं पच्चक्खमाणे किं तिविहं तिविहेणं पच्चक्खाइ ?

८ उत्तर—एवं तं चेव भंगा एगूणपण्णं भाणियव्वा जाव अहवा करेंतं णाणुजाणइ कायसा।

९ प्रश्न-समणोवासगस्स णं भंते ! पुव्वामेव थूलए मुसावाए अपच्चक्खाए भवइ, से णं भंते ! पच्छा पच्चाइक्खमाणे० ?

९ उत्तर-एवं जहा पाणाइवायस्स सीयालं भंगसयं भणियं, तहा मुसावायस्स वि भाणियव्वं । एवं अदिण्णादाणस्स वि, एवं थूलगस्स मेहुणस्स वि, थूलगस्स परिग्गहस्स वि, जाव अहवा करेंतं णाणुजाणइ कायसा । एवं खलु एरिसगा समणोवासगा भवंति, णो खलु एरिसगा आजीविओवासगा भवंति ।

कठिन शब्दार्थ—एगूणपण्णं—उनपचास, मुसावाए—मृषावाद ।

भावार्थ-७ प्रश्न-हे भगवन् ! प्रत्युत्पन्न (वर्तमान काल) का संवर करता हुआ श्रावक क्या त्रिविध त्रिविध संवर करता है ? इत्यादि प्रश्न ।

७ उत्तर-हे गौतम ! पहले कहे अनुसार उनपचास भंग कहने चाहिये अर्थात् प्रतिक्रमण के विषय में जो उनपचास भंग कहे हैं, वे ही संवर के विषय में जानना चाहिये ।

८ प्रश्न—हे भगवन् ! अनागत (भविष्यत्) काल के प्राणातिपात का प्रत्याख्यान करता हुआ श्रावक क्या त्रिविध त्रिविध प्रत्याख्यान करता है ? इत्यादि प्रश्न ?

८ उत्तर-हे गौतम ! पहले कहे अनुसार यहाँ भी उनपचास भंग कहना चाहिये यावत् 'अथवा करते हुए का अनुमोदन करता नहीं-काया से'—यहाँ तक कहना चाहिये ।

९ प्रश्न—हे भगवन् ! जिस श्रमणोपासक ने पहले स्थूल मृषावाद का प्रत्याख्यान नहीं किया, किंतु बाद में वह स्थूल मृषावाद का प्रत्याख्यान करता है, तो क्या करता है ?

९ उत्तर-हे गौतम ! जिस प्रकार प्राणातिपात के विषय में एक सौ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सेंतालीस (अतीत काल के पाप से निवृत्त, वर्त्तमान में संवर करने और आगामी काल के प्रत्याख्यान करने रूप तीन काल सम्बन्धी ४९×३ = १४७) भंग कहे गये हैं। उसी प्रकार मृषावाद के विषय में भी एक सौ सेंतालीस भंग कहना चाहिये। इसी प्रकार स्थूल अदत्तादान, स्थूल मैथुन और स्थूल परिग्रह के विषय में भी एक सौ सेंतालीस, एक सौ सेंतालीस भंग जानना चाहिये। यावत् 'अथवा पाप करते हुए का अनुमोदन करता नहीं, काया से' वहाँ तक जानना चाहिये। इस प्रकार के श्रमणोपासक होते हैं, किन्तु आजीविकोपासक (गोशालक के उपासक) इस प्रकार के नहीं होते।

विवेचन-श्रावक ४९ भंगों में से किसी भी भंग से प्रतिक्रमण आदि कर सकता है। उनका विवरण इस प्रकार है-करना, कराना, अनुमोदना-ये तीन 'करण' हैं। मन, वचन और काया-ये तीन 'योग' हैं। इनके संयोग से विकल्प नौ और भंग उनपचास होते हैं। नौ विकल्प ये हैं-१ तीन करण, तीन योग। २ तीन करण, दो योग। ३ तीन करण, एक योग। ४ दो करण, तीन योग। ५ दो करण, दो योग ६ दो करण, एक योग। ७ एक करण, तीन योग। ८ एक करण, दो योग। ९ एक करण, एक योग। इन नौ विकल्पों के ४९ भंग होते हैं। इनमें से किसी भी भंग से श्रावक भूतकाल का प्रतिक्रमण करता हैं, वर्त्तमान काल में संवर करता है और भविष्य के लिये प्रत्याख्यान (पाप नहीं करने की प्रतिज्ञा) करता है। इस प्रकार तीनों काल की अपेक्षा उनपचास भंगों को तीन से गुणा करने से एक सौ सेंतालीस भंग होते हैं। ये प्राणातिपात विषयक हैं। स्थूल मृषावाद, स्थूल अदत्तादान, स्थूल मैथुन और स्थूल परिग्रह-इन प्रत्येक के भी एक सौ सेंतालीस-एकसौ सेंतालीस भंग होते हैं। पाँचों अणुव्रतों के मिलाकर कुल ७३५ भंग होते है हैं।

आजीविकोपासक और श्रमणोपासक

१०-आजीवियसमयस्स णं अयमट्ठे-अक्खीणपडिभोइणो सव्वे सत्ता; से हंता, छेत्ता, भेत्ता, लुंपित्ता, विलुंपित्ता, उद्दवइत्ता

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आहारं आहारेंति । तत्थ खलु इमे दुवालस आजीवियोवासगा भवंति, तं जहा–१ ताले, २ तालपलंबे, ३ उव्विहे, ४ संविहे, ५ अवविहे, ६ उदए, ७ णामुदए, ८ णम्मुदए, ९ अणुवालए १० संखवालए, ११ अयंपुले १२ कायरए–इच्चेए दुवालस आजीवियोवासगा अरिहंतदेवतागा, अम्मा-पिउसुस्सूसगा, पंचफल-पडिक्कंता, तं जहा–उंबरेहिं, वडेहिं, बोरेहिं, सतरेहिं, पिलक्खूहिं, पलंडु-ल्हसुणकंदमूलविवज्जगा, अणिल्लंछिएहिं अणक्कभिण्णेहिं गोणेहिं तसपाणविवज्जिएहिं वित्तेहिं वित्तिं कप्पेमाणा विहरंति। एए वि ताव एवं इच्छंति किमंग ! पुण जे इमे समणोवासगा भवंति, जेसिं णो कप्पंति इमाइं पण्णरस कम्मादाणाइं सयं करेत्तए वा, कारवेत्तए वा, करेंतं वा अण्णं समणुजाणेत्तए । तं जहा–इंगालकम्मे, वणकम्मे, साडीकम्मे, भाडीकम्मे, फोडीकम्मे, दंतवाणिज्जे, लक्खवाणिज्जे, केसवाणिज्जे, रसवाणिज्जे, विसवाणिज्जे, जंतपीलणकम्मे, णिल्लंछणकम्मे, दवग्गिदावणया, सर-दह-तलागपरिसोसणया, असईपोसणया । इच्चेए समणोवासगा सुक्का, सुक्काभिजाइया भवित्ता कालमासे कालं किच्चा अण्णयरेसु देवलोएसु देवत्ताए उववत्तारो भवंति ।

११ प्रश्न–कइविहा णं भंते ! देवलोगा पण्णत्ता ?

११ उत्तर-गोयमा ! चउव्विहा देवलोगा पण्णत्ता, तं जहा-भवणवासी, वाणमंतरा, जोइसिया, वेमाणिया ।

❀ सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति ❀

॥ अट्ठमसए पंचमओ उद्देसओ समत्तो ॥

कठिन शब्दार्थ--**अयमट्ठे** -यह अर्थ, **अक्खीणपडिभोइणो**--अक्षीणपरिभोगी--सचित्ताहारी-सचित्त का आहार करने वाले **हंता**--हननकर (मारकर), **छेत्ता**-- छेदनकर (टुकड़ेकर) **भेत्ता**-- भेदकर (शूलादि भोंककर) **लुंपित्ता**-- लोपकर (पंख आदि तोड़कर) **विलुंपित्ता**-विलोपकर (चमड़ी उधड़कर) **उद्दवइत्ता**-अपद्रावण-विनाश करके, **अम्मापिउसुस्सूसगा**-माता-पिता की सेवा करने वाले, **पंचफलपडिक्कंता**-पांच प्रकार के फल के त्यागी, **उंबरेहिं**-गूलर के, **वडेहिं**-बड़ के, **बोरेहिं**-बेर के, **सतरेहिं**-सतर (शहतूत) के, **पिलक्खुहिं**--पीपल के **पलंडू**--प्याज-कान्दा, **अणिल्लंछिएहिं**--अनिर्लांछित (बधिये-खस्सी नहीं किये हुए) **अणक्कभिण्णेहिं**--नाक में नाथ नहीं डाले हुए, **गोणेहिं**--बैल से, **वित्तेहिं**-- वृत्ति (व्यापार) से **वित्ति कप्पेमाणे**--आजीविका चलाते हुए, **किमंगपुण** -- क्या कहना (अथवा--उनका तो कहना ही क्या ?) **सुक्का, सुक्काभिजाइया**--पवित्र और पवित्रता प्रधान ।

भावार्थ-१० प्रश्न--आजीविक (गोशालक) के सिद्धांत का यह अर्थ है कि-'प्रत्येक जीव अक्षीणपरिभोगी अर्थात् सचित्ताहारी है ।' इसलिये वे लकडी आदि से पीटकर, तलवार आदि से काट कर, शूलादि से भेदन कर, पांख आदि को कतरकर, चमडी आदि को उतार कर और विनाश करके खाते हैं, अर्थात् संसार के दूसरे प्राणी इस प्रकार जीवों को हनने में तत्पर हैं, परंतु आजीविक के मत में ये बारह आजीविकोपासक कहे गये हैं । यथा-१ ताल, २ तालप्रलम्ब, ३ उद्विध, ४ संविध, ५ अवविध, ६ उदय, ७ नामोदय, ८ नर्मोदय ९ अनुपालक, १० शंखपालक, ११ अयम्पुल और १२ कातर । ये बारह आजीविक के उपासक हैं । इनका देव गोशालक है । वे माता पिता की सेवा करनेवाले होते हैं । वे पांच प्रकार के फल नहीं खाते, यथा-१ उम्बर के फल, २ बड़ के फल, ३ बोर, ४ सत्तर (शहतूत) का फल और ५ पीपल का फल । वे प्याज, लहसून

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

और कन्दमूल के विवर्जक (त्यागी) होते हैं। वे अनिर्लाञ्छित (खसी नहीं किये हुए) और नहीं नाथे हुए (जिनका नाक बिंधा हुआ नहीं) ऐसे बैलों द्वारा त्रस प्राणी की हिंसा रहित व्यापार से आजीविका करते हैं। जब गोशालक के उपासक भी इस प्रकार से हिंसा रहित व्यापार द्वारा आजीविका करते हैं, तो जो श्रमणोपासक हैं, उनका तो कहना ही क्या? क्योंकि उन्होंने तो विशिष्टतर देव-गुरु-धर्म का आश्रय लिया है। जो श्रमणोपासक होते हैं, उन्हें ये पन्द्रह कर्मादान स्वयं करना, दूसरों से करवाना और करते हुए का अनुमोदन करना नहीं कल्पता। वे कर्मादान इस प्रकार हैं—

१ अंगारकर्म २ वनकर्म ३ शाकटिक कर्म ४ भाटी कर्म ५ स्फोटक कर्म ६ दन्तवाणिज्य ७ लाक्षावाणिज्य ८ केशवाणिज्य ९ रसवाणिज्य १० विष-वाणिज्य ११ यन्त्रपीडनकर्म १२ निर्लाञ्छनकर्म १३ दावाग्निदापनता १४ सरो-ह्रदतडाग-शोषणता और १५ असतीपोषणता। ये श्रमणोपासक शुक्ल (पवित्र) शुक्लाभिजात (पवित्रता प्रधान) होकर काल के समय काल करके किसी एक देवलोक में देव रूप से उत्पन्न होते हैं।

११ प्रश्न—हे भगवन्! कितने प्रकार के देवलोक कहे गये हैं?

११ उत्तर—हे गौतम! चार प्रकार के देवलोक कहे गये हैं। यथा—भवनवासी, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक।

हे भगवन्! यह इसी प्रकार है। हे भगवन्! यह इसी प्रकार है। ऐसा कहकर गौतमस्वामी यावत् विचरते हैं।

विवेचन—यहाँ गोशालक के शिष्यों का वर्णन दिया गया है। उनके मुख्यरूप से ताल, तालप्रलम्ब आदि बारह आजीविकोपासकों के नाम दिये गये हैं। वे उदुम्बर आदि पाँच प्रकार के फल नहीं खाते। अनिर्लाञ्छित और नाक न छिदे हुए बैलों से, त्रस प्राणियों की हिंसा रहित व्यापार से अपनी आजीविका करते हैं। विशिष्ट योग्यता से रहित होने पर भी जब कि वे इस प्रकार से धर्म की इच्छा करते हैं, तो फिर जीवाजीवादि तत्त्वों के ज्ञाता श्रमणोपासक तो धर्म की इच्छा करें, इसमें कहना ही क्या है? अर्थात् वे तो धर्म की इच्छा करते ही हैं। क्योंकि उन्हें तो विशिष्ट देव, गुरु और धर्म की प्राप्ति हुई है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जिन धन्धों और कार्यों से ज्ञानावरणीय आदि कर्मों का विशेषरूप से ग्रहण (बन्ध) होता है, उन्हें-'कर्मादान' कहते हैं। अथवा कर्मों के हेतुओं को 'कर्मादान' कहते हैं। उन कर्मादानों का आचरण स्वयं करना, दूसरों से कराना और अनुमोदन करना नहीं कल्पता। कर्मादान पन्द्रह हैं। उनके नाम और अर्थ इस प्रकार है—

१ इंगालकम्मे (अंगारकर्म)-अंगार अर्थात् अग्नि विषयक कार्य को 'अंगारकर्म' कहते हैं। अग्नि से कोयला बनाने और बेचने का धन्धा करना। इसी प्रकार अग्नि के प्रयोग से होने वाले दूसरे कर्मों का भी इसमें ग्रहण हो जाता है। जैसे कि— ईंटों के भट्टे (पजावा) पकाना आदि।

२ वणकम्मे (वनकर्म)-वन विषयक कर्म को 'वन कर्म' कहते हैं। जंगल को खरीद कर वृक्षों और पत्तों आदि को काटकर बेचना और उससे आजीविका करना— 'वनकर्म' है। इसी प्रकार (वनोत्पन्न) बीजों का पीसना (आटे आदि की चक्की आदि) भी वनकर्म है।

३ साडीकम्मे (शाकटिक कर्म)-गाड़ी, तांगा, इक्का आदि तथा उनके अवयवों (पहिया आदि) को बनाने और बेचने आदि का धन्धा करके आजीविका करना 'शाकटिक कर्म' है।

४ भाडीकम्मे (भाटी कर्म)-गाड़ी आदि से दूसरों का सामान एक जगह से दूसरी जगह भाड़े से ले जाना। बैल, घोड़े आदि किराये पर देना और मकान आदि बना बना कर भाड़े पर देना, इत्यादि धन्धे कर के आजीविका करना 'भाटीकर्म' है।

५ फोडीकम्मे (स्फोटिक कर्म)-हल कुदाली आदि से भूमि को फोड़ना। इस प्रकार का धन्धा करके आजीविका करना 'स्फोटिक कर्म' है।

६ दंतवाणिज्जे (दन्तवाणिज्य)-हाथी दांत, मृग आदि का चर्म (मृगछाला आदि) चमरी गाय के केशों से बने हुए चामर और पूतिकेश (भेड़ के केश-ऊन) आदि को खरीदने और बेचने का धन्धा करके आजीविका करना 'दंतवाणिज्य' है।

७ लक्खवाणिज्जे (लाक्षावाणिज्य)-लाख का क्रय-विक्रय करके आजीविका करना 'लाक्षावाणिज्य' है। इसमें त्रस जीवों की महाहिंसा होती है। इसी प्रकार त्रस जीवों की उत्पत्ति के कारणभूत तिलादि द्रव्यों का व्यापार करना भी इसी में सम्मिलित है।

८ केसवाणिज्जे (केशवाणिज्य)-केशवाले जीवों का अर्थात् गाय, भैंस आदि पशु तथा दासी आदि को बेचने का व्यापार करना 'केशवाणिज्य' है।

९ रसवाणिज्जे (रसवाणिज्य)-मदिरा आदि रसों को बेचने का धन्धा करना,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

'रसवाणिज्य' है।

१० विसवाणिज्जे (विषवाणिज्य)-विष (अफीम, शंखिया आदि जहर) को बेचने का धन्धा करना 'विषवाणिज्य' है। जीवघातक तलवार आदि शस्त्रों का व्यापार करना भी इसी में सम्मिलित है।

११ जंतपीलणकम्मे (यन्त्रपीडनकर्म)-तिल, ईख आदि पीलने के यन्त्र-कोल्हू, चरखी आदि से तिल ईख आदि पीलने का धन्धा करना 'यन्त्रपीडनकर्म' है। उसी प्रकार महारम्भपोषक जितने भी यन्त्र हैं, उन सबका समावेश-यन्त्रपीडनकर्म में होता है। तथा अग्नि सम्बन्धी महारम्भ पोषक यन्त्रों का समावेश-अंगारकर्म में होता है।

१२ निल्लंछणकम्मे (निर्लाञ्छनकर्म)-बैल, घोड़े आदि को खसी (नपुंसक) बनाने का धन्धा करना 'निर्लाञ्छनकर्म' है।

१३ दवग्गिदावणया (दावाग्निदापनता)-खेत आदि साफ करने के लिये जंगल में किसी से आग लगवा देना अथवा स्वयं लगाना 'दावाग्निदापनता' है। इसमें असंख्य त्रस और अनन्त स्थावर जीवों की हिंसा होती है।

१४ सर-दह-तलायपरिसोसणया (सरोहृदतडागपरिशोषणता)-स्वतः बना हुआ जलाशय 'सरोवर' कहलाता है। नदी आदि में जो अधिक ऊँडा प्रदेश होता है उसे 'हृद' कहते हैं। जो खोदकर जलाशय बनाया जाता है, उसे 'तड़ाग' (तालाब) कहते हैं। इन (सरोवर, हृद, तालाब आदि) को सुखाना-'सरोहृदतडागपरिशोषणता' है।

१५ असईपोसणया (असतीपोषणता)-दुश्चरित स्त्रियों से व्यभिचार करवा कर उनसे भाड़ा ग्रहण करने के लिये उनका पोषण करना अर्थात् आजीविका कमाने के लिये दुश्चरित्र स्त्रियों का पोषण करना-'असतीपोषणता' है। इसी प्रकार पापबुद्धि पूर्वक कुक्कुट, मार्जार (बिल्ली) आदि हिंसक जानवरों का पोषण करना भी इसी में सम्मिलित है।

इस प्रकार व्रतों का पालन करने वाले, मत्सरभाव से रहित, कृतज्ञ (उपकारी के उपकार को मानने वाले) अल्पारम्भ से आजीविका करने वाले, प्राणियों के हितचिन्तक शुक्लाभिजात (धार्मिक वृत्ति वाले) श्रमणोपासक, काल के अवसर काल करके किसी देवलोक में उत्पन्न होते हैं।

भवनवासी, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक--ये चार प्रकार के देवलोक कहे गये हैं।

॥ इति आठवें शतक का पांचवां उद्देशक सम्पूर्ण ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शतक ८ उद्देशक ६

श्रमण-अश्रमण के प्रतिलाभ का फल

१ प्रश्न—समणोवासगस्स णं भंते ! तहारूवं समणं वा माहणं वा फासु-एसणिज्जेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं पडिलाभेमाणस्स किं कज्जइ ?

१ उत्तर—गोयमा ! एगंतसो से णिज्जरा कज्जइ, णत्थि य से पावे कम्मे कज्जइ ।

२ प्रश्न—समणोवासगस्स णं भंते ! तहारूवं समणं वा माहणं वा अफासुएणं अणेसणिज्जेणं असण-पाण जाव पडिलाभेमाणस्स किं कज्जइ ?

२ उत्तर—गोयमा ! बहुतरिया से णिज्जरा कज्जइ, अप्पतराए से पावे कम्मे कज्जइ ।

३ प्रश्न—समणोवासगस्स णं भंते ! तहारूवं असंजयविरयपडिहय-पच्चक्खायपावकम्मं फासुएण वा, अफासुएण वा, एसणिज्जेण वा, अणेसणिज्जेण वा असण-पाण जाव किं कज्जइ ?

३ उत्तर—गोयमा ! एगंतसो से पावे कम्मे कज्जइ, णत्थि से काइ णिज्जरा कज्जइ ।

कठिन शब्दार्थ—तहारूवं—तथारूप के (वेश के अनुसार ही गुण और आचरण से युक्त) माहणं—ब्राह्मण (साधु अथवा श्रावक) फासुएसणिज्जेणं—प्रासुक और एषणीय

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

निर्जीव एवं निर्दोष (ग्राह्य), पडिलाभेमाणस्स—प्रतिलाभता हुआ (उत्तमता के साथ देकर लाभान्वित होना), किं कज्जइ—क्या करता है ?, एगंतसो—एकांत, णिज्जरा—कर्म तोड़ना, अफासुएणं—जीव सहित, अणेसणिज्जेणं—अनिच्छनीय (अग्राह्य), बहुतरिया—अधिकतर, अप्पतराए—अल्पतर।

भावार्थ-१ प्रश्न-हे भगवन् ! तथारूप के (साधु के वेष और तदनुकूल प्रवृत्ति तथा गुणों से युक्त) श्रमण या माहन को प्रासुक एवं एषणीय अशन, पान, खादिम और स्वादिम आहार द्वारा प्रतिलाभित करते हुए श्रमणोपासक को किस फल की प्राप्ति होती है ?

१ उत्तर-हे गौतम ! उसके एकांतरूप में निर्जरा होती है, किन्तु पाप कर्म नहीं होता।

२ प्रश्न-हे भगवन् ! तथारूप के श्रमण माहन को अप्रासुक और अनेषणीय अशनादि द्वारा प्रतिलाभित करते हुए श्रमणोपासक को किस फल की प्राप्ति होती है ?

२ उत्तर-हे गौतम ! उसके बहुत निर्जरा और अल्प पाप होता है।

३ प्रश्न-हे भगवन् ! तथारूप के असंयत, अविरत, जिसने पाप कर्मों को नहीं रोका और पाप का प्रत्याख्यान भी नहीं किया, उसे प्रासुक या अप्रासुक, एषणीय या अनेषणीय अशन पानादि द्वारा प्रतिलाभित करते हुए श्रमणोपासक को किस फल की प्राप्ति होती है ?

३ उत्तर-हे गौतम ! उसे एकान्त पापकर्म होता है, निर्जरा कुछ भी नहीं होती।

विवेचन—अशनादि शब्दों का अर्थ इस प्रकार है—१ अशन—जिससे भूख शांत हो। जैसे—दाल, भात, रोटी आदि।

२ पान—जिससे प्यास शांत हो। जैसे—जल, धोवन आदि।

३ खादिम (खाद्य)—जिससे भूख और प्यास दोनों की शांति हो। जैसे—दूध, छाछ, मेवा, मिष्टान्न आदि।

४ स्वादिम (स्वाद्य)—जिससे न तो भूख शांत हो और न प्यास शांत हो।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जो मुख को स्वाद युक्त करने के लिये, भोजन के बाद खाने लायक स्वादिष्ट पदार्थ। जैसे-लोंग, चूर्ण, गोली, खटाई आदि।

ऊपर तीनों सूत्रों में **'तहारूवं समणं'**.....पाठ आया है। उसका अर्थ है-'तथारूप के साधु अर्थात् साधु का रूप'। जो बाह्य और आभ्यन्तर रूप से साधु है, साधु के योग्य वस्त्र-पात्रादि धारण किये हुए हैं और चारित्रादि गुणयुक्त है।

पहले और दूसरे सूत्र में 'तथारूप' का अर्थ है-'जैनागमों में वर्णित साधु के वेश तथा गुणों से युक्त।' तीसरे सूत्र में जो 'तथारूप' शब्द आया है, उसके साथ 'असंयत,' 'अविरत' आदि विशेषण लगे हुए हैं। इसलिये वहाँ इसका अर्थ है-'मिथ्यामत को दीपानेवाले बाबा, जोगी, सन्यासी आदि। इसको जो गुरु-बुद्धि से दान दे, उसका यहाँ कथन है।

तीनों ही पाठ में **'पडिलाभेमाणस्स'**-पाठ आया है। यह पाठ गुरु-बुद्धि से दान देने का सूचक है। साधारण भीखमंगों आदि को देने में 'पडिलाभे' पाठ नहीं आता। जहाँ भी वैसे भिखारियों आदि को देने का वर्णन आया है, वहाँ-**'दलयइ'** या **'दलेज्जा'** आदि पाठ आया है।

'तथारूप' के अर्थात् साधु के वेष प्रवृत्ति और गुणों से युक्त साधु को प्रासुक, एषणीय (मुनि के कल्प योग्य निर्दोष) अशनादि देने से दाता को एकान्त निर्जरा होती है।

दूसरे सूत्र में यह बतलाया गया है कि 'तथारूप' (साधु के गुणों से युक्त) साधु को अप्रासुक, अनेषणीय अशनादि देने से अल्प पाप और बहुत निर्जरा होती है अर्थात् पापकर्म की अपेक्षा बहुत अधिक निर्जरा होती है और निर्जरा की अपेक्षा पाप बहुत थोड़ा होता है।

प्रासुक और एषणीय शब्दों का अर्थ अनेक स्थानों पर इस प्रकार किया है। यथा-'प्रासुक' अर्थात् 'निर्जीव' और 'एषणीय' अर्थात् 'निर्दोष'। इस व्याख्या के अनुसार 'अप्रासुक' का अर्थ 'सजीव' और 'अनेषणीय' का अर्थ 'सदोष' होता है। किन्तु यहां बहुत निर्जरा अल्प पाप के प्रकरण में यह अर्थ घटित नहीं होता। क्योंकि तथारूप के श्रमण (शुद्ध साधु) को जानबूझकर सचित्त वस्तु तथा महादोषयुक्त अनेषणीय वस्तु बहराकर, दाता क्या कभी बहुत निर्जरा का भागी हो सकता है? नहीं। दूसरी बात यह है कि आत्मार्थी मुनि ऐसा सचित्त और अनेषणीय (महादोषयुक्त) आहार लेंगे ही कैसे? अतः 'अप्रासुक और अनेषणीय' का जो अर्थ आचारांग सूत्र के दूसरे श्रुतस्कन्ध में अनेक

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्थानों पर दिया है, वही अर्थ यहाँ भी घटित होता है। यथा-

बहुत परिमाण में बहरा देने से जिस आहार को परठना पड़े, जो आहार बहुत उज्झित धर्मवाला हो (जिसमें खाने लायक अंश थोड़ा और परठने योग्य अंश बहुत अधिक हो, ऐसा आहार अचित्त तथा अन्य दोषों से रहित होते हुए भी उसमें से बहुत अंश परठना पड़ता है, इस कारण उसे 'अप्रासुक अनेषणीय' कहा है)। मालोहड (मालापहृत) आहारादि, शय्यातरपिण्ड, स्वामी की आज्ञा बिना दिया हुआ आहारादि, जो वस्त्र-पात्रादि टिकाऊ न हो तथा काम में आने लायक न हो, मंगते-भिखारी को देने का आहारादि, इत्यादि पदार्थ निर्जीव एवं तत्तद्गत दोष के अतिरिक्त अन्य दोषों से रहित होते हुए भी उनको 'अप्रासुक अनेषणीय' बतलाया है। अतः 'अप्रासुक अनेषणीय' का यही अर्थ यहाँ भी लेना चाहिये। अर्थात् यहाँ 'अप्रासुक अनेषणीय' का अर्थ है-साधु के लिये अकल्पनीय। इस प्रकार का 'अप्रासुक अनेषणीय' आहारादि बहराने से बहुत निर्जरा और अल्प पाप होता है। यथा-

किसी पुष्ट कारण के उपस्थित होने पर साधारण संघट्टा आदि (परम्परा से बीजादि का संघट्टा लगता हो, स्वयं की जेब में इलायची आदि कोई सचित्त पदार्थ हो) दोष को गौण करके दाता ने जो आहारादि बहराया हो, उससे भी बहुत निर्जरा और अल्प पाप होता है। जैसे-कोई सन्त महात्मा, गर्मी के मौसम में विहार करके किसी गाँव में पधारे। विलम्ब से पधारने के कारण दिन बहुत चढ़ गया हो। ऐसे समय में धोवन-पानी का कहीं भी योग नहीं मिला। प्यास के मारे प्राण जाने तक की नौबत आगई, उस वक्त एक श्रावक के घर में स्वाभाविक धोवन पानी पड़ा था, किन्तु साधारण संघट्टा आदि लगता था। उसे गौण करके श्रावक ने वह धोवन पानी मुनि को बहरा दिया। उस श्रावक को संघट्टा सम्बन्धी अल्प पाप लगा और उस सन्त महात्मा के प्राण बच गये। उससे निर्जरा रूप महालाभ मिला। इसी तरह किसी खास औषध आदि के सम्बन्ध में भी जानना चाहिये।

दूसरों के लिए प्राप्त पिण्ड का उपभोग

४-णिग्गंथं च णं गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए अणुप्पविट्ठं केइ दोहिं पिंडेहिं उवणिमंतेज्जा-एगं आउसो! अप्पणा भुंजाहि,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एगं थेराणं दलयाहि, से य तं पडिग्गाहेज्जा, थेरा य से अणुगवेसियव्वा सिया, जत्थेव अणुगवेसमाणे थेरे पासिज्जा तत्थेव अणुप्पदायव्वे सिया, णो चेव णं अणुगवेसमाणे थेरे पासिज्जा तं णो अप्पणा भुंजेज्जा, णो अण्णेसिं दावए; एगंते अणावाए अचित्ते बहुफासुए थंडिल्ले पडिलेहेत्ता पमज्जित्ता परिट्ठावेयव्वे सिया।

५–णिग्गंथं च णं गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए अणुप्पविट्ठं केइ तिहिं पिंडेहिं उवणिमंतेज्जा–एगं आउसो ! अप्पणा भुंजाहि, दो थेराणं दलयाहि; से य ते पडिग्गाहेज्जा थेरा य से अणुगवेसियव्वा, सेसं तं चेव जाव परिट्ठावेयव्वे सिया, एवं जाव दसहि पिंडेहिं उवणिमंतेज्जा; णवरं एगं आउसो ! अप्पणा भुंजाहि, णव थेराणं दलयाहि; सेसं तं चेव जाव परिट्ठावेयव्वे सिया।

कठिन शब्दार्थ–**गाहावइकुलं**–गृहस्थ के यहां, **पिंडवायपडियाए**–आहार ग्रहण करने के लिए, **अणुप्पविट्ठं**–प्रवेश करे, **पिंडेहिं**–पिण्ड (आहार), **उवणिमंतेज्जा**–उपनिमन्त्रण करे, **अप्पणा भुंजाहि**–तुम खाना, **थेरे**–स्थविर मुनि, **पडिग्गाहेज्जा**–ग्रहण करे, **अणुगवेसियव्वा**–गवेषणा करे (खोज करे), **जत्थेव**–जहां, **पासिज्जा**–दिखाई दे, **तत्थेव**–वहां, **अणुप्पदायव्वे**–दे देवे, **अणावाए**–जहां कोई नहीं आवे, **थंडिल्ले**–स्थंडिल-भूमि (परठने की जगह) **पडिलेहित्ता**–प्रतिलेखना करके, **पमज्जित्ता**–पूंजकर, **परिट्ठावेयव्वे**–परठे (डाल दे)।

भावार्थ–४ कोई साधु, गृहस्थ के घर आहार लेने के लिये जाय, वहां वह गृहस्थ, दो पिण्ड (दो रोटी या दो लड्डू आदि पदार्थ) बहरावे और ऐसा कहे कि–'हे आयुष्मन् श्रमण ! इन दो पिण्डों में से एक पिण्ड आप खाना और दूसरा पिण्ड स्थविर मुनियों को देना।' वह मुनि दोनों पिण्ड ग्रहण करके अपने स्थान पर आवे। वहां आकर स्थविर मुनियों की गवेषणा करे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गवेषणा करने पर वे स्थविर मुनि मिल जाय, तो वह पिण्ड उन्हें दे दे। गवेषणा करने पर भी यदि वे नहीं मिलें, तो उस पिण्ड को न तो आप खावे न दूसरों को देवे। किन्तु एकान्त और अनापात, अचित्त, बहुप्रासुक स्थण्डिल स्थान को प्रतिलेखना और प्रमार्जना करके वहाँ परठ दे।

५-कोई साधु, गृहस्थ के घर गोचरी जाय। वहां गृहस्थ उसे तीन पिण्ड (तीन रोटी अथवा तीन लड्डू आदि कोई वस्तु) देवे और ऐसा कहे कि 'हे आयुष्मन् श्रमण ! इन तीन पिण्डों में से एक पिंड तो आप खाना और दो पिंड स्थविर मुनियों को देना।' फिर वह मुनि उन पिंडों को लेकर अपने स्थान पर आवे। वहाँ आकर स्थविर मुनियों की गवेषणा करे। यदि वे मिल जाय, तो वे दो पिंड उन्हें दे दे। यदि वे नहीं मिलें, तो उन दो पिंडों को आप स्वयं नहीं खावे और न दूसरों को दे, किंतु पूर्वोक्त विशेषण युक्त स्थण्डिल भूमि की प्रतिलेखना व प्रमार्जना करके परठ दे। इसी प्रकार चार, पांच, छह यावत् दस पिंड तक के विषय में कहना चाहिये। उनमें से एक पिंड स्वयं ग्रहण करने के लिये तथा शेष पिंड स्थविर मुनियों को देने के लिये कहे, इत्यादि कथन करना चाहिये। शेष सारा वर्णन पूर्वोक्त प्रकार से कहना चाहिये।

६ णिग्गंथं च णं गाहावइ० जाव केइ दोहिं पडिग्गहेहिं उवणिमंतेज्जा-एगं आउसो ! अप्पणा परिभुंजाहि, एगं थेराणं दलयाहि। से य तं पडिग्गाहेज्जा, तहेव जाव तं णो अप्पणा परिभुंजेज्जा, णो अण्णेसिं दावए; सेसं तं चेव, जाव परिट्ठावेयव्वे सिया। एवं जाव दसहिं पडिग्गाहेहिं, एवं जहा पडिग्गहवत्तव्वया भणिया, एवं गोच्छय-रयहरण-चोलपट्टग-कंबल-लट्ठि-संथारगवत्तव्वया य भाणियव्वा, जाव दसहिं संथारएहिं उवणिमंतेज्जा, जाव परिट्ठावेयव्वे सिया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ—पडिग्गह—पात्र, **गोच्छय**--गुच्छक (पात्र पोंछने का कपड़ा) **रयहरण**--रजोहरण (ओघा) **चोलपट्टक**--चोलपट्टा, **संथारग**---संस्तारक (बिछौना)।

भावार्थ--६ कोई साधु, गृहस्थ के घर गोचरी के लिये जाय। वहाँ वह गृहस्थ, दो पात्र बहरावे और ऐसा कहे कि-'हे आयुष्मन् श्रमण ! इन दो पात्रों में से एक पात्र का उपयोग आप स्वयं करना और दूसरा पात्र, स्थविर मुनियों को देना।' तो उन दोनों पात्रों को ग्रहण कर अपने स्थान पर आवे यावत् सारा वर्णन पूर्वोक्त रूप से कहना। उस दूसरे पात्र का उपयोग आप स्वयं न करे और न वह दूसरों को दे, किंतु यावत् उसको परठ दे। इसी प्रकार तीन, चार यावत् दस पात्र तक का कथन पूर्वोक्त पिंड के समान कहना चाहिये। जिस प्रकार पात्र की वक्तव्यता कही, उसी प्रकार गुच्छक, रजोहरण, चोलपट्ट, कम्बल, दण्ड और संस्तारक की वक्तव्यता कहनी चाहिये। यावत् परठ दे-यहाँ तक कहना चाहिये।

विवेचन---यहाँ यह कथन किया गया है कि जो पिण्ड, पात्र आदि स्थविर मुनियों के निमित्त से दिये गये हैं, उनका उपयोग वह मुनि स्वयं नहीं करे और न वह दूसरों को दे, क्योंकि गृहस्थ ने स्थविर मुनियों का नाम लेकर दिया है। इसलिये उस पिण्ड पात्रादि का उपयोग स्वयं करे, या दूसरों को दे, तो उस मुनि को अदत्तादान लगता है। इसलिये वह उसे अचित्तादि विशेषण विशिष्ट स्थण्डिल भूमि की प्रतिलेखना और प्रमार्जना करके वहाँ परठ दे। कैसे स्थण्डिल में परठे, इसके लिये कहा गया है कि;---

अणावायमसंलोए, अणावाए चेव होइ संलोए।
आवायमसंलोए, आवाए चेव होइ संलोए ॥ १ ॥
अणावायमसंलोए, परस्सऽणुवघाइए।
समे अज्झुसिरे यावि, अचिरकालकयम्मि य ॥ २ ॥
विच्छिण्णे दूरमोगाढे, णासण्णे बिलवज्जिए।
तसपाण बीयरहिए, उच्चाराईणि वोसिरे ॥ ३ ॥

अर्थ-स्थण्डिल के दस विशेषणों में से प्रथम विशेषण के चार भंग करके बतलाये जाते हैं-१ जहां कोई आता भी न हो और देखता भी न हो, २ जहाँ आता तो कोइ नहीं,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

किन्तु दूर खड़ा देखता हो, ३ जहाँ कोई आता तो है, परन्तु उसकी ओर देखता नहीं, ४ जहां कोई आता भी है और देखता भी है—ये चार भंग हैं। इनमें से पहला भंग शुद्ध है बाकी तीन अशुद्ध हैं।

अत्र स्थण्डिल के दस विशेषण कहे जाते हैं। यथा—१ अनापात असंलोक—जहाँ स्वपक्ष और परपक्ष वाले लोगों में से किसी का आना जाना नहीं हो और दृष्टि भी नहीं पड़ती हो। २ अनुपघातक—जहाँ संयम और छह काय जीवों की एवं आत्मा की विराधना नहीं हो। ३ सम—जहाँ ऊँची जगह नहीं होकर समतल-भूमि हो। ४ अशुषिर—जहाँ पोलार नहीं हो और घास तथा पत्तों आदि से ढकी हुई भी नहीं हो अर्थात् साफ खुली हुई भूमि हो। ५ अचिरकाल कृत-जो स्थान दाह आदि से थोड़े काल पहले अचित्त हुई हो। ६ विस्तीर्ण-जो भूमि विस्तृत हो अर्थात् कम से कम एक हाथ लम्बी चौड़ी हो। ७ दूरावगाढ़—जहाँ कम से कम चार अंगुल नीचे तक भूमि अचित्त हो। ८ न आसन्न—जहाँ गांव तथा बाग बगीचा आदि अति निकट नहीं हो। ९ बिलवर्जित-जहाँ चूहे आदि का बिल नहीं हो। १० त्रस-प्राण-बीज रहित-जहाँ बेइन्द्रियादि त्रस जीव तथा शाली आदि बीज नहीं हों। इन दस विशेषणों युक्त स्थण्डिल भूमि में उच्चार आदि (मलमूत्रादि) परठे।

अकृत्यसेवी आराधक

७ प्रश्न–णिग्गंथेण य गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए पविट्ठेणं अण्णयरे अकिच्चट्ठाणे पडिसेविए, तस्स णं एवं भवइ–इहेव ताव अहं एयस्स ठाणस्स आलोएमि, पडिक्कमामि, णिंदामि, गरिहामि, विउट्टामि, विसोहेमि, अकरणयाए अब्भुट्ठेमि, अहारिहं पायच्छित्तं तवोकम्मं पडिवज्जामि; तओ पच्छा थेराणं अंतिअं आलोएस्सामि, जाव तवोकम्मं पडिवज्जिस्सामि। से य संपट्ठिए, असंपत्ते थेरा य पुव्वामेव अमुहा सिया, से णं भंते ! किं आराहए, विराहए ?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

७ उत्तर-गोयमा ! आराहए, णो विराहए।

८ प्रश्न-से य संपट्ठिए असंपत्ते अप्पणा य पुव्वामेव अमुहे सिया, से णं भंते ! किं आराहए, विराहए ?

८ उत्तर-गोयमा ! आराहए, णो विराहए।

९ प्रश्न-से य संपट्ठिए असंपत्ते थेरा य कालं करेज्जा, से णं भंते ! किं आराहए, विराहए ?

९ उत्तर-गोयमा ! आराहए, णो विराहए।

१० प्रश्न-से य संपट्ठिए असंपत्ते अप्पणा य पुव्वामेव कालं करेज्जा, से णं भंते ! किं आराहए, विराहए ?

१० उत्तर-गोयमा ! आराहए, णो विराहए।

११ प्रश्न-से य संपट्ठिए संपत्ते, थेरा य अमुहा सिया से णं भंते ! किं आराहए, विराहए ?

११ उत्तर-गोयमा ! आराहए, णो विराहए। से य संपट्ठिए संपत्ते, अप्पणा य०-एवं संपत्तेण वि चत्तारि आलावगा भाणियव्वा जहेव असंपत्तेणं।

कठिन शब्दार्थ-अकिच्चट्ठाणे-अकृत्य स्थान (मूल गुणादि में दोष सेवन रूप अकार्य विशेष) **पडिसेविए**-प्रतिसेवन किया, **विउट्टामि**--तोड़ दूं (उसके अनुबन्ध का छेदन कर दूं) **विसोहेमि**-मैं विशुद्ध करूं, **अब्भुट्ठेमि**-तत्पर बनूं, **अहारिहं**-यथार्ह-यथोचित, **पडिवज्जामि**-स्वीकार करूं, **संपट्ठिए**-पहुंचने, **अमुहा**-अमुखा अर्थात् जिनकी जिव्हा बन्द हो गई हो।

भावार्थ--७ प्रश्न--हे भगवन् ! कोई साधु, गाथापति (गृहस्थ) के घर

में गोचरी गया, वहां उस साधु द्वारा (मूल गुणादि में दोष रूप) कृत्य का सेवन हो गया हो और तत्क्षण उसके मन में ऐसा विचार उत्पन्न हो कि-'प्रथम में यहीं पर इस कृत्य स्थान की आलोचना, प्रतिक्रमण, निन्दा और गर्हा करूँ, उसके अनुबन्ध का छेदन करूँ, इससे विशुद्ध बनूं, भविष्य में ऐसा कार्य न करने की प्रतिज्ञा करूँ तथा यथोचित प्रायश्चित और तपःकर्म स्वीकार करलूं। फिर मैं यहाँ से जाकर स्थविर मुनियों के पास आलोचना करूंगा यावत् यथोचित तपःकर्म स्वीकार करूंगा।' ऐसा विचार कर वह मुनि, स्थविर मुनियों के पास जाने के लिये निकला। उन स्थविर मुनियों के पास पहुँचने के पूर्व ही वे स्थविर मुनि वात आदि दोष के प्रकोप से मूक हो जाय (वे बोल नहीं सकें) और इसी कारण वे प्रायश्चित्त न दे सकें, तो हे भगवन् ! वह मुनि आराधक है या विराधक ?

७ उत्तर-हे गौतम ! वह आराधक है, विराधक नहीं।

८ प्रश्न-उपर्युक्त अकार्य का सेवन करनेवाले मुनि ने स्वयं आलोचनादि करली, फिर स्थविर मुनियों के पास आलोचना करने के लिये निकला, किंतु वहाँ पहुचने के पूर्व ही वह स्वयं वात आदि दोष के कारण मूक हो जाय, तो हे भगवन् ! वह मुनि आराधक है, या विराधक ?

८ उत्तर-हे गौतम ! वह मुनि आराधक है, विराधक नहीं।

९ प्रश्न-उपर्युक्त अकार्य सेवन करनेवाला मुनि, स्वयं आलोचनादि करके स्थविर मुनियों के पास आलोचना करने को निकला, किन्तु वहाँ पहुँचने के पूर्व ही वे स्थविर मुनि काल कर गये, तो हे भगवन् ! वह मुनि आराधक है, या विराधक ?

९ उत्तर-हे गौतम ! वह मुनि आराधक है, विराधक नहीं।

१० प्रश्न-उपर्युक्त अकार्य का सेवन करनेवाला मुनि, स्वयं आलोचनादि करके स्थविर मुनियों के पास आलोचना करने के लिये निकला, किन्तु वहां पहुँचने के पूर्व ही वह स्वयं काल कर जाय, तो हे भगवन् ! वह मुनि आराधक है, या विराधक ?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१० उत्तर–हे गौतम ! वह मुनि आराधक है, विराधक नहीं ।

११ प्रश्न–उपर्युक्त अकार्य का सेवन करने वाला मुनि स्वयं आलोचनादि करके स्थविर मुनियों के पास आलोचना करने के लिये निकला और वह वहाँ पहुंच गया, तत्पश्चात् वे स्थविर मुनि वात आदि दोष के कारण मूक हो गये, तो हे भगवन् ! वह मुनि आराधक है, या विराधक ?

११ उत्तर–हे गौतम ! वह आराधक है, विराधक नहीं । जिस प्रकार असंप्राप्त (स्थविरों के पास न पहुँचे हुए) मुनि के चार आलापक कहे गये, उसी प्रकार सम्प्राप्त (स्थविरों की सेवा में पहुँचे हुए) मुनि के चार आलापक कहना चाहिये ।

१२—णिग्गंथेण य बहिया वियारभूमिं वा विहारभूमिं वा णिक्खंतेणं अण्णयरे अकिच्चट्ठाणे पडिसेविए, तस्स णं एवं भवइ–इहेव ताव अहं०–एवं एत्थ वि ते चेव अट्ठ आलावगा भाणियव्वा; जाव णो विराहए । णिग्गंथेण य गामाणुगामं दुइज्जमाणेणं अण्णयरे अकिच्चट्ठाणे पडिसेविए, तस्स णं एवं भवइ–इहेव ताव अहं०, एत्थ वि ते चेव अट्ठ आलावगा भाणियव्वा, जाव णो विराहए ।

१३ प्रश्न–णिग्गंथीए य गाहावइकुलं पिंडवायपडियाए अणुपविट्ठाए अण्णयरे अकिच्चट्ठाणे पडिसेविए; तीसे णं एवं भवइ–इहेव ताव अहं एयस्स ठाणस्स आलोएमि, जाव तमोकम्मं पडिवज्जामि, तओ पच्छा पवत्तिणीए अंतियं आलोएस्सामि, जाव पडिवज्जिस्सामि । सा य संपट्ठिया असंपत्ता पवत्तिणी य अमुहा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सिया, सा णं भंते ! किं आराहिया, विराहिया ?

१३ उत्तर-गोयमा ! आराहिया, णो विराहिया। सा य संपट्ठिया जहा णिग्गंथस्स तिण्णि गमा भणिया एवं णिग्गंथीए वि तिण्णि आलावगा भाणियव्वा, जाव आराहिया, णो विराहिया।

कठिन शब्दार्थ—वियारभूमि-नीहारभूमि (स्थंडिलभूमि) विहारभूमि-स्वाध्याय भूमि, णिक्खंतेणं-जाते हुए, पवत्तिणिए-प्रवर्तिनी के पास।

भावार्थ-१२-कोई मुनि बाहर विचारभूमि (नीहार भूमि) अथवा विहारभूमि की ओर जाते हुए, उसके द्वारा किसी अकार्य का सेवन हो गया हो, फिर उसके मन में इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ हो कि 'प्रथम में स्वयं यहाँ इस अकार्य की आलोचना आदि करूं,' इत्यादि पूर्ववत् सारा वर्णन कहना चाहिये। पूर्वोक्त प्रकार से संप्राप्त और असम्प्राप्त दोनों के आठ आलापक कहना चाहिये यावत् वह मुनि आराधक है, विराधक नहीं, यहाँ तक कहना चाहिये। ग्रामानुग्राम विचरते हुए किसी मुनि द्वारा अकार्य का सेवन हो जाय, तो उसके भी इसी प्रकार आठ आलापक जानना चाहिये। यावत् वह मुनि आराधक है, विराधक नहीं-यहाँ तक कहना चाहिए।

१३ प्रश्न-कोई साध्वी गोचरी के लिये गृहस्थ के घर गई। वहाँ उसके द्वारा किसी अकार्य का सेवन हो गया। तत्पश्चात् उसके मन में ऐसा विचार उत्पन्न हुआ कि 'पहले में यहीं अकृत्य स्थान की आलोचना करूं, यावत् तपकर्म को स्वीकार करूं, इसके बाद प्रवर्तिनी के पास आलोचना करूंगी यावत् तपकर्म को स्वीकार करूंगी,'-ऐसा विचार कर वह साध्वी, प्रवर्तिनी के पास जाने के लिये निकली। प्रवर्तिनी के पास पहुंचने के पहले ही वह प्रवर्तिनी, वात आदि दोष के कारण मूक हो गई (जिव्हा बन्द हो गई-बोल न सकी)। तो हे भगवन् ! क्या वह साध्वी आराधक है, या विराधक ?

१३ उत्तर-हे गौतम ! वह साध्वी आराधक है, विराधक नहीं। जिस

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रकार साधु के तीन आलापक कहे है, उसी प्रकार साध्वी के भी तीन आलापक कहना चाहिये, किन्तु इतनी विशेषता है कि 'स्थविर' शब्द के स्थान पर 'प्रवर्तिनी' शब्द का प्रयोग करना चाहिये।

१४ प्रश्न-से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ-आराहए, णो विराहए ?

१४ उत्तर-गोयमा ! से जहा णामए-केइ पुरिसे एगं महं उण्णालोमं वा, गयलोमं वा, सणलोमं वा, कप्पासलोमं वा, तणसूयं वा दुहा वा तिहा वा संखेज्जहा वा छिंदित्ता अगणिकायंसि पक्खिवेज्जा, से णूणं गोयमा ! छिज्जमाणे छिण्णे, पक्खिप्पमाणे पक्खित्ते, डज्झमाणे दड्ढेत्ति वत्तव्वं सिया ? हंता भगवं ! छिज्जमाणे छिण्णे, जाव दड्ढेत्ति वत्तव्वं सिया। से जहा वा केइ पुरिसे वत्थं अहयं वा धोयं वा, तंतुग्गयं वा मंजिट्ठादोणीए पक्खिवेज्जा, से णूणं गोयमा ! उक्खिप्पमाणे उक्खित्ते, पक्खिप्पमाणे पक्खित्ते, रज्जमाणे रत्तेत्ति वत्तव्वं सिया ? हंता भगवं ! उक्खिप्पमाणे उक्खित्ते जाव रत्तेत्ति वत्तव्वं सिया। से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ-आराहए णो विराहए।

कठिन शब्दार्थ—उण्णालोमं—ऊन के रोम, गयलोमं—हाथी के रोम, अहयं—अक्षत—(अखंड—नया)।

भावार्थ-१४ प्रश्न-हे भगवन् ! ऐसा क्यों कहा गया कि-'वे आराधक है, विराधक नहीं ?'

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१४ उत्तर-हे गौतम ! जैसे कोई पुरुष ऊन (भेड़) के बाल, हाथी के बाल, या सण के रैसे (तन्तु) कपास के रेसे तथा तृण, इन सब के एक, दो तीन यावत् संख्येय टुकडे करके अग्नि में डाले, तो काटते हुए वे काटे गये और अग्नि में डालते हुए 'डाले गये,' जलते हुए 'जले'-इस प्रकार कहलाता है ? (गौतम स्वामी कहते हैं) हां, भगवन् ! काटे जाते हुए-'काटे गये' डाले जाते हुए-'डाले गये' और जलते हुए-'जले' इस प्रकार कहलाते हैं। (भगवान् फिर फरमाते हैं) अथवा कोई पुरुष, नवीन अथवा धोये हुए अथवा यन्त्र से तुरन्त उतरे हुए वस्त्र को मजीठ के द्रोण (पात्र) में डाले, तो हे गौतम ! क्या उठाते हुए वह कपड़ा उठाया गया, डालते हुए वह डाला गया और रंगते हुए वह 'रंगा गया'-ऐसा कहा जाता है ? (गौतम स्वामी कहते हैं।) हां, भगवन् ! उठाते हुए उठाया गया, डालते हुए 'डाला गया' और रंगते हुए 'रंगा गया'-ऐसा कहा जाता है। (भगवान् फरमाते हैं) हे गौतम ! इसी प्रकार जो साधु या साध्वी, आराधना करने के लिये तैयार हुआ है, वह 'आराधक है, विराधक नहीं'-ऐसा कहा जाता है।

विवेचन-प्रथम शतक के प्रारम्भ में ही 'चलमाणे चलिए' यावत् 'णिज्जरिज्जमाणे णिज्जिण्णे' का सिद्धान्त प्रतिपादन किया गया है। यही बात यहाँ ऊन, सण, कपास आदि के तन्तुओं को काटने, अग्नि में डालने और जलाने का कथन करके तथा नवीन एवं धोये हुए सफद कपड़े को मजीठ के रंग में डालने और रंगने का कथन करके, एवं इनका दृष्टान्त देकर आराधकता की बात को पुष्ट किया गया है। तात्पर्य यह है कि किसी साधु या साध्वी से मूलगुणादि में दोषरूप अकार्य का सेवन हो गया हो, उसके बाद तत्काल ही वह स्वयं ही आलोचना आदि कर लेता है और बाद में गुरुजनों के पास आलोचना करने के लिये चल देता है, किन्तु वहाँ पहुँचने के पहले ही गुरुजन मूक हो जायँ, अथवा काल कर जायँ, या स्वयं मूक हो जाय अथवा काल कर जाय, इसी प्रकार वहाँ पहुँचने पर आलोचना करने से पहले गुरुजन मूक हो जायँ या काल कर जाय अथवा आप स्वयं मूक हो जाय, या काल कर जाय, तो वह साधु या साध्वी, आराधक है, विराधक नहीं। क्योंकि उसके परिणाम आलोचना करने के हो गये थे और वह आलोचना करने के लिये उद्यत भी हो गया था। उपरोक्त परिस्थिति के कारण वह आलोचना नहीं कर सका, ऐसी अवस्था में भी वह पूर्वोक्त सिद्धान्तानुसार आराधक ही है, विराधक नहीं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दीपक जलता है या बत्ती ?

१५ प्रश्न-पईवस्स णं भंते ! झियायमाणस्स किं पईवे झियाइ, लट्ठी झियाइ, वत्ती झियाइ, तेल्ले झियाइ, दीवचंपए झियाइ, जोई झियाइ ?

१५ उत्तर-गोयमा ! णो पईवे झियाइ, जाव णो दीवचंपए झियाइ, जोई झियाइ।

१६ प्रश्न-अगारस्स णं भंते ! झियायमाणस्स किं अगारे झियाइ, कुड्डा झियाइ, कडणा झियाइ, धारणा झियाइ, बलहरणे झियाइ, वंसा झियाइ, मल्ला झियाइ, वग्गा झियाइ, छित्तरा झियाइ, छाणे झियाइ, जोई झियाइ ?

१६ उत्तर-गोयमा ! णो अगारे झियाइ, णो कुड्डा झियाइ, जाव णो छाणे झियाइ, जोई झियाइ।

कठिन शब्दार्थ—**पईव**—प्रदीप (दीपक), **झियाइ**—जलता है, **लट्ठी**--यष्टि, **दीवचंपए**--दीप-चम्पक (दीप का ढक्कन), **अगार**—घर, **कुड्डा**--भींत, **कडणा**—टाटी, **धारणा**--नीचे के स्तंभ।

भावार्थ-१५ प्रश्न-हे भगवन् ! जलते हुए दीपक में क्या जलता है ? क्या दीपक जलता है, दीपयष्टि (दीवी-दीवट) जलती है, बत्ती जलती है, तेल जलता है, दीप-चम्पक अर्थात् दीपक का ढक्कन जलता है, या ज्योति (दीपशिखा) जलती है ?

१५ उत्तर-हे गौतम ! दीप नहीं जलता, यावत् दीपक का ढक्कन भी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नहीं जलता, परन्तु ज्योति (दीपशिखा) जलती है।

१६ प्रश्न-हे भगवन् ! जलते हुए घर में क्या जलता है ? क्या घर जलता है, भींत जलती है, टट्टी (खसखस आदि की टाटी या पतली दीवार) जलती है, धारण (मुख्य स्तम्भ) जलता है, बलहरण (मुख्य स्तम्भ के ऊपर रहनेवाली लकड़ी-लम्बा काष्ठ) जलता है, क्या बांस जलते हैं, मल्ल (भींत के आधार भूत स्तम्भ) जलते हैं, वर्ग (बांस आदि के बन्धनभूत छाल) जलते हैं, छित्वर (बांस आदि को ढकने के लिये डाली हुई चटाई) जलते हैं, छादन (दर्भादि युक्त पटल) जलता है, या अग्नि जलती है ?

१६ उत्तर-हे गौतम ! घर नहीं जलता, भींत नहीं जलती, यावत् छादन नहीं जलता, किन्तु अग्नि जलती है।

विवेचन—यहां दीप और घर का उदाहरण देकर यह बतलाया गया है कि जलते हुए दीप में दीपशिखा जलती है और जलते हुए घर में घर, भींत आदि नहीं जलते, किन्तु अग्नि जलती है।

क्रियाएँ कितनी लगती हैं ?

१७ प्रश्न-जीवे णं भंते ! ओरालियसरीराओ कइकिरिए ?

१७ उत्तर-गोयमा ! सिय तिकिरिए, सिय चउकिरिए, सिय पंचकिरिए, सिय अकिरिए।

१८ प्रश्न-णेरइए णं भंते ! ओरालियसरीराओ कइकिरिए ?

१८ उत्तर-गोयमा ! सिय तिकिरिए, सिय चउकिरिए, सिय पंचकिरिए।

१९ प्रश्न-असुरकुमारे णं भंते ! ओरालियसरीराओ कइ-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

किरिए ?

१९ उत्तर—एवं चेव, एवं जाव वेमाणिए, णवरं मणुस्से जहा जीवे।

२० प्रश्न—जीवे णं भंते ! ओरालियसरीरेहिंतो कइकिरिए ?

२० उत्तर—गोयमा ! सिय तिकिरिए, जाव सिय अकिरिए।

२१ प्रश्न—णेरइए णं भंते ! ओरालियसरीरेहिंतो कइकिरिए ?

२१ उत्तर—एवं एसो जहा पढमो दंडओ तहा इमो वि अपरिसेसो भाणियव्वो जाव वेमाणिए, णवरं मणुस्से जहा जीवे।

कठिन शब्दार्थ—अपरिसेसो—अपरिशेष (सम्पूर्ण)।

भावार्थ—१७ प्रश्न—हे भगवन् ! एक जीव, एक औदारिक शरीर की अपेक्षा कितनी क्रिया वाला होता है ?

१७ उत्तर—हे गौतम ! कदाचित् तीन क्रिया वाला, कदाचित् चार क्रिया वाला और कदाचित् पांच क्रिया वाला होता है। तथा कदाचित् अक्रिय (क्रिया रहित) भी होता है।

१८ प्रश्न—हे भगवन् ! एक नैरयिक जीव, दूसरे के एक औदारिक शरीर की अपेक्षा कितनी क्रिया वाला होता है ?

१८ उत्तर—हे गौतम ! कदाचित् तीन क्रिया वाला, कदाचित् चार क्रिया वाला और कदाचित् पांच क्रिया वाला होता है।

१९ प्रश्न—हे भगवन् ! एक असुरकुमार दूसरे के एक औदारिक शरीर की अपेक्षा कितनी क्रिया वाला होता है ?

१९ उत्तर—हे गौतम ! पूर्व कथितानुसार कदाचित् तीन क्रिया वाला, कदाचित् चार क्रिया वाला और कदाचित् पांच क्रिया वाला होता है। इसी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रकार यावत् वैमानिक देवों तक जानना चाहिये। परन्तु मनुष्य का कथन औधिक जीव की तरह जानना चाहिये।

२० प्रश्न-हे भगवन् ! एक जीव बहुत औदारिक शरीरों की अपेक्षा कितनी क्रिया वाला होता है ?

२० उत्तर-हे गौतम ! कदाचित् तीन क्रिया वाला, कदाचित् चार क्रिया वाला और कदाचित् पांच क्रिया वाला होता है। तथा कदाचित् अक्रिय (क्रिया रहित) भी होता है।

२१ प्रश्न-हे भगवन् ! एक नैरयिक जीव, दूसरे जीवों के औदारिक शरीरों की अपेक्षा कितनी क्रिया वाला होता है ?

२१ उत्तर-हे गौतम ! जिस प्रकार प्रथम दण्डक (सूत्र १८ में) कहा गया है, उसी प्रकार सभी दण्डक कहना चाहिये, यावत् वैमानिक पर्यन्त कहना चाहिये। परन्तु मनुष्यों का कथन औधिक जीवों की तरह जानना चाहिये।

२२ प्रश्न-जीवा णं भंते ! ओरालियसरीराओ कइकिरिया ?

२२ उत्तर-गोयमा ! सिय तिकिरिया, जाव सिय अकिरिया।

२३ प्रश्न-णेरइया णं भंते ! ओरालियसरीराओ कइकिरिया ?

२३ उत्तर-एवं एसो वि जहा पढमो दंडओ तहा भाणियव्वो, जाव वेमाणिया, णवरं मणुस्सा जहा जीवा।

२४ प्रश्न-जीवा णं भंते ! ओरालियसरीरेहिंतो कइकिरिया ?

२४ उत्तर-गोयमा ! तिकिरिया वि, चउकिरिया वि, पंचकिरिया वि, अकिरिया वि।

२५ प्रश्न-णेरइया णं भंते ! ओरालियसरीरेहिंतो कइकिरिया ?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

२५ उत्तर-गोयमा ! तिकिरिया वि, चउकिरिया वि, पंच-किरिया वि। एवं जाव वेमाणिया, णवरं मणुस्सा जहा जीवा।

भावार्थ-२२ प्रश्न-हे भगवन् ! बहुत से जीव, एक औदारिक शरीर की अपेक्षा कितनी क्रिया वाले होते हैं ?

२२ उत्तर-हे गौतम ! कदाचित् तीन क्रिया वाले, कदाचित् चार क्रिया वाले और कदाचित् पांच क्रिया वाले होते हैं, तथा कदाचित् अक्रिय होते हैं।

२३ प्रश्न-हे भगवन् ! बहुत से नैरयिक जीव, दूसरे के एक औदारिक शरीर की अपेक्षा कितनी क्रिया वाले होते हैं ?

२३ उत्तर-हे गौतम ! जिस प्रकार प्रथम दण्डक (सूत्र १८) कहा, उसी प्रकार यावत् वैमानिक पर्यन्त कहना चाहिये। परन्तु मनुष्यों का कथन औधिक जीवों की तरह कहना चाहिये।

२४ प्रश्न—हे भगवन् ! बहुत जीव, बहुत औदारिक शरीरों की अपेक्षा कितनी क्रिया वाले होते हैं ?

२४ उत्तर-हे गौतम ! तीन क्रिया वाले भी, चार क्रिया वाले भी और पांच क्रिया वाले भी होते हैं तथा अक्रिय भी होते हैं।

२५ प्रश्न-हे भगवन् ! बहुत नैरयिक जीव, दूसरे जीवों के औदारिक शरीरों की अपेक्षा कितनी क्रिया वाले होते हैं ?

२५ उत्तर-हे गौतम ! तीन क्रिया वाले भी चार क्रिया वाले भी और पांच क्रिया वाले भी होते हैं। इस प्रकार यावत् वैमानिक पर्यन्त जानना चाहिये। परन्तु मनुष्यों का कथन इसी के औधिक जीवों की तरह जानना चाहिये।

२६ प्रश्न-जीवे णं भंते ! वेउव्वियसरीराओ कइकिरिए ?

२६ उत्तर-गोयमा ! सिय तिकिरिए, सिय चउकिरिए, सिय अकिरिए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

२७ प्रश्न—णेरइए णं भंते ! वेउव्वियसरीराओ कइकिरिए ?

२७ उत्तर—गोयमा ! सिय तिकिरिए, सिय चउकिरिए; एवं जाव वेमाणिए, णवरं मणुस्से जहा जीवे। एवं जहा ओरालिय-सरीरेणं चत्तारि दंडगा भणिया तहा वेउव्वियसरीरेण वि चत्तारि दंडगा भाणियव्वा, णवरं पंचमकिरिया ण भण्णइ, सेसं तं चेव। एवं जहा वेउव्वियं तहा आहारगं पि, तेयगं पि, कम्मगं पि भाणि-यव्वं; एक्केक्के चत्तारि दंडगा भाणियव्वा, जाव वेमाणिया णं भंते ! कम्मगसरीरेहिंतो कइकिरिया ? गोयमा ! तिकिरिया वि, चउकिरिया वि।

❀ सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति ❀

॥ अट्ठमसए छट्ठो उद्देसो समत्तो ॥

२६ प्रश्न—हे भगवन् ! एक जीव, दूसरे एक जीव के वैक्रिय शरीर की अपेक्षा कितनी क्रिया वाला है ?

२६ उत्तर—हे गौतम ! कदाचित् तीन क्रिया वाला, और कदाचित् चार क्रिया वाला होता है। तथा कदाचित् अक्रिय होता है।

२७ प्रश्न—हे भगवन् ! एक नैरयिक जीव, दूसरे एक जीव के वैक्रिय शरीर की अपेक्षा कितनी क्रिया वाला होता है ?

२७ उत्तर—हे गौतम ! कदाचित् तीन क्रिया वाला और कदाचित् चार क्रिया वाला होता है। इस प्रकार यावत् वैमानिक पर्यन्त कहना चाहिये। किन्तु मनुष्य का कथन औधिक जीव की तरह कहना चाहिये। जिस तरह औदारिक शरीर के चार दंडक कहे, उसी प्रकार वैक्रिय शरीर के भी चार दण्डक कहना

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चाहिये । परन्तु उसमें पांचवीं क्रिया का कथन नहीं करना चाहिये । शेष सभी पूर्व की तरह कहना चाहिये । जिस प्रकार वैक्रिय शरीर का कथन किया गया है, उसी प्रकार आहारक, तैजस् और कार्मण शरीर का भी कथन करना चाहिये । प्रत्येक के चार चार दण्डक कहना चाहिये । 'यावत् (प्रश्न) हे भगवन् ! वैमानिक देव, कार्मण शरीरों की अपेक्षा कितनी क्रिया वाले होते हैं ? (उत्तर) हे गौतम ! तीन क्रिया वाले भी और चार क्रिया वाले भी होते हैं ।' यहां तक कहना चाहिये ।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है । हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है ।

विवेचन--कर्मबन्ध की कारणभूत चेष्टा अथवा दुष्ट व्यापार विशेष को 'क्रिया' कहते हैं । अथवा कर्मबन्ध के कारणभूत कायिकी आदि पांच पांच करके पच्चीस क्रियाएँ हैं । वे जैनागमों में 'क्रिया' शब्द से कही गई हैं । यहाँ कायिकी आदि पाँच क्रियाओं का कथन है । उनका स्वरूप इस प्रकार है—

१ कायिकी–काया से होने वाली क्रिया 'कायिकी क्रिया' कहलाती है ।

२ आधिकरणिकी–जिस अनुष्ठान विशेष से अथवा बाह्य खड्गादि शस्त्र से आत्मा, नरकादि गति का अधिकारी होता है, वह 'अधिकरण' कहलाता है । उस अधिकरण से होने वाली क्रिया 'आधिकरणिकी' कहलाती है ।

३ प्राद्वेषिकी--कर्मबंध के कारणभूत जीव के मत्सर भाव अर्थात् ईर्षा रूप अकुशल परिणाम को 'प्रद्वेष' कहते हैं । प्रद्वष से होने वाली क्रिया प्राद्वषिकी क्रिया कहलाती है ।

४ पारितापनिकी–ताड़नादि से दुःख देना अर्थात् पीड़ा पहुँचाना 'परिताप' है । इससे होने वाली क्रिया 'पारितापनिकी' कहलाती है ।

५ प्राणातिपातिकी--इन्द्रिय आदि दस प्राण हैं । उनके अतिपात (विनाश) से लगने वाली क्रिया 'प्राणातिपातिकी' क्रिया है ।

ये पांच क्रियाएं हैं । जब एक जीव, अन्य पृथ्वीकायिकादि जीव के शरीर की अपेक्षा काया का व्यापार करता है, तब उसके कायिकी, आधिकरणिकी और प्राद्वेषिकी-ये तीन क्रियाएँ लगती हैं । क्योंकि सराग जीव को कायिकी क्रिया के सद्भाव में आधिकरणिकी और प्राद्वेषिकी क्रिया अवश्य होती है । पारितापनिकी और प्राणातिपातिकी क्रिया में भजना (विकल्प) है । क्योंकि जीव, जब दूसरे जीव को परिताप उत्पन्न करता है, तब

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उसे पारितापनिकी क्रिया लगती है और जब उसके प्राणों का घात करता है, तब प्राणातिपातिकी क्रिया लगती है ।

कायिकी, आधिकरणिकी और प्राद्वेषिकी इन तीन क्रियाओं का परस्पर अविनाभाव सम्बन्ध है । इसलिये सराग जीव कदाचित् एक क्रिया और दो क्रिया वाला नहीं होता, वह नियम से तीन क्रिया वाला ही होता है । क्योंकि सराग जीव की काया अधिकरणरूप तथा प्रद्वेष युक्त होने से कायिकी क्रिया के सद्भाव में ये दोनों क्रियाएँ अवश्य ही होती है । आधिकरणिकी और प्राद्वेषिकी—इन दो क्रियाओं के सद्भाव में कायिकी क्रिया अवश्य होती है । इस प्रकार इनका परस्पर अविनाभाव सम्बन्ध है । यही बात प्रज्ञापनासूत्र में भी कही गई है । यथा—

"जस्सणं जीवस्स काइया किरिया कज्जइ तस्स अहिगरणिया किरिया नियमा कज्जइ, जस्स अहिगरणिया किरिया कज्जइ तस्स वि काइया किरिया नियमा कज्जइ"...इत्यादि ।

अर्थ—जिस जीव के कायिकी क्रिया होती है, उस जीव के आधिकरणिकी क्रिया अवश्य होती है । जिस जीव के आधिकरणिकी क्रिया होती है, उस जीव के कायिकी क्रिया अवश्य होती है ।

इसी प्रकार जिस जीव के कायिकी क्रिया होती है, उसके प्राद्वेषिकी क्रिया अवश्य होती है और जिस जीव के प्राद्वेषिकी क्रिया होती है, उस जीव के कायिकी क्रिया अवश्य होती है । पारितापनिकी और प्राणातिपातिकी क्रियाओं के विषय में भजना है । अर्थात् ये कदाचित् लगती हैं और कदाचित् नहीं भी लगती । जब काय-व्यापार द्वारा पहले की तीन क्रियाओं में प्रवृत्ति करता है, किन्तु उन्हें परिताप नहीं उपजाता और उनका विनाश भी नहीं करता, तब तक जीव को तीन क्रियाएँ लगती हैं । जब परिताप उत्पन्न करता है, तब जीव को चार क्रियाएँ लगती हैं । क्योंकि पारितापनिकी क्रिया में पहले की तीन क्रियाओं का अवश्य सद्भाव है । जब जीव के प्राणों का विनाश करता है, तब उसे पाँच क्रियाएँ लगती हैं, क्योंकि प्राणातिपातकी की क्रिया में पूर्व की चार क्रियाओं का अवश्य सद्भाव है । इसीलिये मूल में कहा गया हैं कि जीव को कदाचित् तीन क्रियाएँ लगती है, कदाचित् चार क्रियाएँ लगती हैं और कदाचित् पाँच क्रियाएँ लगती हैं । कदाचित् जीव अक्रिय भी होता है । यह बात अप्रमत्त अवस्था की अपेक्षा कही गई है, क्योंकि अप्रमत्त को इन पांचों क्रियाओं में कोई भी क्रिया नहीं लगती ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नैरयिक जीव, जब औदारिक शरीरधारी पृथ्वीकायिकादि जीवों का स्पर्श करता है, तब उसे तीन क्रियाएँ लगती हैं । जब परितापना उपजाता है, तब चार क्रियाएँ लगती हैं और जब प्राणों का विनाश करता है, तब पांच क्रियाएँ लगती हैं । नैरयिक जीव में अप्रमतता नहीं हो सकती, इसलिये वह अक्रिय नहीं हो सकता । इसी प्रकार मनुष्य को छोड़कर शेष तेईस दण्डक के जीव भी अक्रिय नहीं हो सकते। मनुष्य अक्रिय हो सकता है।

एक जीव को एक शरीर की अपेक्षा, एक जीव को बहुत जीवों के शरीरों की अपेक्षा, बहुत जीवों को एक शरीर की अपेक्षा और बहुत जीवों को बहुत जीवों के शरीरों की अपेक्षा, ये चार दण्डक (आलापक) औदारिक शरीर को अपेक्षा होते हैं । इसी प्रकार शेष चार शरीरों के भी प्रत्येक के चार चार दण्डक (आलापक) कहना चाहिये । औदारिक शरीर को छोड़कर शेष चार शरीरों का विनाश नहीं हो सकता । इसलिये वैक्रिय, आहारक, तैजस् और कार्मण, इन चार शरीरों की अपेक्षा जीव कदाचित् तीन क्रिया वाला और कदाचित् चार क्रिया वाला होता है, किन्तु पांच क्रिया वाला नहीं होता । प्रत्येक के चौथे दण्डक में 'कदाचित्' शब्द नहीं कहना चाहिये ।

शंका—नैरयिक जीव अधोलोक में रहते हैं। आहारक शरीर मनुष्य लोक में होता है । तब उस नैरयिक जीव को आहारक शरीर की अपेक्षा तीन क्रिया या चार क्रिया कैसे लग सकती है ?

समाधान—नैरयिक जीव ने अपने पूर्व भव के शरीर को विवेक (विरति) के अभाव से वोसिराया (त्यागा) नहीं । इसलिये उस जीव द्वारा बनाया हुआ वह शरीर, जब तक शरीर परिणाम का सर्वथा त्याग नहीं कर देता, तब तक अंश रूप से भी शरीर परिणाम को प्राप्त वह पूर्वभव प्रज्ञापना की अपेक्षा 'घृत घट' के न्याय से वह शरीर उसी का कहलाता है । जैसे-जिस घड़े में पहले घी रखा था, उसमें से घी निकाल लेने पर भी लोग उसे 'घृतघट' (घी का घड़ा) कहते हैं । इसी प्रकार वह शरीर उस जीव द्वारा बनाया हुआ होने से वह शरीर उसी का कहलाता है । उस मनुष्य लोकवर्ती शरीर के अंश रूप अस्थि (हड्डी) आदि से जब आहारक शरीर का स्पर्श होता है अथवा उसे परिताप उत्पन्न होता है, इस कारण नैरयिक जीव को आहारक शरीर की अपेक्षा तीन क्रिया या चार क्रिया लगती है । इसी प्रकार देव आदि के विषय में एवं बेइन्द्रिय आदि जीवों के विषय में भी जान लेना चाहिये ।

तैजस् कार्मण शरीर की अपेक्षा भी जीवों को तीन क्रिया और चार क्रिया का

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लगना बतलाया गया है, वह औदारिकादि शरीराश्रित तैजस्-कार्मण की अपेक्षा समझना चाहिये। क्योंकि स्वयं तैजस्-कार्मण शरीर को तो परिताप नहीं पहुंचाया जा सकता।

॥ इति आठवें शतक का छठा उद्देशक सम्पूर्ण ॥

शतक ८ उद्देशक ७

अन्य-तीर्थिक और स्थविर संवाद

१-तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे णयरे, वण्णओ, गुणसिलए चेइए, वण्णओ, जाव पुढविसिलावट्टओ। तस्स णं गुणसिलस्स चेइयस्स अदूरसामंते बहवे अण्णउत्थिया परिवसंति। तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे आइगरे जाव समोसढे; जाव परिसा पडिगया। तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स बहवे अंतेवासी थेरा भगवंतो जाइसंपण्णा, कुलसंपण्णा, जहा बिइयसए जाव जीवियास-मरणभय-विप्पमुक्का, समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामंते उड्ढंजाणू अहोसिरा, झाणकोट्ठोवगया संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणा जाव विहरंति।

कठिन शब्दार्थ--**जीवियास**--जीने की आशा, **मरणभयविप्पमुक्का**--मरने के भय से विमुक्त, **अदूरसामंते**--निकट (आसपास), **उड्ढंजाणू**--ऊर्ध्व जानु, **अहोसिरा**--नीचा मस्तक, **झाणकोट्ठोवगया**--ध्यान रूपी कोठे में रहे हुए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ-१-उस काल उस समय में राजगृह नामका नगर था। (वर्णन करना चाहिये।) वहां गुणशीलक नामक उद्यान था (वर्णन)। यावत् पृथ्वी-शिलापट्टक था। उस गुणशीलक बगीचे के आसपास—न बहुत दूर, न बहुत निकट, बहुत से अन्यतीर्थिक रहते थे। उस काल उस समय में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी, धर्मतीर्थ की स्थापना करनेवाले यावत् वहां समवसरे (पधारे) यावत् धर्मोपदेश सुनकर परिषद् वापिस चली गई। उस काल उस समय में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के बहुत-से शिष्य स्थविर भगवन्त जाति-संपन्न कुलसम्पन्न इत्यादि दूसरे शतक में वर्णित गुणों से युक्त यावत् जीवन की आशा और मरण के भय से रहित थे। वे श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पास न अति दूर न बहुत निकट, ऊर्ध्व-जानु (घुटने खडे रखकर) अधो-सिर (मस्तक को कुछ झुकाकर) ध्यान-कोष्ठोपगत होकर संयम और तप द्वारा अपनी आत्मा को भावित करते हुए यावत् विचरते थे।

२-तएणं ते अण्णउत्थिया जेणेव थेरा भगवंतो तेणेव उवागच्छंति उवागच्छित्ता ते थेरे भगवंते एवं वयासी-तुब्भे णं अज्जो ! तिविहं तिविहेणं असंजय-विरय-प्पडिहय० जहा सत्तमसए बिइए उद्देसए जाव एगंतबाला या वि भवह।

३-तएणं ते थेरा भगवंतो ते अण्णउत्थिए एवं वयासी-केण कारणेणं अज्जो ! अम्हे तिविहं तिविहेणं अस्संजय-विरय० जाव एगंतबाला यावि भवामो ?

४-तएणं ते अण्णउत्थिया ते थेरे भगवंते एवं वयासी-तुब्भे णं अज्जो ! अदिण्णं गेण्हह, अदिण्णं भुंजह, अदिण्णं साइज्जह;

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तएणं ते तुब्भे अदिण्णं गेण्हमाणा, अदिण्णं भुंजमाणा, अदिण्णं माइज्जमाणा तिविहं तिविहेणं असंजय-विरय० जाव एगंतबाला यावि भवह।

५—तएणं ते थेरा भगवंतो ते अण्णउत्थिए एवं वयासी—केण कारणेणं अज्जो! अम्हे अदिण्णं गेण्हामो, अदिण्णं भुंजामो, अदिण्णं माइज्जामो? जए णं अम्हे अदिण्णं गेण्हमाणा, जाव अदिण्णं माइज्जमाणा तिविहं तिविहेणं असंजय० जाव एगंतबाला यावि भवामो?

६—तएणं ते अण्णउत्थिया ते थेरे भगवंते एवं वयासी—तुम्हाणं अज्जो! दिज्जमाणे अदिण्णे, पडिग्गहेज्जमाणे अपडिग्गहिए, णिस्सरिज्जमाणे अणिसिट्ठे, तुब्भं णं अज्जो! दिज्जमाणं पडिग्गहगं असंपत्तं एत्थ णं अंतरा केइ अवहरिज्जा, गाहावइस्स णं तं, णो खलु तं तुब्भं, तएणं तुब्भे अदिण्णं गेण्हह, जाव अदिण्णं साइज्जह, तएणं तुब्भे अदिण्णं गेण्हमाणा जाव एगंतबाला यावि भवह।

कठिन शब्दार्थ—एगंतबाला—एकान्त बाल (अत्यागी), **अदिण्णं**—बिना दिया, **साइज्जह**—स्वाद लेते हैं, अनुमति देते हैं, **दिज्जमाणे अदिण्णे**—देते हुए नहीं दिया, **णिस्सरिज्जमाणे अणिसिट्ठं**—डालते हुए नहीं डाला, **असंपत्तं**—प्राप्त नहीं हुआ, **अंतरा**—बीच में से, **अवहरिज्जा**—अपहरण करले।

भावार्थ—२—तब वे अन्यतीर्थिक, जहाँ स्थविर भगवन्त थे वहाँ आये। वहाँ आकर उन्होंने स्थविर भगवन्तों से इस प्रकार कहा—'हे आर्यों! तुम त्रिविध-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

त्रिविध (तीन करण तीन योग से) असंयत, अविरत, अप्रतिहत, अप्रत्याख्यात-पाप-कर्म वाले हो।' इत्यादि। सातवें शतक के दूसरे उद्देशक में कहे अनुसार कहा। 'यावत् तुम एकांत बाल हो।'

३—यह सुनकर उन स्थविर भगवन्तों ने उन अन्यतीर्थिकों से इस प्रकार पूछा—'हे आर्यों। हम किस कारण त्रिविध-त्रिविध असंयत अविरत यावत् एकांत बाल हैं ?'

४--तब उन अन्यतीर्थिकों ने उन स्थविर भगवन्तों से इस प्रकार कहा—'हे आर्यो ! तुम अदत्त पदार्थ ग्रहण करते हो, अदत्त खाते हो और अदत्त की अनुमति देते हो। इस प्रकार अदत्त का ग्रहण करते हुए, अदत्त खाते हुए और अदत्त की अनुमति देते हुए तुम त्रिविध-त्रिविध असंयत, अविरत यावत् एकांत बाल हो।'

५--तब उन स्थविर भगवन्तों ने उन अन्यतीर्थिकों से इस प्रकार पूछा--'हे आर्यों ! हम किस प्रकार अदत्त का ग्रहण करते हैं, अदत्त का भोजन करते हैं और अदत्त की अनुमति देते हैं, जिससे कि अदत्त का ग्रहण करते हुए अदत्त खाते हुए और अदत्त की अनुमति देते हुए हम त्रिविध-त्रिविध असंयत, अविरत यावत् एकान्त बाल हैं ?'

६--उन अन्यतीर्थिकों ने उन स्थविर भगवन्तों से इस प्रकार कहा;--'हे आर्यों ! आपके मत में दिया जाता हुआ पदार्थ 'नहीं दिया गया,' ग्रहण किया जाता हुआ 'ग्रहण नहीं किया गया' और पात्र में डाली जाती हुई वस्तु 'नहीं डाली गई'--ऐसा कथन है, इसलिए हे आर्यों ! आपको दिया जाता हुआ पदार्थ जब तक पात्र में नहीं पड़ा, तब तक बीच में से ही कोई उसका अपहरण करले, तो 'वह उस गृहपति के पदार्थ का अपहरण हुआ'--ऐसा आप कहते हैं, परन्तु 'आपके पदार्थ का अपहरण हुआ'--ऐसा नहीं कहते। इसलिये आप अदत्त का ग्रहण करते हो यावत् अदत्त की अनुमति देते हो और अदत्त का ग्रहण करते हुए यावत् एकान्त बाल हो।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

७-तएणं ते थेरा भगवंतो ते अण्णउत्थिए एवं वयासी-णो खलु अज्जो ! अम्हे अदिण्णं गेण्हामो, अदिण्णं भुंजामो, अदिण्णं साइज्जामो; अम्हे णं अज्जो ! दिण्णं गेण्हामो, दिण्णं भुंजामो, दिण्णं साइज्जामो । तएणं अम्हे दिण्णं गेण्हमाणा, दिण्णं भुंजमाणा, दिण्णं साइज्जमाणा तिविहं तिविहेणं संजय-विरय-पडिहय० जहा सत्तमसए जाव एगंतपंडिया या वि भवामो ।

८-तएणं ते अण्णउत्थिया ते थेरे भगवंते एवं वयासी-केण कारणेणं अज्जो ! तुम्हे दिण्णं गेण्हह, जाव दिण्णं साइज्जह, जए णं तुब्भे दिण्णं गेण्हमाणा, जाव एगंतपंडिया या वि भवह ?

९-तएणं ते थेरा भगवंतो ते अण्णउत्थिए एवं वयासी-अम्हे (म्हं) णं अज्जो ! दिज्जमाणे दिण्णे, पडिग्गाहिज्जमाणे पडिग्गहिए णिस्सरिज्जमाणे णिसिट्ठे; अम्हं णं अज्जो ! दिज्जमाणं पडिग्गहगं असंपत्तं एत्थ णं अंतरा केइ अवहरेज्जा, अम्हं णं तं, णो खलु तं गाहावइस्स; तएणं अम्हे दिण्णं गेण्हामो, दिण्णं भुंजामो, दिण्णं साइज्जामो, तए णं अम्हे दिण्णं गेण्हमाणा, जाव दिण्णं साइज्जमाणा तिविहं तिविहेणं संजय० जाव एगंतपंडिया वि भवामो। तुब्भे णं अज्जो ! अप्पणा चेव तिविहं तिविहेणं अस्संजय० जाव एगंतबाला यावि भवह ।

भावार्थ-७-यह सुनकर उन स्थविर भगवंतों ने उन अन्यतीर्थिकों से इस

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रकार कहा कि—'हे आर्यों ! हम अदत्त का ग्रहण नहीं करते, अदत्त आहार नहीं करते और अदत्त की अनुमति भी नहीं देते।' 'हे आर्यों ! हम दत्त (स्वामी द्वारा दिये हुए) पदार्थ को ग्रहण करते हैं, दत्त का आहार करते हैं और दत्त की अनुमति देते हैं। इसलिए दत्त का ग्रहण करते हुए, दत्त का आहार करते हुए और दत्त की अनुमति देते हुए हम त्रिविध-त्रिविध संयत, विरत, प्रतिहत-प्रत्याख्यातपापकर्म वाले हैं। इस प्रकार सातवें शतक के दूसरे उद्देशक में कहे अनुसार यावत् हम एकांत पंडित हैं।'

८-तब उन अन्यतीर्थिकों ने उन स्थविर भगवंतों से इस प्रकार कहा—'हे आर्यो ! तुम किस प्रकार दत्त का ग्रहण करते हो, यावत् दत्त की अनुमति देते हो, जिससे दत्त का ग्रहण करते हुए यावत् तुम एकांत पण्डित हो ?'

९-तब उन स्थविर भगवंतों ने उन अन्यतीर्थिकों से इस प्रकार कहा—'हे आर्यो ! हमारे सिद्धान्त में—दिया जाता हुआ पदार्थ 'दिया गया,' ग्रहण किया जाता हुआ 'ग्रहण किया गया' और पात्र में डाला जाता हुआ 'डाला गया' कहलाता है। इसलिये हे आर्यो ! हमको दिया जाता हुआ पदार्थ जब तक हमारे पात्र में नहीं पड़ा है, तब तक बीच में ही कोई व्यक्ति उसका अपहरण करले, तो वह पदार्थ हमारा अपहृत हुआ कहलाता है, किन्तु वह गृहस्थ का पदार्थ अपहृत हुआ—ऐसा नहीं कहलाता। इसलिये हम दत्त का ग्रहण करते हैं, दत्त का आहार करते हैं और दत्त की अनुमति देते हैं। इस प्रकार दत्त का ग्रहण करते हुए यावत् दत्त की अनुमति देते हुए हम त्रिविध, त्रिविध संयत यावत् एकांत पंडित हैं। हे आर्यो ! तुम स्वयं त्रिविध-त्रिविध असंयत यावत् एकांत बाल हो।

१०—तएणं ते अण्णउत्थिया ते थेरे भगवंते एवं वयासी—केण कारणेणं अज्जो ! अम्हे तिविहं जाव एगंतबाला यावि भवामो ?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

११–तएणं ते थेरा भगवंतो ते अण्णउत्थिए एवं वयासी—तुब्भे णं अज्जो ! अदिण्णं गेण्हह, अदिण्णं भुंजह, अदिण्णं साइज्जह, तएणं तुब्भे अदिण्णं गेण्हामो, जाव एगंतबाला यावि भवह ।

१२–तएणं ते अण्णउत्थिया ते थेरे भगवंते एवं वयासी–केण कारणेणं अज्जो ! अम्हे अदिण्णं गेण्हामो, जाव एगंतबाला यावि भवामो ?

१३ तएणं ते थेरा भगवंतो ते अण्णउत्थिए एवं वयासी–तुब्भे (ब्भं) णं अज्जो ! दिज्जमाणे अदिण्णे, तं चेव जाव गाहावइस्स णं तं, णो खलु तं तुब्भं, तएणं तुज्झे अदिण्णं गेण्हह, तं चेव जाव एगंतबाला यावि भवह ।

भावार्थ–१० इसके बाद उन अन्यतीर्थिकों ने उन स्थविर भगवन्तों से इस प्रकार कहा कि–'हे आर्यों ! हम किस कारण त्रिविध-त्रिविध असंयत यावत् एकांत बाल हैं ?'

११–उन स्थविर भगवंतों ने उन अन्यतीर्थिकों से इस प्रकार कहा कि 'हे आर्यो ! तुम अदत्त का ग्रहण करते हो, अदत्त का आहार करते हो और अदत्त की अनुमति देते हो। इसलिये अदत्त का ग्रहण करते हुए तुम यावत् एकांत बाल हो।'

१२–तब उन अन्यतीर्थिकों ने उन स्थविर भगवंतों से इस प्रकार पूछा–'हे आर्यो ! हम किस कारण अदत्त का ग्रहण करते हैं यावत् एकांत बाल हैं ?'

१३–उन स्थविर भगवंतों ने उन अन्यतीर्थिकों से इस प्रकार कहा—

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

'हे आर्यों ! तुम्हारे मत में दिया जाता हुआ पदार्थ 'नहीं दिया गया,' इत्यादि पूर्वोक्त सारा वर्णन कहना चाहिये। यावत् वह पदार्थ गृहस्थ का है, तुम्हारा नहीं। इसलिये तुम अदत्त का ग्रहण करते हो यावत् पूर्वोक्त प्रकार से तुम एकांत बाल हो।

१४—तएणं ते अण्णउत्थिया ते थेरे भगवंते एवं वयासी—तुब्भे णं अज्जो ! तिविहं तिविहेणं असंजय० जाव एगंतबाला यावि भवह।

१५—तएणं ते थेरा भगवंतो ते अण्णउत्थिए एवं वयासी—केण कारणेणं अज्जो ! अम्हे तिविहं तिविहेणं जाव एगंतबाला यावि भवामो ?

१६—तएणं ते अण्णउत्थिया ते थेरे भगवंते एवं वयासी—तुब्भे णं अज्जो ! रीयं रीयमाणा पुढविं पेच्चेह, अभिहणह, वत्तेह, लेसेह, संघाएह, संघट्टेह, परितावेह, किलामेह, उवद्दवेह; तएणं तुब्भे पुढविं पेच्चेमाणा, अभिहणमाणा जाव उवद्दवेमाणा तिविहं तिविहेणं असंजय-विरय० जाव एगंतबाला यावि भवह।

१७—तएणं ते थेरा भगवंतो ते अण्णउत्थिए एवं वयासी—णो खलु अज्जो ! अम्हे रीयं रीयमाणा पुढविं पेच्चेमो, अभिहणामो, जाव उवद्दवेमो; अम्हे णं अज्जो ! रीयं रीयमाणा कायं वा, जोयं वा, रियं वा पडुच्च देसं देसेणं वयामो, पएसं पएसेणं वयामो; तेणं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अम्हे देसं देसेणं वयमाणा पएसं पएसेणं वयमाणा णो पुढविं पेच्चेमो अभिहणामो, जाव उवद्दवेमो; तएणं अम्हे पुढविं अपेच्चेमाणा, अणभिहणेमाणा, जाव अणुवद्दवेमाणा तिविहं तिविहेणं संजय० जाव एगंतपंडिया या वि भवामो । तुब्भे णं अज्जो ! अप्पणा चेव तिविहं तिविहेणं अस्संजय० जाव बाला या वि भवह ।

कठिन शब्दार्थ—रीयं रीयमाणा—गति करते हुए पेच्चेह—दबाते हो, वत्तेह—आघात करते हो, लेसेह—भूमि में संश्लिष्ट करते हो, संघट्टेह—स्पर्श करते हो, जोयं—योग ।

भावार्थ—१४ यह सुनकर उन अन्यतीर्थिकों ने उन स्थविर भगवंतों से इस प्रकार कहा—'हे आर्यो ! तुम त्रिविध-त्रिविध असंयत यावत् एकांत बाल हो ।'

१५—तब उन स्थविर भगवंतों ने अन्यतीर्थिकों से इस प्रकार पूछा—'हे आर्यो ! हम किस कारण से त्रिविध-त्रिविध असंयत यावत् एकांत बाल हैं ?'

१६—तब उन अन्यतीर्थिकों ने उन स्थविर भगवन्तों से इस प्रकार कहा—'हे आर्यो ! चलते हुए तुम पृथ्वीकायिक जीवों को दबाते हो, मारते हो, पादाभिघात करते हो, भूमि के साथ उन्हें श्लिष्ट करते हो, संहत (एकत्रित) करते हो, संघट्टित करते हो, परितापित करते हो, क्लान्त करते हो, मारणान्तिक कष्ट देते हो, उपद्रवित करते हो (मार देते हो) इस प्रकार पृथ्वीकायिक जीवों को दबाते हुए यावत् मारते हुए तुम त्रिविध-त्रिविध असंयत, अविरत यावत् एकान्त बाल हो ।

१७—तब उन स्थविर भगवन्तों ने उन अन्यतीर्थिकों से इस प्रकार कहा—'हे आर्यो ! चलते हुए हम पृथ्वीकायिक जीवों को दबाते नहीं, हनते नहीं, यावत् मारते नहीं । हे आर्यो ! चलते हुए हम काय अर्थात् शरीर के लघु-नीत, बडीनीत आदि कार्य के लिये, योग के लिये अर्थात् ग्लानादिक की सेवा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

के लिये और ऋत (सत्य) के लिये अर्थात् अप्कायादि जीव-रक्षण रूप संयम के लिये एक स्थल से दूसरे स्थल पर जाते हैं, एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश में आते इस प्रकार एक स्थल से दूसरे स्थल पर और एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश में आते हुए हम पृथ्वीकायिक जीवों को दबाते नहीं, उनका हनन नहीं करते यावत् उनको मारते नहीं, अतः पृथ्वीकायिक जीवों को नहीं दबाते हुए, नहीं हनते हुए यावत् नहीं मारते हुए हम त्रिविध-त्रिविध संयत, विरत यावत् एकांत पण्डित हैं। किंतु हे आर्यों ! तुम स्वयं त्रिविध-त्रिविध असंयत अविरत यावत् एकान्त बाल हो।'

१८–तएणं ते अण्णउत्थिया ते थेरे भगवंते एवं वयासी-केण कारणेणं अज्जो ! अम्हे तिविहं तिविहेणं जाव एगंतबाला या वि भवामो ?

१९–तएणं ते थेरा भगवंतो ते अण्णउत्थिए एवं वयासी–तुब्भे णं अज्जो ! रीयं रीयमाणा पुढविं पेच्चेह, जाव उवद्दवेह; तएणं तुब्भे पुढविं पेच्चेमाणा, जाव उवद्दवेमाणा तिविहं तिविहेणं जाव एगंतबाला यावि भवह।

२०–तएणं ते अण्णउत्थिया ते थेरे भगवंते एवं वयासी–तुब्भे (हंभे) णं अज्जो ! गम्ममाणे अगए, वीइक्कमिज्जमाणे अवीइक्कंते, रायगिहं णयरं संपाविउकामे असंपत्ते।

२१–तएणं ते थेरा भगवंतो ते अण्णउत्थिए एवं वयासी–णो खलु अज्जो ! अम्हं गम्ममाणे अगए, वीइक्कमिज्जमाणे अवीइक्कंते,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रायगिहं णयरं जाव असंपत्ते; अम्हं णं अज्जो ! गम्ममाणे गए, वीइक्कमिज्जमाणे वीइक्कंते, रायगिहं णयरं संपाविउकामे संपत्ते; तुब्भं णं अप्पणा चेव गम्ममाणे अगए, वीइक्कमिज्जमाणे अवीइक्कंते, रायगिहं णयरं जाव असंपत्ते । तएणं ते थेरा भगवंतो अण्णउत्थिए एवं पडिहणंति, पडिहणित्ता गइप्पवायं णाम अज्झयणं पण्णवइंसु ।

कठिन शब्दार्थ—गम्ममाणे अगए—गम्यमान अगत (जाते हुए को नहीं गया) **वीइक्कमिज्जमाणे अवीइक्कंते**—उल्लंघन करते हुए अनुल्लंघित, **पडिहणंति**—निरुत्तर किये, **गइप्पवायं**—गति-प्रवाद—जिसमें गति के सम्बन्ध में वर्णन किया गया हो, **पण्णवइंसु**—प्ररूपणा की ।

भावार्थ—१८—तब उन अन्यतीर्थिकों ने उन स्थविर भगवंतों से इस प्रकार कहा—'हे आर्यों ! किस कारण हम त्रिविध-त्रिविध असंयत, अविरत यावत् एकांत बाल हैं ?'

१९—तब उन स्थविर भगवंतों ने उन अन्यतीर्थिकों से इस प्रकार कहा—'हे आर्यों ! चलते हुए तुम पृथ्वीकायिक जीवों को दबाते हो यावत् मारते हो। इसलिये पृथ्वीकायिक जीवों को दबाते हुए यावत् मारते हुए तुम त्रिविध-त्रिविध असंयत, अविरत यावत् एकांत बाल हो ।

२०—तब उन अन्यतीर्थिकों ने उन स्थविर भगवंतों से इस प्रकार कहा—'हे आर्यों ! तुम्हारे मत में 'गच्छन्' (जाता हुआ) 'अगत' (नहीं गया) कहलाता है । जो उल्लंघन किया जाता हो, वह 'उल्लंघन नहीं किया गया'—ऐसा कहलाता है और राजगृह नगर को प्राप्त करने की इच्छावाला पुरुष 'असंप्राप्त' (प्राप्त नहीं किया हुआ) कहलाता है ।'

२१—तब उन स्थविर भगवन्तों ने उन अन्यतीर्थिकों से इस प्रकार कहा—'हे आर्यों ! हमारे मत में गच्छन्, अगत नहीं कहलाता । व्यतिक्रम्यमाण (उल्लंघन किया जाता हुआ) 'अव्यतिक्रान्त' (उल्लंघन नहीं किया) नहीं कहलाता

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

और राजगृह नगर को प्राप्त करने की इच्छा वाला व्यक्ति असंप्राप्त नहीं कहलाता, किन्तु हे आर्यो ! हमारे मत में 'गच्छन्' गत, व्यतिक्रम्यमाण 'व्यतिक्रान्त' और राजगृह नगर को प्राप्त करने की इच्छा वाला व्यक्ति 'संप्राप्त' कहलाता है। हे आर्यो ! तुम्हारे ही मत में 'गच्छन्' 'अगत,' व्यतिक्रम्यमाण 'अव्यतिक्रान्त' और राजगृह नगर को प्राप्त करने की इच्छा वाला 'असंप्राप्त' कहलाता है।

इस प्रकार उन स्थविर भगवन्तों ने उन अन्यतीर्थिकों को निरुत्तर किया, निरुतर करके उन्होंने 'गति-प्रपात' नामक अध्ययन प्ररूपित किया।

२२ प्रश्न-कइविहे णं भंते ! गइप्पवाए पण्णत्ते ?

२२ उत्तर-गोयमा ! पंचविहे गइप्पवाए पण्णत्ते, तं जहा-पयोगगई, ततगई, बंधण-छेयणगई, उववायगई, विहायगई; एत्तो आरब्भ पयोगपयं णिरवसेसं भाणियव्वं, जाव सेत्तं विहायगई।

❀ सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति ❀

॥ अट्ठमसए सत्तमो उद्देसो समत्तो ॥

कठिन शब्दार्थ-**पयोगगई**-प्रयोग गति, **ततगई**-विस्तीर्ण गति, **बंधण-छेयणगई**-बन्धन छेदन गति, **उववायगई**-उत्पाद गति, **विहायगई**-आकाश में गमन करना, **आरब्भ**-प्रारम्भ करके।

भावार्थ-२२ प्रश्न-हे भगवन् ! गति-प्रपात कितने प्रकार का कहा गया है ?

२२ उत्तर-हे गौतम ! गति-प्रपात पांच प्रकार का कहा गया है। यथा-१ प्रयोग गति, २ तत गति, ३ बन्धन छेदन गति, ४ उपपात गति और

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

५ विहायोगति। यहां से प्रारम्भ करके प्रज्ञापना सूत्र का सोलहवां प्रयोग पद सम्पूर्ण कहना चाहिये। यावत् 'यह विहायोगति का वर्णन हुआ'—यहां तक कहना चाहिये।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है। ऐसा कहकर गौतमस्वामी यावत् विचरते हैं।

विवेचन—राजगृह नगर के बाहर बहुत से अन्यतीर्थिक रहते थे। एक समय वे श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के स्थविर मुनियों के पास आये और उनसे कहा कि तुम तीन करण तीन योग से असंयत, अविरत यावत् एकान्त बाल हो, क्योंकि तुम अदत्त को ग्रहण करते हो, अदत्त खाते हो और अदत्त की अनुमति देते हो, तब स्थविर मुनियों ने उनको युक्ति पूर्वक समझाया कि हम (जैन मुनि) अदत्त ग्रहण नहीं करते, अदत्त नहीं खाते और अदत्त की अनुमति भी नहीं देते। अपितु तुम ही अदत्त ग्रहण करते हो यावत् अदत्त की अनुमति देते हो। अतः तुम ही तीन करण तीन योग से असंयत, अविरत यावत् एकान्त बाल हो। इसके बाद अन्यतीर्थिकों के प्रश्न के उत्तर में स्थविर भगवन्तों ने उन्हें यह भी समझाया कि हम शारीरिक कारण के लिये, ग्लानादि की सेवा के लिये तथा जीव-रक्षा रूप संयम के लिये एक स्थान से दूसरे स्थान पर यतनापूर्वक गमनागमन करते हैं। इसलिये हम पृथ्वीकायिकादि किसी भी जीव को नहीं दबाते, यावत् नहीं मारते। अतएव हम त्रिविध-त्रिविध संयत, विरत यावत् एकान्त पण्डित हैं। किन्तु हे आर्यों ! तुम एक स्थान से दूसरे स्थान पर अयतनापूर्वक गमनागमन करते हो। इस प्रकार तुम पृथ्वीकायिक आदि जीवों को दबाते हो यावत् मारते हो। अतएव तुम त्रिविध-त्रिविध असंयत, अविरत यावत् एकान्त बाल हो।

स्थविर भगवन्तों ने इस प्रकार उत्तर देकर अन्यतीर्थिकों को निरुत्तर किया। इसके बाद उन्हें 'गतिप्रपात' नामक अध्ययन कहा। गतिप्रपात के पांच भेद हैं। यथा—प्रयोग गति, ततगति, बन्धनछेदन गति, उपपात गति और विहायोगति। संक्षेप में इनका अर्थ इस प्रकार है।

१ प्रयोग गति—जीव के व्यापार से अर्थात् पन्द्रह प्रकार के योगों से जो गति हो, वह 'प्रयोगगति' कहलाती है। यहाँ क्षेत्रान्तर या पर्यायान्तर प्राप्ति रूप गति समझनी चाहिये, क्योंकि जीव के द्वारा व्याप्त सत्यमनोयोग आदि के पुद्गल अल्प मात्रा में अथवा अधिक मात्रा में क्षेत्रान्तर गमन करते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

२ ततगति-तत अर्थात् विस्तार वाली गति को 'ततगति' कहते हैं। जैसे-कोई व्यक्ति दूसरे गाँव जाने के लिये रवाना हुआ, परन्तु अभी उस ग्रामादि में पहुँचा नहीं, उसकी एक एक पैर रखते हुए जो क्षेत्रान्तर प्राप्ति रूप गति होती है, वह 'ततगति' कहलाती है। इस गति का विषय विस्तृत होने से इसके साथ 'तत' यह विशेषण लगाया गया है, अतएव इसका कथन पृथक् किया गया है। अन्यथा 'पैरों से चलना' यह काय-व्यापार रूप है, अतः इसका प्रयोग गति में ही समावेश हो जाता है।

३ बन्धनछेदन गति-बन्धन के छेदन से होने वाली गति-'बन्धनछेदनगति' कहलाती है। जैसे-जीव से मुक्त शरीर की अथवा शरीर से मुक्त जीव की गति होती है।

४ उपपात गति-उत्पन्न होने रूप गति को 'उपपात गति' कहते हैं। इसके तीन भेद हैं। क्षेत्र उपपात, भव उपपात और नोभवोपपात। जहाँ नारकादि जीव और सिद्ध जीव रहते हैं वह आकाश 'क्षेत्रोपपात' कहलाता है। कर्मों के वश होकर जीव, जिस नारकादि पर्याय में उत्पन्न होते हैं, वह 'भवोपपात' कहलाता है। कर्म सम्बन्ध से रहित अर्थात् नारकादि पर्याय से रहित उत्पन्न होने रूप गति 'नोभवोपपात' गति कहलाती है। इस प्रकार की गति सिद्ध जीव और पुद्गलों में पाई जाती है।

५ विहायोगति-आकाश में होने वाली गति को 'विहायोगति' कहते हैं।

इन गतियों के भेद, प्रभेद, उनका स्वरूप एवं विस्तृत वर्णन प्रज्ञापना सूत्र के सोलहवें प्रयोगपद में है।

॥ इति आठवें शतक का सातवाँ उद्देशक सम्पूर्ण ॥

शतक ८ उद्देशक ८

प्रत्यनीक

१ प्रश्न-रायगिहे जाव एवं वयासी-गुरू णं भंते! पडुच्च कइ पडिणीया पण्णत्ता?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१ उत्तर–गोयमा ! तओ पडिणीया पण्णत्ता, तंजहा–आयरियपडिणीए, उवज्झायपडिणीए, थेरपडिणीए।

२ प्रश्न–गइं णं भंते ! पडुच्च कइ पडिणीया पण्णत्ता ?

२ उत्तर–गोयमा ! तओ पडिणीया पण्णत्ता, तंजहा–इहलोगपडिणीए, परलोगपडिणीए, दुहओलोगपडिणीए।

३ प्रश्न–समूहं णं भंते ! पडुच्च कइ पडिणीया पण्णत्ता ?

३ उत्तर–गोयमा ! तओ पडिणीया पण्णत्ता, तंजहा–कुलपडिणीए, गणपडिणीए, संघपडिणीए।

४ प्रश्न–अणुकंपं पडुच्च पुच्छा ?

४ उत्तर–गोयमा ! तओ पडिणीया पण्णत्ता, तंजहा–तवस्सिपडिणीए, गिलाणपडिणीए, सेहपडिणीए।

५ प्रश्न–सुयं णं भंते ! पडुच्च पुच्छा ?

५ उत्तर–गोयमा ! तओ पडिणीया पण्णत्ता, तंजहा–सुत्तपडिणीए, अत्थपडिणीए, तदुभयपडिणीए।

६ प्रश्न–भावं णं भंते ! पडुच्च पुच्छा ?

६ उत्तर–गोयमा ! तओ पडिणीया पण्णत्ता, तं जहा–णाणपडिणीए, दंसणपडिणीए, चरित्तपडिणीए।

कठिन शब्दार्थ–पडुच्च–अपेक्षा, **पडिणीए**–प्रत्यनीक (द्वेषी, विरोधी) **कुल**–एक आचार्य के शिष्य, **गण**–कुलों का समूह, **संघ**–समस्त साधु समुदाय, **गिलाण**–रोगी, **सेहपडिणीए**–

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शैक्ष (नवदीक्षित) प्रत्यनीक, सुयं-श्रुत, तदुभय-दोनों।

भावार्थ-१ प्रश्न-राजगृह नगर में गौतमस्वामी ने यावत् इस प्रकार पूछा-हे भगवन् ! गुरु महाराज की अपेक्षा कितने प्रत्यनीक (द्वेषी) कहे गये हैं ?

१ उत्तर-हे गौतम ! तीन प्रत्यनीक कहे गये हैं। यथा-१ आचार्य प्रत्यनीक, २ उपाध्याय प्रत्यनीक और ३ स्थविर प्रत्यनीक।

२ प्रश्न-हे भगवन् ! गति की अपेक्षा कितने प्रत्यनीक कहे गये हैं ?

२ उत्तर-हे गौतम ! तीन प्रत्यनीक कहे गये हैं। यथा-१ इहलोक प्रत्यनीक, २ परलोक प्रत्यनीक और ३ उभयलोक प्रत्यनीक।

३ प्रश्न-हे भगवन् ! समूह की अपेक्षा कितने प्रत्यनीक कहे गये हैं ?

३ उत्तर-हे गौतम ! तीन प्रत्यनीक कहे गये हैं। यथा-१ कुल प्रत्यनीक, २ गण प्रत्यनीक और ३ संघ प्रत्यनीक।

४ प्रश्न-हे भगवन् ! अनुकम्पा की अपेक्षा कितने प्रत्यनीक कहे गये हैं ?

४ उत्तर-हे गौतम ! तीन प्रत्यनीक कहे गये हैं। यथा-१ तपस्वी प्रत्यनीक, २ ग्लान प्रत्यनीक और ३ शैक्ष प्रत्यनीक।

५ प्रश्न-हे भगवन् ! श्रुत की अपेक्षा कितने प्रत्यनीक कहे गये हैं ?

५ उत्तर-हे गौतम ! तीन प्रत्यनीक कहे गये है। यथा-१ सूत्र प्रत्यनीक, २ अर्थ प्रत्यनीक और ३ तदुभय प्रत्यनीक।

६ प्रश्न-हे भगवन् ! भाव की अपेक्षा कितने प्रत्यनीक कहे गये हैं ?

६ उत्तर-हे गौतम ! तीन प्रत्यनीक कहे गये हैं। यथा-१ ज्ञान प्रत्यनीक, २ दर्शन प्रत्यनीक और ३ चारित्र प्रत्यनीक।

विवेचन—प्रतिकूल आचरण करने वाले को 'प्रत्यनीक' कहते हैं। अर्थ के व्याख्याता आचार्य और सूत्र के दाता उपाध्याय कहलाते हैं। स्थविर के तीन भेद हैं। यथा-१ वयस्थविर, २ श्रुतस्थविर और ३ प्रव्रज्या स्थविर। साठ वर्ष की उम्र वाले साधु 'वयस्थविर,' स्थानांग और समवायांग सूत्र के ज्ञाता साधु 'श्रुतस्थविर' और बीस वर्ष की दीक्षा पर्याय वाले साधु 'प्रव्रज्या स्थविर' कहलाते हैं। आचार्य, उपाध्याय और स्थविर मुनियों का जाति आदि से अवर्णवाद बोलना, दोष देखना, अहित करना, उनके वचनों का अपमान करना, उनके

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

समीप न रहना, उनके उपदेश का उपहास करना, वैयावृत्य न करना आदि प्रतिकूल व्यवहार करने वाले इनके 'प्रत्यनीक' कहलाते हैं।

मनुष्य आदि गति की अपेक्षा प्रतिकूल आचरण करने वाले 'गति-प्रत्यनीक' कहलाते हैं। पंचाग्नि तप करने वाले की तरह अज्ञानवश इन्द्रियों के प्रतिकूल आचरण करनेवाला 'इहलोक-प्रत्यनीक' है। ऐसा करने वाला व्यर्थ ही इन्द्रिय और शरीर को दुःख पहुंचाता है और अपना वर्तमान भव बिगाड़ता है। इन्द्रियों के विषयों में आसक्त रहने वाला—'परलोक-प्रत्यनीक' है। वह आसक्ति भाव से अशुभ-कर्म उपार्जित करता है और परलोक में दुःख भोगता है। चोरी आदि करने वाला 'उभय-लोक-प्रत्यनीक' है। वह व्यक्ति अपने कुकृत्यों से यहाँ दण्डित होता है और परभव में दुर्गति पाता है।

समूह (साधु समुदाय) के विरुद्ध आचरण करने वाला 'समूह-प्रत्यनीक' है। कुल-प्रत्यनीक, गण-प्रत्यनीक और संघ-प्रत्यनीक के भेद से समूह-प्रत्यनीक तीन प्रकार का है। एक आचार्य की संतति 'कुल' है, जैसे—चान्द्र आदि। आपस में संबंध रखने वाले तीन कुलों का समूह 'गण' कहलाता है। ज्ञान, दर्शन और चारित्र के गुणों से अलंकृत सकल साधुओं का समुदाय 'संघ' है। कुल, गण और संघ के विरुद्ध आचरण करने वाले क्रमशः कुल-प्रत्यनीक, गण-प्रत्यनीक और संघ-प्रत्यनीक कहलाते हैं।

अनुकम्पा करने योग्य साधुओं की आहारादि द्वारा सेवा नहीं करके उनके प्रतिकूल आचरण करने वाला साधु 'अनुकम्पा प्रत्यनीक' है। तपस्वी, ग्लान और शैक्ष (नव-दीक्षित) ये तीन अनुकम्पा योग्य हैं। इनके भेद से अनुकंपा-प्रत्यनीक के भी तीन भेद हैं। यथा—तपस्वी-प्रत्यनीक, ग्लान-प्रत्यनीक और शैक्षप्रत्यनीक।

श्रुत-प्रत्यनीक—श्रुत के विरुद्ध कथन आदि करने वाला 'श्रुत-प्रत्यनीक' है। सूत्र अर्थ और तदुभय के भेद से श्रुत तीन प्रकार का है। श्रुत के भेद से श्रुतप्रत्यनीक के भी सूत्र-प्रत्यनीक, अर्थ-प्रत्यनीक और तदुभय-प्रत्यनीक, ये तीन भेद हैं। शरीर, व्रत, प्रमाद, अप्रमाद आदि बातें लोक में प्रसिद्ध ही हैं। फिर शास्त्रों के अध्ययन से क्या लाभ? निगोद, देव, नारकी आदि का ज्ञान भी व्यर्थ है। इस प्रकार शास्त्रज्ञान को निष्प्रयोजन अथवा उसमें दोष बताने वाला 'श्रुत-प्रत्यनीक' है।

भावप्रत्यनीक—क्षायिकादि भावों के प्रतिकूल आचरण करने वाला 'भाव-प्रत्यनीक' है। ज्ञान, दर्शन और चारित्र के भेद से भाव-प्रत्यनीक के तीन भेद हैं। ज्ञान, दर्शन और चारित्र के विरुद्ध आचरण करना अथवा इनमें दोष आदि दिखाना 'भावप्रत्यनीकता' है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

व्यवहार के भेद

७ प्रश्न–कइविहे णं भंते ! ववहारे पण्णत्ते ?

७ उत्तर–गोयमा ! पंचविहे ववहारे पण्णत्ते, तं जहा–आगमे, सुयं, आणा, धारणा, जीए। जहा से तत्थ आगमे सिया आगमेणं ववहारं पट्ठवेज्जा; णो य से तत्थ आगमे सिया, जहा से तत्थ सुए सिया, सुएणं ववहारं पट्ठवेज्जा। णो य से तत्थ सुए सिया, जहा से तत्थ आणा सिया, आणाए ववहारं पट्ठवेज्जा; णो य से तत्थ आणा सिया, जहा से तत्थ धारणा सिया, धारणाए ववहारं पट्ठवेज्जा; णो य से तत्थ धारणा सिया; जहा से तत्थ जीए सिया, जीएणं ववहारं पट्ठवेज्जा, इच्चेएहिं पंचहिं ववहारं पट्ठवेज्जा; तंजहा–आगमेणं, सुएणं आणाए, धारणाए, जीएणं; जहा जहा से आगमे सुए आणा धारणा जीए तहा तहा ववहारं पट्ठवेज्जा।

८ प्रश्न–से किमाहु भंते ! आगमबलिया समणा णिग्गंथा ?

८ उत्तर–इच्चेयं पंचविहं ववहारं जया जया जहिं जहिं तया तया तहिं तहिं अणिस्सिओवस्सियं सम्मं ववहरमाणे समणे णिग्गंथे आणाए आराहए भवइ।

कठिन शब्दार्थ–ववहारे–व्यवहार (प्रवृत्ति), पट्ठवेज्जा–प्रवृत्ति करे, आगमबलिया–विशेष बलवान ज्ञानी (आगम के बल वाले) इच्चेएहिं—इस प्रकार, जया जया—जब जब, जहिं जहिं–जहाँ जहाँ, तया तया तहिं तहिं—तब तब वहाँ वहाँ, अणिस्सिओवस्सियं—

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अनिश्रोपश्रित (राग-द्वेष के त्यागपूर्वक)।

भावार्थ-७ प्रश्न-हे भगवन् ! व्यवहार कितने प्रकार के कहे गये हैं ?

७ उत्तर-हे गौतम ! व्यवहार पांच प्रकार के कहे गये हैं। यथा-१ आगम व्यवहार, २ श्रुत व्यवहार, ३ आज्ञा व्यवहार, ४ धारणा व्यवहार, और ५ जीत व्यवहार। इन पांच प्रकार के व्यवहारों में से जिसके पास आगम-व्यवहार हो, उसे आगम-व्यवहार से कार्य चलाना चाहिये। जिसके पास आगम-व्यवहार न हो, उसे श्रुत-व्यवहार से कार्य चलाना चाहिये। जिसके पास श्रुत-व्यवहार न हो, उसे आज्ञा-व्यवहार से कार्य चलाना चाहिये। जिसके पास आज्ञा-व्यवहार न हो, उसे धारणा-व्यवहार से कार्य चलाना चाहिये। जिसके पास धारणा न हो, उसे जीत-व्यवहार से कार्य चलाना चाहिये। इस प्रकार इन पांच व्यवहारों से कार्य चलाना चाहिये। उपरोक्त रीति के अनुसार आगम, श्रुत, आज्ञा, धारणा और जीत, इन व्यवहारों में से जिसके पास जो व्यवहार हो, उससे कार्य चलाना चाहिये।

८ प्रश्न-हे भगवन् ! आगम-बलिक श्रमण निर्ग्रन्थ क्या कहते हैं ?

८ उत्तर-हे गौतम ! इन पांच प्रकार के व्यवहारों में से जिस समय जो व्यवहार हो, उससे अनिश्रोपश्रित (रागद्वेष के त्यागपूर्वक) भली प्रकार से व्यवहार चलाता हुआ श्रमण-निर्ग्रन्थ, आज्ञा का आराधक होता है।

विवेचन-मोक्षाभिलाषी आत्माओं की प्रवृत्ति, निवृत्ति एवं तत्कारणक ज्ञान विशेष को 'व्यवहार' कहते हैं। उसके उपरोक्त पाँच भेद हैं। उनका स्वरूप इस प्रकार है—

१ आगम व्यवहार-केवल ज्ञान, मनःपर्यय ज्ञान, अवधि ज्ञान, चौदह पूर्व, दस पूर्व और नव पूर्व का ज्ञान 'आगम' कहलाता है। आगम ज्ञान से प्रवर्तित प्रवृत्ति निवृत्ति रूप व्यवहार-'आगम व्यवहार' कहलाता है।

२ श्रुत व्यवहार-आचार-प्रकल्प आदि ज्ञान-श्रुत है। इससे प्रवर्ताया जाने वाला व्यवहार 'श्रुत-व्यवहार' कहलाता है। नव, दस और चौदह पूर्व का ज्ञान भी श्रुतरूप है, परन्तु अतीन्द्रिय अर्थ विषयक विशिष्ट ज्ञान का कारण होने से उक्त ज्ञान अतिशय वाला है। इसलिये वह 'आगमरूप' माना गया है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

३ आज्ञा व्यवहार-दो गीतार्थ साधु, दूसरे से अलग दूर देश में रहे हुए हों और जंघाबल क्षीण हो जाने से वे विहार करने में असमर्थ हों। उनमें से किसी एक को प्रायश्चित आने पर वह मुनि, अगीतार्थ शिष्य को, आगम का सांकेतिक गूढ़ भाषा में अपने अतिचार दोष कहकर या लिखकर उसे अन्य गीतार्थ मुनि के पास भेजता है और उसके द्वारा आलोचना करता है। गूढ़ भाषा में कही हुई आलोचना सुनकर वे गीतार्थमुनि, आलोचना का संदेश लाने वाले के द्वारा ही गूढ़ भाषा में अतिचार की शुद्धि अर्थात् प्रायश्चित्त देते हैं। यह आज्ञा-व्यवहार है।

४ धारणा व्यवहार-किसी गीतार्थ संविग्न मुनि ने द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा जिस अपराध में जो प्रायश्चित दिया है, उसकी धारणा से, वैसे अपराध में उसी प्रायश्चित्त का प्रयोग करना 'धारणा व्यवहार' है। वैयावृत्य करने आदि से जो साधु गच्छ का उपकारी हो, वह यदि सम्पूर्ण छेद सूत्र सीखाने योग्य न हो, तो उसे गुरु महाराज कृपापूर्वक उचित प्रायश्चित्त पदों का कथन करते हैं। उक्त साधु का गुरु महाराज से कहे हुए उन प्रायश्चित्त का धारण करना 'धारणा व्यवहार' है।

५ जीत व्यवहार-द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, पुरुष, प्रतिसेवना का और संहनन धृति आदि की हानि का विचार कर जो प्रायश्चित्त दिया जाता है, वह 'जीत व्यवहार' है।

अथवा-किसी गच्छ में कारण विशेष से सूत्र से अतिरिक्त प्रायश्चित्त की प्रवृत्ति हुई हो और दूसरों ने उसका अनुसरण कर लिया, तो वह प्रायश्चित्त 'जीत व्यवहार' कहा जाता है।

अथवा-अनेक गीतार्थ मुनियों द्वारा की हुई मर्यादा 'जीत व्यवहार' कहलाता है। जो कि अनेक गीतार्थ मुनियों द्वारा आचरित हो, असावद्य हो और आगम से अबाधित हो।

इन पांच व्यवहारों में से यदि व्यवहर्ता के पास आगम हो, तो उसे आगम से व्यवहार चलाना चाहिये। आगम में भी केवलज्ञान, मनःपर्यय ज्ञान, अवधिज्ञान, चौदह पूर्व, दस पूर्व और नव पूर्व, ये छह भेद हैं। इनमें पहले केवलज्ञान आदि के होते हुए उन्हीं से व्यवहार चलाया जाना चाहिये। पिछले मनःपर्याय आदि से नहीं। इसी प्रकार उत्तरोत्तर समझना चाहिये। आगम-व्यवहार के अभाव में श्रुत-व्यवहार से, श्रुत-व्यवहार के अभाव में आज्ञा से, आज्ञा के अभाव में धारणा से और धारणा के अभाव में जीत-व्यवहार से प्रवृत्ति निवृत्ति रूप व्यवहार का प्रयोग होना चाहिये।

ऊपर कहे अनुसार सम्यग्रूपेण, पक्षपात रहित व्यवहारों का प्रयोग करता हुआ साधु, भगवान् की आज्ञा का आराधक होता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ऐर्यापथिक और साम्परायिक बन्ध

९ प्रश्न–कइविहे णं भंते ! बंधे पण्णत्ते ?

९ उत्तर–गोयमा ! दुविहे बंधे पण्णत्ते, तं जहा–इरियावहियबंधे य संपराइयबंधे य।

१० प्रश्न–इरियावहियं णं भंते ! कम्मं किं णेरइओ बंधइ, तिरिक्खजोणिओ बंधइ, तिरिक्खजोणिणी बंधइ, मणुस्सो बंधइ, मणुस्सी बंधइ, देवो बंधइ, देवी बंधइ ?

१० उत्तर–गोयमा ! णो णेरइओ बंधइ, णो तिरिक्खजोणिओ बंधइ, णो तिरिक्खजोणिणी बंधइ, णो देवो बंधइ, णो देवी बंधइ। पुव्वपडिवण्णए पडुच्च मणुस्सा य मणुस्सीओ य बंधंति, पडिवज्जमाणए पडुच्च–१ मणुस्सो वा बंधइ, २ मणुस्सी वा बंधइ, ३ मणुस्सा वा बंधंति, ४ मणुस्सीओ वा बंधंति ५ अहवा मणुस्सो य मणुस्सी य बंधइ, ६ अहवा मणुस्सो य मणुस्सीओ य बंधंति, ७ अहवा मणुस्सा य मणुस्सी य बंधंति, ८ अहवा मणुस्सा य मणुस्सीओ य बंधंति।

११ प्रश्न–तं भंते ! किं इत्थी बंधइ, पुरिसो बंधइ, णपुंसगो बंधइ, इत्थीओ बंधंति, पुरिसा बंधंति, णपुंसगा बंधंति; णोइत्थी णोपुरिसो णोणपुंसगो बंधइ ?

११ उत्तर–गोयमा ! णोइत्थी बंधइ, णोपुरिसो बंधइ, जाव

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णोणपुंसगो बंधइ, पुव्वपडिवण्णए पडुच्च अवगयवेदा वा बंधंति, पडिवज्जमाणए पडुच्च अवगयवेदो वा बंधइ, अवगयवेदा वा बंधंति ।

कठिन शब्दार्थ-बंधे-आत्मा का कर्म वर्गणाओं से बंधना, **इरियावहिया**-ऐर्यापथिक (वीतराग को योग के कारण होने वाला), **साम्पराइय**-कषायजन्य, **पुव्वपडिवण्णए**-पूर्व प्रतिपन्न (पहले के), **पडिवज्जमाण**-प्रतिपद्यमान (वर्तमान), **बंधइ**-बांधता है, **अवगयवेदा**-वेदरहित (स्त्री, पुरुष और नपुंसक संबंधी भोग संस्कार नष्ट हो गए हों) ।

भावार्थ-९ प्रश्न-हे भगवन् ! बन्ध कितने प्रकार का कहा गया है ?

९ उत्तर-हे गौतम ! बन्ध दो प्रकार का कहा गया है । यथा-ऐर्यापथिक बन्ध और साम्परायिक बंध ।

१० प्रश्न-हे भगवन् ! ऐर्यापथिक बन्ध क्या नैरयिक बांधता है, तिर्यंच बांधता है, तिर्यंचणी (तिर्यंच स्त्री) बाँधती है, मनुष्य बांधता है, मनुष्यणी बांधती है, देव बांधता है, या देवी बांधती है ?

१० उत्तर-हे गौतम ! नैरयिक नहीं बांधता, तिर्यंच नहीं बांधता, तिर्यंचणी नहीं बाँधती, देव नहीं बांधता और देवी भी नहीं बाँधती । किन्तु पूर्व प्रतिपन्न की अपेक्षा मनुष्य और मनुष्यस्त्रियाँ बांधती हैं । प्रतिपद्यमान की अपेक्षा (१) मनुष्य बाँधता है, अथवा (२) मनुष्य-स्त्री बाँधती है, अथवा (३) मनुष्य बांधते हैं, अथवा (४) मनुष्य-स्त्रियाँ बांधती हैं, अथवा (५) मनुष्य और मनुष्य-स्त्री बांधती है, अथवा (६) मनुष्य और मनुष्य-स्त्रियाँ बांधती है, अथवा (७) मनुष्य (बहुत मनुष्य) और मनुष्य-स्त्री बांधती हैं, अथवा (८) मनुष्य और मनुष्य-स्त्रियाँ बांधती हैं ।

११ प्रश्न-हे भगवन् ! ऐर्यापथिक कर्म क्या (१) स्त्री बांधती है, (२) पुरुष बांधता है, (३) नपुंसक बांधता है, (४) स्त्रियां बांधती हैं, (५) पुरुष बांधते हैं, (६) नपुंसक बांधते हैं, (७) या नोस्त्री-नोपुरुष-नोनपुंसक बांधता है ?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

११ उत्तर-हे गौतम ! स्त्री नहीं बांधती, पुरुष नहीं बांधता, नपुंसक नहीं बांधता, स्त्रियां नहीं बांधती, पुरुष नहीं बांधते और नपुंसक भी नहीं बांधते, किन्तु पूर्व-प्रतिपन्न की अपेक्षा वेद रहित जीव बांधते हैं। अथवा प्रतिपद्यमान की अपेक्षा वेद रहित जीव बांधता है अथवा वेद रहित जीव बांधते हैं।

१२ प्रश्न-जइ भंते ! अवगयवेदो वा बन्धइ, अवगयवेदा वा बन्धन्ति तं भंते ! किं १ इत्थीपच्छाकडो बन्धइ, २ पुरिसपच्छाकडो बन्धइ, ३ णपुंसगपच्छाकडो बन्धइ, ४ इत्थीपच्छाकडा बंधन्ति, ५ पुरिसपच्छाकडा बंधन्ति, ६ णपुंसगपच्छाकडा बन्धन्ति; उदाहु इत्थीपच्छाकडो य पुरिसपच्छाकडो य बन्धन्ति ४, इत्थीपच्छाकडो य पुरिसपच्छाकडा य बन्धन्ति ४, उदाहु इत्थिपच्छाकडो य णपुंसगपच्छाकडो य बन्धइ ४, उदाहु पुरिसपच्छाकडो य णपुंसगपच्छाकडो य बन्धइ ४, उदाहु इत्थिपच्छाकडो य पुरिसपच्छाकडो य णपुंसगपच्छाकडो य बन्धइ ८; एवं एए छव्वीसं भंगा, जाव उदाहु इत्थीपच्छाकडा य पुरिसपच्छाकडा य णपुंसगपच्छाकडा य बन्धन्ति ?

१२ उत्तर-गोयमा ! १ इत्थीपच्छाकडो वि बंधइ, २ पुरिसपच्छाकडो वि बंधइ, ३ णपुंसगपच्छाकडो वि बंधइ; ४ इत्थीपच्छाकडा वि बंधन्ति, ५ पुरिसपच्छाकडा वि बंधन्ति, ६ णपुंसगपच्छाकडा वि बंधन्ति; ७ अहवा इत्थीपच्छाकडो य पुरिसपच्छाकडो य बंधइ, एवं एए चेव छव्वीसं भंगा भाणियव्वा, जाव अहवा इत्थी-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पच्छाकडा य पुरिसपच्छाकडा य णपुंसगपच्छाकडा य बंधंति ।

कठिन शब्दार्थ—जइ-यदि, **इत्थिपच्छाकडो**-स्त्री-पश्चात्कृत (जो पहले स्त्री वेदी हो) **उवाहु**-अथवा ।

भावार्थ-१२ हे भगवन् ! यदि वेद रहित एक जीव, या वेद रहित बहुत जीव, ऐर्यापथिक कर्म बांधते हैं, तो क्या (१) स्त्रीपश्चात्कृत (जो जीव गत काल में स्त्री था, अब वर्त्तमान काल में अवेदी हो गया है) जीव बाँधता है, (२) पुरुषपश्चात्कृत (जो पहले पुरुष वेदी था किन्तु अब अवेदी है) जीव बांधता है, (३) नपुंसकपश्चात्कृत (जो पहले नपुंसक वेदी था, किंतु अब अवेदी है ।) जीव बांधता है, (४) स्त्रीपश्चात्कृत जीव बांधते हैं, (५) पुरुषपश्चात्कृत जीव बांधते हैं, या (६) नपुंसकपश्चात्कृत जीव बांधते हैं, (७) अथवा एक स्त्री-पश्चात्कृत और एक पुरुष-पश्चात्कृत जीव बांधता है, अथवा (८) एक स्त्री-पश्चात्कृत जीव और बहुत पुरुष-पश्चात्कृत जीव बांधते हैं, अथवा (९) बहुत स्त्री-पश्चात्कृत जीव और एक पुरुषपश्चात्कृत जीव बांधता है, अथवा (१०) बहुत स्त्री-पश्चात्कृत जीव और बहुत पुरुषपश्चात्कृत जीव बांधते हैं, अथवा (११) एक स्त्री-पश्चात्कृत जीव और एक नपुंसक-पश्चात्कृत जीव बांधता है, अथवा (१२) एक स्त्री-पश्चात्कृत जीव और बहुत नपुंसक-पश्चात्कृत जीव बांधते हैं, अथवा (१३) बहुत स्त्री-पश्चात्कृत जीव और एक नपुंसकपश्चात्कृत जीव बांधता है, अथवा (१४) बहुत स्त्री-पश्चात्कृत जीव और बहुत नपुंसकपश्चात्कृत जीव बांधते हैं, अथवा (१५) एक पुरुष-पश्चात्कृत जीव और एक नपुंसक-पश्चात्कृत जीव बांधता है, अथवा (१६) एक पुरुषपश्चात्कृत जीव और बहुत नपुंसकपश्चात्कृत जीव बांधते हैं, अथवा (१७) बहुत पुरुषपश्चात्कृत जीव और एक नपुंसकपश्चात्कृत जीव बांधता है, अथवा (१८) बहुत पुरुषपश्चात्कृत जीव और बहुत नपुंसकपश्चात्कृत जीव बांधते हैं, अथवा (१९) एक स्त्री पश्चात्कृत जीव, एक पुरुषपश्चात्कृत जीव और एक नपुंसकपश्चात्कृत जीव बांधता है अथवा (२०) एक स्त्रीपश्चात्कृत

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जीव, एक पुरुष-पश्चात्कृत जीव और बहुत नपुंसक-पश्चात्कृत जीव बांधते हैं, अथवा (२१) एक स्त्री-पश्चात्कृत जीव, बहुत-पुरुषपश्चात्कृत जीव और एक नपुंसक-पश्चात्कृत जीव बांधता है, अथवा (२२) एक स्त्री-पश्चात्कृत जीव, बहुत पुरुष-पश्चात्कृत जीव और बहुत नपुंसक-पश्चात्कृत जीव बांधते हैं, अथवा (२३) बहुत स्त्री-पश्चात्कृत जीव, एक पुरुष पश्चात्कृत जीव और एक नपुंसक-पश्चात्कृत जीव बांधता है, अथवा (२४) बहुत स्त्री पश्चात्कृत जीव, एक पुरुषपश्चात्कृत जीव और बहुत नपुंसकपश्चात्कृत जीव बांधते हैं, अथवा (२५) बहुत स्त्री-पश्चात्कृत जीव, बहुत पुरुषपश्चात्कृत जीव और एक नपुंसकपश्चात्कृत जीव बांधता है, अथवा (२६) बहुत स्त्रीपश्चात्कृत जीव, बहुत पुरुष-पश्चात्कृत जीव और बहुत नपुंसकपश्चात्कृत जीव बांधते हैं ?

१२ उत्तर—हे गौतम ! (१) स्त्रीपश्चात्कृत जीव भी बांधता है, (२) पुरुषपश्चात्कृत जीव भी बांधता है, (३) नपुंसक-पश्चात्कृत जीव भी बांधता है, (४) स्त्री पश्चात्कृत जीव भी बांधते हैं, (५) पुरुषपश्चात्कृत जीव भी बांधते हैं, (६) नपुंसकपश्चात्कृत जीव भी बांधते हैं, अथवा (७) एक स्त्रीपश्चात्कृत जीव और एक पुरुष-पश्चात्कृत जीव भी बांधता है, अथवा यावत् बहुत स्त्रीपश्चात्कृत जीव, बहुत पुरुषपश्चात्कृत जीव और बहुत नपुंसक-पश्चात्कृत जीव भी बांधते हैं, इस प्रकार प्रश्न में जो छब्बीस भंग कहे गये हैं, उत्तर में भी वे छब्बीस भंग ज्यों के त्यों कहना चाहिये ।

१३ प्रश्न—तं भंते ! किं १ बंधी बंधइ बंधिस्सइ, २ बंधी बन्धइ ण बन्धिस्सइ, ३ बन्धी ण बन्धइ बन्धिस्सइ, ४ बन्धी ण बन्धइ ण बन्धिस्सइ, ५ ण बन्धी बन्धइ बन्धिस्सइ, ६ ण बन्धी बन्धइ ण बन्धिस्सइ, ७ ण बन्धी ण बन्धइ बन्धिस्सइ, ८ ण बन्धी ण बन्धइ ण

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बन्धिस्सइ ?

१३ उत्तर–गोयमा ! भवागरिसं पडुच्च अत्थेगइए बन्धी बन्धइ बन्धिस्सइ, अत्थेगइए बन्धी बन्धइ ण बन्धिस्सइ, एवं तं चेव सव्वं जाव अत्थेगइए ण बन्धी ण बन्धइ ण बन्धिस्सइ। गहणागरिसं पडुच्च अत्थेगइए बन्धी बन्धइ बन्धिस्सइ, एवं जाव अत्थेगइए ण बन्धी बन्धइ बन्धिस्सइ, णो चेव णं ण बन्धी बन्धइ ण बन्धिस्सइ, अत्थेगइए ण बन्धी ण बन्धइ बन्धिस्सइ, अत्थेगइए ण बन्धी ण बन्धइ ण बन्धिस्सइ।

१४ प्रश्न–तं भंते ! किं साइयं सपज्जवसियं बन्धइ, साइयं अपज्जवसियं बन्धइ, अणाइयं सपज्जवसियं बन्धइ, अणाइयं अपज्जवसियं बन्धइ ?

१४ उत्तर–गोयमा ! साइयं सपज्जवसियं बन्धइ, णो साइयं अपज्जवसियं बन्धइ, णो अणाइयं सपज्जवसियं बन्धइ, णो अणाइयं अपज्जवसियं बन्धइ ।

१५ प्रश्न–तं भंते ! किं देसेणं देसं बन्धइ, देसेणं सव्वं बन्धइ, सव्वेणं देसं बन्धइ, सव्वेणं सव्वं बन्धइ ?

१५ उत्तर–गोयमा ! णो देसेणं देसं बन्धइ, णो देसेणं सव्वं बन्धइ, णो सव्वेणं देसं बन्धइ, सव्वेणं सव्वं बन्धइ ।

कठिन शब्दार्थ–बंधी–बांधा, बंधिस्सइ–बांधेगा, भवागरिसं–भवाकर्ष (अनेक भवों में), अत्थेगइए–किसी एक ने, गहणागरिसं–ग्रहणाकर्ष (कर्म-दलिक का ग्रहण करना),

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पुच्छ-अपेक्षा, **साइयं सपज्जवसियं**-आदि और अंत सहित, **साइयं अपज्जवसियं**-आदि सहित अंत रहित, **अणाइयं सपज्जवसियं**-आदि रहित और अंत सहित, **अणाइयं अपज्जवसियं**-आदि और अंत रहित ।

भावार्थ-१३ प्रश्न-हे भगवन् ! (१) क्या जीव ने ऐर्यापथिक कर्म बाँधा, बाँधता है और बाँधेगा, (२) बाँधा, बाँधता है, नहीं बाँधेगा, (३) बाँधा, नहीं बाँधता है, बाँधेगा, (४) बाँधा, नहीं बाँधता है, नहीं बाँधेगा, (५) नहीं बाँधा, बाँधता है, बाँधेगा, (६) नहीं बाँधा, बाँधता है, नहीं बाँधेगा और (७) नहीं बांधा नहीं बांधता है, नहीं बाँधेगा ?

१३ उत्तर-हे गौतम ! भवाकर्ष की अपेक्षा किसी एक जीव ने बाँधा, बाँधता है और बाँधेगा । किसी एक जीव ने बाँधा, बांधता है, नहीं बांधेगा । यावत् किसी एक जीव ने नहीं बांधा, नहीं बांधता है, नहीं बांधेगा । इस प्रकार उपरोक्त आठों भंग यहां कहना चाहिये । ग्रहणाकर्ष की अपेक्षा किसी एक जीव ने बांधा, बांधता है, बांधेगा । यावत् किसी एक जीव ने नहीं बांधा, बांधता है, बांधेगा । किन्तु यहां छठा भंग (नहीं बांधा, बांधता है, नहीं बांधेगा ।) नहीं कहना चाहिये । किसी एक जीव ने नहीं बांधा, नहीं बांधता है, बांधेगा । किसी एक जीव ने नहीं बांधा, नहीं बांधता है और नहीं बांधेगा ।

१४ प्रश्न-हे भगवन् ! जीव ऐर्यापथिक कर्म क्या सादि-सपर्यवसित बांधता है, या सादि-अपर्यवसित बांधता है, या अनादि-सपर्यवसित बांधता है, या अनादि-अपर्यवसित बांधता है ?

१४ उत्तर-हे गौतम ! सादि-सपर्यवसित बांधता है, किन्तु सादि-अपर्यवसित नहीं बांधता, अनादि-सपर्यवसित नहीं बांधता और अनादि-अपर्यवसित भी नहीं बांधता ।

१४ प्रश्न-हे भगवन् ! जीव ऐर्यापथिक कर्म देश से आत्मा के देश को बांधता है, देश से सर्व को बांधता है, सर्व से देश को बांधता है, या सर्व से सर्व को बांधता है ?

१५ उत्तर-हे गौतम ! देश से देश को नहीं बांधता, देश से सर्व को

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नहीं बांधता, सर्व से देश को नहीं बांधता, किन्तु सर्व से सर्व को बांधता है।

१६ प्रश्न–संपराइयं णं भंते ! कम्मं किं णेरइओ बंधइ, तिरिक्खजोणिओ बंधइ, जाव देवी बंधइ ?

१६ उत्तर–गोयमा ! णेरइओ वि बंधइ, तिरिक्खजोणिओ वि बंधइ, तिरिक्खजोणिणी वि बंधइ, मणुस्सो वि बंधइ, मणुस्सी वि बंधइ, देवो वि बंधइ, देवी वि बंधइ।

१७ प्रश्न–तं भंते ! किं इत्थी बंधइ, पुरिसो बंधइ; तहेव जाव णोइत्थी णोपुरिसो णोणपुंसगो बंधइ ?

१७ उत्तर–गोयमा ! इत्थी वि बंधइ, पुरिसो वि बंधइ, जाव णपुंसगा वि बंधंति, अहवेए य अवगयवेओ य बंधइ, अहवेए य अवगयवेया य बन्धंति।

१८ प्रश्न–जइ भंते ! अवगयवेओ य बंधइ, अवगयवेया य बंधंति तं भंते ! किं इत्थीपच्छाकडो बंधइ, पुरिसपच्छाकडो बंधइ० ?

१८ उत्तर–एवं जहेव इरियावहियाबंधगस्स तहेव णिरवसेसं, जाव अहवा इत्थीपच्छाकडा य पुरिसपच्छाकडा य णपुंसगपच्छाकडा य बंधंति।

१९ प्रश्न–तं भंते ! किं १ बंधी बंधइ बंधिस्सइ, २ बंधी बंधइ ण बंधिस्सइ, ३ बंधी ण बंधइ बंधिस्सइ, ४ बन्धी ण बन्धइ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ण बंधिस्सइ ?

१९ उत्तर-गोयमा ! १ अत्थेगइए बंधी बंधइ बंधिस्सइ, २ अत्थेगइए बंधी बंधइ ण बंधिस्सइ, ३ अत्थेगइए बंधी ण बंधइ बंधिस्सइ ४ अत्थेगइए बंधी ण बंधइ ण बंधिस्सइ ।

२० प्रश्न-तं भंते ! किं साइयं सपज्जवसियं बंधइ १ पुच्छा तहेव ।

२० उत्तर-गोयमा ! साइयं वा सपज्जवसियं बंधइ, अणाइयं वा सपज्जवसियं बंधइ, अणाइयं वा अपज्जवसियं बंधइ, णो चेव णं साइयं अपज्जवसियं बंधइ ।

२१ प्रश्न-तं भंते ! किं देसेणं देसं बंधइ ?

२१ उत्तर-एवं जहेव इरियावहियाबंधगस्स, जाव सव्वेणं सव्वं बंधइ ।

भावार्थ-१६ प्रश्न-हे भगवन् ! साम्परायिक कर्म नैरयिक बांधता है, तिर्यञ्च बांधता है, तिर्यंचणी बांधती है, मनुष्य बांधता है, मनुष्यणी बांधती है, देव बांधता है, या देवी बांधती है ?

१६ उत्तर-हे गौतम ! नैरयिक भी बांधता है, तिर्यंच भी बांधता है, तिर्यंचिनी भी बांधती है, मनुष्य भी बांधता है, मानुषी भी बांधती है, देव भी बांधता है और देवी भी बांधती है ।

१७ प्रश्न-हे भगवन् ! साम्परायिक कर्म क्या स्त्री बांधती है, पुरुष बांधता है, यावत् नोस्त्री-नोपुरुष-नोनपुंसक बांधता है ?

१७ उत्तर-हे गौतम ! स्त्री भी बांधती है, पुरुष भी बांधता है, नपुंसक

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भी बांधता है, अथवा बहुत स्त्रियां भी बांधती हैं, बहुत पुरुष भी बांधते हैं और बहुत नपुंसक भी बांधते हैं। अथवा ये सब और अवेदी एक जीव भी बांधता है अथवा ये सब और अवेदी बहुत जीव भी बांधते हैं।

१८ प्रश्न-हे भगवन् ! यदि वेद रहित एक जीव और वेद रहित बहुत जीव, साम्परायिककर्म बांधते हैं, तो क्या स्त्री-पश्चात्कृत जीव बांधता है, पुरुष-पश्चात्कृत जीव बांधता है, इत्यादि प्रश्न ?

१८ उत्तर-हे गौतम ! जिस प्रकार ऐर्यापथिक कर्मबन्ध के विषय में छब्बीस भंग कहे हैं, उसी प्रकार यहां भी कहना चाहिये। यावत् 'बहुत स्त्री-पश्चात्कृत जीव, बहुत पुरुष-पश्चात्कृत जीव और बहुत नपुंसक-पश्चात्कृत जीव बांधते हैं,'-यहां तक कहना चाहिये।

१९ प्रश्न-हे भगवन् ! १ क्या जीव ने साम्परायिक कर्म बांधा, बांधता है और बांधेगा ? २ बांधा, बांधता है और नहीं बांधेगा ? ३ बांधा, नहीं बांधता है और बांधेगा और ४ बांधा, नहीं बांधता है और नहीं बांधेगा ?

१९ उत्तर-हे गौतम ! १ कितने ही जीवों ने बांधा है, बांधते हैं और बांधेंगे, २ कितने ही जीवों ने बांधा है, बांधते हैं और नहीं बांधेंगे, ३ कितने ही जीवों ने बांधा है, नहीं बांधरहे और बांधेंगे, ४ कितने ही जीवों ने बांधा है, नहीं बांधरहे और नहीं बांधेंगे।

२० प्रश्न-हे भगवन् ! साम्परायिक कर्म सादि-सपर्यवसित बांधते हैं ? इत्यादि प्रश्न।

२० उत्तर-हे गौतम ! सादि-सपर्यवसित बांधते हैं, अनादि-सपर्यवसित बांधते हैं, अनादि-अपर्यवसित बांधते हैं, परन्तु सादि-अपर्यवसित नहीं बांधते।

२१ प्रश्न-हे भगवन् ! साम्परायिक कर्म, देश से आत्म-देश को बांधते हैं ? इत्यादि प्रश्न ?

२१ उत्तर-हे गौतम ! जिस प्रकार ऐर्यापथिक कर्म के सम्बन्ध में कहा गया है, उसी प्रकार साम्परायिक कर्म के विषय में भी जान लेना चाहिये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यावत् सर्व से सर्व को बांधते हैं ।

विवेचन—बन्ध—जिस प्रकार कोई व्यक्ति, अपने शरीर पर तैल लगाकर धूली में लेटे, तो धूली उसके शरीर पर चिपक जाती है । उसी प्रकार मिथ्यात्व, कषाय, योग आदि से जीव के प्रदेशों में जब हलचल होती है, तब जिस आकाश में आत्मा के प्रदेश हैं, वहीं के अनन्त अनन्त कर्म योग्य पुद्गल जीव के प्रत्येक प्रदेश के साथ बन्ध जाते हैं । कर्म और आत्म-प्रदेश इस प्रकार मिल जाते हैं, जैसे—दूध और पानी तथा आग और लोह-पिण्ड परस्पर एक होकर मिल जाते हैं । इसी प्रकार आत्मा के साथ कर्मों का जो सम्बन्ध होता है, वही 'बन्ध' कहलाता है । यद्यपि बन्ध के द्रव्य-बन्ध और भाव-बन्ध—ऐसे दो भेद भी हैं । खोड़ा-बेड़ी आदि का बन्ध—'द्रव्य-बन्ध' कहलाता है और कर्म-बन्ध 'भाव-बन्ध' कहलाता है । यहाँ भाव-बन्ध रूप कर्मबन्ध का प्रकरण है । विवक्षा विशेष से यहाँ कर्म बन्ध के दो भेद कहे गये हैं । यथा—ऐर्यापथिक कर्म-बन्ध और साम्परायिक कर्म-बन्ध । योगों के निमित्त से होने वाले बन्ध को ऐर्यापथिक बन्ध कहते हैं । यह केवल सातावेदनीय कर्म का होता है ।

सम्पराय—जिनसे जीव संसार में परिभ्रमण करे, उनको 'सम्पराय' कहते हैं । सम्पराय का अर्थ है—'कषाय' । कषायों के निमित्त से होने वाले कर्म-बन्ध को 'साम्परायिक कर्म-बन्ध' कहते हैं । यह पहले गुणस्थान से लेकर दसवें गुणस्थान तक होता है ।

ऐर्यापथिक कर्म का बन्ध—नैरयिक, तिर्यञ्च और देव को नहीं होता, केवल मनुष्य के ही होता है । मनुष्यों में भी ग्यारहवें, बारहवें और तेरहवें गुणस्थानवर्ती मनुष्यों के ही होता है ।

जिसने पहले ऐर्यापथिक कर्म का बन्ध किया हो, उसे 'पूर्व प्रतिपन्न' कहते हैं । अर्थात् जो ऐर्यापथिक कर्म-बन्ध के दूसरे, तीसरे आदि समय में वर्तमान हो. ऐसे पुरुष और स्त्रियाँ बहुत होती हैं, इसलिये इसका भंग नहीं बनता, क्योंकि दोनों प्रकार के केवली (पुरुष केवली और स्त्री केवली) सदा पाये जाते हैं । ऐर्यापथिक कर्म के बन्धक वीतराग उपशान्तमोह, क्षीण-मोह और सयोग-केवली गुणस्थान में रहने से होते हैं ।

जो जीव, ऐर्यापथिक कर्म-बन्ध के प्रथम समय में वर्तमान होते हैं, उनको 'प्रतिपद्यमान' कहते हैं । इनका विरह हो सकता है । इसलिये इनके असंयोगी चार भंग और द्वि-संयोगी चार भंग—ये आठ भंग होते हैं ।

ऐर्यापथिक कर्म-बन्ध के विषय में जो स्त्री पुरुष आदि का कथन किया गया है,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वह लिंग की अपेक्षा समझना चाहिये, वेद की अपेक्षा नहीं। क्योंकि ऐर्यापथिक कर्म-बंधक जीव, उपशान्तवेदी या क्षीणवेदी ही होते हैं।

पूर्व प्रतिपन्नक वेद रहित जीव, सदा बहुत ही होते हैं। इसलिये उनके विषय में बहुवचन का उत्तर ही दिया गया है। प्रतिपद्यमान वेद रहित जीवों में विरह पाया जाता है। अतः उनमें एकत्व आदि का सम्भव होने से एकवचन और बहुवचन को लेकर यहाँ दो विकल्प कहे गये हैं।

जो जीव, गत-काल में स्त्री था, अब वर्तमान काल में अवेदी हो गया है, उसे 'स्त्री पच्छाकडा' (स्त्री पश्चात्कृत) कहते हैं। इसी तरह 'पुरुषपच्छाकडा' और 'नपुंसकपच्छाकडा' का अर्थ भी जानलेना चाहिये।

वेद रहित जीवों की अपेक्षा यहाँ प्रश्न किया गया है, जिनमें एकवचन और बहुवचन की अपेक्षा असंयोगी छह भंग हैं, द्विक-संयोगी बारह भंग है, और त्रिक-संयोगी आठ भंग हैं। ये कुल २६ भंग हैं। इनसे प्रश्न किया गया है और इन २६ भंगों द्वारा ही उत्तर दिया गया है।

इसके पश्चात् ऐर्यापथिक कर्म-बन्ध को लेकर ही भूत, भविष्यत् और वर्तमान काल सम्बन्धी आठ भंगों द्वारा प्रश्न किया गया है। उसका उत्तर 'भवाकर्ष' और 'ग्रहणाकर्ष' की अपेक्षा दिया गया है। अनेक भवों में उपशम श्रेण्यादि की प्राप्ति द्वारा ऐर्यापथिक कर्म पुद्गलों का आकर्ष अर्थात् ग्रहण करना 'भवाकर्ष' कहलाता है। और एक भव में ऐर्यापथिक कर्म पुद्गलों का ग्रहण करना 'ग्रहणाकर्ष' कहलाता है। भवाकर्ष में आठों भंग पाये जाते हैं। उनमें से पहला भंग है—'बांधा था, बांधता है, बांधेगा'—यह भंग उस जीव में पाया जाता है जिसने गत काल (पूर्व भव) में उपशम श्रेणी की थी। उस समय ऐर्यापथिक कर्म बांधा था। वर्तमान में उपशम श्रेणी करता है उस समय बांधता है और आगामी भव में श्रेणी करेगा उस समय बांधेगा।

(२) दूसरा भंग है—बांधा था, बांधता है, नहीं बांधेगा। यह उस जीव में पाया जाता है, जिसने पूर्वभव में उपशम-श्रेणी की थी, उसमें ऐर्यापथिक कर्म बांधा था। वर्तमान में क्षपक-श्रेणी में बांधता है और फिर उसी भव में मोक्ष चला जायेगा, इसलिये आगामी काल में नहीं बांधेगा।

(३) तीसरा भंग है—बांधा था, नहीं बांधता है और बांधेगा। यह उस जीव में पाया जाता है, जिसने पूर्वभव में उपशम-श्रेणी की थी उसमें बांधा था। वर्तमान भव में श्रेणी नहीं करता, इसलिये ऐर्यापथिक कर्म नहीं बांधता, किंतु आगामी भव में उपशम-श्रेणी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

या क्षपक-श्रेणी करेगा, उसमें बांधेगा।

(४) चौथा भंग है-बांधा था, नहीं बांधता, नहीं बांधेगा। यह उस जीव में पाया जाता है, जो वर्तमान में चौदहवें गुणस्थान में विद्यमान है। उसने पूर्व काल में बांधा था, वर्तमान में नहीं बांधता और आगामी काल में भी नहीं बांधेगा।

(५) पांचवां भंग है-नहीं बांधा था, बांधता है, बांधेगा। यह उस जीव में पाया जाता है, जिसने पूर्वभव में उपशम-श्रेणी नहीं की थी, इसलिये ऐर्यापथिक कर्म नहीं बांधा था, वर्तमान भव में उपशम-श्रेणी में बांधता है। आगामी भव में उपशप-श्रेणी या क्षपक-श्रेणी में बांधेगा।

(६) छठा भंग है-नहीं बांधा था, बांधता है, नहीं बांधेगा। यह भंग उस जीव में पाया जाता है, जिस जीव ने पूर्व-भव में उपशम-श्रेणी नहीं की थी, इसलिये ऐर्यापथिक कर्म नहीं बांधा था। वर्तमान भव में क्षपक-श्रेणी में बांधता है। फिर उसी भव में मोक्ष चला जावेगा इसलिये आगामी काल में नहीं बांधेगा।

(७) सातवां भंग है-नहीं बांधा था, नहीं बांधता है, बांधेगा। यह भंग उस जीव में पाया जाता है जो जीव भव्य है, किंतु भूतकाल में उपशम-श्रेणी नहीं की, इसलिये नहीं बांधा था। वर्तमान काल में भी उपशम-श्रेणी आदि नहीं करता, इसलिये नहीं बांधता, किंतु आगामी काल में उपशम-श्रेणी या क्षपकश्रेणी करेगा, उसमें बांधेगा।

(८) आठवां भंग है-नहीं बांधा था, नहीं बांधता और नहीं बांधेगा। यह भंग अभव्य जीव में पाया जाता है। अभव्य जीव ने पूर्वभव में ऐर्यापथिक कर्म नहीं बांधा था, वह वर्तमान भव में नहीं बांधता और आगामी भव में भी नहीं बांधेगा। क्योंकि अभव्य जीव ने उपशम या क्षपक-श्रेणी नहीं की, नहीं करता और नहीं करेगा।

'ग्रहणाकर्ष' अर्थात् एक ही भव में ऐर्यापथिक कर्म पुद्गलों का ग्रहणरूप आकर्ष जिसमें हो, उसे 'ग्रहणाकर्ष' कहते हैं। उसकी अपेक्षा प्रथम भंग उस जीव में पाया जाता है जिसने भूतकाल में उपशम-श्रेणी या क्षपक-श्रेणी के समय ऐर्यापथिक कर्म बांधा था। वर्तमान काल में श्रेणी में बांधता है और आगामी काल में बांधेगा। दूसरा भंग तेरहवें गुणस्थान में एक समय शेष रहते समय पाया जाता है, क्योंकि उसने भूतकाल में बांधा था, वर्तमान काल में बांधता है और आगामी काल में शैलेशी अवस्था में नहीं बांधेगा। तीसरा भंग उस जीव में पाया जाता है जो उपशम-श्रेणी करके उससे गिर गया है। उसने उपशम-श्रेणी के समय ऐर्यापथिक कर्म बांधा था। अब वर्तमान में नहीं बांधता और उसी भव

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

में फिर उपशम श्रेणी करने पर ऐर्यापथिक कर्म बांधेगा। क्योंकि एक भव में एक जीव, दो बार उपशम श्रेणी कर सकता है। चौथा भंग चौदहवें गुणस्थान के प्रथम समय में पाया जाता है। सयोगी अवस्था में उसने ऐर्यापथिक कर्म बांधा था, किन्तु एक समय पश्चात् ही चौदहवें गुणस्थान की प्राप्ति हो जाने पर शैलेशी अवस्था में नहीं बांधता और वह आगामी काल में भी नहीं बांधेगा। पांचवां भंग उस जीव में पाया जाता है जिसने आयुष्य के पूर्व-भाग में उपशम-श्रेणी आदि नहीं की, इसलिये नहीं बांधा, वर्तमान समय में श्रेणी प्राप्त की है इसलिये बांधता है और भविष्य में भी बांधेगा। छठा भंग शून्य है। यह किसी भी जीव में नहीं पाया जाता। क्योंकि 'नहीं बांधा था और बांधता है,' ये दो बातें तो पाई जा सकती है, किन्तु 'नहीं बांधेगा'—यह बात नहीं पाई जा सकती, अर्थात् छठा भंग है—नहीं बांधा था, बांधता है, नहीं बांधेगा। किसी जीव ने आयुष्य के पूर्वभाग में उपशम-श्रेणी आदि प्राप्त नहीं की थी, इसलिये ऐर्यापथिक कर्म नहीं बांधा था। वर्तमान समय में श्रेणी प्राप्त की है इसलिये बांधता है, किन्तु उसके बाद के समयों में 'नहीं बांधेगा'—यह बात घटित नहीं होती। क्योंकि ऐर्यापथिक कर्म-बन्ध एक समय मात्र का नहीं है। यद्यपि उपशम श्रेणी को प्राप्त हुआ कोई जीव, एक समय के पश्चात् ही काल कर जाता है, उसकी अपेक्षा ऐर्यापथिक कर्म-बन्ध एक समय मात्र का होता है, किन्तु वह छठे विकल्प का कारण नहीं बन सकता। क्योंकि उसके पश्चात् ऐर्यापथिक कर्मबन्ध का अभाव उसी भव में नहीं होता, भवान्तर में होता है और यहां पर ग्रहणाकर्ष रूप एक भव आश्रयी प्रकरण चल रहा है। यदि यह कहा जाय कि सयोगी-केवली गुणस्थान के अन्तिम समय की अपेक्षा यह भंग घटित हो जायगा। क्योंकि वह उस समय ऐर्यापथिक कर्म बांधता है और आगामी काल में नहीं बांधेगा, तो यह कहना भी ठीक नहीं है। क्योंकि जो जीव सयोगी-केवली गुणस्थान के अन्तिम समय में ऐर्यापथिक कर्म बांधता है। उसने उसके पूर्व समय में निश्चित रूप से ऐर्यापथिक कर्म बांधा था। इस तरह उपर्युक्त कथन का समावेश दूसरे भंग में होता है, किन्तु इससे छठा भंग नहीं बन सकता। सातवां भंग भव्य विशेष की अपेक्षा से है और आठवां भंग अभव्य की अपेक्षा से है।

(१) सादि सपर्यवसित–आदि और अन्त सहित।
(२) सादि अपर्यवसित–जिसकी आदि तो है, किन्तु अन्त नहीं।
(३) अनादि सपर्यवसित–जिसकी आदि तो नहीं, किन्तु अन्त है।
(४) अनादि अपर्यवसित–आदि और अन्त रहित। इन चार विकल्पों में से प्रथम

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विकल्प में ऐर्यापथिक कर्म का बन्ध होता है। शेष तीन में नहीं।

जीव के साथ ऐर्यापथिक कर्म-बन्ध के चार विकल्पों सम्बन्धी प्रश्न। यथा—

(१) देश से देश-बन्ध-जीव के एक देश से कर्म के एक देश का बन्ध।

(२) देश से सर्वबन्ध-जीव के एक देश से सम्पूर्ण कर्म का बन्ध।

(३) सर्व से देशबन्ध-सम्पूर्ण जीव से कर्म के एक देश का बन्ध।

(४) सर्व से सर्व-बन्ध-सम्पूर्ण जीव से सम्पूर्ण कर्म का बन्ध। इनमें से चौथे विकल्प में कर्म का बन्ध होता है, क्योंकि जीव का ऐसा ही स्वभाव है। शेष तीन विकल्पों से जीव के साथ कर्म का बन्ध नहीं होता।

सम्पराय का अर्थ है—'कषाय'। कषाय के निमित्त से बन्धने वाले कर्म-बन्ध को 'साम्परायिक बन्ध' कहते हैं। साम्परायिक बन्ध के विषय में यहाँ सात प्रश्न किये गये हैं और उनका उत्तर भी दिया गया है। उन सात में से नैरयिक, तिर्यञ्च, तिर्यञ्चिनी, देव और देवी, ये पांच तो सकषायी होने से सदा साम्परायिक बंधक होते हैं। मनुष्य और मनुष्यिनी, सकषायी अवस्था में साम्परायिक बन्धक होते हैं और जब ये अकषायी हो जाते हैं तब साम्परायिक बन्धक नहीं होते।

इसके पश्चात् स्त्री, पुरुष और नपुंसक इनकी अपेक्षा एक वचन और बहुवचन आश्रयी प्रश्न किया गया है। जिसके उत्तर में कहा गया है कि एकत्व विवक्षित और बहुत्व विवक्षित स्त्री, पुरुष और नपुंसक। ये छह सदा साम्परायिक कर्म बान्धते है। क्योंकि ये सब सवेदी हैं। अवेदी कादाचित्क (कभी कभी) पाया जाता है, इसलिये वह कदाचित् साम्परायिक कर्म बाँधता है। अतः स्त्र्यादिक छह साम्परायिक कर्म बाँधते हैं। अथवा स्त्र्यादिक छह और वेद रहित एक जीव साम्परायिक कर्म बाँधते हैं। क्योंकि वेद रहित जीव एक भी पाया जा सकता है। अथवा स्त्र्यादिक छह और वेद रहित बहुत जीव साम्परायिक कर्म बांधते हैं। क्योंकि वेद रहित जीव, बहुत भी पाये जा सकते हैं। तीनों वेदों के उपशान्त या क्षय हो जाने पर जबतक जीव, यथाख्यात चारित्र को प्राप्त नहीं करता, तबतक वह वेद रहित जीव, सांपरायिक बन्धक होता है। यहाँ पूर्व-प्रतिपन्न और प्रतिपद्यमान की विवक्षा नहीं की गई। क्योंकि दोनों में भी एकत्व और बहुत्व पाया जा सकता है, इसलिये विशेषता का अभाव है। जैसे कि-वेद रहित हो जाने पर साम्परायिक बंध अल्पकालीन होता है। इसलिये पूर्व-प्रतिपन्न वेद रहित जीव सांपरायिक कर्म को बांधने वाले एक या अनेक भी हो सकते हैं। इसी प्रकार प्रतिपद्यमान जीव भी एक या अनेक हो

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सकते हैं ।

ऐर्यापथिक कर्म-बन्ध के विषय में काल की अपेक्षा जो आठ भंग कहे थे, उन में से साम्परायिक कर्म-बन्ध के विषय में चार भंग ही पाये जाते हैं । क्योंकि जीवों के साम्परायिक कर्म-बन्ध अनादिकाल से हैं । इसलिये भूतकाल सम्बन्धी 'ण बन्धी–नहीं बान्धा था ।' ये चार भंग नहीं बन सकते । जो चार भंग बन सकते हैं, वे ये हैं–(१) बाँधा था बाँधता है, बाँधेगा । (२) बाँधा था, बाँधता है, नहीं बाँधेगा । (३) बाँधा था, नहीं बाँध रहा, बाँधेगा । (४) बाँधा था, नहीं बाँधता है, नहीं बाँधेगा । प्रथम भंग यथाख्यात चारित्र की प्राप्ति से दो समय पहले तक सर्व संसारी जीवों में पाया जाता है, क्योंकि भूतकाल में उन्होने साम्परायिक कर्म बाँधा था, वर्तमान में बाँधते हैं और भविष्यत् काल में यथाख्यात चारित्र की प्राप्ति के पहले तक बाँधेंगे । अथवा यह प्रथम भंग अभव्य जीव की अपेक्षा भी घटित हो सकता है ।

दूसरा भंग भव्य जीव की अपेक्षा से है । मोहनीय कर्म के क्षय से पहले उसने साम्परायिक कर्म बाँधा था, वर्तमान में बाँधता है और आगामी काल में मोह-क्षय की अपेक्षा नहीं बाँधेगा ।

तीसरा भंग उपशम-श्रेणी प्राप्त जीव की अपेक्षा है । उपशम-श्रेणी करने के पूर्व उसने साम्परायिक कर्म बाँधा था, वर्तमान में उपशान्त-मोह होने से नहीं बाँधता और उपशम-श्रेणी से गिर जाने पर आगामी काल में फिर बाँधेगा ।

चौथा भंग क्षपक-श्रेणी प्राप्त क्षीणमोह जीव की अपेक्षा है । मोहनीय कर्म का क्षय करने के पूर्व उसने साम्परायिक कर्म बाँधा था, वर्तमान में मोहनीय कर्म का क्षय हो जाने से नहीं बाँधता और बाद में मोक्ष चला जायगा, इसलिये आगामी काल में नहीं बाँधेगा ।

साम्परायिक कर्म बन्ध के विषय में आदि अन्त की अपेक्षा चार प्रश्न किये गये हैं । यथा–(१) सादि सपर्यवसित (२) सादि अपर्यवसित (३) अनादि सपर्यवसित (४) अनादि अपर्यवसित । इन चार भंगों में से–सादि-अपर्यवसित भंग को छोड़कर शेष तीन भंगों से जीव साम्परायिक कर्म बाँधता है । इनमें से जो जीव उपशम-श्रेणी कर के गिर गया है और आगामी काल में फिर उपशम-श्रेणी या क्षपक-श्रेणी को अंगीकार करेगा, उसकी अपेक्षा 'सादि-सपर्यवसित'–यह प्रथम भंग घटित होता है । जो जीव प्रारम्भ में ही क्षपक-श्रेणी करने वाला है, उसकी अपेक्षा 'अनादि-सपर्यवसित' यह तृतीय भंग घटित होता है ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अभव्य जीव की अपेक्षा 'अनादि-अपर्यवसित' यह चौथा भंग घटित होता है। 'सादि-अपर्यवसित' यह दूसरा भंग किसी भी जीव में घटित नहीं होता। क्योंकि उपशम-श्रेणी से गिरा हुआ जीव ही सादि-साम्परायिक बन्धक होता है और वह कालान्तर में अवश्य मोक्षगामी होता है। उस समय साम्परायिक बन्ध का व्यवच्छेद हो जाता है। इस प्रकार 'सादि-अपर्यवसित' साम्परायिक बन्धक नहीं होता।

कर्म-प्रकृति और परीषह

२२ प्रश्न- कइ णं भंते ! कम्मप्पगडीओ पण्णत्ताओ ?

२२ उत्तर-गोयमा ! अट्ठ कम्मप्पगडीओ पण्णत्ताओ, तं जहा-णाणावरणिज्जं, जाव अंतराइयं।

२३ प्रश्न-कइ णं भंते ! परिसहा पण्णत्ता ?

२३ उत्तर-गोयमा ! बावीसं परिसहा पण्णत्ता, तं जहा-दिगिंछापरिसहे, पिवासापरिसहे, जाव, दंसणपरिसहे।

२४ प्रश्न-एए णं भंते ! बावीसं परिसहा कइसु कम्मपयडीसु समोयरंति ?

२४ उत्तर-गोयमा ! चउसु कम्मपयडीसु समोयरंति, तं जहा-णाणावरणिज्जे, वेयणिज्जे, मोहणिज्जे, अंतराइए।

कठिन शब्दार्थ--समोयरंति--समावेश होता है।

भावार्थ--२२ प्रश्न-हे भगवन् ! कर्म प्रकृतियां कितनी कही गई हैं ?

२२ उत्तर-हे गौतम ! कर्म प्रकृतियां आठ कही गई हैं। यथा-ज्ञानावरणीय, यावत् अन्तराय।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

२३ प्रश्न–हे भगवन् ! परीषह कितने कहे गये हैं ?

२३ उत्तर–हे गौतम ! परीषह बाईस कहे गये हैं । यथा–१ क्षुधा परीषह, २ पिपासा परीषह यावत् (३ शीत परीषह, ४ उष्ण परीषह ५ दंशमशक परीषह, ६ अचेल परीषह, ७ अरति परीषह, ८ स्त्री परीषह, ९ चर्या परीषह, १० निसीहिया (निषद्या) परीषह, ११ शय्या परीषह, १२ आक्रोश परीषह, १३ वध परीषह, १४ याचना परीषह, १५ अलाभ परीषह, १६ रोग परीषह, १७ तृणस्पर्श परीषह, १८ जल्ल परीषह, १९ सत्कारपुरस्कार परीषह, २० प्रज्ञा परीषह २१ अज्ञान परीषह) २२ दर्शनपरीषह ।

२४ प्रश्न–हे भगवन् ! कितनी कर्मप्रकृतियों में इन बाईस परीषहों का समवतार (समावेश) होता है ?

२४ उत्तर–हे गौतम ! चार कर्म-प्रकृतियों में बाईस परीषहों का समवतार होता है । यथा–ज्ञानावरणीय, वेदनीय, मोहनीय और अन्तराय ।

२५ प्रश्न–णाणावरणिज्जे णं भंते ! कम्मे कइ परीसहा समोयरंति ?

२५ उत्तर–गोयमा ! दो परीसहा समोयरंति, तं जहा–पण्णापरीसहे णाणपरीसहे य ।

२६ प्रश्न–वेयणिज्जे णं भंते ! कम्मे कइ परीसहा समोयरंति ?

२६ उत्तर–गोयमा ! एक्कारस परीसहा समोयरंति, तं जहा–

"पंचेव आणुपुव्वी चरिया सेज्जा वहे य रोगे य ।
तणफास-जल्लमेव य एक्कारस वेयणिज्जम्मि ॥"

२७ प्रश्न–दंसणमोहणिज्जे णं भंते ! कम्मे कइ परीसहा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

समोयरंति ?

२७ उत्तर–गोयमा ! एगे दंसणपरीसहे समोयरइ ।

२८ प्रश्न–चरित्तमोहणिज्जे णं भंते ! कम्मे कइ परीसहा समोयरंति ?

२८ उत्तर–गोयमा ! सत्त परीसहा समोयरंति, तं जहा–

"अरई अचेल-इत्थी णिसीहिया जायणा य अक्कोसे ।
सक्कार-पुरक्कारे चरित्तमोहम्मि सत्तेते ॥"

२९ प्रश्न–अंतराइए णं भंते ! कम्मे कइ परीसहा समोयरंति ?

२९ उत्तर–गोयमा ! एगे अलाभपरीसहे समोयरइ ।

कठिन शब्दार्थ—आणुपुव्वी—क्रमानुसार ।

भावार्थ–२५ प्रश्न–हे भगवन् ! ज्ञानावरणीय कर्म में कितने परीषहों का समवतार होता है ?

२५ उत्तर–हे गौतम ! दो परीषहों का समवतार होता है । यथा–प्रज्ञा परीषह और ज्ञान परीषह ।

२६ प्रश्न–हे भगवन् ! वेदनीय कर्म में कितने परीषहों का समवतार होता है ?

२६ उत्तर–हे गौतम ! वेदनीय कर्म में ग्यारह परीषहों का समवतार होता है । यथा–अनुक्रम से पहले के पांच परीषह (क्षुधा परीषह, पिपासा परीषह, शीत परीषह, उष्ण परीषह और दंशमशक परीषह) चर्या परीषह, शय्या परीषह, वध परीषह, रोग परीषह, तृणस्पर्श परीषह और जल्ल (मैल) परीषह। इन ग्यारह परीषहों का समवतार वेदनीय कर्म में होता है ।

२७ प्रश्न–हे भगवन् ! दर्शन-मोहनीय कर्म में कितने परीषहों का

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

समवतार होता है ?

२७ उत्तर-हे गौतम ! इसमें एक दर्शन परीषह का समवतार होता है ।

२८ प्रश्न-हे भगवन् ! चारित्र मोहनीय कर्म में कितने परीषहों का समवतार होता है ?

२८ उत्तर-हे गौतम ! उसमें सात परीषहों का समवतार होता है । यथा-अरति परीषह, अचेल परीषह, स्त्री परीषह, निषद्या परीषह, याचना परीषह, आक्रोश परीषह और सत्कार-पुरस्कार परीषह । इन सात परीषहों का समवतार चारित्र-मोहनीय कर्म में होता है ।

२९ प्रश्न-हे भगवन् ! अन्तराय कर्म में कितने परीषहों का समवतार होता है ?

२९ उत्तर-हे गौतम ! एक अलाभ परीषह का समवतार होता है ।

३० प्रश्न-सत्तविहबन्धगस्स णं भंते ! कइ परीसहा पण्णत्ता ?

३० उत्तर-गोयमा ! बावीसं परीसहा पण्णत्ता, वीसं पुण वेएइ । जं समयं सीयपरीसहं वेएइ णो तं समयं उसिणपरीसहं वेएइ, जं समयं उसिणपरीसहं वेएइ णो तं समयं सीयपरीसहं वेएइ, जं समयं चरियापरीसहं वेएइ णो तं समयं णिसीहियापरीसहं वेएइ, जं समयं णिसीहियापरीसहं वेएइ णो तं समयं चरियापरीसहं वेएइ ।

३१ प्रश्न-अट्ठविहबन्धगस्स णं भंते ! कइ परीसहा पण्णत्ता ?

३१ उत्तर-गोयमा ! बावीसं परीसहा पण्णत्ता, तं जहा-छुहापरीसहे, पिवासापरीसहे, सीयपरीसहे, दंस-मसगपरीसहे, जाव अलाभपरीसहे ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

३२ प्रश्न–छव्विहबंधगस्स णं भंते ! सरागछउमत्थस्स कइ परीसहा पण्णत्ता ?

३२ उत्तर–गोयमा ! चोद्दस परीसहा पण्णत्ता, बारस पुण वेएइ, जं समयं सीयपरीसहं वेएइ णो तं समयं उसिणपरीसहं वेएइ, जं समयं उसिणपरीसहं वेएइ णो तं समयं सीयपरीसहं वेएइ, जं समयं चरियापरीसहं वेएइ णो तं समयं सेज्जापरीसहं वेएइ, जं समयं सेज्जापरीसहं वेएइ, णो तं समयं चरियापरीसहं वेएइ।

३३ प्रश्न–एक्कविहबन्धगस्स णं भंते ! वीयरागछउमत्थस्स कइ परीसहा पण्णत्ता ?

३३ उत्तर–गोयमा ! एवं चेव जहेव छव्विहबन्धगस्स।

३४ प्रश्न–एगविहबन्धगस्स णं भंते ! सजोगिभवत्थकेवलिस्स कइ परीसहा पण्णत्ता ?

३४ उत्तर–गोयमा ! एक्कारसपरीसहा पण्णत्ता, णव पुण वेएइ, सेसं जहा छव्विहबन्धगस्स।

३५ प्रश्न–अबन्धगस्स णं भंते ! अजोगिभवत्थकेवलिस्स कइ परीसहा पण्णत्ता ?

३५ उत्तर–गोयमा ! एक्कारस परीसहा पण्णत्ता, णव पुण वेएइ। जं समयं सीयपरीसहं वेएइ णो तं समयं उसिणपरीसहं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वेएइ, जं समयं उसिणपरीसहं वेएइ णो तं समयं सीयपरीसहं वेएइ, जं समयं चरीयापरिसहं वेएइ णो तं समयं सेज्जापरीसहं वेएइ, जं समयं सेज्जापरीसहं वेएइ णो तं समयं चरियापरीसहं वेएइ ।

भावार्थ—३० प्रश्न—हे भगवन् ! सात प्रकार के कर्म बांधने वाले जीव के कितने परीषह होते हैं ?

३० उत्तर—हे गौतम ! उसके बाईस परीषह होते हैं, परन्तु वह जीव एक साथ बीस परीषहों को वेदता है । क्योंकि जिस समय शीत परीषह वेदता है, उस समय उष्ण परीषह नहीं वेदता और जिस समय उष्ण परीषह वेदता है, उस समय शीत परीषह नहीं वेदता । जिस समय चर्या परीषह वेदता है, उस समय निषद्या परीषह नहीं वेदता और जिस समय निषद्या परीषह वेदता है, उस समय चर्या परीषह नहीं वेदता ।

३१ प्रश्न—हे भगवन् ! आठ प्रकार के कर्मों को बांधने वाले जीव के कितने परीषह कहे गये हैं ?

३१ उत्तर—हे गौतम ! बाईस परीषह कहे गये हैं । यथा—क्षुधा परीषह, पिपासा परीषह, शीत परीषह, दंशमशक परीषह यावत् अलाभ परीषह । किन्तु वह एक साथ बीस परीषहों को वेदता है ।

३२ प्रश्न—हे भगवन् ! षड्-विध बन्धक सराग छद्मस्थ के कितने परीषह कहे गये हैं ?

३२ उत्तर—हे गौतम ! चौदह परीषह कहे गये हैं, किंतु वह एक साथ बारह परीषह वेदता है । जिस समय शीत परीषह वेदता है, उस समय उष्ण परीषह नहीं वेदता और जिस समय उष्ण परीषह वेदता है, उस समय शीत परीषह नहीं वेदता । जिस समय चर्या परीषह वेदता है, उस समय शय्या परीषह नहीं वेदता और जिस समय शय्या परीषह वेदता है, उस समय चर्या परीषह नहीं वेदता ।

३३ प्रश्न—हे भगवन् ! एक-विध बन्धक वीतराग छद्मस्थ जीव के

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कितने परीषह कहे गये हैं ?

३३ उत्तर-हे गौतम ! षड्-विध बन्धक के समान चौदह परीषह कहे गये हैं, किन्तु वह एक साथ बारह परीषह वेदता है। जिस प्रकार षड्-विध बन्धक के विषय में कहा है, उसी प्रकार एक-विध बन्धक वीतराग छद्मस्थ के विषय में भी कहना चाहिये।

३४ प्रश्न-हे भगवन् ! एक-विध बंधक सयोगी भवस्थ केवली के कितने परीषह कहे गये हैं ?

३४ उत्तर-हे गौतम ! ग्यारह परीषह कहे गये हैं, किंतु एक साथ नौ परीषह वेदता है। शेष सारा कथन षड् विध बंधक के समान जानना चाहिये।

३५ प्रश्न-हे भगवन् ! अबन्धक अयोगी भवस्थ केवली के कितने परीषह कहे गये हैं ?

३५ उत्तर-हे गौतम ! ग्यारह परीषह कहे गये हैं। किन्तु वह एक साथ नौ परीषह वेदता है। क्योंकि जिस समय शीत परीषह वेदता है, उस समय उष्ण परीषह नहीं वेदता और जिस समय उष्ण परीषह वेदता है, उस समय शीत परीषह नहीं वेदता। जिस समय चर्या परीषह वेदता है, उस समय शय्या परीषह नहीं वेदता और जिस समय शय्या परीषह वेदता है, उस समय चर्या परीषह नहीं वेदता।

विवेचन—बाईस परीषहों का किन-किन कर्म-प्रकृतियों में समावेश होता है, इस बात को बतलाने के लिये पहले आठ कर्मों के नाम बतलाये हैं।

परीषह-आपत्ति आने पर भी संयम में स्थिर रहने के लिये तथा कर्मों की निर्जरा के लिये जो शारीरिक और मानसिक कष्ट साधु-साध्वियों को सहने चाहिये, उन्हें 'परीषह' कहते हैं। वे बाईस हैं। उनके नाम और अर्थ इस प्रकार हैं—

१ क्षुधा परीषह-भूख का परीषह। संयम की मर्यादानुसार निर्दोष आहार न मिलने पर मुनियों को भूख का कष्ट होता है। इस कष्ट को सहना चाहिये, किन्तु मर्यादा का उल्लंघन नहीं करना चाहिये। इसी प्रकार दूसरे परीषहों के विषय में भी जानना चाहिये।

२ पिपासा परीषह-प्यास का परीषह।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

३ शीत परीषह–ठण्ड का परीषह ।

४ उष्ण परीषह–गर्मी का परीषह ।

५ दंशमशक परीषह–डांस, मच्छर, खटमल, जूं, चिटी आदि का परीषह ।

६ अचेल परीषह–नग्नता का परीषह । जीर्ण, अपूर्ण और मलीन आदि वस्त्रों के सद्भाव में भी यह परीषह होता है।

७ अरति परीषह–मन में अरति अर्थात् उदासी से होने वाला कष्ट । संयम मार्ग में कठिनाइयों के आने पर, उसमें मन न लगे और उसके प्रति अरति (अरुचि) उत्पन्न हो, तो धैर्यपूर्वक उसमें मन लगाते हुए अरति को दूर करना चाहिये ।

८ स्त्री परीषह–स्त्रियों से होने वाला कष्ट तथा पुरुषों की तरफ से साध्वियों को होने वाला कष्ट । (यह अनुकूल परीषह है)

९ चर्या परीषह–ग्राम, नगर आदि के विहार में एवं चलने-फिरने से होने वाला कष्ट ।

१० निसीहिया परीषह–(निषद्या परीषह = नैषेधिकी परीषह) स्वाध्याय आदि करने की भूमि में तथा सूने घर आदि में किसी प्रकार का उपद्रव होने से होने वाला कष्ट।

११ शय्या परीषह–रहने के स्थान की प्रतिकूलता से होने वाला कष्ट ।

१२ आक्रोश परीषह–कठोर वचन सुनने से होने वाला कष्ट । अर्थात् किसी के द्वारा धमकाया या फटकारा जाने पर होने वाला कष्ट ।

१३ बध परीषह–लकड़ी आदि से पीटा जाने पर होने वाला कष्ट ।

१४ याचना परीषह–भिक्षा मांगने में होने वाला कष्ट ।

१५ अलाभ परीषह–भिक्षा आदि के न मिलने पर होने वाला कष्ट ।

१६ रोग परीषह–रोग के कारण होने वाला कष्ट ।

१७ तृणस्पर्श परीषह–घास के बिछौने पर सोते समय शरीर में चुभने से या मार्ग में चलते समय तृणादि पैर में चुभने से होने वाला कष्ट ।

१८ जल्ल परीषह–शरीर और वस्त्र आदि में चाहे जितना मैल लगे, किन्तु उद्वेग को प्राप्त नहीं होना तथा स्नान की इच्छा नहीं करना ।

१९ सत्कार-पुरस्कार परीषह–जनता द्वारा मान-पूजा होने पर हर्षित नहीं होना, और मान-पूजा न होने पर खेदित न होना (यह अनुकूल परीषह है) ।

२० प्रज्ञा परीषह–प्रज्ञा अर्थात् बुद्धि की मंदता से होने वाला कष्ट ।

२१ अज्ञान परीषह–तप संयम की आराधना करते हुए भी अवधि आदि प्रत्यक्ष

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञानों के नहीं होने से होने वाला खेद ।

२२ दर्शन परीषह—तीर्थंकर भगवान् में और तीर्थंकर भाषित सूक्ष्म तत्त्वों में अश्रद्धा (शंका) होना 'दर्शन परीषह' है । शंका आदि का त्याग करना 'दर्शन परीषह' का विजय है । तथा दूसरे मतवालों की ऋद्धि तथा आडम्बर को देखकर भी अपने मत में दृढ़ रहना—दर्शन परीषह का विजय है ।

इसके पश्चात् यह बतलाया गया है कि किस परीषह का समवतार किस कर्म में होता है अर्थात् किस कर्म के उदय से कौनसा परीषह होता है, प्रज्ञा परीषह और अज्ञान परीषह ज्ञानावरणीय कर्म के उदय से होते हैं अर्थात् प्रज्ञा (बुद्धि) का अभाव मति-ज्ञानावरणीय कर्म के उदय से होता है । इसी प्रकार अज्ञान परीषह अवधि आदि ज्ञानावरणीय कर्म के उदय से होता है ।

वेदनीय कर्म के उदय से ग्यारह परीषह होते हैं । यथा—क्षुधा परीषह, पिपासा परीषह, शीत परीषह, उष्ण परीषह, दंशमशक परीषह, चर्या परीषह, शय्या परीषह, वध परीषह, रोग परीषह, तृणस्पर्श परीषह और जल्ल (मैल) परीषह । इन परीषहों के द्वारा पीड़ा (वेदना) उत्पन्न होना—वेदनीय कर्म का उदय है और उसे सम्यक् प्रकार से सहन करना चारित्र-मोहनीय कर्म के क्षयोपशमादि से होता है ।

सामान्यतः मोहनीय कर्म के उदय से आठ परीषह होते हैं। उनमें से दर्शन-मोहनीय कर्म के उदय से एक दर्शन परीषह होता है । चारित्र-मोहनीय के उदय से सात परीषह होते हैं । यद्यपि ये सातों परीषह चारित्र-मोहनीय कर्म की भिन्न-भिन्न प्रकृतियों के उदय से होते हैं, किन्तु यहाँ सामान्यतः कथन किया गया है कि ये सब चारित्र-मोहनीय कर्म के उदय से होते हैं ।

अन्तराय कर्म (लाभान्तराय कर्म) के उदय से एक अलाभ परीषह होता है ।

आयु कर्म को छोड़कर शेष सात कर्मों का बन्ध करने वाले जीव के बाईस परीषह होते हैं । इसी प्रकार आठ कर्मों को बांधने वाले जीव के भी बाईस परीषह होते हैं, किन्तु वह जीव एक समय में बीस परीषह वेदता है । शीत और उष्ण—इन दोनों परीषहों में से एक समय में एक वेदता है, क्योंकि ये दोनों परस्पर विरोधी हैं, इसलिये एक ही समय में एक जीव में ये दोनों नहीं हो सकते । चर्या और निसीहिया (निषद्या) परीषह—इन दोनों में से एक समय में एक वेदता है । चर्या का अर्थ है—विहार करना और निषद्या का अर्थ है—स्वाध्याय आदि के निमित्त विविक्त (स्त्री, पशु, नपुंसक से रहित) उपाश्रय में बैठना । इस प्रकार विहार और अवस्थान रूप परस्पर विरोधी हैं ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शंका-निषद्या के समान शय्या परीषह भी चर्या परीषह का विरोधी है, क्योंकि शय्या और चर्या-ये दोनों एक समय में संभवित नहीं है। इसलिये एक समय में उत्कृष्ट उन्नीस परोषह ही हो सकते हैं, फिर यहाँ बीस कैसे बतलाये हैं• ?

समाधान-उपर्युक्त शंका का समाधान यह है कि कोई मुनि विहार करते हुए किसी ग्राम में पहुंचे। वहाँ स्वल्प काल के लिये विश्राम और आहारादि के लिये ठहरने पर भी उत्सुकता के कारण, विहार के परिणाम निवृत्त नहीं हुए, (विहार करने की उत्सुकता एवं चंचलता चित्त में बनी हुई है) इस कारण चर्या परीषह और शय्या परीषह दोनों अविरुद्ध हैं। तात्पर्य यह है कि अभी चर्या की आकुलता समाप्त नहीं होने के कारण स्वल्प काल के लिये स्थान में ठहरने पर भी एक साथ दोनों परीषहों को वेदते हैं।

शंका-यदि इस प्रकार शय्या और चर्या परीषह में युगपत् अविरुद्धता बतलाई जा रही है, तो षड्-विध बन्धक की अपेक्षा-जो आगे कहा गया है कि-'जिस समय वह चर्या परीषह वेदता है, उस समय शय्या परीषह नहीं वेदता और जिस समय शय्या परीषह वेदता है, उस समय चर्या परीषह नहीं वेदता'-यह कैसे संभव होगा ?

समाधान-षड्-विध बन्धक जीव मोहनीय कर्म के असद्भाव तुल्य होता है। इसलिये उसमें उत्सुकता और चञ्चलता का अभाव है। इसलिये शय्या के समय में उनका चित्त शय्या में ही रहता है, चर्या में नहीं। इस अपेक्षा से उस समय शय्या और चर्या-इन दोनों परीषहों में परस्पर विरोध है। इसलिये दोनों का युगपत् (एक साथ) असद्भाव है। आयु कर्म और मोहनीय कर्म को छोड़कर शेष छह कर्मों के बन्धक सरागी छद्मस्थ (दसवें गुणस्थानवर्ती) जीव के तथा केवल एक वेदनीय कर्म के बन्धक छद्मस्थ वीतरागी (ग्यारहवें बारहवें गुणस्थानवर्ती) जीव के चौदह परीषह (बाईस परीषहों में से मोहनीय कर्म के आठ परीषहों को छोड़कर) होते है, किन्तु एक साथ बारह परीषह वेदते हैं, अर्थात् शीत और उष्ण में से एक तथा चर्या और शय्या में से एक वेदते हैं। तेरहवें गुणस्थानवर्ती एक कर्म के बन्धक जीव के और चौदहवें गुणस्थानवर्ती अबन्धक जीव के वेदनीय के ग्यारह परीषह होते हैं। उनमें से एक साथ नौ वेदते हैं अर्थात् शीत और उष्ण में से एक तथा चर्या और शय्या में से एक वेदते हैं।

शंका-दसवें गुणस्थानवर्ती सराग छद्मस्थ जीव के चौदह परीषह बतलाये गये हैं। और मोहनीयकर्म के उदय से होने वाले आठ परीषहों का अभाव बतलाया गया है, इसमें

•'पंच-संग्रह' में १९ बतलाये हैं-डोशी।

प्रश्न यह उपस्थित होता है कि जब सूक्ष्म-सम्पराय वाले जीव के मोहनीय से होने वाले आठ परीषहों का अभाव बतलाया गया है, इससे अर्थापत्ति द्वारा यह अर्थ स्वतः ध्वनित हो जाता है कि अनिवृत्ति-बादर-सम्पराय (नववें गुणस्थानवर्ती) वाले जीव के मोहनीय सम्भव आठों परीषह होते हैं, किन्तु यह किस प्रकार संगत हो सकता है ? क्योंकि दर्शन-सप्तक (चार अनन्तानुबन्धी कषाय, सम्यक्त्व मोहनीय, मिथ्यात्व मोहनीय और सम्यग्मिथ्यात्व मोहनीय) का उपशम हो जाने पर बादर कषाय वाले जीव के भी दर्शन-मोहनीय का उदय नहीं होने से दर्शनपरीषह का अभाव है। इसलिये उसके मोहनीय सम्बन्धी सात परीषह ही हो सकते हैं, आठ नहीं। यदि इस विषय में यह कहा जाय कि उसके दर्शन मोहनीय सत्ता में रहा हुआ है, इसलिये दर्शन परीषह का सद्भाव है, इस तरह मोहनीय सम्बन्धी आठ ही परीषह उसके होते हैं, तो यह कहना भी ठीक नहीं, क्योंकि इस तरह तो उपशम-श्रेणी प्राप्त सूक्ष्मसंपराय (दसवें गुणस्थानवर्ती) वाले जीव के भी मोहनीय कर्म सत्ता में है, फिर उसके भी मोहनीय कर्म संबन्धी आठों परीषह मानने पड़ेंगे, क्योंकि दोनों जगह न्याय की समानता है ?

समाधान—दर्शन-सप्तक का उपशम करने के पश्चात् नपुंसक-वेदादि के उपशम के समय में अनिवृत्ति-बादर-संपराय होता है। उस समय आवश्यक आदि ग्रंथों के सिवाय ग्रंथों के मत से दर्शन-त्रिक का बहुत भाग उपशान्त हो जाता है और कुछ भाग अनुपशान्त रहता है, उस कुछ भाग को उपशम करने के साथ ही नपुंसकवेद को उपशांत करने के लिये उपक्रम करता है। इसलिये नपुंसक-वेद के उपशम के समय अनिवृत्ति-बादर-संपराय वाले जीव के केवल दर्शन-मोहनीय की सत्ता ही नहीं है, किन्तु दर्शनमोहनीय का प्रदेशतः उदय भी है। उस उदय की अपेक्षा उस जीव के दर्शन परीषह भी है। इस प्रकार उसके मोहनीय संबंधी आठों परीषह होते हैं। सूक्ष्मसंपराय (दसवें गुणस्थानवर्ती) वाले जीव के यद्यपि मोहनीयकर्म सत्ता में है तथापि वह परीषह का कारण नहीं हैं, क्योंकि उसमें मोहनीय का सूक्ष्म उदय भी नहीं है। इसलिये मोहनीयकर्म संबंधी भी परीषह उसके नहीं होता। सूक्ष्म-संपराय वाले जीव के सूक्ष्म-लोभ-किट्टिकाओं का उदय है, किन्तु वह परीषह का कारण नहीं होता। क्योंकि लोभनिमित्तक कोई परीषह नहीं बतलाया गया। यदि कोई कथञ्चित् इसका आग्रह करे, तो वह अत्यन्त अल्प होने के कारण उसकी यहां विवक्षा नहीं की गई।

आगम में तो समुच्चय रूप से बादर संपराय में मोहनीय के आठों परीषह बतलाये है। नौवें गुणस्थान में आठ परीषह अलग नहीं बतलाये है। बादर संपराय में छठा, सातवाँ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आदि गुणस्थान भी सम्मिलित होने से बादर-संपराय मोहनीय के आठ परीषह बतलाना उचित ही है।

सूर्य और उसका प्रकाश

३६ प्रश्न-जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे सूरिया उग्गमणमुहुत्तंसि दूरे य मूले य दीसंति, मज्झंतियमुहुत्तंसि मूले य दूरे य दीसंति, अत्थमणमुहुत्तंसि दूरे य मूले य दीसंति।

३६ उत्तर-हंता, गोयमा ! जंबुद्दीवे णं दीवे सूरिया उग्गमण-मुहुत्तंसि दूरे य, तं चेव जाव अत्थमणमुहुत्तंसि दूरे य मूले य दीसंति।

३७ प्रश्न-जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे सूरिया उग्गमणमुहुत्तंसि मज्झंतियमुहुत्तंसि य अत्थमणमुहुत्तंसि य सव्वत्थ समा उच्चत्तेणं ?

३७ उत्तर-हंता, गोयमा ! जंबुद्दीवे णं दीवे सूरिया उग्गमण० जाव उच्चत्तेणं।

३८ प्रश्न-जइ णं भंते ! जंबुद्दीवे दीवे सूरिया उग्गमणमुहुत्तंसि, मज्झंतियमुहुत्तंसि, अत्थमणमुहुत्तंसि य जाव उच्चत्तेणं, से केणं खाइ अट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ-जंबुद्दीवे णं दीवे सूरिया उग्गमण-मुहुत्तंसि दूरे य मूले य दीसंति, जाव अत्थमणमुहुत्तंसि, दूरे य मूले य दीसंति ?

३८ उत्तर-गोयमा ! लेस्सापडिघाएणं उग्गमणमुहुत्तंसि दूरे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

य मूले य दीसंति. लेस्साभितावेणं मज्झंतियमुहुत्तंसि मूले य दूरे य दीसंति, लेस्सापडिघाएणं अत्थमणमुहुत्तंसि दूरे य मूले य दीसंति; से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ-जंबुद्दीवे णं दीवे सूरिया उग्गमण-मुहुत्तंसि दूरे य मूले य दीसंति; जाव अत्थमण जाव दीसंति ।

कठिन शब्दार्थ—सूरिया—सूर्य, उग्गमणमुहुत्तंसि—उदय होने के समय, मज्झंतियमुहुत्तंसि--मध्यान्ह के समय, मूले--निकट, दीसंति---दिखाई देता है, अत्थमणमुहुत्तंसि—अस्त होते समय, सव्वत्थ--सर्वत्र, समाउच्चत्तेणं--समान ऊंचाई पर है, लेस्सापडिघाएणं--तेज के प्रतिघात से, लेस्साभितावेणं—तेज के अभिताप से ।

भावार्थ--३६ प्रश्न--हे भगवन् ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप में दो सूर्य, उदय के समय दूर होते हुए भी निकट दिखाई देते हैं ? मध्यान्ह के समय निकट होते हुए भी दूर दिखाई देते हैं ? और अस्त होने के समय दूर होते हुए भी निकट दिखाई देते हैं ?

३६ उत्तर-हां, गौतम ! जम्बूद्वीप नामक द्वीप में दो सूर्य, उदय के समय दूर होते हुए भी निकट दिखाई देते हैं, इत्यादि । यावत् अस्त समय दूर होते हुए भी निकट दिखाई देते हैं ।

३७ प्रश्न-हे भगवन् ! जम्बूद्वीप में दो सूर्य, उदय के समय, मध्यान्ह के समय और अस्त के समय सभी स्थानों पर ऊंचाई में बराबर हैं ?

३७ उत्तर-हां गौतम ! जम्बूद्वीप में रहे हुए दो सूर्य, उदय के समय यावत् सभी स्थानों पर ऊंचाई में बराबर हैं ।

३८ प्रश्न-हे भगवन् ! यदि जम्बूद्वीप में दो सूर्य उदय के समय मध्यान्ह के समय और अस्त के समय, सभी स्थानों पर ऊंचाई में बराबर हैं, तो ऐसा किस कारण कहते हैं कि जम्बूद्वीप में दो सूर्य उदय के समय दूर होते हुए भी निकट दिखाई देते हैं, यावत् अस्त के समय दूर होते हुए भी निकट दिखाई देते हैं ?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

३८ उत्तर-हे गौतम ! लेश्या (तेज) के प्रतिघात से सूर्य, उदय के समय दूर होते हुए भी निकट दिखाई देते हैं। मध्यान्ह में तेज के अभिताप से पास होते हुए भी दूर दिखाई देते हैं और अस्त के समय तेज के प्रतिघात से दूर होते हुए भी निकट दिखाई देते हैं। इसलिये हे गौतम ! मैं कहता हूं कि जम्बूद्वीप में दो सूर्य, उदय के समय दूर होते हुए भी निकट दिखाई देते हैं, यावत् अस्त के समय दूर होते भी निकट दिखाई देते हैं।

३९ प्रश्न-जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे सूरिया किं तीयं खेत्तं गच्छंति, पडुप्पण्णं खेतं गच्छंति, अणागयं खेत्तं गच्छंति ?

३९ उत्तर-गोयमा ! णो तीयं खेत्तं गच्छंति, पडुप्पण्णं खेत्तं गच्छंति, णो अणागयं खेत्तं गच्छंति।

४० प्रश्न-जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे सूरिया किं तीयं खेत्तं ओभासंति, पडुप्पण्णं खेतं ओभासंति, अणागयं खेत्तं ओभासंति ?

४० उत्तर-गोयमा ! णो तीयं खेत्तं ओभासंति, पडुप्पण्णं खेत्तं ओभासंति, णो अणागयं खेत्तं ओभासंति।

कठिन शब्दार्थ-तीयं-अतीत (बीता हुआ), पडुप्पण्णं-प्रत्युत्पन्न (वर्त्तमान), अणागयं-अनागत (भविष्य), ओभासंति-प्रकाशित करता है।

भावार्थ-३९ प्रश्न-हे भगवन् ! जम्बूद्वीप में दो सूर्य, क्या अतीत क्षेत्र की ओर जाते हैं, वर्त्तमान क्षेत्र की ओर जाते हैं, या अनागत क्षेत्र की ओर जाते हैं ?

३९ उत्तर-हे गौतम ! अतीत क्षेत्र की ओर नहीं जाते, अनागत क्षेत्र की ओर भी नहीं जाते, वर्त्तमान क्षेत्र की ओर जाते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

४० प्रश्न-हे भगवन् ! जम्बूद्वीप में दो सूर्य, अतीत क्षेत्र को प्रकाशित करते हैं, वर्तमान क्षेत्र को प्रकाशित करते हैं, या अनागत क्षेत्र को प्रकाशित करते हैं ?

४० उत्तर-हे गौतम ! अतीत क्षेत्र को प्रकाशित नहीं करते और न अनागत क्षेत्र को ही प्रकाशित करते हैं, वर्तमान क्षेत्र को प्रकाशित करते हैं ।

४१ प्रश्न-तं भंते ! किं पुट्ठं ओभासंति, अपुट्ठं ओभासंति ?

४१ उत्तर--गोयमा ! पुट्ठं ओभासंति, णो अपुट्ठं ओभासंति, जाव णियमा छद्दिसिं ।

४२ प्रश्न-जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे सूरिया किं तीयं खेत्तं उज्जोवेंति ?

४२ उत्तर-एवं चेव, जाव णियमा छद्दिसिं, एवं तवेंति, एवं भासंति, जाव णियमा छद्दिसिं ।

४३ प्रश्न-जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे सूरियाणं किं तीए खेत्ते किरिया कज्जइ, पडुप्पण्णे खेत्ते किरिया कज्जइ, अणागए खेत्ते किरिया कज्जइ ?

४३ उत्तर-गोयमा ! णो तीए खेत्ते किरिया कज्जइ, पडुप्पण्णे खेते किरिया कज्जइ, णो अणागए खेत्ते किरिया कज्जइ ।

४४ प्रश्न-सा भंते ! किं पुट्ठा कज्जइ, अपुट्ठा कज्जइ ?

४४ उत्तर-गोयमा ! पुट्ठा कज्जइ, णो अपुट्ठा कज्जइ, जाव णियमा छद्दिसिं ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ-पुट्ठं-स्पर्श हुए, उज्जोवेंति-उद्योतित करता है, तवेंति-तपाता है, किरिया कज्जंति-क्रिया की जाती हैं।

४१ प्रश्न-हे भगवन् ! जम्बूद्वीप में दो सूर्य, स्पृष्ट क्षेत्र को प्रकाशित करते हैं, या अस्पृष्ट क्षेत्र को प्रकाशित करते हैं ?

४१ उत्तर-हे गौतम ! वे स्पृष्ट क्षेत्र को प्रकाशित करते हैं, अस्पृष्ट क्षेत्र को प्रकाशित नहीं करते, यावत् नियमा छह दिशाओं को प्रकाशित करते हैं।

४२ प्रश्न-हे भगवन् ! जम्बूद्वीप में दो सूर्य, अतीत क्षेत्र को उदद्योतित करते हैं, इत्यादि प्रश्न।

४२ उत्तर-हे गौतम ! पूर्वोक्त प्रकार से जानना चाहिये। यावत् नियम से छह दिशा को उदद्योतित करते हैं। इसी प्रकार तपाते हैं। यावत् छह दिशा को नियम से शोभित करते हैं।

४३ प्रश्न-हे भगवन् ! जम्बूद्वीप में सूर्यों की क्रिया, क्या अतीत क्षेत्र में की जाती हैं, वर्त्तमान क्षेत्र मे की जाती है अथवा अनागत क्षेत्र में की जाती है ?

४३ उत्तर-हे गौतम ! अतीत क्षेत्र में क्रिया नहीं की जाती और न अनागत क्षेत्र में की जाती है, वर्त्तमान क्षेत्र में क्रिया की जाती है।

४४ प्रश्न-हे भगवन् ! वे सूर्य स्पृष्ट क्रिया करते हैं, या अस्पृष्ट ?

४४ उत्तर-हे गौतम ! वे स्पृष्ट क्रिया करते हैं, अस्पृष्ट क्रिया नहीं करते, यावत् नियम से छह दिशा में स्पृष्ट क्रिया करते हैं।

४५ प्रश्न-जंबुद्दीवे णं भंते ! दीवे सूरिया केवइयं खेत्तं उड्ढं तवंति, केवइयं खेत्तं अहे तवंति, केवइयं खेत्तं तिरियं तवंति ?

४५ उत्तर-गोयमा ! एगं जोयणसयं उड्ढं तवंति; अट्ठारस जोयणसयाइं अहे तवंति, सीयालीसं जोयणसहस्साइं दोण्णि तेवट्ठे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जोयणसए एक्कतीसं च सट्ठिभाए जोयणस्स तिरियं तवंति ।

४६ प्रश्न-अंतो णं भंते ! माणुसुत्तरपव्वयस्स जे चंदिम-सूरिय-गहगण-णक्खत्त-तारारूवा ते णं भंते ! देवा किं उड्ढोववण्णगा ?

४६ उत्तर-जहा जीवाभिगमे तहेव णिरवसेसं जाव उक्कोसेणं छम्मासा ।

४७ प्रश्न-बाहिया णं भंते ! माणुसुत्तरस्स० ?

४७ उत्तर-जहा जीवाभिगमे, जाव इंदट्ठाणे णं भंते ! केवइयं कालं उववाएणं विरहिए पण्णत्ते ? गोयमा ! जहण्णेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं छम्मासा ।

❀ सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति ❀

॥ अट्ठमसए अट्ठमो उद्देसो समत्तो ॥

कठिन शब्दार्थ—सीयालीसं—सैंतालीस, तेवट्ठे—तिरसठ ।

भावार्थ-४५ प्रश्न-हे भगवन् ! जम्बूद्वीप में सूर्य कितने ऊँचे क्षेत्र को तप्त करते हैं, कितने नीचे क्षेत्र को तप्त करते हैं और कितने तिर्छे क्षेत्र को तप्त करते हैं ?

४५ उत्तर-हे गौतम ! सौ योजन ऊँचे क्षेत्र को तप्त करते हैं, अठारह सौ (१८००) योजन नीचे क्षेत्र को तप्त करते हैं और सैंतालीस हजार दो सौ त्रेसठ योजन तथा एक योजन के साठिया इक्कीस भाग (४७२६३$\frac{21}{60}$) तिर्छे क्षेत्र को तप्त करते हैं ।

४६ प्रश्न-हे भगवन् ! मनुष्योत्तर पर्वत के भीतर जो चन्द्र, सूर्य, ग्रह-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गण, नक्षत्र और तारा रूप देव हैं, क्या वे उर्ध्वलोक में उत्पन्न हुए हैं ?

४६ उत्तर-हे गौतम ! जिस प्रकार जीवाभिगम सूत्र की तीसरी प्रतिपत्ति में कहा गया है, उसी प्रकार यहां भी कहना चाहिये। यावत् उनका 'उपपात-विरह काल जघन्य एक समय और उत्कृष्ट छह मास है,' यहां तक कहना चाहिये।

४७ प्रश्न-हे भगवन् ! मनुष्योत्तर पर्वत के बाहर जो चन्द्रादि देव हैं, वे ऊर्ध्वलोक में उत्पन्न हुए हैं ?

४७ उत्तर-हे गौतम ! जिस प्रकार जीवाभिगम सूत्र की तीसरी प्रतिपत्ति में कहा गया है, उसी प्रकार यहां भी कहना चाहिये। यावत् '(प्रश्न) हे भगवन् ! इन्द्रस्थान कितने काल तक उपपात-विरहित कहा गया है ? (उत्तर) हे गौतम ! जघन्य एक समय, उत्कृष्ट छह मास का विरह कहा गया है। अर्थात् एक इन्द्र के मरण (च्यवन) के पश्चात् जघन्य एक समय बाद और उत्कृष्ट छह महीने बाद दूसरा इन्द्र उस स्थान पर उत्पन्न होता है। इतने काल तक इन्द्रस्थान उपपात-विरहित होता है'—यहाँ तक कहना चाहिये।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है। ऐसा कहकर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं।

विवेचन—सूर्य समतल भूमि से आठ सौ योजन ऊँचा है, किन्तु उदय और अस्त के समय देखने वालों को अपने स्थान की अपेक्षा निकट दिखाई देता है। इसका कारण यह है कि उस समय उसका तेज मन्द होता है। मध्यान्ह के समय देखने वालों को अपने स्थान की अपेक्षा दूर मालूम होता है। इसका कारण यह है कि उस समय उसका तेज तीव्र होता है। इन्हीं कारणों से सूर्य निकट और दूर दिखाई देता है। अन्यथा उदय, अस्त और मध्यान्ह के समय सूर्य तो समतल-भूमि से आठ सौ योजन ही दूर रहता है।

यहां पर क्षेत्र के साथ अतीत, वर्तमान और अनागत विशेषण लगाये गये हैं। जो क्षेत्र अतिक्रान्त हो गया है अर्थात् जिस क्षेत्र को सूर्य पार कर गया है, उस क्षेत्र को 'अतिक्रान्त क्षेत्र' कहते हैं, जिस क्षेत्र में अभी सूर्य गति कर रहा है, उसे 'वर्तमान क्षेत्र' कहते हैं और जिस क्षेत्र में सूर्य अब गमन करेगा, उस क्षेत्र को 'अनागत क्षेत्र' कहते हैं। सूर्य अतीत

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्षेत्र में गमन नहीं करता क्योंकि वह तो अतिक्रान्त हो चुका है। इसी प्रकार अनागत क्षेत्र में भी गति नहीं करता। किन्तु वर्तमान क्षेत्र में गति करता है। इसी प्रकार अतीत और अनागत तथा अस्पृष्ट और अनवगाढ़ क्षेत्र को प्रकाशित, उद्योतित और तप्त नहीं करता, किन्तु वर्तमान, स्पृष्ट और अवगाढ़ क्षेत्र को प्रकाशित, उद्योतित और तप्त करता है अर्थात् इसी क्षेत्र में क्रिया करता है, अतीत, अनागत में नहीं।

सूर्य, अपने विमान से सौ योजन ऊपर क्षेत्र को प्रकाशित, उद्योतित और तप्त करते हैं। सूर्य से आठ सौ योजन नीचे समतल-भूमि भाग है और वहां से हजार योजन नीचे अधोलोक ग्राम है। वहां तक सूर्य प्रकाशित, उद्योतित और तप्त करते हैं। सर्वोत्कृष्ट अर्थात् सबसे बड़े दिन में चक्षु-स्पर्श की अपेक्षा सूर्य ४७२६३२१/६० योजन तक तिरछे क्षेत्र को उद्योतित, प्रकाशित और तप्त करते हैं। इसके पश्चात् चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र, तारा आदि के विषय में प्रश्न किये गये हैं, उनके उत्तर के लिए जीवाभिगम सूत्र की तीसरी प्रतिपत्ति की भलामण दी गई है। वहां ज्योतिषी देवताओं का विस्तृत वर्णन है।

॥ इति आठवें शतक का आठवां उद्देशक सम्पूर्ण ॥

शतक ८ उद्देशक ९

प्रयोग और विस्रसा बन्ध

१ प्रश्न-कइविहे णं भंते ! बंधे पण्णत्ते ?

१ उत्तर-गोयमा ! दुविहे बंधे पण्णत्ते, तं जहा-पओगबंधे य वीससाबंधे य।

२ प्रश्न-वीससाबंधे णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते ?

२ उत्तर-गोयमा ! दुविहे पण्णत्ते, तं जहा-साईयवीससाबंधे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अणाईयवीससाबंधे य।

३ प्रश्न–अणाईयवीससाबंधे णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते ?

३ उत्तर–गोयमा ! तिविहे पण्णत्ते, तं जहा–धम्मत्थिकाय-अण्णमण्णअणाईयवीससाबंधे, अधम्मत्थिकायअण्णमण्णअणाईय-वीससाबंधे, आगासत्थिकायअण्णमण्णअणाईयवीससाबंधे।

४ प्रश्न–धम्मत्थिकायअण्णमण्णअणाईयवीससाबन्धे णं भंते ! किं देसबन्धे, सव्वबन्धे ?

४ उत्तर–गोयमा ! देसबन्धे, णो सव्वबन्धे। एवं अधम्मत्थि-कायअण्णमण्णअणाईयवीससाबन्धे वि, एवं आगासत्थिकायअण्ण-मण्णअणाईयवीससाबन्धे वि।

५ प्रश्न–धम्मत्थिकायअण्णमण्णअणाईयवीससाबंधे णं भंते ! कालओ केवच्चिरं होइ ?

५ उत्तर–गोयमा ! सव्वद्धं। एवं अधम्मत्थिकाए, एवं आगा-सत्थिकाए वि।

कठिन शब्दार्थ–पओगबंधे–जीव के प्रयोग से होने वाला बन्ध, **वीससाबंधे**–स्वभाव से होने वाला बन्ध, **साईयवीससाबंधे**–जिसकी आदि हो ऐसा स्वाभाविक बन्ध, **सव्वद्धं**–सर्व काल।

भावार्थ–१ प्रश्न–हे भगवन् ! बन्ध कितने प्रकार का कहा गया है ?

१ उत्तर–हे गौतम ! बन्ध दो प्रकार का कहा गया है। यथा–प्रयोग बन्ध और विस्रसा बन्ध।

२ प्रश्न–हे भगवन् ! विस्रसा बन्ध कितने प्रकार का कहा गया है ?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

२ उत्तर–हे गौतम ! विस्रसा बन्ध दो प्रकार का कहा गया है। यथा–सादि विस्रसा बन्ध और अनादि विस्रसा बन्ध ।

३ प्रश्न–हे भगवन् ! अनादि विस्रसा बन्ध कितने प्रकार का कहा गया है ?

३ उत्तर–हे गौतम ! अनादि विस्रसा बंध तीन प्रकार का कहा गया है। यथा–धर्मास्तिकाय का अन्योन्य अनादि विस्रसा बन्ध, अधर्मास्तिकाय का अन्योन्य अनादि विस्रसा बन्ध और आकाशास्तिकाय का अन्योन्य अनादि विस्रसा बन्ध ।

४ प्रश्न—हे भगवन् ! धर्मास्तिकाय का अन्योन्य अनादि विस्रसा बन्ध, क्या देश बन्ध है, अथवा सर्व बन्ध है ?

४ उत्तर–हे गौतम ! देश बन्ध है, सर्व बन्ध नहीं । इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय का अन्योन्य अनादि विस्रसा बन्ध और आकाशास्तिकाय का अन्योन्य अनादि विस्रसा बन्ध के विषय में भी जानना चाहिये अर्थात् ये भी देश बन्ध हैं, सर्व बन्ध नहीं ।

५ प्रश्न–हे भगवन् ! धर्मास्तिकाय का अन्योन्य अनादि विस्रसा बन्ध कितने काल तक रहता है ?

५ उत्तर–हे गौतम ! सर्वाद्धा अर्थात् सभी काल रहता है। इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय का अन्योन्य अनादि विस्रसा बन्ध और आकाशास्तिकाय का अन्योन्य अनादि विस्रसा बन्ध भी सर्व काल रहता है ।

६ प्रश्न–साईयवीससाबंधे णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते ?

६ उत्तर–गोयमा ! तिविहे पण्णत्ते, तं जहा–बंधणपच्चइए, भायणपच्चइए, परिणामपच्चइए ।

७ प्रश्न–से किं तं बंधणपच्चइए ?

७ उत्तर–बंधणपच्चइए जं णं परमाणु-पुग्गलदुप्पएसिय-तिप्प-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एसिय जाव दसपएसिय-संखेज्जपएसिय-असंखेज्जपएसिय-अणंतपए-सियाणं खंधाणं वेमायणिद्धयाए, वेमायलुक्खयाए, वेमायणिद्धलुक्ख-याए बंधणपच्चइए णं बंधे समुप्पज्जइ, जहण्णेणं एक्कं समयं उक्को-सेणं असंखेज्जं कालं। सेत्तं बंधणपच्चइए।

८ प्रश्न—से किं तं भायणपच्चइए ?

८ उत्तर—भायणपच्चइए जं णं जुण्णसुरा-जुण्णगुल-जुण्ण-तंदुलाणं भायणपच्चइए णं बंधे समुप्पज्जइ, जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं संखेज्जं कालं। सेत्तं भायणपच्चइए।

९ प्रश्न—से किं तं परिणामपच्चइए ?

९ उत्तर—परिणामपच्चइए जं णं अब्भाणं, अब्भरुक्खाणं जहा तइयसए जाव अमोहाणं परिणामपच्चइए णं बंधे समुप्पज्जइ, जहण्णेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं छम्मासा। सेत्तं परिणामपच्चइए। सेत्तं साईयवीससाबंधे। सेत्तं वीससाबंधे।

कठिन शब्दार्थ—भायणपच्चइए–भाजन-प्रत्ययिक (आधार विषयक), परिणाम-पच्चइए–रूपान्तर विषयक, वेमायणिद्धयाए–विषम स्निग्धता से, जुण्णसुरा–पुरानी मदिरा, जुण्णगुल––पुराना गुड़, अब्भाणं–अभ्र का (बादलों का), अब्भरुक्खाणं–अभ्रवृक्षों का।

भावार्थ–६ प्रश्न—हे भगवन् ! सादि विस्रसा बंध कितने प्रकार कहा गया है ?

६ उत्तर–हे गौतम ! तीन प्रकार का कहा गया है। यथा–बंधन-प्रत्ययिक भाजन-प्रत्ययिक और परिणाम-प्रत्ययिक।

७ प्रश्न–हे भगवन् ! बंधन प्रत्ययिक सादि विस्रसा बंध किसे कहते हैं ?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

७ उत्तर-हे गौतम ! परमाणु, द्विप्रदेशिक, त्रिप्रदेशिक यावत् दस प्रदेशिक, संख्यात प्रदेशिक, असंख्यात प्रदेशिक और अनन्त प्रदेशिक पुद्गल स्कन्धों का विषम स्निग्धता द्वारा, विषम रूक्षता द्वारा और विषम स्निग्धरूक्षता द्वारा बंधनप्रत्ययिक बंध होता है, वह जघन्य एक समय और उत्कृष्ट असंख्य काल तक रहता है। इस प्रकार बंधनप्रत्ययिक बंध कहा गया है।

८ प्रश्न-हे भगवन् ! भाजनप्रत्ययिक सादि विस्रसा बंध किसे कहते हैं ?

८ उत्तर-हे गौतम ! पुरानी मदिरा, पुराना गुड़ और पुराने चावलों का भाजन-प्रत्ययिक सादि-विस्रसा बंध होता है। वह जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट संख्यात काल तक रहता है। यह भाजन-प्रत्ययिक बंध कहा गया है।

९ प्रश्न-हे भगवन् ! परिणाम-प्रत्ययिक सादि-विस्रसा बंध किसे कहते हैं?

९ उत्तर-हे गौतम ! बादलों का, अभ्रवृक्षों का यावत् अमोघों (सूर्य के उदय और अस्त के समय सूर्य की किरणों का एक प्रकार का आकार 'अमोघ' कहलाता है) आदि के नाम तीसरे शतक के सातवें उद्देशक× में कहे गये हैं, उन सब का परिणाम प्रत्ययिक बंध होता है। वह बंध जघन्य एक समय और उत्कृष्ट छह मास तक रहता है। इस प्रकार परिणाम प्रत्ययिक बंध कहा गया है। यह सादि विस्रसा बंध एवं विस्रसा बंध का कथन हुआ।

विवेचन-जो मन, वचन और कायारूप योगों की प्रवृत्ति से बंधता है, उसे 'प्रयोग बन्ध' कहते हैं। जो स्वाभाविक रूप से बंधता है उसे 'विस्रसा बन्ध' कहते हैं। धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय की अपेक्षा विस्रसा बन्ध के तीन भेद कहे गये हैं। धर्मास्तिकाय के प्रदेशों का दूसरे प्रदेशों के साथ जो सम्बन्ध होता है, वह 'देश-बन्ध' होता है, किन्तु सर्व-बन्ध नहीं होता। यदि सर्व-बन्ध माना जाय तो एक प्रदेश में दूसरे सभी प्रदेशों का समावेश हो जाने से धर्मास्तिकाय एक प्रदेश रूप ही रह जायगा, किन्तु यह असंगत है। अतः इनका देश-बन्ध ही होता है, सर्व-बन्ध नहीं। इसी तरह अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय के विषय में भी समझना चाहिये।

स्निग्धता आदि गुणों से परमाणुओं का जो बन्ध होता है, उसे 'बन्धनप्रत्ययिक बन्ध' कहते हैं।

× देखो भाग १ पृ० ७१३।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भाजन यानी आधार के निमित्त से जो बन्ध होता है, उसे 'भाजन-प्रत्ययिक बन्ध' कहते हैं। जैसे-घड़े में रखी हुई पुरानी मदिरा गाढ़ी हो जाती है, पुराना गुड़ और पुराने चावलों का पिण्ड बन्ध जाता है, यह-'भाजन-प्रत्ययिक बन्ध' कहलाता है।

परिणाम अर्थात् रूपान्तर के निमित्त से जो बन्ध होता है। उसे 'परिणाम प्रत्ययिक बन्ध' कहते हैं।

स्निग्धता और रूक्षता इन गुणों से परमाणुओं का बन्ध होता है। यह बन्ध किस प्रकार होता है, इस विषय में नियम बतलाते हुए कहा है कि—

समनिद्धयाए बंधो ण होइ, समलुक्खयाए वि ण होइ।
वेमायनिद्धलुक्खत्तणेण, बंधो उ खंधाणं ॥ १ ॥

निद्धस्स निद्धेण दुयाहियेणं, लुक्खस्स लुक्खेण दुयाहियेणं।
निद्धस्स लुक्खेण उवेइ बंधो, जहण्ण वज्जो विसमो समो वा ॥ २ ॥

अर्थ—समान स्निग्धता में या समान रूक्षता में स्कन्धों का परस्पर बन्ध नहीं होता विषम स्निग्धता और विषम रूक्षता में बंध होता है। स्निग्ध का द्विगुणादि अधिक स्निग्ध के साथ और रूक्ष का द्विगुणादि अधिक रूक्ष के साथ बन्ध होता है। जघन्य गुण को छोड़कर स्निग्ध का रूक्ष के साथ सम या विषम बन्ध होता है अर्थात् एक गुण स्निग्ध या एक गुण रूक्ष रूप जघन्य गुण को छोड़कर शेष सम या विषम गुण वाले स्निग्ध अथवा रूक्ष का परस्पर बन्ध होता है। समान स्निग्ध का समान स्निग्ध के साथ तथा समान रूक्ष का समान रूक्ष के साथ बन्ध नहीं होता। जैसे-एक गुण स्निग्ध का एक गुण स्निग्ध के साथ बन्ध नहीं होता, एक गुण स्निग्ध का दो गुण स्निग्ध के साथ बन्ध नहीं होता, किन्तु तीन गुण स्निग्ध के साथ बन्ध होता है। दो गुण स्निग्ध का दो गुण स्निग्ध के साथ बन्ध नहीं होता, दो गुण स्निग्ध का तीन गुण स्निग्ध के साथ भी बन्ध नहीं होता, किन्तु चार गुण स्निग्ध के साथ बन्ध होता है। जिस प्रकार स्निग्ध के विषय में कहा, उसी प्रकार रूक्ष के विषय में भी जान लेना चाहिये। एक गुण को छोड़कर पर-स्थान में स्निग्ध और रूक्ष का परस्पर सम या विषम दोनों प्रकार के बन्ध होते हैं। जैसे कि-एक गुण स्निग्ध का एक गुण रूक्ष के साथ बन्ध नहीं होता, किन्तु द्वयादि गुण रूक्ष के साथ बन्ध होता है। दो गुण स्निग्ध का दो गुण रूक्ष के साथ बन्ध होता है। दो गुण स्निग्ध का तीन गुण रूक्ष के साथ भी बन्ध होता है। इस प्रकार सम और विषम दोनों प्रकार के बन्ध होते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रयोग बन्ध

१० प्रश्न–से किं तं पओगबंधे ।

१० उत्तर–पओगबंधे तिविहे पण्णत्ते, तं जहा–अणाईए वा अपज्जवसिए, साईए वा अपज्जवसिए, साईए वा सपज्जवसिए। तत्थ णं जे से अणाईए अपज्जवसिए से णं अट्ठण्हं जीवमज्झपएसाणं, तत्थ वि णं तिण्हं तिण्हं अणाईए अपज्जवसिए, सेसाणं साईए। तत्थ णं जे से साईए अपज्जवसिए से णं सिद्धाणं । तत्थ णं जे से साईए सपज्जवसिए से णं चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा–आलावणबंधे, अल्लियावणबंधे, सरीरबंधे, सरीरप्पओगबंधे।

कठिन शब्दार्थ–जीवमज्झपएसाणं–जीव के आत्म-प्रदेशों में मध्य के प्रदेश, **सेसाणं**–बाकी के, **आलावणबंधे**-आलापन बन्ध (रस्सी आदि से घास आदि को बांधना), **अल्लियावणबंधे**–लाख आदि से दो वस्तु को चिपकाना, **सरीरप्पओगबंधे**–शरीर के प्रयोग से बंध होना।

भावार्थ–१० प्रश्न–हे भगवन् ! प्रयोग-बन्ध किसे कहते हैं ?

१० उत्तर–हे गौतम ! प्रयोग बंध तीन प्रकार का कहा गया है। यथा–१ अनादि-अपर्यवसित २ सादि-अपर्यवसित और ३ सादि-सपर्यवसित। इनमें से जो अनादि-अपर्यवसित बंध है, वह जीव के मध्य के आठ प्रदेशों का होता है। उन आठ प्रदेशों में भी तीन तीन प्रदेशों का जो बंध है, वह अनादि-अपर्यवसित बंध है, शेष सभी प्रदेशों का सादि बंध है। सिद्ध जीवों के प्रदेशों का सादि-अपर्यवसित बंध है। सादि-सपर्यवसित बंध चार प्रकार का कहा गया है। यथा–आलापन बन्ध, आलीन बन्ध, शरीर बन्ध और शरीर प्रयोग बन्ध।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

११ प्रश्न-से किं तं आलावणबंधे ?

११ उत्तर-आलावणबंधे जं णं तणभाराण वा, कट्ठभाराण वा, पत्तभाराण वा, पलालभाराण वा, वेल्लभाराण वा, वेत्तलया-वाग-वरत्त-रज्जु-वल्लि-कुस-दब्भमाईएहिं आलावणबंधे समुप्पज्जइ; जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं संखेज्जं कालं, सेत्तं आलावणबंधे।

कठिन शब्दार्थ-कट्ठभाराण-काष्ठ का भार, **वेल्लभाराण**-लताओं का भार, **वेत्तलया**-बेंत की लता।

भावार्थ-११ प्रश्न-हे भगवन् ! आलापन बन्ध किसे कहते हैं ?

११ उत्तर-हे गौतम ! घास के भार, लकडी के भार, पत्तों के भार, पलाल के भार और बेल के भार, इन भारों को बेंत की लता, छाल, वरत्रा (मोटी रस्सी), रज्जु (रस्सी), बेल, कुश और डाभ आदि से बांधना-'आलापन बन्ध' कहलाता है। यह जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट संख्यात काल तक रहता है। यह आलापन बन्ध कहा गया है।

१२ प्रश्न-से किं तं अल्लियावणबंधे ?

१२ उत्तर-अल्लियावणबंधे चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा-लेसणाबंधे, उच्चयबंधे, समुच्चयबंधे, साहणणाबंधे।

भावार्थ-१२ प्रश्न-हे भगवन् ! आलीन बंध किसे कहते हैं ?

१२ उत्तर-हे गौतम ! आलीन बन्ध चार प्रकार का कहा गया है। यथा-१ श्लेषणा बंध, २ उच्चय बंध, ३ समुच्चय बंध और ४ संहनन बंध।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१३ प्रश्न-से किं तं लेसणाबंधे ?

१३ उत्तर-लेसणाबंधे जं णं कुट्टाणं, कुट्टिमाणं, खंभाणं, पासायाणं, कट्ठाणं, चम्माणं, घडाणं, पडाणं, कडाणं छुहा-चिक्खल्ल-सिलेस-लक्ख-महुसित्थमाईएहिं लेसणएहिं बंधे समुप्पज्जइ, जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं संखेज्जं कालं। सेत्तं लेसणाबंधे।

कठिन शब्दार्थ--कुट्ट--शिखर, कुट्टिमा--आँगन की फरसी, खंभाणं--स्तंभ का, पासायाणं-प्रासाद (महल) का, कट्ठाणं-लकड़ी का, चम्माणं-चमड़े का, पडाणं--कपड़े का कडाणं-चटाइयों का, छुहा-चूना, चिक्खल्ल-कचरा या कीचड़, सिलेस-श्लेष (चिकनाई) मे, लक्ख--लाख, महुसित्थमाई--मधुसिक्थ आदि (मोम आदि चिकने द्रव्यों से)।

भावार्थ--१३ प्रश्न--हे भगवन् ! श्लेषणा बंध किसे कहते हैं ?

१३ उत्तर-हे गौतम ! शिखर, कुट्टिम (फर्श), स्तम्भ, प्रासाद, काष्ठ, चर्म, घड़ा, कपड़ा, चटाई आदि का चूना, मिट्टी, कर्दम (कीचड़) श्लेष (वज्र लेप), लाख, मोम इत्यादि श्लेषण द्रव्यों द्वारा जो बन्ध होता है, वह 'श्लेषणा बन्ध' कहलाता है। यह जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट संख्यात काल तक रहता है। यह श्लेषणा बंध कहा गया है।

१४ प्रश्न-से किं तं उच्चयबंधे ?

१४ उत्तर-उच्चयबंधे जं णं तणरासीण वा, कट्ठरासीण वा, पत्तरासीण वा, तुसरासीण वा, भुसरासीण वा, गोमयरासीण वा, अवगररासीण वा उच्चत्तेणं बंधे समुप्पज्जइ, जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं संखेज्जं कालं, सेत्तं उच्चयबंधे।

कठिन शब्दार्थ--गोमयरासी--गोबर का ढेर, (कंडों का ढेर) अवगररासी--

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कचरे का ढेर।

भावार्थ-१४ प्रश्न-हे भगवन् ! उच्चय बंध किसे कहते हैं ?

१४ उत्तर-हे गौतम ! तृण राशि, काष्ठ राशि, पत्र राशि, तुष राशि, भूसे का ढेर, उपलों (छाणों) का ढेर और कचरे का ढेर, इन सभी का ऊँचे ढेर रूप से जो बंध होता है, उसको 'उच्चय बंध' कहते हैं। वह जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट संख्येय काल तक रहता है। इस प्रकार उच्चय बंध कहा गया है।

१५ प्रश्न-से किं तं समुच्चयबंधे ?

१५ उत्तर-समुच्चयबंधे जं णं अगड-तडाग-णई-दह-वावी-पुक्खरिणी-दीहियाणं गुंजालियाणं, सराणं, सरपंतियाणं सरसर-पंतियाणं, बिलपंतियाणं, देवकुल-सभ-प्पव-थूभ-खाइयाणं, परिहाणं, पागार-ट्टालग-चरिय-दार-गोपुर-तोरणाणं, पासाय-घर-सरण-लेण-आव-णाणं, सिंघाडग-तिय-चउक्क-चच्चर-चउमुह-महापहमाईणं, छुहा-चिक्खल्ल-सिलेससमुच्चएणं बंधे समुप्पज्जइ, जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं संखेज्जं कालं। सेत्तं समुच्चयबंधे।

कठिन शब्दार्थ-अगड-कुआँ, तडाग-तालाब, दह-द्रह, वावी-वापी (बावड़ी) पुक्ख-रिणी-पुष्करिणी (कमलों से युक्त बावड़ी), दीहियाणं-दीर्घिका, सराणं-सरोवर का, देवकुल-मंदिरों, प्पव-प्याऊ, थूभ-स्तूप, परिहा-परिखा, पागार-किला (कोट), अट्टालग-गढ़ या किले पर का कमरा या कंगूरे, चरिय-गढ़ और नगर के मध्य का मार्ग, दार-दरवाजे, गोपुर-नगर द्वार या किले का फाटक, लेण-घर, आवणा-दुकान, सिंघाडग-शृंगाटकाकार मार्ग, महापह-महापथ (राजमार्ग)।

भावार्थ-१५ प्रश्न-हे भगवन् ! समुच्चय बंध किसे कहते हैं ?

१५ उत्तर-हे गौतम ! कुआँ, तालाब, नदी, द्रह, वापी, पुष्करिणी, दीर्घिका

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गुंजालिका, सरोवर, सरोवरों की पंक्ति, बड़े सरोवरों की पंक्ति, बिलों की पंक्ति, देवकुल, सभा, प्रपा (प्याऊ) स्तूप, खाई, परिखा, दुर्ग (किला), कंगूरे, चरिक, द्वार, गोपुर, तोरण, प्रासाद (महल), घर, शरणस्थान, लेण (घर-विशेष), दूकान, शृंगाटकाकार मार्ग, त्रिक मार्ग, चतुष्क मार्ग, चत्वर मार्ग, चतुर्मुख मार्ग और राजमार्गादि का चूना, मिट्टी और वज्र-लेपादि के द्वारा समुच्चय रूप से जो बंध होता है, उसे 'समुच्चय बंध' कहते हैं। उसकी स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट संख्येय काल की है। इस प्रकार यह समुच्चय बंध कहा गया है।

१६ प्रश्न-से किं तं साहणणाबंधे?

१६ उत्तर-साहणणाबंधे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा-देससाहणणाबंधे य, सव्वसाहणणाबंधे य।

कठिन शब्दार्थ-साहणणा-संहनन।

भावार्थ-१६ प्रश्न-हे भगवन्! संहनन बंध किसे कहते हैं?

१६ उत्तर-हे गौतम! संहनन बंध दो प्रकार का कहा गया है। यथा-देश संहनन बंध और सर्व संहनन बंध।

१७ प्रश्न-से किं तं देससाहणणाबंधे?

१७ उत्तर-देससाहणणाबंधे जं णं सगड-रह-जाण-जुग्ग-गिल्लि-थिल्लि-सीय-संदमाणी-लोही-लोहकडाह-कडुच्छय-आसणसयण-खंभ-भंडमत्तोवगरणमाईणं देससाहणणाबंधे समुप्पज्जइ, जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं उक्कोसेणं संखेज्जं कालं। सेत्तं देससाहणणाबंधे।

भावार्थ-१७ प्रश्न-हे भगवन्! देश संहनन बंध किसे कहते हैं?

१७ उत्तर-हे गौतम! गाडी, रथ, यान (छोटी गाडी) युग्यवाहन (दो

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हाथ प्रमाण वेदिका सहित जम्पान-पालखी), गिल्लि (हाथी की अम्बाडी), थिल्लि (पलाण), शिविका (पालखी), स्यन्दमानी (वाहन विशेष), लोढी, लोह का कड़ाह, कुड़छी (चम्मच), आसन, शयन, स्तम्भ, मिट्टी के बर्तन, पात्र और नाना प्रकार के उपकरण इत्यादि पदार्थों के साथ जो सम्बन्ध होता हैं, उसे देश संहनन बंध कहते है। यह जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट संख्येय काल तक रहता है। इस प्रकार यह देश संहनन बंध कहा गया है।

१८ प्रश्न-से किं तं सव्वसाहणणावंधे ?

१८ उत्तर-सव्वसाहणणाबंधे से णं खीरोदगमाईणं। सेत्तं सव्वसाहणणाबंधे, सेत्तं साहणणाबंधे, सेत्तं अल्लियावणबंधे।

भावार्थ-१८ प्रश्न-हे भगवन् ! सर्व संहनन बंध किसे कहते हैं ?

१८ उत्तर-हे गौतम ! दूध और पानी की तरह मिल जाना-सर्व संहनन बंध कहलाता है। इस प्रकार सर्व संहनन बंध कहा गया है। यह आलीन बंध का कथन पूर्ण हुआ है।

विवेचन-जीव के व्यापार द्वारा जो बंध होता है, वह 'प्रयोग बंध' कहलाता है। १ अनादि-अपर्यवसित, २ अनादि-सपर्यवसित, ३ सादि-अपर्यवसित और सादि-सपर्यवसित। इन चार भंगों में से दूसरे भंग में प्रयोग बंध नहीं होता, शेष तीन भंगों से होता है। जीव के असंख्यात प्रदेशों में से मध्य के जो आठ प्रदेश हैं, उनका बंध अनादि-अपर्यवसित है। क्योंकि जब जीव केवली-समुद्घात करता है, तब उसके प्रदेश सम्पूर्ण लोक में व्याप्त हो जाते हैं। उस समय भी वे आठ प्रदेश तो अपनी स्थिति में ही रहते हैं, उनमें किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं होता। इसलिये उनका बंध अनादि-अपर्यवसित है। उनकी स्थापना इस प्रकार है-नीचे गोस्तनाकार चार प्रदेश हैं और उनके ऊपर चार प्रदेश हैं। इस प्रकार समुदाय रूप से आठ प्रदेशों का बंध है। उन आठ प्रदेशों में भी प्रत्येक प्रदेश का अपने पास रहे हुए दो प्रदेशों के साथ और ऊपर, या नीचे रहे हुए एक प्रदेश के साथ, इस प्रकार तीन तीन प्रदेशों के साथ अनादि-अपर्यवसित बंध है। शेष सभी प्रदेशों का

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सयोगी अवस्था तक सादि-सपर्यवसित बंध है और सिद्ध जीवों के प्रदेशों का सादि-अपर्यवसित बंध है। सादि-सपर्यवसित बंध के चार भेद हैं। यथा-१ आलापन बंध, २ आलीन बंध, ३ शरीर बंध और ४ शरीर-प्रयोग बंध। रस्सी आदि से तृणादि को बांधना-'आलापन बंध' है। लाख आदि के द्वारा एक पदार्थ का दूसरे पदार्थ के साथ बंध होना 'आलीनबंध' है। समुद्घात करते समय विस्तारित और संकोचित जीव प्रदेशों के सम्बन्ध से तैजसादि शरीर प्रदेशों का संबंध होना-'शरीर बंध' है अथवा समुद्घात करते समय संकुचित हुए आत्मप्रदेशों का सम्बन्ध 'शरीर बंध' है। औदारिकादि शरीर की प्रवृत्ति से शरीर के पुद्गलों को ग्रहण करने रूप बंध 'शरीर-प्रयोग बंध' कहलाता है।

आलीन बंध के चार भेद कहे गये हैं। यथा-१ श्लेषणा बंध, २ उच्चय बंध, ३ समुच्चय बंध और ४ संहनन बंध। इनका स्वरूप मूल में बतला दिया गया है और मूल पाठ में आये हुए 'गिल्लि, थिल्लि' आदि शब्दों का अर्थ पहले बतला दिया गया है।

संहनन बंध के दो भेद कहे गये हैं। यथा-देश-संहनन बंध और सर्व-संहनन बंध। विभिन्न पदार्थों के मिलने से एक आकार का बन जाना-'संहनन बंध' है। किसी वस्तु के एक अंश द्वारा किसी अन्य वस्तु का अंशरूप से सम्बन्ध होना 'देश-संहनन बंध' कहलाता है। जैसे पहिया, जुआ आदि विभिन्न अवयव मिलकर गाड़ी का रूप धारण कर लेते हैं। दूध और पानी की तरह तादात्म्यरूप हो जाना-'सर्व-संहनन बंध' कहलाता है।

शरीर बंध

१९ प्रश्न-से किं तं सरीरबंधे ?

१९ उत्तर-सरीरबंधे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा-पुव्वपओगपच्चइए य पडुप्पण्णपओगपच्चइए य।

२० प्रश्न-से किं तं पुव्वपओगपच्चइए ?

२० उत्तर-पुव्वपओगपच्चइए जं णं णेरइयाणं संसारत्थाणं सव्व-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जीवाणं तत्थ तत्थ तेसु तेसु कारणेसु समोहणमाणाणं जीवप्पएसाणं बंधे समुप्पज्जइ । सेत्तं पुव्वपओगपच्चइए ।

२१ प्रश्न-से किं तं पडुप्पण्णपओगपच्चइए ?

२१ उत्तर-पडुप्पण्णपओगपच्चइए जं णं केवलणाणिस्स अणगारस्स केवलिसमुग्घाएणं समोहयस्स ताओ समुग्घायाओ पडिणियत्तमाणस्स अंतरा मंथे वट्टमाणस्स तेयाकम्माणं बंधे समुप्पज्जइ । किं कारणं ? ताहे से पएसा एगत्तीगया भवंति । सेत्तं पडुप्पण्णपओगपच्चइए । सेत्तं सरीरबंधे ।

कठिन शब्दार्थ—**पुव्वप्पओगपच्चइए**—पूर्व प्रयोग प्रत्ययिक (पहले के प्रयोग सम्बन्धी) **पडुप्पण्णपओगपच्चइए**–प्रत्युत्पन्न (वर्तमान) प्रयोग प्रत्ययिक, **संसारत्थाणं**—संसार में रहे हुए का, **समोहणमाणाणं**–समुद्घात करते हुए, **पडिणियत्तमाणस्स**–पीछे निवृत्त होते हुए, अंतरा–मध्य में, **मंथे वट्टमाणस्स**–मंथन में प्रवर्त्तते हुए, **एगत्तीगया**—एकत्रित ।

भावार्थ-१९ प्रश्न-हे भगवन् ! शरीर बंध कितने प्रकार का कहा गया है ?

१९ उत्तर-हे गौतम ! शरीर बंध दो प्रकार का कहा गया है । यथा-१ पूर्व-प्रयोग-प्रत्ययिक और २ प्रत्युत्पन्न-प्रयोग-प्रत्ययिक ।

२० प्रश्न-हे भगवन् ! पूर्व-प्रयोग-प्रत्ययिक शरीर बंध किसे कहते हैं ?

२० उत्तर-हे गौतम ! जहाँ जहाँ जिन जिन कारणों से समुद्घात करते हुए नैरयिक जीवों का और संसारी सभी जीवों के जीव प्रदेशों का जो बंध होता है, उसे 'पूर्व-प्रयोग-प्रत्ययिक बंध' कहते हैं । यह पूर्व-प्रयोगप्रत्ययिक बंध है ।

२१ प्रश्न-हे भगवन् ! प्रत्युत्पन्न-प्रयोग-प्रत्ययिक बंध किसे कहते हैं ?

२१ उत्तर-हे गौतम ! केवलीसमुद्घात द्वारा समुद्घात करते हुए और समुद्घात से वापिस निवृत्त होते हुए बीच में मन्थानावस्था में रहे हुए केवल-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञानी अनगार के तैजस और कार्मण शरीर का जो बंध होता है, उसे 'प्रत्युत्पन्न-प्रयोग-प्रत्ययिक बंध' कहते हैं। (प्र०) तैजस और कार्मण शरीर के बंध का क्या कारण है ? (उ०) उस समय में आत्म-प्रदेशों का संघात होता है, जिससे तैजस और कार्मण शरीर का बंध होता है। इस प्रकार यह प्रत्युत्पन्न-प्रयोग-प्रत्ययिक बंध कहा गया है। यह शरीर बंध का कथन पूर्ण हुआ।

२२ प्रश्न—से किं तं सरीरप्पओगबंधे ?

२२ उत्तर—सरीरप्पओगबंधे पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा—ओरालियसरीरप्पओगबंधे, वेउव्वियसरीरप्पओगबंधे, आहारगसरीरप्पओगबंधे, तेयासरीरप्पओगबंधे, कम्मासरीरप्पओगबंधे।

२३ प्रश्न—ओरालियसरीरप्पओगबंधे णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते ?

२३ उत्तर—गोयमा ! पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा—एगिंदियओरालियसरीरप्पओगबंधे, बेइंदियओरालियसरीरप्पओगबंधे, जाव पंचिंदियओरालियसरीरप्पओगबंधे।

२४ प्रश्न—एगिंदियओरालियसरीरप्पओगबंधे णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते ?

२४ उत्तर—गोयमा ! पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा—पुढविक्काइयएगिंदियओरालियसरीरप्पओगबंधे, एवं एएणं अभिलावेणं भेओ जहा ओगाहणसंठाणे ओरालियसरीरस्स तहा भाणियव्वो, जाव

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पज्जत्तागब्भवक्कंतियमणुस्सपंचिंदिय-ओरालिय-सरीरप्पओगबंधे य, अपज्जत्तागब्भवक्कंतियमणुस्स जाव—बंधे य ।

कठिन शब्दार्थ—अभिलावेणं—अभिलाप (पाठ) से ।

भावार्थ—२२ प्रश्न—हे भगवन् ! शरीर-प्रयोग बंध कितने प्रकार का कहा गया है ?

२२ उत्तर—हे गौतम ! शरीर-प्रयोग बंध पाँच प्रकार का कहा गया है । यथा—१ औदारिक शरीर प्रयोग बंध, २ वैक्रिय शरीर प्रयोग बंध, ३ आहारक शरीर प्रयोग बंध, ४ तैजस शरीर प्रयोग बंध और ५ कार्मण शरीर प्रयोग बंध।

२३ प्रश्न—हे भगवन् ! औदारिक शरीर प्रयोग बंध कितने प्रकार का कहा गया है ?

२३ उत्तर—हे गौतम ! औदारिक शरीर प्रयोग बंध पांच प्रकार का कहा गया है । यथा—एकेंद्रिय औदारिक शरीर प्रयोग बंध, बेइन्द्रिय औदारिक शरीर प्रयोग बन्ध यावत् पञ्चेन्द्रिय औदारिक शरीर प्रयोग बन्ध ।

२४ प्रश्न—हे भगवन् ! एकेंद्रिय औदारिक शरीर प्रयोग बन्ध कितने प्रकार का कहा गया है ?

२४ उत्तर—हे गौतम ! पांच प्रकार का कहा गया है । यथा—पृथ्वीकायिक एकेन्द्रिय औदारिक-शरीर प्रयोग-बंध इत्यादि । इस प्रकार इस अभिलाप द्वारा जिस प्रकार प्रज्ञापना सूत्र के इक्कीसवें 'अवगाहना संस्थान पद' में औदारिक शरीर के भेद कहे गये हैं, उसी प्रकार यहाँ भी कहना चाहिये । यावत् पर्याप्त गर्भज मनुष्य पञ्चेन्द्रिय औदारिक शरीर प्रयोग-बंध और अपर्याप्त गर्भज-मनुष्य पञ्चेंद्रिय औदारिक शरीर-प्रयोग-बंध तक कहना चाहिये ।

२५ प्रश्न—ओरालियसरीरप्पओगबन्धे णं भंते ! कस्स कम्मस्स उदएणं ?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

२५ उत्तर–गोयमा ! वीरिय-सजोग-सद्दव्वयाए पमायपच्चया कम्मं च जोगं च भवं च आउयं च पडुच्च ओरालियसरीरप्पओग-णामकम्मस्स उदएणं ओरालियसरीरप्पओगबन्धे ।

२६ प्रश्न–एगिंदियओरालियसरीरप्पओगबन्धे णं भंते ! कस्स कम्मस्स उदएणं ?

२६ उत्तर–एवं चेव,पुढविक्काइयएगिंदिय ओरालियसरीरप्पओग-बन्धे एवं चेव, एवं जाव वणस्सइकाइया, एवं बेइंदिया, एवं तेइंदिया, एवं चउरिंदिया ।

२७ प्रश्न–तिरिक्ख - जोणिय-पंचिंदिय - ओरालिय- सरीरप्पओग-बन्धे णं भंते ! कस्स कम्मस्स उदएणं ?

२७ उत्तर–एवं चेव ।

२८ प्रश्न–मणुस्सपंचिंदियओरालियसरीरप्पओगबन्धे णं भंते ! कस्स कम्मस्स उदएणं ?

२८ उत्तर–गोयमा ! वीरिय-सजोग-सद्दव्वयाए पमायपच्चया जाव आउयं च पडुच्च मणुस्सपंचिंदियओरालियसरीरप्पओगणाम-कम्मस्स उदएणं० ।

कठिन शब्दार्थ—वीरिय-सजोग-सद्दव्वयाए–वीर्य (शक्ति) योग और सद्द्रव्य से, **पमायपच्चया**—प्रमाद प्रत्ययिक ।

भावार्थ–२५ प्रश्न–हे भगवन् ! औदारिक-शरीर-प्रयोग-बंध किस कर्म के उदय से होता है ?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

२५ उत्तर-हे गौतम ! सवीर्यता, सयोगता और सद्द्रव्यता से, प्रमाद, कर्म, योग, भाव और आयुष्य आदि हेतुओं के और औदारिक-शरीर-प्रयोग-बंध नामकर्म के उदय से औदारिक-शरीर-प्रयोग-बंध होता है ।

२६ प्रश्न-हे भगवन् ! एकेंद्रिय औदारिक-शरीर-प्रयोग-बंध किस कर्म के उदय से होता है ?

२६ उत्तर-हे गौतम ! पहले कहे अनुसार जानना चाहिये । इस प्रकार यह पृथ्वीकायिक एकेंद्रिय औदारिकशरीरप्रयोगबंध है । इसी प्रकार यावत् वनस्पतिकायिक एकेंद्रिय औदारिकशरीरप्रयोगबंध तथा बेइंद्रिय, तेइंद्रिय और चौइंद्रिय औदारिक-शरीर-प्रयोग-बंध तक जानना चाहिये ।

२७ प्रश्न-हे भगवन् ! तिर्यंच पंचेन्द्रिय औदारिक-शरीर-प्रयोग-बंध किस कर्म के उदय से होता है ।

२७ उत्तर-हे गौतम ! पूर्व कथानुसार जानना चाहिये ।

२८ प्रश्न-हे भगवन् ! मनुष्य पंचेन्द्रिय औदारिकशरीर-प्रयोगबंध किस कर्म के उदय से होता है ?

२८ उत्तर-हे गौतम ! सवीर्यता, सयोगता और सद्द्रव्यता से तथा प्रमाद हेतु से यावत् आयुष्य आश्रित तथा मनुष्य पञ्चेंद्रिय औदारिकशरीर-प्रयोग नाम कर्म के उदय से, 'मनुष्य पञ्चेंद्रिय औदारिकशरीरप्रयोग-बंध होता है ।

२९ प्रश्न-ओरालियसरीरप्पओगबंधे णं भंते ! किं देसबंधे, सव्वबंधे ?

२९ उत्तर-गोयमा ! देसबंधे वि, सव्वबंधे वि ।

३० प्रश्न-एगिंदियओरालियसरीरप्पओगबंधे णं भंते ! किं देसबंधे, सव्वबंधे ?

३० उत्तर-एवं चेव, एवं पुढविक्काइया, एवं जाव (प्रश्न)मणुस्स·

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पंचिंदियओरालियसरीरप्पओगबंधे णं भंते ! किं देसबंधे, सव्वबंधे ?
(उत्तर)गोयमा ! देसबंधे वि, सव्वबंधे वि ।

भावार्थ-२९ प्रश्न-हे भगवन् ! औदारिक-शरीर प्रयोगबंध क्या देश-बंध है, या सर्वबंध है ?

२९ उत्तर—हे गौतम ! देशबंध भी है और सर्वबन्ध भी है ।

३० प्रश्न—हे भगवन् ! एकेंद्रिय औदारिक शरीर प्रयोग-बन्ध क्या देशबन्ध है, या सर्वबन्ध है ?

३० उत्तर-हे गौतम ! देशबन्ध भी है और सर्वबन्ध भी है । इसी प्रकार यावत् (प्रश्न)हे भगवन् ! मनुष्य पञ्चेंद्रिय औदारिक शरीर-प्रयोगबन्ध क्या देश-बन्ध है, या सर्वबन्ध है ? (उत्तर) हे गौतम ! देशबन्ध भी है और सर्वबन्ध भी है—यहाँ तक कहना चाहिये ।

३१ प्रश्न-ओरालियसरीरप्पओगबन्धे णं भंते ! कालओ केवच्चिरं होइ ?

३१ उत्तर-गोयमा ! सव्वबन्धे एक्कं समयं, देसबन्धे जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं समयऊणाइं ।

३२ प्रश्न-एगिंदियओरालियसरीरप्पओगबन्धे णं भंते ! कालओ केवच्चिरं होइ ?

३२ उत्तर-गोयमा ! सव्वबन्धे एक्कं समयं, देसबन्धे जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं बावीसं वाससहस्साइं समयऊणाइं ।

३३ प्रश्न-पुढविकाइयएगिंदियपुच्छा ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

३३ उत्तर—गोयमा ! सव्वबन्धे एक्कं समयं, देसबन्धे जहण्णेणं खुड्डागभवग्गहणं तिसमयऊणं, उक्कोसेणं बावीसं वाससहस्साइं समयऊणाइं; एवं सव्वेसिं सव्वबन्धो एक्कं समयं, देसबन्धो जेसिं णत्थि वेउव्वियसरीरं तेसिं जहण्णेणं खुड्डागभवग्गहणं तिसमयऊणं, उक्कोसेणं जा जस्स ठिई सा समयऊणा कायव्वा। जेसिं पुण अत्थि वेउव्वियसरीरं तेसिं देसबन्धो जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं जा जस्स ठिई सा समयऊणा कायव्वा, जाव मणुस्साणं देसबन्धे जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं समयऊणाइं।

कठिन शब्दार्थ—खुड्डागभवग्गहणं—क्षुल्लक-भव ग्रहण, समयऊणाइं—समय कम।

भावार्थ—३१ प्रश्न—हे भगवन् ! औदारिक-शरीर-प्रयोगबंध कितने काल तक रहता है ?

३१ उत्तर—हे गौतम ! सर्वबंध एक समय तक रहता है और देशबंध जघन्य एक समय और उत्कृष्ट एक समय कम तीन पल्योपम तक रहता है।

३२ प्रश्न—हे भगवन् ! एकेंद्रिय औदारिक-शरीर-प्रयोग-बंध कितने काल तक रहता है ?

३२ उत्तर—हे गौतम ! सर्व-बंध एक समय तक रहता है और देशबंध जघन्य एक समय और उत्कृष्ट एक समय कम बाईस हजार वर्ष तक रहता है।

३३ प्रश्न—हे भगवन् ! पृथ्वीकायिक एकेंद्रिय औदारिक-शरीर-प्रयोग बंध कितने काल तक रहता है ?

३३ उत्तर—हे गौतम ! सर्वबंध एक समय तक रहता है और देशबन्ध जघन्य तीन समय कम क्षुल्लक भव पर्यंत और उत्कृष्ट एक समय कम बाईस हजार

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वर्ष तक रहता है। इसी प्रकार सभी जीवों का सर्वबन्ध एक समय तक रहता है। देशबन्ध वैक्रिय शरीर वालों को छोड़कर जघन्य तीन समय कम क्षुल्लकभव तक और उत्कृष्ट जिन जीवों की जितनी आयुष्य स्थिति है, उसमें से एक समय कम तक रहता है। जिनके वैक्रिय शरीर है, उनके देशबन्ध जघन्य एक समय और उत्कृष्ट जिनका जितना आयुष्य है, उसमें से एक समय कम तक रहता है। इस प्रकार यावत् मनुष्यों में देशबन्ध जघन्य एक समय और उत्कृष्ट एक समय कम तीन पल्योपम तक जानना चाहिये।

३४ प्रश्न-ओरालियसरीरबंधंतरं णं भंते ! कालओ केवच्चिरं होइ ?

३४ उत्तर-गोयमा ! सव्वबंधंतरं जहण्णेणं खुड्डागभवग्गहणं तिसमयऊणं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं पुव्वकोडिसमयाहियाइं; देसबन्धंतरं जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं तिसमयाहियाइं।

३५ प्रश्न-एगिंदियओरालियपुच्छा।

३५ उत्तर-गोयमा ! सव्वबन्धंतरं जहण्णेणं खुड्डागभवग्गहणं तिसमयऊणं, उक्कोसेणं बावीसं वाससहस्साइं समयाहियाइं, देसबन्धंतरं जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं।

३६ प्रश्न-पुढविक्काइयएगिंदियपुच्छा।

३६ उत्तर-सव्वबंधंतरं जहेव एगिंदियस्स तहेव भाणियव्वं,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

देसबंधंतरं जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं तिण्णि समया। जहा पुढविक्काइयाणं एवं जाव चउरिंदियाणं वाउक्काइयवज्जाणं, णवरं सव्वबंधंतरं उक्कोसेणं जा जस्स ठिई सा समयाहिया कायव्वा। वाउक्काइयाणं सव्वबंधंतरं जहण्णेणं खुड्डागभवग्गहणं तिसमयऊणं, उक्कोसेणं तिण्णि वाससहस्साइं समयाहियाइं। देस-बंधंतरं जहण्णेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं।

३७ प्रश्न–पंचिंदियतिरिक्खजोणियओरालियपुच्छा।

३७ उत्तर–सव्वबंधंतरं जहण्णेणं खुड्डागभवग्गहणं तिसमयऊणं, उक्कोसेणं पुव्वकोडी समयाहिया। देसबंधंतरं जहा एगिंदियाणं तहा पंचिंदिय-तिरिक्खजोणियाणं, एवं मणुस्साण वि णिरवसेसं भाणियव्वं जाव उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं।

कठिन शब्दार्थ–बंधंतरं—बंध का अन्तर।

भावार्थ–३४ प्रश्न–हे भगवन् ! औदारिक शरीर के बंध का अन्तर कितने काल का होता है ?

३४ उत्तर–हे गौतम ! सर्व-बंध का अन्तर जघन्य तीन समय कम क्षुल्लकभव ग्रहण पर्यंत है और उत्कृष्ट समयाधिक पूर्व कोटि और तेतीस सागर है। देश-बंध का अन्तर जघन्य एक समय और उत्कृष्ट तीन समय अधिक तेतीस सागरोपम है।

३५ प्रश्न–हे भगवन् ! एकेंद्रिय औदारिक-शरीर-बंध का अन्तर कितने काल का है ?

३५ उत्तर–हे गौतम ! इनके सर्व-बंध का अन्तर जघन्य तीन समय

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कम क्षुल्लकभव पर्यंत है और उत्कृष्ट एक समय अधिक बाईस हजार वर्ष है। देश बंध का अन्तर जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त तक है।

३६ प्रश्न-हे भगवन् ! पृथ्वीकायिक एकेंद्रिय औदारिक-शरीर-बंध का अन्तर कितने काल का है ?

३६ उत्तर-हे गौतम ! इनके सर्वबंध का अन्तर जिस प्रकार एकेंद्रिय में कहा गया है, उसी प्रकार कहना चाहिये। देश बध का अन्तर जघन्य एक समय और उत्कृष्ट तीन समय का है। जिस प्रकार पृथ्वीकायिक जीवों का कहा गया, उसी प्रकार वायुकायिक जीवों को छोड़कर चतुरिन्द्रिय तक सभी जीवों के विषय में कहना चाहिये। परन्तु उत्कृष्ट सर्व-बध का अन्तर जिन जीवों की जितनी आयष्य स्थिति हो उससे एक समय अधिक कहनी चाहिए अर्थात् सर्व बंध का अन्तर समयाधिक आयुष्य स्थिति प्रमाण जानना चाहिए। वायुकाय जीवों के सर्व-बध का अन्तर जघन्य तीन समय कम क्षुल्लकभव ग्रहण और उत्कृष्ट समयाधिक तीन हजार वर्ष का है। इनके देश-बन्ध का अन्तर जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त तक जानना चाहिए।

३७ प्रश्न-हे भगवन् ! पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च औदारिक-शरीर-बन्ध का अन्तर कितने काल का कहा गया है ?

३७ उत्तर-हे गौतम ! उनके सर्व-बन्ध का अन्तर जघन्य तीन समय कम क्षुल्लक-भव-ग्रहण और उत्कृष्ट समयाधिक पूर्व कोटि है। देश-बन्ध का अन्तर जिस प्रकार एकेन्द्रिय में कहा, उसी प्रकार सभी पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चों में जानना चाहिए। इसी प्रकार मनुष्यों में भी समझना चाहिए यावत् 'उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है'-यहां तक कहना चाहिए।

३८ प्रश्न-जीवस्स णं भंते ! एगिंदियत्ते, णोएगिंदियत्ते, पुणरवि एगिंदियत्ते एगिंदियओरालियसरीरप्पओगबंधंतरं कालओ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

केवच्चिरं होइ ।

३८ उत्तर-गोयमा ! सव्वबंधंतरं जहण्णेणं दो खुड्डाइं भवग्गहणाइं तिसमयऊणाइं, उक्कोसेणं दो सागरोवमसहस्साइं संखेज्जवासमब्भहियाइं । देसबंधंतरं जहण्णेणं खुड्डागं भवग्गहणं समयाहियं, उक्कोसेणं दो सागरोवमसहस्साइं संखेज्जवासमब्भहियाइं ।

३९ प्रश्न-जीवस्स णं भंते ! पुढविक्काइयत्ते, णोपुढविक्काइयत्ते, पुणरवि पुढविक्काइयत्ते पुढविक्काइयएगिंदियओरालियसरीरप्पओगबंधन्तरं कालओ केवच्चिरं होइ ?

३९ उत्तर-गोयमा ! सव्वबन्धन्तरं जहण्णेणं दो खुड्डाइं भवग्गहणाइं तिसमयऊणाइं उक्कोसेणं अणंतं कालं-अणंता उस्सप्पिणी-ओसप्पिणीओ कालओ, खेत्तओ अणंता लोगा-असंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा, ते णं पोग्गलपरियट्टा आवलियाए असंखेज्जइभागो । देसबंधंतरं जहण्णेणं खुड्डागं भवग्गहणं समयाहियं, उक्कोसेणं अणंतं कालं जाव आवलियाए असंखेज्जइभागो । जहा पुढविक्काइयाणं एवं वणस्सइकाइयवज्जाणं जाव मणुस्साणं । वणस्सइकाइयाणं दोण्णि खुड्डाइं एवं चेव, उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं-असंखेज्जाओ उस्सप्पिणी-ओसप्पिणीओ कालओ, खेत्तओ असंखेज्जा लोगा; एवं देसबन्धन्तरं पि उक्कोसेणं पुढविकालो ।

कठिन शब्दार्थ—पोग्गलपरियट्टा-पुद्गल परावर्तन ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ—३८ प्रश्न—हे भगवन् ! कोई जीव एकेंद्रिय अवस्था में है, वह एकेंद्रिय को छोड़कर किसी दूसरी जाति में चला जाय और वहां से पुनः एकेंद्रिय में आवे, तो एकेंद्रिय औदारिक शरीर-प्रयोग-बंध का अन्तर कितने काल का होता है ?

३८ उत्तर—हे गौतम ! सर्व-बंध का अन्तर जघन्य तीन समय कम दो क्षुल्लक भव और उत्कृष्ट संख्यात वर्ष अधिक दो हजार सागरोपम है। देश-बंध का अन्तर जघन्य एक समय अधिक क्षुल्लकभव तक है और उत्कृष्ट संख्यात वर्ष अधिक दो हजार सागरोपम है।

३९ प्रश्न—हे भगवन् ! कोई जीव, पृथ्वीकायिक अवस्था में हो, वहां से पृथ्वीकाय के सिवाय अन्य काय में उत्पन्न हो और वहां से वह पुनः पृथ्वीकाय में आवे, तो पृथ्वीकायिक एकेंद्रिय औदारिक-शरीर-प्रयोग बंध का अन्तर कितने काल का है ?

३९ उत्तर—हे गौतम ! सर्व-बंध का अन्तर जघन्य तीन समय कम दो क्षुल्लकभव पर्यंत और उत्कृष्ट काल की अपेक्षा अनन्त काल—अनन्त उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी है। क्षेत्र की अपेक्षा अनन्त लोक—असंख्य पुद्गल परावर्तन है। वह पुद्गल परावर्तन आवलिका के असंख्यातवें भाग प्रमाण है अर्थात् आवलिका के असंख्यातवें भाग में जितने समय हैं, उतने पुद्गल-परावर्तन है। देश-बंध का अंतर जघन्य समयाधिक क्षुल्लकभव और उत्कृष्ट अनन्त काल यावत् आवलिका के असंख्यातवें भाग के समयों के बराबर असंख्य पुद्गल परावर्तन है। जिस प्रकार पृथ्वीकायिक जीवों का अंतर कहा गया, उसी प्रकार वनस्पतिकायिक जीवों को छोड़कर मनुष्य तक सभी जीवों के विषय में जानना चाहिये। वनस्पतिकायिक जीवों के सर्व-बंध का अंतर जघन्य काल की अपेक्षा तीन समय कम दो क्षुल्लक भव और उत्कृष्ट असंख्य काल—असंख्य उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी तक है। क्षेत्र की अपेक्षा असंख्य लोक हैं। देश-बंध का अन्तर जघन्य समयाधिक क्षुल्लक भव तक है और उत्कृष्ट पृथ्वीकाय के स्थिति काल तक अर्थात् असंख्य उत्सर्पिणी अवसर्पिणी यावत् असंख्य लोक तक है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

४० प्रश्न-एएसि णं भंते ! जीवाणं ओरालियसरीरस्स देसबंधगाणं, सव्वबंधगाणं, अबंधगाण य कयरे कयरे-जाव विसेसाहिया वा ?

४० उत्तर-गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा ओरालियसरीरस्स सव्वबंधगा, अबन्धगा विसेसाहिया, देसबन्धगा असंखेज्जगुणा ।

भावार्थ-४० प्रश्न-हे भगवन् ! औदारिक-शरीर के देश-बंधक, सर्व-बंधक और अबंधक जीवों में कौन किससे कम, अधिक, तुल्य और विशेषाधिक हैं ?

४० उत्तर-हे गौतम ! सबसे थोडे जीव औदारिक-शरीर के सर्व-बंधक हैं, उनसे अबंधक जीव विशेषाधिक हैं और उनसे देश-बंधक जीव असंख्यात-गुणा हैं ।

विवेचन—शरीर बन्ध के दो भेद कहे गये हैं, उनमें पूर्व-प्रयुक्त प्रयोग-बन्ध वेदना कषायादि समुद्घातरूप जीव के व्यापार से होने वाला जीव प्रदेशों का बन्ध होना है अथवा जीव प्रदेशाश्रित तैजस्-कार्मण-शरीर का जो बन्ध होता है, उसे 'पूर्वप्रयोग-प्रत्यायिक-बंध' कहते हैं। वर्तमान काल में केवलीसमुद्घात रूप जीव व्यापार से होनेवाला तैजस और कार्मण शरीर का जो बन्ध है, उसे 'प्रत्युत्पन्न प्रयोग-प्रत्ययिक बंध' कहते हैं ।

शरीर प्रयोग-बंध के औदारिक-शरीर प्रयोग-बंध आदि पांच भेद कहे गये हैं और औदारिक शरीर के पृथ्वीकायिकादि भेद-प्रभेद कहे गये हैं ।

औदारिक-शरीर प्रयोग-बन्ध सवीर्यतादि आठ कारणों से होता है । यथा:--
१ सवीर्यता-वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम से उत्पन्न शक्ति को 'सवीर्यता' कहते हैं । २ सयोगता--मनोयोगादि का व्यापार । ३ सद्द्रव्यता--उस प्रकार के पुद्गलादि द्रव्य । ४ प्रमाद । ५ कर्म--एकेन्द्रियादि जाति-नाम कर्म । ६ योग—काय योगादि । ७ भव—तिर्यञ्चादिभव । ८ आयुष्य-तिर्यञ्चादि का आयुष्य । इन कारणों से उदय प्राप्त औदारिक शरीर प्रयोग नाम कर्म से औदारिक शरीर प्रयोग बंध होता है । इस पर पूर्वाचार्य ने हवेली का दृष्टान्त देकर समझाया है । यथा-

१ द्रव्य--चूना, ईंट आदि । २ वीर्य --उपरोक्त पदार्थों को खरीदने में पुरुषार्थ । ३ संयोग-उपरोक्त वस्तुओं का संयोग मिलाना । ४ योग-कारीगर आदि का व्यापार । ५ कर्म-शुभ कर्म का उदय । ६ आयुष्य-हवेली बनानेवाले का आयुष्य पूरा हो, तो हवेली

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पूरी बने अन्यथा अधूरी रह जाय । ७ भव-जिसमें जैसी शक्ति होती है, वह वैसी हवेली बनाता है, किन्तु मनुष्य के बिना हवेली नहीं बन सकती । ८ काल-तीसरे, चौथे और पाँचवें आरे में हवेली बनती है ।

ये आठ बोल शरीर पर घटाये जाते हैं । १ वीर्य-उन पुद्गलों को एकत्रित करना । २ द्रव्य-शरीर बनने योग्य पुद्गल । ३ सयोग-मनोयोग के परिणाम । ४ योग-काया का व्यापार । ५ कर्म-जिस जीव ने जैसे शुभाशुभ कर्म किये हैं, उसी के अनुसार शुभाशुभ शरीर बनता है । ६ आयुष्य-यदि आयुष्य लम्बा हो, तो शरीर पूरा बनता है, नहीं तो अपर्याप्त अवस्था में ही मरण हो जाता है । ७ भव-तिर्यंच और मनुष्य के बिना औदारिक शरीर नहीं बनता । ८ काल--काल के अनुसार जीवों के शरीर की अवगाहना होती है । इस प्रकार औदारिक शरीर का बन्ध उपरोक्त आठ कारणों से होता है ।

औदारिक शरीर का बन्ध, देश-बन्ध भी होता है और सर्व-बन्ध भी होता है । जिस प्रकार घृतादि से भरी हुई और अग्नि से तपी हुई कड़ाही में जब अपूप (मालपूआ) डाला जाता है, तो डालते ही प्रथम समय में वह घृतादि को केवल खींचता है । उस के बाद दूसरे समयों में घृतादि को ग्रहण भी करता है और छोड़ता भी है, उसी प्रकार जीव जब पूर्व शरीर को छोड़ कर दूसरे शरीर को धारण करता है, तब प्रथम समय में उत्पत्ति स्थान में रहे हुए शरीर योग्य पुद्गलों को केवल ग्रहण करता है, इसलिए यह सर्व-बन्ध है । उसके बाद द्वितीयादि समयों में शरीर योग्य पुद्गलों को ग्रहण भी करता है और छोड़ता भी है, इसलिए यह देश-बन्ध है । इसलिये औदारिक शरीर का सर्व-बन्ध भी होता है और देशबन्ध भी होता है ।

ऊपर मालपुए का दृष्टांत देकर यह बताया है कि सर्वबन्ध एक समय का होता है । जब वायुकायिक जीव अथवा मनुष्यादि वैक्रिय-शरीर करके उसे छोड़ देता है, तब छोड़ने के बाद औदारिक-शरीर का देशबंध करता है । उसके पश्चात् दूसरे समय में यदि उसका मरण हो जाय तब देशबंध जघन्य एक समय का होता है । औदारिक-शरीरधारी जीवों की उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्योपम की होती है । उसमें से प्रथम समय में जीव सर्व-बन्धक रहता है, उसके बाद एक समय कम तीन पल्योपम तक देशबंधक रहता है ।

एकेन्द्रिय जीवों की उत्कृष्ट स्थिति २२ हजार वर्ष की है । उसमें प्रथम समय में वह सर्वबंधक होता है और उसके बाद एक समय कम २२ हजार वर्ष तक देशबंधक रहता है ।

कोई पृथ्वीकायिक जीव तीन समय की विग्रहगति से उत्पन्न हुआ, तो वह तीसरे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

समय में सर्वबंधक होता है। शेष समय में क्षुल्लक-भव प्रमाण अपनी जघन्य आयु पर्यन्त देशबंधक होता है। इसलिये पृथ्वीकायिक जीव के लिये यह कहा गया है कि तीन समय कम क्षुल्लक भव पर्यन्त वह जघन्य देशबंधक होता है। अपनी अपनी काया और जाति में जो छोटे से छोटा भव हो, उसे 'क्षुल्लक भव' कहते हैं। एक मुहूर्त में सूक्ष्म निगोद के ६५५३६ क्षुल्लक भव होते हैं। एक श्वासोच्छ्वास में सत्तरह झाझेरा (कुछ अधिक) क्षुल्लक भव होते हैं।

पृथ्वीकाय के तो एक मुहूर्त्त में १२८२४ क्षुल्लक भव होते हैं। इत्यादि।

अप्काय, तेउकाय, वनस्पतिकाय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवों का देशबंध जघन्य तीन समय कम क्षुल्लक भव ग्रहण पर्यन्त है। क्योंकि उनमें वैक्रिय-शरीर नहीं होता। उत्कृष्ट देशबंध अप्काय का सात हजार वर्ष, तेउकाय का तीन अहोरात्र, वनस्पतिकाय का दस हजार वर्ष, बेइन्द्रिय का बारह वर्ष तेइन्द्रिय का ४९ दिन, चतुरिन्द्रिय का छह महीने की स्थिति है, उसमें एक समय कम शेष देशबंध होता है। इस प्रकार जिसकी जितनी स्थिति है, उसमें एक समय कम शेष देशबंध होता है। वैक्रिय-शरीर वालों में देशबंध जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अपनी अपनी स्थिति में एक समय कम होता है।

सर्वबन्ध का अन्तर जघन्य तीन समय कम क्षुल्लक भव ग्रहण पर्यन्त है। क्योंकि कोई जीव, तीन समय की विग्रह गति से औदारिक-शरीरधारी जीवों में उत्पन्न हुआ, तो विग्रहगति के दो समय में अनाहारक रहता है और तीसरे समय में सर्व बन्धक होता है। क्षुल्लक भव तक जीवित रहकर मृत्यु को प्राप्त हो गया और औदारिक-शरीरधारी जीवों में उत्पन्न हुआ, वहाँ पहले समय में सर्वबन्धक होता है। इस प्रकार सर्वबन्धक का सर्व-बन्धक के साथ अन्तर, विग्रहगति के तीन समय कम क्षुल्लक भव होता है। उत्कृष्ट समया-धिक पूर्वकोटि और तेतीस सागरोपम होता है, क्योंकि कोई जीव, अविग्रह गति द्वारा मनुष्य आदि गति में उत्पन्न हुआ, वहाँ प्रथम समय में सर्वबन्धक रहता है। फिर पूर्वकोटि तक जीवित रहकर मृत्यु को प्राप्त हुआ, वहाँ से तेतीस सागरोपम की स्थितिवाला नैरयिक हुआ अथवा अनुत्तर विमानवासी देव हुआ। वहां से च्यवकर तीन समय की विग्रहगति द्वारा औदारिकशरीरधारी जीव हुआ। वहां विग्रह गति में दो समय तक अनाहारक रहता है और तीसरे समय में औदारिक-शरीर का सर्वबन्धक रहता है। अब विग्रह गति में दो समय तक जो अनाहारक रहा था, उनमें से एक समय पूर्वकोटि के सर्वबंधक के स्थान में डाल दिया जाय, तो वह पूर्वकोटि पूर्ण हो जाती है और उसके ऊपर एक समय अधिक बचा हुआ रहता है। इस प्रकार सर्वबन्ध का उत्कृष्ट अन्तर एक समयाधिक पूर्व-कोटि और

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तेतीस सागरोपम होता है ।

औदारिक-शरीर के देशबन्ध का अन्तर जघन्य एक समय है, क्योंकि देशबन्धक मर कर अविग्रह गति से उत्पन्न हो गया, तो वहां वह प्रथम समय में तो सर्वबन्धक रहता है और द्वितीयादि समयों में देशबन्धक हो जाता है । इस प्रकार देशबन्धक का देशबन्धक के साथ अन्तर एक समय का है । उत्कृष्ट तीन समय अधिक तेतीस सागरोपम का है । क्योंकि देश बन्धक मर कर तेतीस सागरोपम की स्थिति में नैरयिक या देवों में उत्पन्न हो गया । वहाँ से चयवकर तीन समय की विग्रह गति से औदारिक-शरीरधारी जीवों में उत्पन्न हो गया । इस प्रकार विग्रह गति में दो समय तक अनाहारक रहा और तीसरे समय में सर्व-बन्धक हुआ और फिर देशबन्धक हो गया । इस प्रकार यह देशबन्धक का उत्कृष्ट अन्तर घटित होता है ।

औदारिक-शरीर बन्ध का यह सामान्य अन्तर कहा गया है । आगे तीन सूत्रों में एकेंद्रिय आदि का कथन करते हुए औदारिक-शरीर-बन्ध का अन्तर विशेष रूप से बतलाया गया है । उपरोक्त रीति से उन सब का अन्तर घटित कर लेना चाहिये ।

इसके आगे प्रकारान्तर से औदारिक-शरीर बन्ध का अन्तर बतलाया गया है । कोई एकेंद्रिय जीव, तीन समय की विग्रह-गति द्वारा उत्पन्न हुआ, तो विग्रह-गति में दो समय अनाहारक रहता है और तीसरे समय में सर्वबन्धक रहता है । फिर तीन समय कम क्षुल्लक भव प्रमाण आयुष्य पूर्ण करके एकेन्द्रिय के सिवाय बेइन्द्रिय आदि जाति में उत्पन्न हो जाय, और वहां भी क्षुल्लक भव की स्थिति को पूर्ण करके अविग्रह गति द्वारा एकेंद्रिय जाति में उत्पन्न हो, तो वहां प्रथम समय में सर्व-बंधक रहता है । इस प्रकार सर्व-बंध का जघन्य अन्तर तीन समय कम दो क्षुल्लक भव होता है । कोई पृथ्वीकायिक जीव, अविग्रह गति द्वारा उत्पन्न हो, तो वहां वह प्रथम समय में सर्व बन्धक होता है । वहां बाईस हजार वर्ष की स्थिति को पूर्ण करके मरकर त्रसकायिक जीवों में उत्पन्न हो जाय । वहां भी संख्यात वर्षाधिक दो हजार सागरोपम की उत्कृष्ट कायस्थिति को पूर्ण कर के फिर एकेंद्रिय जीवों में उत्पन्न हो तो वहां प्रथम समय में वह सर्व-बंधक होता है । इस प्रकार सर्व-बन्ध का उत्कृष्ट अन्तर संख्यात वर्षाधिक दो हजार सागरोपम होता है। यहां यदि सर्व-बन्ध के एक समय कम एकेंद्रिय जीव की उत्कृष्ट भव-स्थिति को त्रसकाय की कायस्थिति में प्रक्षिप्त कर दिया जाय, तो भी संख्यात वर्ष ही होते हैं । क्योंकि संख्यात के भी संख्यात भेद होते हैं । देश-बन्ध का अन्तर जघन्य एक समय अधिक क्षुल्लक भव है और उत्कृष्ट संख्यात वर्षाधिक दो हजार सागरोपम है ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कोई पृथ्वीकायिक जीव मरकर पृथ्वीकायिक जीवों के सिवाय दूसरे जीवों में उत्पन्न हो जाय और वहाँ से मरकर पुनः पृथ्वीकाय में उत्पन्न हो, तो उसके सर्व-बन्ध का अन्तर जघन्य तीन समय कम दो क्षुल्लक भव है। उत्कृष्ट काल की अपेक्षा अनन्त काल—अनन्त उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी है अर्थात् अनन्त काल के समयों में उत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल के समयों का अपहार किया जाय अर्थात् भाग दिया जाय, तो अनन्त उत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल होता है। क्षेत्र की अपेक्षा अनन्त लोक है अर्थात् अनन्त काल के समयों में लोकाकाश के प्रदेशों द्वारा अपहार किया जाय तो अनन्त लोक होते हैं। वनस्पतिकाय की कायस्थिति अनन्त काल की है, इस अपेक्षा सर्वबन्ध का उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है। यह अनन्त काल असंख्य पुद्गल-परावर्तन प्रमाण है। दस कोटा-कोटि अद्धा पल्योपमों का एक सागरोपम होता है। दस कोटाकोटि सागरोपमों का एक अवसर्पिणी काल होता है और इतने ही समय का एक उत्सर्पिणी काल होता है। ऐसी अनन्त अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी का एक पुद्गल-परावर्तन होता है। असंख्य समयों की एक आवलिका होती है, उस आवलिका के असंख्यात समयों का जो असंख्यातवां भाग है, उसमें जितने समय होते हैं, उतने पुद्गल-परावर्तन यहां लिये गये हैं। इनकी संख्या भी असंख्य हो जाती है। क्योंकि असंख्य के भी असंख्य भेद हैं। इसी प्रकार आगे सर्व-बन्ध और देशबन्ध का अन्तर स्वयं घटित कर लेना चाहिये।

औदारिक-शरीर के बन्धकों के अल्प-बहुत्व में सब से थोड़े सर्व-बन्धक जीव हैं, क्योंकि वे उत्पत्ति के समय ही पाये जाते हैं। उनसे अबन्धक जीव विशेषाधिक हैं। क्योंकि विग्रह-गति में और सिद्ध-गति में जीव अबन्धक होते हैं। वे सर्व-बन्धकों की अपेक्षा विशेषाधिक हैं। उनसे देशबंधक असंख्यात गुणा हैं, क्योंकि देशबन्ध का काल असंख्यात गुणा है।

वैक्रिय शरीर प्रयोग बंध

४१ प्रश्न—वेउव्विय-सरीरप्पओग-बंधे णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते ?

४१ उत्तर—गोयमा ! दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—एगिंदिय-वेउव्विय-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सरीरप्पओगबंधे य पंचेंदियवेउव्वियसरीरप्पओगबंधे य ।

४२ प्रश्न—जइ एगिंदियवेउव्वियसरीरप्पओगबंधे किं वाउक्काइयएगिंदियसरीरप्पओगबंधे, अवाउक्काइयएगिंदियसरीरप्पओगबंधे ?

४२ उत्तर—एवं एएणं अभिलावेणं जहा ओगाहणसंठाणे वेउव्वियसरीरभेओ तहा भाणियव्वो, जाव पज्जत्तासव्वट्ठसिद्धअणुत्तरोववाइयकप्पाईयवेमाणियदेवपंचिंदियवेउव्वियसरीरप्पओगबंधे य, अपज्जत्तासव्वट्ठसिद्ध—जाव पओगबंधे य ।

४३ प्रश्न—वेउव्वियसरीरप्पओगबंधे णं भंते ! कस्स कम्मस्स उदएणं ?

४३ उत्तर—गोयमा ! वीरिय-सजोग-सद्दव्वयाए जाव आउयं वा लद्धिं वा पडुच्च वेउव्वियसरीरप्पओगणामाए कम्मस्स उदएणं वेउव्वियसरीरप्पओगबंधे ।

४४ प्रश्न—वाउक्काइयएगिंदियवेउव्वियसरीरप्पओग पुच्छा ।

४४ उत्तर—गोयमा ! वीरिय-सजोग-सद्दव्वयाए एवं चेव जाव लद्धिं पडुच्च वाउक्काइयएगिंदियवेउव्विय—जाव— बंधे ।

भावार्थ—४१ प्रश्न—हे भगवन् ! वैक्रिय-शरीर प्रयोग-बंध कितने प्रकार का कहा गया है ?

४१ उत्तर—हे गौतम ! दो प्रकार का कहा गया है । यथा—१ एकेन्द्रिय वैक्रिय-शरीर प्रयोग-बन्ध और २ पंचेन्द्रिय वैक्रिय-शरीर प्रयोग-बन्ध ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

४२ प्रश्न–हे भगवन् ! यदि एकेन्द्रिय वैक्रिय-शरीर प्रयोग-बंध है, तो क्या वायुकायिक एकेन्द्रिय वैक्रियशरीर प्रयोग-बंध है, अथवा अवायुकायिक एकेन्द्रिय वैक्रिय-शरीर प्रयोग-बंध है ?

४२ उत्तर–हे गौतम ! इस प्रकार इस अभिलाप द्वारा, प्रज्ञापनासूत्र के इक्कीसवें अवगाहना संस्थान पद में वैक्रिय शरीर के भेद कहे गये हैं, उसी प्रकार यहां भी कहना चाहिये यावत् पर्याप्त सर्वार्थसिद्ध अनुत्तरौपपातिक कल्पातीत वैमानिक देव पंचेन्द्रिय वैक्रिय-शरीर प्रयोग-बन्ध और अपर्याप्त सर्वार्थसिद्ध अनुत्तरौपपातिक कल्पातीत वैमानिक देव पंचेन्द्रिय वैक्रिय-शरीर प्रयोग बंध ।

४३ प्रश्न–हे भगवन् ! वैक्रिय-शरीर प्रयोग बंध किस कर्म के उदय से होता है ?

४३ उत्तर–हे गौतम ! सवीर्यता, सयोगता, सद्द्रव्यता यावत् आयुष्य और लब्धि के कारण तथा वैक्रिय-शरीर-प्रयोग नाम-कर्म के उदय से वैक्रिय-शरीर प्रयोग-बन्ध होता है ।

४४ प्रश्न---हे भगवन् ! वायुकायिक एकेन्द्रिय वैक्रिय शरीर प्रयोग-बन्ध किस कर्म के उदय से होता है ?

४४ उत्तर---हे गौतम ! सवीर्यता, सयोगता, सद्द्रव्यता यावत् आयुष्य और लब्धि के कारण एवं वायुकायिक एकेन्द्रिय वैक्रिय-शरीर प्रयोग-नाम कर्म के उदय से, वायुकायिक एकेन्द्रिय वैक्रिय-शरीर प्रयोग-बंध होता है ।

४५ प्रश्न–रयणप्पभापुढवि-णेरइय-पंचिंदिय-वेउव्विय-सरीरप्पओगबंधे णं भंते ! कस्स कम्मस्स उदएणं ?

४५ उत्तर–गोयमा ! वीरिय-सजोग-सद्दव्वयाए जाव आउयं वा पडुच्च रयणप्पभापुढवि–जाव बन्धे, एवं जाव अहे सत्तमाए ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

४६ प्रश्न-तिरिक्खजोणियपंचिंदियवेउव्वियसरीर पुच्छा ।

४६ उत्तर-गोयमा ! वीरिय० जहा वाउकाइयाणं, मणुस्स-पंचिंदियवेउव्विय० एवं चेव । असुरकुमारभवणवासिदेवपंचिंदिय-वेउव्विय० जहा रयणप्पभापुढविणेरइयाणं, एवं जाव थणियकुमारा, एवं वाणमंतरा, एवं जोइसिया, एवं सोहम्मकप्पोवया वेमाणिया, एवं जाव अच्चुयगेवेज्जकप्पाईया वेमाणिया अणुत्तरोववाइयकप्पाईया वेमाणिया एवं चेव ।

४७ प्रश्न-वेउव्वियसरीरप्पओगबंधे णं भंते ! किं देसबन्धे, सव्वबंधे ?

४७ उत्तर-गोयमा ! देसबन्धे वि, सव्वबंधे वि । वाउकाइय-एगिंदिय० एवं चेव, रयणप्पभापुढविणेरइया एवं चेव, एवं जाव अणुत्तरोववाइया ।

४८ प्रश्न-वेउव्वियसरीरप्पओगबन्धे णं भंते ! कालओ केव-च्चिरं होइ ?

४८ उत्तर-गोयमा ! सव्वबन्धे जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं दो समया । देसबंधे जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरो-वमाइं समयऊणाइं ।

४९ प्रश्न-वाउकाइयएगिंदियवेउव्विय पुच्छा ।

४९ उत्तर-गोयमा ! सव्वबंधे एक्कं समयं, देसबंधे जहण्णेणं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एक्कं समयं, उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं ।

भावार्थ-४५ प्रश्न-हे भगवन् ! रत्नप्रभापृथ्वी नैरयिक-पंचेन्द्रिय-वैक्रिय-शरीर प्रयोगबंध किस कर्म के उदय से होता है ?

४५ उत्तर-हे गौतम ! सवीर्यता, सयोगता और सद्द्रव्यता यावत् आयुष्य के कारण एवं रत्नप्रभा पृथ्वी नैरयिकपंचेन्द्रिय-वैक्रियशरीर नाम कर्म के उदय से, रत्नप्रभा पृथ्वी नैरयिक-पंचेन्द्रिय वैक्रियशरीर प्रयोगबंध होता है । इसी प्रकार यावत् अधःसप्तम नरक पृथ्वी तक कहना चाहिये ।

४६ प्रश्न-हे भगवन् ! तिर्यंचयोनिक पंचेंद्रिय-वैक्रिय-शरीर प्रयोगबंध किस कर्म के उदय से होता है ?

४६ उत्तर-हे गौतम ! सवीर्यता, सयोगता, सद्द्रव्यता यावत् आयुष्य और लब्धि के कारण तथा तिर्यंचयोनिक पंचेन्द्रिय वैक्रिय-शरीर प्रयोग नाम-कर्म के उदय से होता है । इसी प्रकार मनुष्य पञ्चेन्द्रिय वैक्रिय-शरीर प्रयोग-बंध के विषय में भी जान लेना चाहिये । असुरकुमार भवनवासी देव यावत स्त-नितकुमार भवनवासी देव, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी, सौधर्मकल्पोत्पन्नक वैमानिक देव यावत् अच्चुत कल्पोत्पन्नक वैमानिक देव, ग्रैवेयक कल्पातीत वैमानिक देव तथा अनुत्तरौपपातिक कल्पातीत वैमानिक देव, इन सबका कथन रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों के समान जानना चाहिये ।

४७ प्रश्न-हे भगवन् ! वैक्रिय-शरीर प्रयोग-बन्ध क्या देशबन्ध है या सर्वबन्ध है ?

४७ उत्तर-हे गौतम ! देशबन्ध भी है और सर्वबन्ध भी है । इसी प्रकार वायुकायिक एकेन्द्रिय वैक्रिय-शरीर प्रयोगबन्ध तथा रत्नप्रभा पृथ्वी नैरयिक वैक्रिय-शरीर प्रयोग-बंध से लगाकर यावत् अनुत्तरौपपातिक देवों तक जानना चाहिये ।

४८ प्रश्न-हे भगवन् ! वैक्रिय-शरीर प्रयोगबंध कितने काल तक रहता है ?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

४८ उत्तर-हे गौतम ! सर्वबंध जघन्य एक समय और उत्कृष्ट दो समय तक और देशबंध जघन्य एक समय और उत्कृष्ट एक समय कम तेतीस सागरोपम तक रहता है ।

४९ प्रश्न-हे भगवन् ! वायुकायिक एकेन्द्रिय वैक्रियशरीर प्रयोगबंध कितने काल तक रहता है ?

४९ उत्तर-हे गौतम ! सर्व-बंध एक समय तक और देश-बंध जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त तक रहता है ।

५० प्रश्न-रयणप्पभापुढविणेरइय पुच्छा ।

५० उत्तर-गोयमा ! सव्वबंधे एक्कं समयं, देसबंधे जहण्णेणं दसवाससहस्साइं तिसमयऊणाइं, उक्कोसेणं सागरोवमं समयऊणं, एवं जाव अहे सत्तमा, णवरं देसबंधे जस्स जा जहण्णिया ठिई सा तिसमयऊणा कायव्वा, जाव उक्कोसिया सा समयऊणा । पंचिंदिय-तिरिक्खजोणियाणं मणुस्साण य जहा वाउक्काइयाणं, असुरकुमार-णागकुमार० जाव अणुत्तरोववाइयाणं जहा णेरइयाणं; णवरं जस्स जा ठिई सा भाणियव्वा, जाव अणुत्तरोववाइयाणं सव्वबंधे एक्कं समयं, देसबंधे जहण्णेणं एक्कतीसं सागरोवमाइं तिसमयऊणाइं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं समयऊणाइं ।

५१ प्रश्न-वेउव्वियसरीरप्पओगबंधंतरं णं भंते ! कालओ केवच्चिरं होइ ।

५१ उत्तर-गोयमा ! सव्वबंधंतरं जहण्णेणं एक्कं समयं,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उक्कोसेणं अणंतं कालं-अणंताओ-जाव आवलियाए असंखेज्जइ-भागो; एवं देसबंधंतरं पि।

५२ प्रश्न-वाउक्काइयवेउव्वियसरीर पुच्छा।

५२ उत्तर-गोयमा ! सव्वबंधंतरं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागं; एवं देसबंधंतरं पि।

५३ प्रश्न-तिरिक्खजोणियपंचिंदियवेउव्वियसरीरप्पओगबंधंतरं-पुच्छा।

५३ उत्तर-गोयमा ! सव्वबंधंतरं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं पुव्वकोडिपुहुत्तं; एवं देसबंधंतरं पि, एवं मणुसस्स वि।

भावार्थ-५० प्रश्न--हे भगवन् ! रत्नप्रभा-पृथ्वी-नैरयिक-वैक्रियशरीर प्रयोग-बंध कितने काल रहता है ?

५० उत्तर-हे गौतम ! सर्व-बन्ध एक समय तक रहता है। देश-बंध जघन्य तीन समय कम दस हजार वर्ष तक तथा उत्कृष्ट एक समय कम एक सागरोपम तक रहता है। इस प्रकार यावत् अधःसप्तम नरक-पृथ्वी तक जानना चाहिये, परंतु जितनी जिसकी जघन्य स्थिति हो, उसमें तीन समय कम जघन्य देश-बंध जानना चाहिये और जिसकी जितनी उत्कृष्ट स्थिति हो, उसमें एक समय कम उत्कृष्ट देश-बंध जानना चाहिये। पंचेन्द्रिय तिर्यंच और मनुष्य का कथन वायुकायिक के समान जानना चाहिये। असुरकुमार, नागकुमार यावत् अनुत्तरौपपातिक देवों का कथन नैरयिक के समान जानना चाहिये, परन्तु जिनकी जितनी स्थिति हो, उतनी कहनी चाहिये, यावत् अनुत्तरौपपातिक देवों का सर्व-बंध एक समय तक रहता है और देश-बंध जघन्य तीन समय कम इकत्तीस सागरोपम और उत्कृष्ट एक समय कम तेतीस सागरोपम तक का होता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

५१ प्रश्न-हे भगवन् ! वैक्रिय-शरीर-प्रयोग-बंध का अन्तर कितने काल का होता है ?

५१ उत्तर---हे गौतम ! सर्वबंध का अन्तर जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अनन्त काल-अनन्त उत्सर्पिणी अवसर्पिणी यावत् आवलिका के असंख्यातवें भाग के समयों के बराबर पुद्गलपरावर्तन तक रहता है। इसी प्रकार देश-बंध का अन्तर भी जान लेना चाहिए।

५२ प्रश्न-हे भगवन् ! वायुकायिक वैक्रिय-शरीर-प्रयोग-बंध का अन्तर कितने काल का होता है ?

५२ उत्तर-हे गौतम ! सर्व-बंध का अन्तर जघन्य अंतर्मुहूर्त और उत्कृष्ट पल्योपम का असंख्यातवां भाग होता है। इसी प्रकार देशबंध का अन्तर भी जानना चाहिये।

५३ प्रश्न-हे भगवन् ! तिर्यंचयोनिक पंचेन्द्रिय वैक्रिय-शरीर प्रयोग-बंध का अन्तर कितने काल का होता है ?

५३ उत्तर-हे गौतम ! सर्वबंध का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट पूर्व-कोटि पृथक्त्व का होता है। इसी प्रकार देश-बंध का अन्तर भी जानना चाहिए और इसी प्रकार मनुष्य के विषय में भी जानना चाहिये।

५४ प्रश्न-जीवस्स णं भंते ! वाउकाइयत्ते, णोवाउकाइयत्ते, पुणरवि वाउकाइयत्ते वाउकाइयएगिंदियवेउव्वियपुच्छा।

५४ उत्तर-गोयमा ! सव्वबन्धन्तरं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं अणंतं कालं-वणस्सइकालो, एवं देसबन्धन्तरं पि।

५५ प्रश्न-जीवस्स णं भंते ! रयणप्पभापुढविणेरइयत्ते, णोरयणप्पभापुढवि०पुच्छा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

५५ उत्तर-गोयमा ! सव्वबन्धन्तरं जहण्णेणं दसवाससहस्साइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं, उक्कोसेणं वणस्सइकालो, देसबन्धन्तरं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं अणंतं कालं वणस्सइकालो; एवं जाव अहेसत्तमाए, णवरं जा जस्स ठिई जहण्णिया सा सव्वबन्धन्तरे जहण्णेणं अंतोमुहुत्तमब्भहिया कायव्वा, सेसं तं चेव। पंचिंदियतिरिक्खजोणिय-मणुस्साण य जहा वाउकाइयाणं; असुरकुमार-णागकुमार० जाव सहस्सारदेवाणं एएसिं जहा रयणप्पभापुढविणेरइयाणं, णवरं सव्व-बंधंतरे जस्स जा ठिई जहण्णिया सा अंतोमुहुत्तमब्भहिया कायव्वा, सेसं तं चेव ।

५६ प्रश्न-जीवस्स णं भंते ! आणयदेवत्ते, णोआणय-पुच्छा ।

५६ उत्तर-गोयमा ! सव्वबंधंतरं जहण्णेणं अट्ठारस सागरोवमाइं वासपुहुत्तमब्भहियाइं, उक्कोसेणं अणंतं कालं-वणस्सइकालो, देसबंधंतरं जहण्णेणं वासपुहुत्तं, उक्कोसेणं अणंतं कालं-वणस्सइ-कालो; एवं जाव अच्चुए। णवरं जस्स जा ठिई सा सव्वबंधंतरं जहण्णेणं वासपुहुत्तमब्भहिया कायव्वा, सेसं तं चेव ।

५७ प्रश्न-गेवेज्जकप्पाईय-पुच्छा ।

५७ उत्तर-गोयमा ! सव्वबंधंतरं जहण्णेणं बावीसं सागरोवमाइं वासपुहुत्तमब्भहियाइं, उक्कोसेणं अणंतं कालं-वणस्सइकालो । देसबंधंतरं जहण्णेणं वासपुहुत्तं, उक्कोसेणं वणस्सइकालो ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ-वासपुहत्त-वर्षपृथक्त्व (दो वर्ष से नो वर्ष तक) मब्भहिया-अधिक।

भावार्थ-५४ प्रश्न-हे भगवन् ! कोई जीव, वायुकायिक अवस्था में हो, वहां से मरकर वह वायुकायिक के सिवाय दूसरे काय में उत्पन्न हो जाय और फिर वह वहां से मरकर वायुकायिक जीवों में उत्पन्न हो, तो उस वायुकायिक एकेंद्रिय वैक्रिय-शरीर प्रयोग-बंध का अन्तर कितने काल का होता है ?

५४ उत्तर-हे गौतम ! उसके सर्वबंध का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अनन्त काल-वनस्पति काल तक होता है। इसी प्रकार देशबंध का अन्तर भी जान लेना चाहिये।

५५ प्रश्न-हे भगवन् ! कोई जीव, रत्नप्रभा पृथ्वी में नैरयिकपने उत्पन्न होकर, वहां से काल करके रत्नप्रभा पृथ्वी के सिवाय दूसरे स्थानों में उत्पन्न हो और वहां से मरकर पुनः रत्नप्रभा पृथ्वी में नैरयिकरूप से उत्पन्न हो, तो उस रत्नप्रभा नैरयिक वैक्रिय-शरीर प्रयोग-बंध का अन्तर कितने काल का होता है ?

५५ उत्तर-हे गौतम ! सर्व-बन्ध का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त अधिक दस हजार वर्ष और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल होता है। देश-बंध का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अनन्त काल-वनस्पतिकाल का होता है। इसी प्रकार यावत् अधःसप्तम नरक-पृथ्वी तक जानना चाहिये, परन्तु विशेषता यह है कि सर्व-बंध का जघन्य अन्तर जिन नैरयिकों की जितनी जघन्य स्थिति हो, उतनी स्थिति से अन्तर्मुहूर्त अधिक जानना चाहिये। शेष सारा कथन पूर्व के समान जानना चाहिये। पचेंद्रिय तिर्यञ्च योनिक और मनुष्य के सर्व-बन्ध का अन्तर वायुकायिक के समान जानना चाहिये। इसी प्रकार असुरकुमार, नागकुमार यावत् सहस्रार देवों तक, रत्नप्रभा के समान जानना चाहिये, परंतु विशेषता यह है कि उनके सर्व-बंध का अन्तर, जिनकी जितनी जघन्य स्थिति हो, उससे अंतर्मुहूर्त अधिक जानना चाहिये। शेष सारा कथन पूर्व के समान जानना चाहिये।

५६ प्रश्न-हे भगवन् ! आणत देवलोक में देवपने उत्पन्न हुआ कोई जीव,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वहाँ से चव कर आणत देवलोक के सिवाय दूसरे जीवों में उत्पन्न हो और वहां से मर कर पुनः आणत देवलोक में देवपने उत्पन्न हो, तो उस आणत देव वैक्रिय-शरीर प्रयोग-बंध का अन्तर कितने काल का होता है ?

५६ उत्तर–हे गौतम ! सर्व-बंध का अन्तर जघन्य वर्ष-पृथक्त्व अधिक अठारह सागरोपम और उत्कृष्ट अनन्त काल–वनस्पति काल पर्यंत होता है। देश-बन्ध का अन्तर जघन्य वर्ष-पृथक्त्व और उत्कृष्ट अनंत काल–वनस्पतिकाल पर्यंत होता है। इसी प्रकार यावत् अच्युत देवलोक पर्यंत जानना चाहिये, परंतु सर्व-बंध का अंतर जघन्य जिसकी जितनी स्थिति हो, उससे वर्ष-पृथक्त्व अधिक जानना चाहिये। शेष सारा कथन पूर्व के समान जानना चाहिये।

५७ प्रश्न–हे भगवन् ! ग्रैवेयक कल्पातीत वैक्रिय-शरीर प्रयोग-बंध का अन्तर कितने काल का होता है ?

५७ उत्तर–हे गौतम ! सर्व बंध का अन्तर जघन्य वर्ष-पृथक्त्व अधिक बाईस सागरोपम का और उत्कृष्ट अनन्त काल–वनस्पति काल पर्यंत होता है। देश-बंध का अन्तर जघन्य वर्ष-पृथक्त्व और उत्कृष्ट वनस्पतिकाल पर्यंत होता है।

५८ प्रश्न–जीवस्स णं भंते ! अणुत्तरोववाइय–पुच्छा।

५८ उत्तर–गोयमा ! सव्वबंधंतरं जहण्णेणं एक्कतीसं सागरोवमाइं वासपुहत्तमब्भहियाइं, उक्कोसेणं संखेज्जाइं सागरोवमाइं। देसबंधंतरं जहण्णेणं वासपुहत्तं, उक्कोसेणं संखेज्जाइं सागरोवमाइं।

५९ प्रश्न–एएसि णं भंते ! जीवाणं वेउव्वियसरीरस्स देसबन्धगाणं, सव्वबन्धगाणं, अबन्धगाण य कयरे कयरेहिंतो जाव विसेसाहिया वा ?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

५९ उत्तर—गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा वेउव्वियसरीरस्स सव्व-बन्धगा, देसबन्धगा असंखेज्जगुणा, अबन्धगा अणंतगुणा ।

भावार्थ—५८ प्रश्न—हे भगवन् ! अनुत्तरौपपातिक देव वैक्रिय-शरीर प्रयोग-बन्ध का अन्तर कितने काल का होता है ?

५८ उत्तर—हे गौतम ! सर्व-बंध का अन्तर जघन्य वर्ष-पृथक्त्व अधिक इकत्तीस सागरोपम और उत्कृष्ट संख्यात सागरोपम का होता है । देश-बंध का अन्तर जघन्य वर्ष-पृथक्त्व और उत्कृष्ट संख्यात सागरोपम होता है ।

५९ प्रश्न—हे भगवन् ! वैक्रियशरीर के देशबंधक, सर्वबंधक और अबंधक जीवों में कौन किससे कम, अधिक, तुल्य और विशेषाधिक हैं ?

५९ उत्तर—हे गौतम ! वैक्रिय-शरीर के सर्व-बंधक जीव, सबसे थोडे हैं, उनसे देश-बंधक असंख्यात गुणे हैं और उनसे अबंधक जीव अनन्त गुणे हैं ।

विवेचन—वैक्रिय-शरीर, नौ कारणों से बंधता है । सवीर्यता, सयोगता आदि आठ कारण तो पहले बतला दिये गये हैं, नौवां कारण है—लब्धि । वायुकाय, पञ्चेन्द्रिय तिर्यंच और मनुष्यों में—इन नौ कारणों से वैक्रिय-शरीर बँधता है । नैरयिक और देवों के आठ कारणों से ही बंधता है । उनमें 'लब्धि' कारण नहीं होती, क्योंकि उनके वैक्रिय-शरीर भवप्रत्ययिक होता है ।

वैक्रिय-शरीर-प्रयोग-बंध के भी दो भेद हैं—देशबंध और सर्वबंध । कोई औदारिक शरीरी जीव, वैक्रिय शरीर बनाते समय प्रथम समय में सर्व-बंधक होकर फिर मृत्यु को प्राप्त होकर देव या नैरयिक हो, तो प्रथम समय में वह सर्वबंध करता है । इसलिये वैक्रिय-शरीर प्रयोग-बंध का सर्वबंध उत्कृष्ट दो समय का होता है । औदारिक-शरीरी कोई जीव, वैक्रिय-शरीर करते हुए प्रथम समय में सर्वबंधक होकर दूसरे समय में देश-बंधक होता है और तुरन्त ही मरण को प्राप्त हो जाय, तो देशबंध जघन्य एक समय का होता है ।

वैक्रिय-शरीर के देश-बंध की स्थिति समुच्चय जीव में जघन्य एक समय की और उत्कृष्ट एक समय कम तेतीस सागरोपम की होती है । वायुकाय, तिर्यंच-पञ्चेन्द्रिय और मनुष्य के देश-बंध की स्थिति जघन्य एक समय की और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त की होती है ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नैरयिक और देवों के वैक्रिय शरीर के देश-बंध की स्थिति जघन्य तीन समय कम दस हजार वर्ष की और उत्कृष्ट एक समय कम तेतीस सागरोपम की होती है।

औदारिक-शरीरी वायुकायिक कोई जीव, वैक्रिय-शरीर का प्रारम्भ करे और प्रथम समय में सर्व-बंधक होकर मरण को प्राप्त करे, उसके बाद वायुकायिक हो, तो उसे अपर्याप्त अवस्था में वैक्रिय शक्ति उत्पन्न नहीं होती। इसलिये वह अन्तर्मुहूर्त में पर्याप्त होकर वैक्रिय-शरीर करता है, तब सर्व-बंधक होता है। इसलिये सर्व-बंध का जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त होता है। औदारिक-शरीरी वायुकायिक कोई, जीव, वैक्रिय-शरीर करे, तो उसके प्रथम समय में वह सर्वबंधक होता है। इसके बाद देशबंधक होकर मरण को प्राप्त करे और औदारिक शरीरी वायुकायिक में पल्योपम के असंख्यातवां भाग काल बिताकर अवश्य वैक्रिय शरीर करता है। उस समय प्रथम समय में सर्व-बंधक होता है। इसलिये सर्व-बंध का उत्कृष्ट अन्तर पल्योपम का असंख्यातवां भाग होता है।

रत्नप्रभा पृथ्वी का दस हजार वर्ष की स्थिति वाला नैरयिक, उत्पत्ति के प्रथम समय में सर्वबंधक होता है। उसके बाद वहाँ से काल करके गर्भज पंचेंद्रिय में अन्तर्मुहूर्त रहकर फिर रत्नप्रभा पृथ्वी में उत्पन्न होता है, तब प्रथम समय में सर्वबंधक होता है। इसलिये सर्वबंध का जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त अधिक दस हजार वर्ष होता है।

आणत कल्प का अठारह सागरोपम की स्थिति वाला कोई देव, उत्पत्ति के प्रथम समय में सर्वबन्धक होता है। वहाँ से चव कर वर्ष-पृथक्त्व आयुष्य पर्यन्त मनुष्य में रह कर फिर उसी आणत कल्प में देव होकर प्रथम समय में सर्वबन्धक होता है। इसलिये सर्वबन्ध का जघन्य अन्तर वर्ष-पृथक्त्व अधिक अठारह सागरोपम का होता है।

अनुत्तरौपपातिक देवों में सर्व-बन्ध और देशबन्ध का अन्तर संख्यात सागरोपम है, क्योंकि वहाँ से चव कर जीव, अनन्त काल तक संसार में भ्रमण नहीं करता, अर्थात् अब वह जीव, तेरह भव से अधिक नहीं करता।

इसके अतिरिक्त वैक्रिय-शरीर के देश-बन्ध और सर्व-बन्ध का अन्तर जो ऊपर बतलाया गया है—सुगम है, इसलिये उसकी घटना स्वयं कर लेनी चाहिये।

वैक्रिय-शरीर सम्बन्धी अल्प-बहुत्व में बतलाया गया है कि वैक्रिय-शरीर के सर्व बन्धक जीव, सब से थोड़े हैं, क्योंकि उनका काल अल्प है। उनसे देश-बन्धक असंख्यात गुणे हैं, क्योंकि उनकी अपेक्षा उनका काल असंख्यात गुण है। उनसे अबन्धक

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अनन्तगुण हैं, क्योंकि सिद्ध जीव और वनस्पति-कायिक आदि जीव उनसे अनन्त गुण हैं। ये सब वैक्रिय-शरीर के अबन्धक हैं।

आहारक-शरीर प्रयोग-बंध

६० प्रश्न-आहारगसरीरप्पओगबन्धे णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते ?

६० उत्तर-गोयमा ! एगागारे पण्णत्ते ?

६१ प्रश्न-जइ एगागारे पण्णत्ते किं मणुस्साहारगसरीरप्पओगबन्धे, अमणुस्साहारगसरीरप्पओगबन्धे ?

६१ उत्तर-गोयमा ! मणुस्साहारग-सरीर-प्पओगबंधे, णो अमणुस्साहारगसरीरप्पओगबंधे। एवं एएणं अभिलावेणं जहा ओगाहणसंठाणे जाव इड्ढिपत्त-पमत्त-संजय-सम्मदिट्ठि-पज्जत्त-संखेज्जवासाउय-कम्मभूमियगब्भवक्कंतिय-मणुस्साहारग-सरीरप्पओगबंधे, णो अणिड्ढिपत्तपमत्त० जाव आहारगसरीरप्पओगबंधे।

कठिन शब्दार्थ—एगागारे—एकाकार-एक प्रकार का, इड्ढिपत्तपमत्तसंजय—ऋद्धि प्राप्त प्रमत्त-संयत।

भावार्थ--६० प्रश्न--हे भगवन् ! आहारक शरीर प्रयोग-बंध कितने प्रकार का कहा गया है ?

६० उत्तर-हे गौतम ! एक प्रकार का कहा गया है।

६१ प्रश्न-हे भगवन् ! यदि आहारक-शरीर प्रयोग-बंध एक प्रकार का कहा गया है, तो आहारक-शरीर प्रयोग-बंध मनुष्यों के होता है, अथवा अमनुष्यों (मनुष्यों के सिवाय अन्य जीवों) के ?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

६१ उत्तर-हे गौतम ! मनुष्यों के आहारक-शरीर प्रयोग-बंध होता है, अमनुष्यों के नहीं होता। इस प्रकार इस अभिलाप द्वारा प्रज्ञापनासूत्र के इक्कीसवें अवगाहना-संस्थान पद में कहे अनुसार कहना चाहिये। यावत् ऋद्धि-प्राप्त-प्रमत्तसंयत-सम्यग्दृष्टि-पर्याप्त-संख्यात-वर्षायुष्क-कर्मभूमिज-गर्भज मनुष्य के आहारक-शरीर प्रयोग-बंध होता है, परंतु अनृद्धिप्राप्त (ऋद्धि को अप्राप्त) प्रमत्तसंयत-सम्यग्दृष्टि-पर्याप्त-संख्यात-वर्षायुष्क-कर्मभूमिज-गर्भज मनुष्य को नहीं होता।

६२ प्रश्न-आहारगसरीरप्पओगबंधे णं भंते ! कस्स कम्मस्स उदएणं ?

६२ उत्तर-गोयमा ! वीरिय-सजोग-सद्दव्वयाए जाव लद्धिं वा पडुच्च आहारगसरीरप्पओगणामाए कम्मस्स उदएणं आहारगसरीरप्पओगबंधे।

६३ प्रश्न-आहारगसरीरप्पओगबंधे णं भंते ! किं देसबंधे सव्वबन्धे ?

६३ उत्तर-गोयमा ! देसबन्धे वि, सव्वबन्धे वि।

६४ प्रश्न-आहारगसरीरप्पओगबन्धे णं भंते ! कालओ केवच्चिरं होइ ?

६४ उत्तर-गोयमा ! सव्वबन्धे एक्कं समयं, देसबन्धे जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं वि अंतोमुहुत्तं।

६५ प्रश्न-आहारगसरीरप्पओगबन्धंतरं णं भंते ! कालओ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

केवच्चिरं होइ ?

६५ उत्तर–गोयमा ! सव्वबन्धंतरं जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं अणंतं कालं–अणंताओ उस्सप्पिणी-ओसप्पिणीओ कालओ, खेत्तओ अणंता लोया–अवड्ढपोग्गलपरियट्टं देसूणं । एवं देसबन्धंतरं पि ।

६६ प्रश्न–एएसि णं भंते ! जीवाणं आहारगसरीरस्स देसबन्धगाणं, सव्वबन्धगाणं, अबन्धगाण य कयरे कयरेहिंतो जाव विसेसाहिया वा ?

६६ उत्तर–गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा आहारगसरीरस्स सव्वबन्धगा, देसबन्धगा संखेज्जगुणा, अबन्धगा अणंतगुणा ।

कठिन शब्दार्थ—अवड्ढपोग्गलपरियट्टं–अपार्द्ध पुद्गल-परावर्त ।

भावार्थ–६२ प्रश्न–हे भगवन् ! आहारक-शरीर प्रयोग-बंध किस कर्म के उदय से होता है ?

६२ उत्तर—हे गौतम ! सवीर्यता, सयोगता और सद्द्रव्यता यावत् लब्धि से तथा आहारक-शरीर प्रयोग नाम-कर्म के उदय से आहारकशरीर प्रयोग-बन्ध होता है ।

६३ प्रश्न–हे भगवन् ! आहारक-शरीर प्रयोग-बन्ध क्या देश-बन्ध होता है, या सर्व-बन्ध ?

६३ उत्तर–हे गौतम ! सर्व-बन्ध भी होता है और देश-बन्ध भी ।

६४ प्रश्न–हे भगवन् ! आहारक-शरीर प्रयोग-बन्ध कितने काल तक रहता है ?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

६४ उत्तर—हे गौतम ! आहारक-शरीर प्रयोग-बन्ध का सर्वबंध एक समय तक होता है और देशबन्ध जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट भी अन्तर्मुहूर्त तक होता है ।

६५ प्रश्न—हे भगवन् ! आहारक-शरीर प्रयोग बन्ध का अन्तर कितने काल का है ?

६५ उत्तर—हे गौतम ! सर्व-बन्ध का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अनन्तकाल—अनन्त उत्सर्पिणी अवसर्पिणी होता है । क्षेत्र की अपेक्षा अनन्त लोक—देशोन अर्द्ध पुद्गल परावर्तन होता है । इसी प्रकार देशबन्ध का अन्तर भी जानना चाहिये ।

६६ प्रश्न—हे भगवन् ! आहारक-शरीर के देशबंधक, सर्वबंधक और अबंधक जीवों में कौन किससे कम, अधिक, तुल्य और विशेषाधिक हैं ?

६६ उत्तर--हे गौतम ! सबसे थोडे जीव आहारक-शरीर के सर्व-बंधक हैं, उनसे देशबंधक संख्यात गुण हैं और उनसे अबंधक जीव अनन्त गुण हैं ।

विवेचन—आहारक-शरीर केवल मनुष्यों के ही होता है । मनुष्यों में भी ऋद्धि प्राप्त-प्रमत्त-संयत-सम्यग्दृष्टि संख्यातवर्ष की आयु वाले-कर्मभूमि में उत्पन्न गर्भज-मनुष्य को ही होता है । इसका सर्वबन्ध एक समय का ही होता है । देशबन्ध जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त मात्र ही होता है । इसके बाद वह नियम से औदारिक-शरीर को ग्रहण करता है । उस अन्तर्मुहूर्त में प्रथम समय में सर्व-बन्ध होता है और उसके बाद देश बन्ध होता है ।

आहारक-शरीर को प्राप्त हुआ जीव, प्रथम समय में सर्व-बन्धक होता है । उसके बाद अन्तर्मुहूर्त तक आहारक-शरीरी रहकर पुनः औदारिक शरीर को प्राप्त होता है, वहाँ अन्तर्मुहूर्त रहने के बाद पुनः संशय आदि की निवृत्ति के लिये उसे आहारक-शरीर बनाने का कारण उत्पन्न होने पर, पुनः आहारक-शरीर बनाता है और उसके प्रथम समय में वह सर्व-बन्धक ही होता है । इस प्रकार सर्व-बंध का अन्तर अन्तर्मुहूर्त होता है । इन दोनों अन्तर्मुहूर्तों की एक अन्तर्मुहूर्त की विवक्षा करके एक अन्तर्मुहूर्त कहा गया है और उत्कृष्ट अन्तर, काल की अपेक्षा अनन्त काल—अनन्त उत्सर्पिणी अवसर्पिणी और क्षेत्र की अपेक्षा अनन्तलोक—देशोन अपार्द्ध पुद्गलपरावर्तन होता है । इसी प्रकार देश-बंध का भी अन्तर जानना चाहिये ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अल्पबहुत्व–आहारक-शरीर के सर्व-बंधक सबसे थोड़े होते हैं। क्योंकि उनका समय अल्प है। उनसे देश-बंधक संख्यात गुण होते हैं, क्योंकि देश-बंध का काल बहुत है। वे संख्यात गुण ही होते हैं, असंख्यात गुण नहीं, क्योंकि मनुष्य ही संख्याता है, अतएव आहारक-शरीर के देश-बंधक असंख्यात गुण नहीं हो सकते। अबन्धक उनसे अनन्त गुण होते हैं, क्योंकि आहारक-शरीर मनुष्यों के ही होता है और उनमें भी किन्हीं संयत जीवों के ही होता है और उनके भी कदाचित् ही होता है, सर्वदा नहीं। शेष काल में वे स्वयं और सिद्ध जीव तथा वनस्पतिकायिक आदि शेष सभी जीव, आहारक-शरीर के अबन्धक होते हैं, और वे उनसे अनन्त गुण हैं।

तैजस्-शरीर प्रयोग-बंध

६७ प्रश्न–तेयासरीरप्पओगबंधे णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते ?

६७ उत्तर–गोयमा ! पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा–एगिंदियतेयासरीरप्पओगबंधे, बेइंदियतेयासरीरप्पओगबंधे, जाव पंचिंदियतेयासरीरप्पओगबंधे।

६८ प्रश्न–एगिंदियतेयासरीरप्पओगबंधे णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते ?

६८ उत्तर–एवं एएणं अभिलावेणं भेओ जहा ओगाहणसंठाणे, जाव पज्जत्तासव्वट्ठसिद्ध-अणुत्तरोववाइय-कप्पाईयवेमाणिय-देवपंचिंदियतेयासरीरप्पओगबंधे य, अपज्जत्तासव्वट्ठसिद्ध-अणुत्तरोववाइय० जाव बंधे य।

६९ प्रश्न–तेयासरीरप्पओगबंधे णं भंते ! कस्स कम्मस्स

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उदएणं ?

६९ उत्तर—गोयमा ! वीरिय-सजोग-सद्दव्वयाए जाव आउयं च पडुच्च तेयासरीरप्पओगणामाए कम्मस्स उदएणं तेयासरीरप्पओग-बंधे ।

कठिन शब्दार्थ—ओगाहणसंठाणे—अवगाहना संस्थान (प्रज्ञापनासूत्र का इक्कीसवाँ पद) ।

भावार्थ—६७ प्रश्न—हे भगवन् ! तैजस्-शरीर प्रयोग-बंध कितने प्रकार का कहा गया है ?

६७ उत्तर—हे गौतम ! पांच प्रकार का कहा गया है । यथा-एकेंद्रिय तैजस्-शरीर प्रयोग-बंध, बेइन्द्रिय तैजस्-शरीर प्रयोग-बंध यावत् पंचेंद्रिय तैजस्-शरीर प्रयोगबंध ।

६८ प्रश्न—हे भगवन् ! एकेन्द्रिय तैजस्-शरीर प्रयोग-बंध कितने प्रकार का कहा गया है ?

६८ उत्तर—हे गौतम ! इस अभिलाप द्वारा जिस प्रकार प्रज्ञापनासूत्र के इक्कीसवें अवगाहना-संस्थान पद में भेद कहे हैं, उसी प्रकार यहां भी कहना चाहिये, यावत् पर्याप्त सर्वार्थसिद्ध अनुत्तरौपपातिक कल्पातीत वैमानिक देव पंचेन्द्रिय तैजस्-शरीर प्रयोग-बंध और अपर्याप्त सर्वार्थसिद्ध अनुत्तरौपपातिक कल्पातीत वैमानिक देव पंचेन्द्रिय तैजस् प्रयोग-बंध ।

६९ प्रश्न—हे भगवन् ! तैजस्-शरीर प्रयोग-बंध किस कर्म के उदय से होता है ?

६९ उत्तर—हे गौतम ! सवीर्यता, सयोगता और सद्द्रव्यता यावत् आयुष्य—इन आठ कारणों से एवं तैजस्-शरीर प्रयोग नामकर्म के उदय से तैजस्-शरीर प्रयोग-बन्ध होता है ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

७० प्रश्न–तेयासरीरप्पओगबन्धे णं भंते ! किं देसबन्धे, सव्वबन्धे ?

७० उत्तर–गोयमा ! देसबन्धे, णो सव्वबन्धे ।

७१ प्रश्न–तेयासरीरप्पओगबन्धे णं भंते ! कालओ केवच्चिरं होइ ?

७१ उत्तर–गोयमा ! दुविहे पण्णत्ते, तं जहा–अणाइए वा अपज्जवसिए, अणाइए वा सपज्जवसिए ।

७२ प्रश्न–तेयासरीरप्पओगबन्धंतरं णं भंते ! कालओ केवच्चिरं होइ ?

७२ उत्तर–गोयमा ! अणाइयस्स अपज्जवसियस्स णत्थि अंतरं, अणाइयस्स सपज्जवसियस्स णत्थि अंतरं ।

७३ प्रश्न–एएसि णं भंते ! जीवाणं तेयासरीरस्स देसबन्धयाणं, अबन्धगाण य कयरे कयरेहिंतो जाव विसेसाहिया वा ?

७३ उत्तर–गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा तेयासरीरस्स अबन्धगा, देसबन्धगा, अणंतगुणा ।

भावार्थ–७० प्रश्न–हे भगवन् ! तैजस्शरीर प्रयोग-बन्ध क्या देशबन्ध होता है, या सर्व-बन्ध होता है ?

७० उत्तर–हे गौतम ! यह देश-बन्ध होता है, सर्व-बन्ध नहीं होता ।

७१ प्रश्न–हे भगवन् ! तैजसशरीर प्रयोग-बन्ध कितने काल तक रहता है ?

७१ उत्तर–हे गौतम ! तैजस्शरीर प्रयोग-बन्ध दो प्रकार का कहा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गया है। यथा—१ अनादि-अपर्यवसित और २ अनादि-सपर्यवसित।

७२ प्रश्न—हे भगवन् ! तैजसशरीर प्रयोग-बन्ध का अन्तर कितने काल का है ?

७२ उत्तर—हे गौतम ! अनादि-अपर्यवसित और अनादि-सपर्यवसित, इन दोनों प्रकार के तैजसशरीर प्रयोग-बन्ध का अन्तर नहीं है।

७३ प्रश्न—हे भगवन् ! तैजसशरीर के देशबंधक और अबंधक जीवों में कौन किससे कम, अधिक, तुल्य या विशेषाधिक हैं ?

७३ उत्तर—हे गौतम ! तैजस् शरीर के अबंधक जीव सबसे थोड़े हैं। उनसे देश-बंधक जीव अनन्त गुण हैं।

विवेचन—तैजसशरीर अनादि है, इसलिये इसका सर्व-बन्ध नहीं होता। अभव्य जीवों के यह तैजस्-शरीर बन्ध अनादिअपर्यवसित है और भव्य जीवों के अनादि-सपर्यवसित है। तैजसशरीर समस्त संसारी जीवों के सदा रहता है, इसलिये इसका अन्तर नहीं है।

अल्पबहुत्व—तैजस्-शरीर के अबंधक सबसे थोड़े हैं, क्योंकि सिद्ध जीव और १४ वें गुणस्थान वाले जीव ही तैजस्-शरीर के अबंधक हैं। उनसे देशबन्धक अनन्त गुण हैं। क्योंकि तैजस्-शरीर समस्त संसारी जीवों के होता है और संसारी जीव सिद्धों से अनन्तगुण हैं।

कार्मण-शरीर प्रयोग बन्ध

७४ प्रश्न—कम्मासरीरप्पओगबंधे णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते ?

७४ उत्तर—गोयमा ! अट्ठविहे पण्णत्ते, तं जहा—णाणावरणिज्ज-कम्मासरीरप्पओगबंधे, जाव अंतराइयकम्मासरीरप्पओगबंधे।

७५ प्रश्न—णाणावरणिज्जकम्मासरीरप्पओगबंधे णं भंते ! कस्स कम्मस्स उदएणं ?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

७५ उत्तर-गोयमा ! णाणपडिणीययाए, णाणणिण्हवणयाए, णाणंतराएणं, णाणप्पओसेणं, णाणच्चासायणयाए, णाणविसंवायणाजोगेणं, णाणावरणिज्जकम्मासरीरप्पओगणामाए कम्मस्स उदएणं णाणावरणिज्जकम्मासरीरप्पओगबंधे ।

कठिन शब्दार्थ—**णाणपडिणीययाए**-ज्ञान की प्रत्यनीकता (विरोध) से, **णाणणिण्हवणयाए**-ज्ञान का अपलाप करने से, **णाणंतराएणं**-ज्ञान में बाधक बनने से, **णाणप्पओसेणं**-ज्ञान का द्वेष करने से, **णाणच्चासायणयाए**-ज्ञान की अत्यंत आशातना करने से, **णाणविसंवायणाजोगेणं**-ज्ञान के विसंवाद के योग से ।

भावार्थ—७४ प्रश्न—हे भगवन् ! कार्मण-शरीर प्रयोग-बंध कितने प्रकार का कहा गया है ?

७४ उत्तर—हे गौतम ! आठ प्रकार का कहा गया है । यथा-ज्ञानावरणीय कार्मण-शरीर प्रयोग-बंध यावत् अन्तराय-कार्मण-शरीर प्रयोग-बंध ।

७५ प्रश्न—हे भगवन् ! ज्ञानावरणीय कार्मण-शरीर प्रयोग-बंध किस कर्म के उदय से होता है ?

७५ उत्तर—हे गौतम ! ज्ञान की प्रत्यनीकता (विपरीतता) करने से, ज्ञान का अपलाप करने, ज्ञान में अन्तराय देने, ज्ञान का द्वेष करने, ज्ञान की आशातना करने, ज्ञान के विसंवादन योग से और ज्ञानावरणीय कार्मण-शरीर-प्रयोग नामकर्म के उदय से, ज्ञानावरणीय कार्मण-शरीर प्रयोग-बंध होता है ।

७६ प्रश्न—दरिसणावरणिज्जकम्मासरीरप्पओगबंधे णं भंते ! कस्स कम्मस्स उदएणं ?

७६ उत्तर—गोयमा ! दंसणपडिणीययाए, एवं जहा णाणावरणिज्जं, णवरं दंसणणामं घेत्तव्वं, जाव दंसणविसंवायणाजोगेणं दंसणा-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वरणिज्जकम्मासरीरप्पओगणामाए कम्मस्स उदएणं जाव पओगबंधे।

कठिन शब्दार्थ—घेतव्वं—ग्रहण करना चाहिये।

भावार्थ—७६ प्रश्न—हे भगवन्! दर्शनावरणीय कार्मण-शरीर प्रयोग-बंध किस कर्म के उदय से होता है?

७६ उत्तर—हे गौतम! दर्शन की प्रत्यनीकता से, इत्यादि जिस प्रकार ज्ञानावरणीय के कारण कहे हैं, उसी प्रकार दर्शनावरणीय के भी जानना चाहिये, किन्तु 'ज्ञानावरणीय' के स्थान में—'दर्शनावरणीय' कहना चाहिये यावत् दर्शन-विसंवादन योग और दर्शनावरणीय कार्मण-शरीर-प्रयोग नामकर्म के उदय से दर्शनावरणीय कार्मण-शरीर प्रयोग-बंध होता है।

७७ प्रश्न—सायावेयणिज्जकम्मासरीरप्पओगबंधे णं भंते! कस्स कम्मस्स उदएणं?

७७ उत्तर—गोयमा! पाणाणुकंपयाए, भूयाणुकंपयाए, एवं जहा सत्तमसए दुस्समाउद्देसए जाव अपरियावणयाए सायावेयणिज्जकम्मा-सरीरप्पओगणामाए कम्मस्स उदएणं सायावेयणिज्जकम्मा० जाव बंधे।

७८ प्रश्न—असायावेयणिज्ज—पुच्छा।

७८ उत्तर—गोयमा! परदुक्खणयाए, परसोयणयाए, जहा सत्तमसए दुस्समाउद्देसए, जाव परियावणयाए असायावेयणिज्जकम्मा० जाव पओगबंधे।

कठिन शब्दार्थ—पाणाणुकंपयाए—प्राणियों पर अनुकंपा करने से, अपरियावणयाए—परिताप नहीं उत्पन्न करने से, परसोयणयाए—दूसरे को शोक कराने से।

भावार्थ—७७ प्रश्न—हे भगवन्! साता-वेदनीय कार्मण-शरीर प्रयोग-बंध

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

किस कर्म के उदय से होता है ?

७७ उत्तर-हे गौतम ! प्राणियों पर अनुकम्पा करने से, भूतों (चार स्थावरों) पर अनुकम्पा करने से इत्यादि, जिस प्रकार सातवें शतक के छठे उद्देशक में कहा है, उसी प्रकार यहां भी कहना चाहिये यावत् प्राण, भूत, जीव और सत्त्वों को परिताप नहीं उपजाने से और साता-वेदनीय कार्मण-शरीर प्रयोग नामकर्म के उदय से साता-वेदनीय कार्मण-शरीर प्रयोग-बंध होता है।

७८ प्रश्न-हे भगवन् ! असातावेदनीय कार्मणशरीर प्रयोग-बंध किस कर्म के उदय से होता है ?

७८ उत्तर-हे गौतम ! दूसरे जीवों को दुःख देने, उन्हें शोक उत्पन्न करने से, इत्यादि जिस प्रकार सातवें शतक के छठे उद्देशक में कहा है, उसी प्रकार यहां भी कहना चाहिये, यावत् उन्हें परिताप उपजाने और असातावेदनीय कार्मणशरीर-प्रयोग नामकर्म के उदय से असातावेदनीय कार्मण-शरीर प्रयोग-बंध होता है।

७९ प्रश्न-मोहणिज्जकम्मासरीर-पुच्छा ।

७९ उत्तर-गोयमा ! तिव्वकोहयाए, तिव्वमाणयाए, तिव्वमाययाए, तिव्वलोभयाए, तिव्वदंसणमोहणिज्जयाए, तिव्वचरित्तमोहणिज्जयाए मोहणिज्जकम्मासरीरप्पओग० जाव पओगबंधे ।

भावार्थ-७९ प्रश्न-हे भगवन् ! मोहनीय कार्मण-शरीर प्रयोग-बंध किस कर्म के उदय से होता है ?

७९ उत्तर-हे गौतम ! तीव्रक्रोध करने से, तीव्र मान करने से, तीव्र माया करने से, तीव्र लोभ करने से, तीव्र दर्शन-मोहनीय से, तीव्र चारित्र-मोहनीय से और मोहनीय कार्मण-शरीर-प्रयोग-नामकर्म के उदय से-मोहनीय-कार्मण-शरीर प्रयोग-बंध होता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

८० प्रश्न-णेरइयाउयकम्मासरीर-पुच्छा ।

८० उत्तर-गोयमा ! महारंभयाए, महापरिग्गहयाए, कुणिमाहारेणं, पंचिंदियवहेणं णेरइयाउयकम्मासरीरप्पओगणामाए कम्मस्स उदएणं णेरइयाउयकम्मासरीर० जाव पओगबन्धे ।

८१ प्रश्न-तिरिक्खजोणियाउयकम्मासरीर-पुच्छा ।

८१ उत्तर-गोयमा ! माइल्लयाए, णियडिल्लयाए, अलियवयणेणं कूडतुल-कूडमाणेणं तिरिक्खजोणियाउयकम्मा० जाव पओगबन्धे ।

८२ प्रश्न-मणुस्साउयकम्मासरीर-पुच्छा ।

८२ उत्तर-गोयमा ! पगइभद्दयाए, पगइविणीययाए, साणुक्कोसणयाए, अमच्छरियाए मणुस्साउयकम्मा० जाव पओगबन्धे ।

८३ प्रश्न-देवाउयकम्मासरीर-पुच्छा ।

८३ उत्तर-गोयमा ! सरागसंजमेणं, संजमासंजमेणं, बालतवोकम्मेणं, अकामणिज्जराए देवाउयकम्मासरीर० जाव पओगबन्धे ।

कठिन शब्दार्थ-**कुणिमाहारेणं**-कुणिम अर्थात् मांस खाने से, **माइल्लयाए**-माया करने से, **णियडिल्लयाए**-गूढ़ माया (कपट) करने से, **अलियवयणेणं**-झूठ बोलने से, **कूडतुलकूडमाणेणं**-खोटे तोल-नाप करने से, **पगइभद्दयाए**-प्रकृति की भद्रता से, **पगइविणीययाए**-स्वभाव से विनीत होने से, **साणुक्कोसणयाए**-दयालुता से, **अमच्छरियाए**-मात्सर्य रहित होने से, **संजमासंजमेणं**-श्रावक व्रत का पालन करने से, **अकामणिज्जराए**-मिथ्यात्व युक्त निर्जरा से, **बालतवोकम्मेणं**-अज्ञान तप-कर्म से ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ-८० प्रश्न-हे भगवन् ! नरकायुष्य कार्मण-शरीर-प्रयोग-बंध किस कर्म के उदय से होता है ?

८० उत्तर-हे गौतम ! महारम्भ से, महापरिग्रह से, मांसाहार करने से, पंचेन्द्रिय जीवों का वध करने से और नरकायुष्य कार्मण शरीर-प्रयोग नाम-कर्म के उदय से नरकायुष्य कार्मण-शरीर प्रयोग-बंध होता है ।

८१ प्रश्न-हे भगवन् ! तिर्यंचयोनिक-आयुष्य कार्मण-शरीर प्रयोग-बंध किस कर्म के उदय से होता है ?

८१ उत्तर-हे गौतम ! माया करने से, गूढ माया करने से, झूठ बोलने से, खोटा तोल खोटा माप करने से और तिर्यंच-योनिक आयुष्य कार्मण-शरीर प्रयोग-नाम कर्म उदय से तिर्यंचयोनिक आयुष्य कार्मण-शरीर प्रयोगबन्ध होता है ।

८२ प्रश्न-हे भगवन् ! मनुष्यायुष्य कार्मण-शरीर प्रयोगबंध किस कर्म के उदय से होता है ?

८२ उत्तर-हे गौतम ! प्रकृति की भद्रता से, प्रकृति की विनीतता से, दयालुता से, अमत्सरभाव से और मनुष्यायुष्य कार्मणशरीर प्रयोग नामकर्म के उदय से मनुष्यायुष्य कार्मणशरीर प्रयोगबन्ध होता है ।

८३ प्रश्न-हे भगवन् ! देव आयुष्य कार्मणशरीर प्रयोगबंध किस कर्म के उदय से होता है ?

८३ उत्तर-हे गौतम ! सरागसंयम से, संयमासंयम (देश विरति) से, अज्ञान तप करने से, अकामनिर्जरा से और देवायुष्य कार्मण शरीर-प्रयोग नाम-कर्म के उदय से देवायुष्य कार्मण शरीर प्रयोगबन्ध होता है ।

८४ प्रश्न-सुभणामकम्मासरीर-पुच्छा ?

८४ उत्तर-गोयमा काउज्जुययाए, भावुज्जुययाए, भासुज्जुययाए, अविसंवायणजोगेणं सुभणामकम्मासरीर० जाव पओगबंधे ।

८५ प्रश्न-असुभणामकम्मासरीर-पुच्छा ?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

८५ उत्तर—गोयमा ! कायअणुज्जुययाए, जाव विसंवायणा-जोगेणं असुभणामकम्मासरीर० जाव पओगबन्धे ।

कठिन शब्दार्थ—काउज्जुयाए—काया (शरीर) की सरलता से, कायअणुज्जुययाए—काया की वक्रता से ।

भावार्थ—८४ प्रश्न—हे भगवन् ! शुभनाम कार्मण शरीर प्रयोग-बंध किस कर्म के उदय से होता है ?

८४ उत्तर—हे गौतम ! काया की सरलता से, भाव की सरलता से, भाषा की सरलता से और अविसंवादन योग से तथा शुभनाम कार्मण-शरीर-प्रयोग नामकर्म के उदय से शुभनाम कार्मण-शरीर प्रयोग बंध होता है ।

८५ प्रश्न—हे भगवन् ! अशुभ नाम कार्मण शरीर प्रयोग-बन्ध किस कर्म के उदय से होता है ?

८५ उत्तर—हे गौतम ! काया की वक्रता से, भाव की वक्रता से, भाषा की वक्रता से, विसंवादन योग से और अशुभनाम कार्मण-शरीर-प्रयोग नामकर्म के उदय से अशुभनाम कार्मण शरीर प्रयोग-बंध होता है ।

८६ प्रश्न—उच्चागोयकम्मासरीर—पुच्छा ?

८६ उत्तर—गोयमा ! जाइअमएणं, कुलअमएणं, बलअमएणं, रूवअमएणं, तवअमएणं, सुयअमएणं, लाभअमएणं, इस्सरियअमएणं, उच्चागोयकम्मासरीर० जाव पओगबंधे ।

८७ प्रश्न—णीयागोयकम्मासरीर—पुच्छा ।

८७ उत्तर—गोयमा ! जाइमएणं, कुलमएणं, बलमएणं जाव इस्सरियमएणं, णीयागोयकम्मासरीर० जाव पओगबन्धे ।

कठिन शब्दार्थ—जाइअमएणं—जाति का मद नहीं करनेसे, इस्सरियअमएणं—ऐश्वर्य का मद नहीं करने से ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ-८६ प्रश्न-हे भगवन् ! उच्च गोत्र कार्मण-शरीर प्रयोग-बंध किस कर्म के उदय से होता है ?

८६ उत्तर-हे गौतम ! जाति-मद, कुल-मद, बलमद, रूपमद, तपमद, श्रुतमद, लाभमद और ऐश्वर्यमद, ये आठ मद न करने से तथा उच्चगोत्र कार्मण-शरीरप्रयोग नाम-कर्म के उदय से उच्चगोत्र कार्मणशरीर प्रयोगबन्ध होता है।

८७ प्रश्न--हे भगवन् ! नीचगोत्र कार्मणशरीर प्रयोग-बन्ध किस कर्म के उदय से होता है ?

८७ उत्तर-हे गौतम ! जातिमद, कुलमद, बलमद यावत् ऐश्वर्यमद-- ये आठ मद करने से तथा नीचगोत्र कार्मण-शरीर-प्रयोग नामकर्म के उदय से नीचगोत्र कार्मण-शरीर बन्धता है।

८८ प्रश्न-अंतराइयकम्मासरीर--पुच्छा ।

८८ उत्तर-गोयमा ! दाणंतराएणं, लाभंतराएणं, भोगंतराएणं, उवभोगंतराएणं वीरियंतराएणं अंतराइयकम्मासरीरप्पओगणामाए कम्मस्स उदएणं अंतराइयकम्मासरीरप्पओगबन्धे ।

भावार्थ-८८ प्रश्न--हे भगवन् ! अन्तराय कार्मण-शरीर प्रयोग-बंध किस कर्म के उदय से होता है ?

८८ उत्तर--हे गौतम ! दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय और वीर्यान्तराय से तथा अन्तराय-कार्मण-शरीर प्रयोग नामकर्म के उदय से अन्तराय-कार्मण-शरीर-प्रयोग-बन्ध होता है।

८९ प्रश्न-णाणावरणिज्ज-कम्मा-सरीरप्पओगबन्धे णं भंते ! किं देसबन्धे, सव्वबन्धे ?

८९ उत्तर-गोयमा ! देसबन्धे, णो सव्वबन्धे, एवं जाव अंत-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

राइयं।

९० प्रश्न--णाणावरणिज्जकम्मासरीरप्पओगबंधे णं भंते ! कालओ केवच्चिरं होइ ?

९० उत्तर--गोयमा ! दुविहे पण्णत्ते, तं जहा--अणाईए एवं जहा तेयगस्स संचिट्ठणा तहेव, एवं जाव अंतराइयस्स ।

९१ प्रश्न--णाणावरणिज्जकम्मासरीरप्पओग बंधन्तरं णं भंते ! कालओ केवच्चिरं होइ ?

९१ उत्तर--गोयमा ! अणाईयस्स, एवं जहा तेयगसरीरस्स अंतरं तहेव, एवं जाव अंतराइयस्स ।

९२ प्रश्न--एएसि णं भंते ! जीवाणं णाणावरणिज्जस्स कम्मस्स देसबन्धगाणं, अबन्धगाण य कयरे कयरे० जाव ?

९२ उत्तर--अप्पाबहुगं जहा तेयगस्स, एवं आउयवज्जं जाव अंतराइयस्स ।

भावार्थ--८९ प्रश्न--हे भगवन् ! ज्ञानावरणीय कार्मण-शरीर प्रयोग बंध देश-बंध है या सर्व-बंध ?

८९ उत्तर--हे गौतम ! देशबंध है, सर्व-बंध नहीं । इसी प्रकार यावत् अन्तराय-कार्मण-शरीर प्रयोग-बंध तक जानना चाहिये ।

९० प्रश्न--हे भगवन् ! ज्ञानावरणीय-कार्मण-शरीर प्रयोग-बंध कितने काल तक रहता है ?

९० उत्तर--हे गौतम ! ज्ञानावरणीय-कार्मण-शरीर-प्रयोग-बंध दो प्रकार का कहा गया है । यथा--१ अनादिअपर्यवसित और अनादिसपर्यवसित । जिस

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रकार तैजस् शरीर का स्थितिकाल कहा, उसी प्रकार यहाँ भी कहना चाहिये। यावत् अन्तराय कर्म के स्थिति-काल तक कहना चाहिये।

९१ प्रश्न—हे भगवन् ! ज्ञानावरणीय कार्मण-शरीर प्रयोग-बंध का अन्तर कितने काल का होता है।

९१ उत्तर—हे गौतम ! अनादिअपर्यवसित और अनादिसपर्यवसित। ज्ञानावरणीय कार्मण-शरीर प्रयोगबंध का अन्तर नहीं होता। जिस प्रकार तैजस्-शरीर प्रयोग-बंध के अन्तर के विषय में कहा गया, उसी प्रकार यहाँ भी समझना चाहिये, यावत् अन्तराय कार्मण-शरीर प्रयोग-बंध के अन्तर तक जानना चाहिये।

९२ प्रश्न—हे भगवन् ! ज्ञानावरणीय कर्म के देश-बंधक और अबंधक जीवों में कौन किससे कम, अधिक, तुल्य या विशेषाधिक हैं ?

९२ उत्तर—हे गौतम ! जिस प्रकार तैजस्-शरीर का अल्पबहुत्व कहा, उसी प्रकार कहना चाहिये। इसी प्रकार आयुष्य-कर्म के सिवाय यावत् अन्तरायकर्म तक कहना चाहिये।

९३ प्रश्न—आउयस्स पुच्छा।

९३ उत्तर—गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा आउयस्स कम्मस्स देसबंधगा, अबंधगा संखेज्जगुणा।

भावार्थ—९३ प्रश्न—हे भगवन् ! आयुष्यकर्म के देश-बंधक और अबंधक जीवों में कौन किससे कम, अधिक, तुल्य या विशेषाधिक है।

९३ उत्तर—हे गौतम ! आयुष्य-कर्म के देशबंधक जीव, सब से थोड़े हैं, उससे अबंधक जीव संख्यात गुण है।

विवेचन—आठ प्रकार के कर्मों के पिण्ड को कार्मणशरीर कहते हैं। उसके ज्ञानावरणीय आदि आठ भेद कहे गये हैं। ज्ञानावरणीय और दर्शनावरणीय कर्म बन्ध के

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जो कारण बतलाये गये हैं, उनमें ज्ञान और ज्ञानीपुरुष तथा दर्शन और दर्शनीपुरुष की प्रत्यनीकता (प्रतिकूलता) आदि समझना चाहिये। अर्थात् ज्ञान और ज्ञानी की प्रत्यनीकता आदि कारणों से ज्ञानावरणीय कर्म बँधता है। इसी प्रकार दर्शन और दर्शनी पुरुष की प्रत्यनीकता आदि से दर्शनावरणीय कर्म बँधता है। ज्ञान प्रत्यनीकता आदि छह कारणों से ज्ञानावरणीय कर्म बँधता है और दर्शन प्रत्यनीकता आदि छह कारणों से दर्शनावरणीय कर्म बँधता है। साता-वेदनीय कर्म दस प्रकार से और असातावेदनीय कर्म बारह प्रकार से बंधता है। मोहनीय कर्म, तीव्र क्रोधादि छह कारणों से बंधता है। आयुष्य कर्म के चार भेद हैं। उनमें से नरकायु महारम्भ, महापरिग्रह पंचेन्द्रिय वध और मांसाहार-इन चार कारणों से बँधता है। माया करने से, गूढ़ माया करने से, असत्य बोलने से और खोटा तोल-माप करने से तिर्यञ्चायु का बंध होता है। प्रकृति की भद्रता से, प्रकृति की विनीतता से, दया-भाव रखने से और अमत्सर-भाव से मनुष्यायु का बन्ध होता है। सराग-संयम, देशसंयम, बालतप और अकाम-निर्जरा से देवायु का बन्ध होता है। शुभ नाम-कर्म चार कारणों से और अशुभ नाम-कर्म चार कारणों से बँधता है। जाति, कुल, बल आदि आठ बातों का मद करने से नीचगोत्र बँधता है। और इन आठ बातों का मद नहीं करने से उच्च गोत्र बँधता है। दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य में अन्तराय डालने से अन्तराय कर्म बँधता है।

ज्ञानावरणीय आदि आठों कर्मों का देशबन्ध होता है, सर्वबन्ध नहीं। देशबन्ध के अनादि अपर्यवसित और अनादि सपर्यवसित ये दो भेद हैं। इन दोनों का अन्तर नहीं है।

अल्प-बहुत्वः-आयु कर्म को छोड़कर शेष ज्ञानावरणीय आदि कर्मों के अबन्धक जीव सब से थोड़े हैं। और उनसे देशबन्धक अनन्त गुण हैं। आयुष्य कर्म के देशबन्धक सब से थोड़े हैं और अबन्धक उनसे संख्यात गुण है। क्योंकि आयुष्य बन्ध का समय बहुत थोड़ा है और अबन्ध का समय उससे बहुत गुणाधिक है।

शंका-आयु-बन्ध समय की अपेक्षा अबंध का समय बहुत गुण अधिक है, तो फिर आयुष्य-कर्म के अबंधक असंख्यात गुण क्यों नहीं कहे गये? क्योंकि अबंध का समय असंख्यात जीवितों अपेक्षा असंख्यात गुण है।

समाधान-उपरोक्त सूत्र अनन्त-कायिक जीवों की अपेक्षा है। वहाँ अनन्त-कायिक जीव संख्यातजीवित ही हैं, उनमें आयुष्य के अबंधक देश-बंधकों से संख्यात गुण ही होते

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

है। यद्यपि सिद्ध जीव–जो आयुष्य के अबंधक हैं, को भी यदि इसमें सम्मिलित कर लिया जाय, तो भी वे देश-बंधकों से संख्यात गुण ही होते हैं। क्योंकि सिद्ध आदि अबंधक अनन्त जीव भी अनन्तकायिक आयु-बन्धक जीवों के अनन्तवें भाग ही होते हैं।

शंका–जब जीव आयुष्य-कर्म के अबंधक रहते हैं और फिर जिस समय में बंधक होते हैं, उस समय में उन्हें सर्व-बन्धक क्यों न कहा जाय ?

समाधान–जिस प्रकार औदारिक-शरीर को बांधते समय जीव प्रथम समय में शरीर योग्य सब पुद्गलों को एक साथ खींचता है, उस प्रकार अविद्यमान सारी आयु प्रकृति को नहीं बांधता, इसलिये आयुकर्म का सर्व-बन्ध नहीं होता।

शरीर बन्ध का पारस्परिक सम्बन्ध

१४ प्रश्न–जस्स णं भंते ! ओरालियसरीरस्स सव्वबन्धे से णं भंते ! वेउव्वियसरीरस्स किं बन्धए, अबन्धए ?

१४ उत्तर–गोयमा ! णो बन्धए, अबन्धए।

१५ प्रश्न–आहारगसरीरस्स किं बन्धए अबन्धए ?

१५ उत्तर–गोयमा ! णो बन्धए अबन्धए।

१६ प्रश्न–तेयासरीरस्स किं बंधए, अबन्धए ?

१६ उत्तर–गोयमा ! बंधए, णो अबन्धए।

१७ प्रश्न–जइ बन्धए किं देसबंधए सव्वबंधए ?

१७ उत्तर–गोयमा ! देसबन्धए, णो सव्वबन्धए।

१८ प्रश्न–कम्मासरीरस्स किं बंधए, अबंधए ?

१८ उत्तर–जहेव तेयगस्स, जाव देसबंधए, णो सव्वबंधए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

९९ प्रश्न-जस्स णं भंते ! ओरालियसरीरस्स देसबंधे, से णं भंते ! वेउव्वियसरीरस्स किं बंधए, अबंधए ?

९९ उत्तर-गोयमा ! णो बंधए, अबन्धए। एवं जहेव सव्वबंधेणं भणियं तहेव देसबंधेण वि भाणियव्वं जाव कम्मगस्स।

१०० प्रश्न-जस्स णं भंते ! वेउव्वियसरीरस्स सव्वबंधे से णं भंते ! ओरालियसरीरस्स किं बंधए, अबन्धए ?

१०० उत्तर-गोयमा ! णो बन्धए, अबंधए। आहारगसरीरस्स एवं चेव, तेयगस्स कम्मगस्स य जहेव ओरालिएणं समं भणियं तहेव भाणियव्वं जाव देसबन्धए, णो सव्वबन्धए।

१०१ प्रश्न-जस्स णं भंते ! वेउव्वियसरीरस्स देसबंधे से णं भंते ! ओरालियसरीरस्स किं बन्धए, अबंधए ?

१०१ उत्तर-गोयमा ! णो बन्धए, अबंधए। एवं जहेव सव्व-बन्धेणं भणियं तहेव देसबन्धेण वि भाणियव्वं जाव कम्मगस्स।

१०२ प्रश्न-जस्स णं भंते ! आहारगसरीरस्स सव्वबन्धे से णं भंते ! ओरालियसरीरस्स किं बन्धए, अबन्धए ?

१०२ उत्तर-गोयमा ! णो बन्धए, अबन्धए। एवं वेउव्वियस्स वि, तेया-कम्माणं जहेव ओरालिएणं समं भणियं तहेव भाणियव्वं।

१०३ प्रश्न-जस्स णं भंते ! आहारगसरीरस्स देसबन्धे से णं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भंते ! ओरालियसरीरस्स० ?

१०३ उत्तर-एवं जहा आहारगस्स सव्वबन्धेणं भणियं तहा देसबन्धेण वि भाणियव्वं, जाव कम्मगस्स ।

१०४ प्रश्न-जस्स णं भंते ! तेयासरीरस्स देसबन्धे से णं भंते ! ओरालियसरीरस्स किं बन्धए, अबन्धए ?

१०४ उत्तर-गोयमा ! बन्धए वा, अबन्धए वा ?

१०५ प्रश्न-जइ बन्धए किं देसबन्धए, सव्वबन्धए ?

१०५ उत्तर-गोयमा ! देसबन्धए वा, सव्वबन्धए वा ।

१०६ प्रश्न-वेउव्वियसरीरस्स किं बंधए, अबन्धए ?

१०६ उत्तर-एवं चेव, एवं आहारगसरीरस्स वि ।

१०७ प्रश्न-कम्मगसरीरस्स किं बन्धए, अबन्धए ?

१०७ उत्तर-गोयमा ! बन्धए, णो अबन्धए ?

१०८ प्रश्न-जइ बन्धए किं देसबन्धए, सव्वबन्धए ?

१०८ उत्तर-गोयमा ! देसबन्धए, णो सव्वबन्धए ।

१०९ प्रश्न-जस्स णं भंते ! कम्मगसरीरस्स देसबंधे से णं भंते ! ओरालियसरीरस्स० ?

१०९ उत्तर-जहा तेयगस्स वत्तव्वया भणिया तहा कम्मगस्स वि भाणियव्वा, जाव तेयासरीरस्स जाव देसबंधए, णो सव्वबंधए ।

कठिन शब्दार्थ-वत्तव्वया-वक्तव्यता (कथन) जहेव-जिस प्रकार, तहेव-उसी प्रकार।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ-९४ प्रश्न-हे भगवन् ! जिस जीव के औदारिक शरीर का सर्व-बंध है, क्या वह जीव वैक्रिय-शरीर का बन्धक है, या अबन्धक है ?

९४ उत्तर-हे गौतम ! वह बन्धक नहीं, अबन्धक है।

९५ प्रश्न-हे भगवन् ! औदारिक-शरीर का सर्व-बन्धक जीव, आहारक-शरीर का बन्धक है, या अबन्धक ?

९५ उत्तर-हे गौतम ! वह बन्धक नहीं, अबन्धक है।

९६ प्रश्न-हे भगवन् ! औदारिक-शरीर का सर्व-बन्धक जीव, तैजस्-शरीर का बन्धक है, या अबन्धक ?

९६ उत्तर-हे गौतम ! वह बंधक है, अबंधक नहीं।

९७ प्रश्न-हे भगवन् ! यदि वह तैजस्-शरीर का बन्धक है, तो क्या देश-बन्धक है, या सर्व-बन्धक है ?

९७ उत्तर-हे गौतम ! वह देश-बन्धक है, सर्व-बन्धक नहीं।

९८ प्रश्न-हे भगवन् ! औदारिक-शरीर का सर्व-बन्धक जीव, कार्मण-शरीर का बन्धक है, या अबन्धक ?

९८ उत्तर-हे गौतम ! तैजस्-शरीर के समान वह यावत् कार्मण-शरीर का देश-बन्धक है, सर्व-बन्धक नहीं।

९९ प्रश्न-हे भगवन् ! औदारिक-शरीर का देश-बन्धक जीव, वैक्रिय शरीर का बन्धक है, या अबन्धक है ?

९९ उत्तर-हे गौतम ! वह बन्धक नहीं, अबन्धक है। जिस प्रकार सर्व-बन्धक का कहा, उसी प्रकार देश-बन्धक के विषय में भी यावत् कार्मण शरीर तक कहना चाहिये।

१०० प्रश्न-हे भगवन् ! वैक्रिय-शरीर का सर्व-बन्धक जीव, औदारिक-शरीर का बन्धक है, या अबन्धक ?

१०० उत्तर-हे गौतम ! वह बंधक नहीं, अबंधक है। इसी प्रकार आहारक-शरीर के विषय में भी जानना चाहिये। तैजस् और कार्मण

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शरीर के विषय में जिस प्रकार औदारिक-शरीर के साथ कथन किया है, उसी प्रकार वैक्रिय-शरीर के साथ भी कहना चाहिये यावत् वह देश-बन्धक है, सर्व-बन्धक नहीं ।

१०१ प्रश्न-हे भगवन् ! वैक्रिय शरीर का देश-बन्धक जीव औदारिक-शरीर का बन्धक है या अबन्धक ?

१०१ उत्तर-हे गौतम ! वह बन्धक नहीं, अबन्धक है । जिस प्रकार वैक्रिय शरीर के सर्व-बन्ध के विषय में कहा, उसी प्रकार देश बन्ध के विषय में भी यावत् कार्मण शरीर तक कहना चाहिये ।

१०२ प्रश्न-हे भगवन् ! आहारक शरीर का सर्व बन्धक जीव, औदारिक-शरीर का बन्धक है या अबन्धक ?

१०२ उत्तर-हे गौतम ! वह बन्धक नहीं, अबन्धक है । इसी प्रकार वैक्रिय-शरीर के विषय में भी जानना चाहिये । तैजस् और कार्मण-शरीर के के विषय में औदारिक-शरीर के विषय में कहा, उसी प्रकार आहारक-शरीर के विषय में भी कहना चाहिये ।

१०३ प्रश्न-हे भगवन् ! आहारक-शरीर का देश-बन्धक जीव, क्या औदारिक-शरीर का बन्धक है या अबन्धक ?

१०३ उत्तर-हे गौतम ! जिस प्रकार आहारक-शरीर के सर्व-बन्ध के विषय में कहा, उसी प्रकार देशबंधक के विषय में भी कहना चाहिये यावत् कार्मणशरीर तक कहना चाहिये ।

१०४ प्रश्न-हे भगवन् ! तैजस्-शरीर का देश-बन्धक जीव, औदारिक-शरीर का बन्धक है या अबन्धक ?

१०४ उत्तर-हे गौतम ! वह बन्धक भी है और अबन्धक भी ।

१०५ प्रश्न-हे भगवन् ! यदि वह औदारिक-शरीर का बंधक है, तो देश-बंधक है या सर्व-बंधक ?

१०५ उत्तर-हे गौतम ! वह देशबंधक भी है और सर्वबंधक भी ।

१०६ प्रश्न-हे भगवन् ! तैजस्-शरीर का बंधक जीव, वैक्रिय-शरीर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

का बन्धक है या अबन्धक ?

१०६ उत्तर–हे गौतम ! पूर्व कथनानुसार जानना चाहिये । इसी प्रकार आहारक-शरीर के विषय में भी जानना चाहिये ।

१०७ प्रश्न–हे भगवन् ! तैजस्-शरीर का बंधक जीव, कार्मण-शरीर का बंधक है या अबंधक ?

१०७ उत्तर–हे गौतम ! वह बंधक है, अबंधक नहीं ।

१०८ प्रश्न–हे भगवन् ! यदि वह कार्मण-शरीर का बंधक है, तो देश-बंधक है या सर्व-बन्धक ?

१०८ उत्तर–हे गौतम ! वह देश-बन्धक है, सर्व-बन्धक नहीं ।

१०९ प्रश्न–हे भगवन् ! कार्मण-शरीर का देश-बन्धक जीव, औदारिक शरीर का बन्धक है या अबन्धक ?

१०९ उत्तर—हे गौतम ! जिस प्रकार तैजस्-शरीर का कथन किया है, उसी प्रकार कार्मण-शरीर का भी कहना चाहिये यावत् वह तैजस् शरीर का देश-बन्धक है, सर्व-बन्धक नहीं ।

विवेचन—औदारिक और वैक्रिय, इन दोनों शरीरों का एक साथ बंध नहीं होता, इसी प्रकार औदारिक और आहारक, इन दोनों शरीरों का भी एक साथ बंध नहीं होता । इसलिये औदारिक-शरीर-बंधक जीव, वैक्रिय और आहारक का अबंधक होता है । औदारिक-शरीर के साथ तैजस् और कार्मण का विरह कभी नहीं होता । इसलिये वह इनका देश-बंधक होता है । इन दोनों शरीरों का सर्वबंध तो होता ही नहीं ।

तैजस्-शरीर का देश-बंधक जीव, औदारिक-शरीर का बंधक भी होता है और अबंधक भी । इसका तात्पर्य यह है कि विग्रह-गति में वह अबंधक होता है तथा वैक्रिय में हो या आहारक में हो तब भी वह औदारिक का अबंधक ही रहता है और शेष समय में बंधक होता है । उत्पत्ति के प्रथम समय में सर्व-बंधक होता है और द्वितीय आदि समयों में देश-बंधक होता है । इसी प्रकार कार्मण-शरीर का भी समझना चाहिये ।

शेष शरीरों के साथ बंधक, अबंधक आदि का कथन सुगम है, उसे स्वयं घटित कर लेना चाहिये ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बंधकों का अल्पबहुत्व

११० प्रश्न—एएसि णं भंते ! सव्वजीवाणं ओरालिय-वेउव्विय-आहारग-तेया-कम्मासरीरगाणं देसबंधगाणं सव्वबंधगाणं अबंधगाण य कयरे कयरेहिंतो जाव विसेसाहिया वा ?

११० उत्तर—गोयमा ! सव्वत्थोवा जीवा आहारगसरीरस्स सव्वबंधगा, तस्स चेव देसबंधगा संखेज्जगुणा। वेउव्वियसरीरस्स सव्वबन्धगा असंखेज्जगुणा, तस्स चेव देसबन्धगा असंखेज्जगुणा। तेया-कम्मगाणं अबन्धगा अणंतगुणा दोण्ह वि तुल्ला। ओरालिय-सरीरस्स सव्वबन्धगा अणंतगुणा, तस्स चेव अबन्धगा विसेसाहिया, तस्स चेव देसबन्धगा असंखेज्जगुणा। तेया-कम्मगाणं देसबन्धगा विसेसाहिया, वेउव्वियसरीरस्स अबन्धगा विसेसाहिया, आहारग-सरीरस्स अबन्धगा विसेसाहिया।

❀ सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति ❀

॥ अट्ठमसए नवमो उद्देसो समत्तो ॥

कठिन शब्दार्थ—दोण्ह—दोनों का।

भावार्थ—११० प्रश्न—हे भगवन् ! औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस् और कार्मण शरीर के देशबन्धक, सर्वबन्धक और अबन्धक—इन सब जीवों में कौन किससे कम, अधिक, तुल्य या विशेषाधिक है ?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

११० उत्तर-हे गौतम ! (१)सबसे थोडे जीव, आहारक-शरीर के सर्व बन्धक हैं। (२) उनसे आहारक-शरीर के देश बन्धक संख्यात गुण हैं। (३) उनसे वैक्रिय शरीर के सर्व बन्धक असंख्यात गुण हैं। (४) उनसे वैक्रिय-शरीर के देशबन्धक असंख्यात गुण हैं। (५) उनसे तैजस् और कार्मण-शरीर के अबन्धक जीव अनन्त गुण हैं और ये दोनों तुल्य हैं। (६) उनसे औदारिक-शरीर के सर्व-बंधक जीव अनन्त गुण हैं। (७) उनसे औदारिक-शरीर के अबंधक जीव विशेषाधिक हैं। (८) उनसे औदारिक-शरीर के देशबंधक जीव असंख्यात गुण हैं। (९) उनसे तैजस् और कार्मण-शरीर के देश-बंधक जीव विशेषाधिक हैं। (१०) उनसे वैक्रिय शरीर के अबन्धक जीव विशेषाधिक हैं। (११) उनसे आहारक-शरीर के अबन्धक जीव विशेषाधिक हैं।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है—ऐसा कहकर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं।

विवेचन—आहारक-शरीर के सर्व-बंधक सबसे थोड़े हैं। इसका कारण यह है कि आहारक-शरीर चौदह पूर्वधारी के ही होता है और वे भी कोई प्रयोजन उपस्थित होने पर ही आहारक-शरीर धारण करते हैं। उसमें भी सर्व-बंध का काल मात्र एक समय है, इसलिए वे सबसे थोड़े हैं। उनसे आहारक-शरीर के देश-बंधक संख्यात गुण हैं, क्योंकि उसके देश-बंध का काल बहुत है। उनसे वैक्रिय-शरीर के सर्व-बंधक असंख्यात गुण हैं, क्योंकि आहारक शरीरधारी जीवों से वैक्रिय-शरीरधारी असंख्यात गुण हैं। उनसे वैक्रिय-शरीर के देश-बंधक असंख्यात गुण हैं, क्योंकि सर्व-बंध के काल की अपेक्षा देश-बंध का काल असंख्यात गुण है। अथवा प्रतिपद्यमान सर्व-बंधक होते हैं और पूर्वप्रतिपन्न देश-बंधक होते है। प्रतिपद्यमान की अपेक्षा पूर्वप्रतिपन्न असंख्यात गुण है। अतः वैक्रिय-शरीर के सर्व-बंधकों से देश-बंधक असंख्यात गुण है। उनसे तैजस् और कार्मण के अबंधक अनन्त गुण है, क्योंकि तैजस् और कार्मण के अबंधक सिद्ध भगवान् हैं, वे वनस्पतिकायिक जीवों को छोड़कर शेष सभी संसारी जीवों से अनन्तगुण हैं। उनसे औदारिक-शरीर के सर्व-बंधक जीव अनन्त गुण है। क्योंकि इनमें वनस्पतिकायिक जीव भी सम्मिलित हैं। उनसे औदारिक-शरीर के अबंधक विशेषाधिक हैं। क्योंकि ये विग्रह-गति में रहे हुए जीव और सिद्ध आदि जीव हैं। यहाँ सिद्धादि जीव अति अल्प होने से विवक्षा नहीं की गई। विग्रह-गति-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

समापन्नकजीव, सर्व-बंधकों से बहुत हैं। इसलिये अबन्धक जीव विशेषाधिक हैं। उनसे देशबंध का काल असंख्यात गुण है। उनसे तैजस् और कार्मण-शरीर के देश-बंधक विशेषाधिक हैं। क्योंकि सभी संसारी जीव तैजस् और कार्मण के देशबंधक होते हैं, इनमें विग्रहगति–समापन्नक जीव, औदारिक सर्व-बंधक जीव और वैक्रिय आदि बंधक जीव सम्मिलित हैं। अतः औदारिक देश-बंधकों से ये विशेषाधिक कहे गये हैं। उनसे वैक्रिय-शरीर के अबन्धक विशेषाधिक हैं, क्योंकि वैक्रिय के बन्धक प्रायः देव और नारक जीव ही हैं। शेष सभी संसारी जीव और सिद्ध भगवान् वैक्रिय के अबंधक हैं, इनमें सिद्धजीव सम्मिलित हैं। अतः वे तैजसादि देशबंधकों से अधिक हैं। इसलिये वैक्रिय-शरीर के अबंधक विशेषाधिक कहे गये हैं। उनसे आहारक-शरीर के अबंधक विशेषाधिक हैं, क्योंकि आहारक-शरीर तो केवल मनुष्यों के ही होता है और वैक्रिय-शरीर तो मनुष्यों के अतिरिक्त देव, नारक और तिर्यञ्च के भी होता है। इसलिये वैक्रिय-बंधकों की अपेक्षा आहारक-बन्धक जीव थोड़े हैं। इसी प्रकार वैक्रिय अबंधकों से आहारक अबंधक विशेषाधिक हैं।

॥ इति आठवें शतक का नौवां उद्देशक समाप्त ॥

शतक ८ उद्देशक १०

श्रुत और शील के आराधक

१ प्रश्न–रायगिहे णयरे जाव एवं वयासी, अण्णउत्थिया णं भंते ! एवं आइक्खंति, जाव एवं परूवेंति–"एवं खलु–१ सीलं सेयं, २ सुयं सेयं, ३ सुयं सेयं सीलं सेयं;" से कहमेयं भंते ! एवं ?

१ उत्तर-गोयमा ! जं णं ते अण्णउत्थिया एवं आइक्खंति, जाव जे ते एवं आहंसु, मिच्छा ते एवं आहंसु, अहं पुण गोयमा ! एवं आइक्खामि, जाव परूवेमि-एवं खलु मए चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, तं जहा-१ सीलसंपण्णे णामं एगे णो सुयसंपण्णे, २ सुयसंपण्णे णामं एगे णो सीलसंपण्णे, ३ एगे सीलसंपण्णे वि सुयसंपण्णे वि, ४ एगे णो सीलसंपण्णे णो सुयसंपण्णे। तत्थ णं जे से पढमे पुरिसजाए से णं पुरिसे सीलवं असुयवं; उवरए, अविण्णायधम्मे; एस णं गोयमा ! मए पुरिसे देसाराहए पण्णत्ते। तत्थ णं जे से दोच्चे पुरिसजाए से णं पुरिसे असीलवं सुयवं, अणुवरए, विण्णायधम्मे, एस णं गोयमा ! मए पुरिसे देसविराहए पण्णत्ते। तत्थ णं जे से तच्चे पुरिसजाए से णं पुरिसे सीलवं सुयवं; उवरए विण्णायधम्मे, एस णं गोयमा ! मए पुरिसे सव्वाराहए पण्णत्ते। तत्थ णं जे से चउत्थे पुरिसजाए से णं पुरिसे असीलवं असुयवं, अणुवरए, अविण्णायधम्मे; एस णं गोयमा ! मए पुरिसे सव्वविराहए पण्णत्ते।

कठिन शब्दार्थ---**आइक्खंति**---कहते हैं, **सीलं सेयं**---शील ही श्रेय (अच्छा) है। **सुयं**-श्रुत, **कहमेयं**---किस प्रकार, **आहंसु**---कहते हैं, **पुरिसजाए**---पुरुषों के प्रकार, **सीलवं**--शीलवान्, **असुयवं**---अश्रुतवान्, **उवरए**---उपरत (निवृत्त) **अविण्णायधम्मे**---धर्म नहीं जानता, **देसाराहए**---देश आराधक, **अणुवरए**---अनुपरत (अनिवृत्त), **विण्णायधम्मे**---धर्म का ज्ञाता, **देसविराहए**---देश विराधक, **सव्वाराहए**---सर्व आराधक।

भावार्थ---**प्रश्न-१** राजगृह नगर में यावत् गौतम स्वामी ने इस प्रकार

पूछा—हे भगवन् ! अन्यतीर्थिक इस प्रकार कहते हैं यावत् प्ररूपणा करते हैं—१ शील ही श्रेष्ठ है, २ श्रुत ही श्रेष्ठ है ३ (शील निरपेक्ष) श्रुत ही श्रेष्ठ है अथवा (श्रुतनिरपेक्ष) शील ही श्रेष्ठ है। तो हे भगवन् ! यह किस प्रकार है ?

१ उत्तर—हे गौतम ! अन्यतीर्थिकों ने जो इस प्रकार कहा है, वह मिथ्या कहा है। हे गौतम ! मैं इस प्रकार कहता हूं यावत् प्ररूपणा करता हूं। मैंने चार प्रकार के पुरुष कहे हैं, यथा–

१ कोई शील सम्पन्न है, परन्तु श्रुत सम्पन्न नहीं है।

२ कोई पुरुष श्रुत सम्पन्न है, परंतु शील सम्पन्न नहीं है।

३ कोई पुरुष शील सम्पन्न भी है और श्रुत सम्पन्न भी है।

४ कोई पुरुष शील सम्पन्न भी नहीं और श्रुत सम्पन्न भी नहीं।

(१) इनमें से जो प्रथम प्रकार का पुरुष है, वह शीलवान् है, परन्तु श्रुतवान् नहीं। वह उपरत (पापादि से निवृत्त) है, परन्तु धर्म को नहीं जानता। हे गौतम ! इस पुरुष को मैंने 'देश-आराधक' कहा है।

(२) जो दूसरे प्रकार का पुरुष है, वह शीलवान् नहीं परन्तु श्रुतवान् है। वह पुरुष अनुपरत (पापादि से अनिवृत्त) है, परन्तु धर्म को जानता है। हे गौतम ! उस पुरुष को मैने 'देश-विराधक' कहा है।

(३) जो तीसरा पुरुष है, वह शीलवान् भी है और श्रुतवान् भी है। वह पुरुष उपरत है और धर्म को जानता है। हे गौतम ! उस पुरुष को मैंने 'सर्वाराधक' कहा है।

(४) जो चौथा पुरुष है, वह शील और श्रुत दोनों से रहित है। वह अनुपरत है और धर्म का भी ज्ञाता नहीं है। हे गौतम ! उस पुरुष को मैंने 'सर्वविराधक' कहा है।

विवेचन–सर्वज्ञ के वचनों में एकता एवं अविरुद्धता होती है, किंतु छद्मस्थों के वचनों में ऐसी बात नहीं होती। कोई किसी प्रकार की प्ररूपणा करता है, तो कोई अन्य प्रकार की। अन्यतीर्थिकों की यही दशा है। कुछ अन्यतीर्थी इस प्रकार मानते हैं कि शील (प्राणातिपातादि से विरमणरूप क्रिया) ही श्रेष्ठ है, ज्ञान का कुछ भी प्रयोजन नहीं, क्योंकि ज्ञान

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तो प्रवृत्ति रहित होता है।

कुछ अन्यतीर्थिक इस प्रकार कहते हैं कि-ज्ञान ही श्रेष्ठ है. मात्र ज्ञान से ही फल की सिद्धि होती है। ज्ञान रहित क्रियावान् को फल की सिद्धि नहीं होती। इस प्रकार वे श्रुत (ज्ञान) को ही श्रेष्ठ मानते हैं।

कितने ही अन्य-तीर्थिक परस्पर निरपेक्ष श्रुत और शील से अभीष्ट अर्थ की सिद्धि मानते हैं। इसलिये वे क्रिया रहित ज्ञान अथवा ज्ञान रहित क्रिया से अभीष्ट सिद्धि मानते हैं। श्रुत और शील, प्रत्येक पुरुष की पवित्रता का कारण है। इसलिये वे कहते हैं कि—शील श्रेष्ठ है, अथवा-श्रुत श्रेष्ठ है। इस प्रकार भिन्न-भिन्न रूप से प्ररूपणा करते हैं।

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी, गौतम स्वामी से इस प्रकार कहते हैं कि-मेरा एवं सभी सर्वज्ञों का सिद्धान्त इस प्रकार है-(१) कोई पुरुष शील सम्पन्न है, परन्तु श्रुत सम्पन्न नहीं (२) कोई पुरुष श्रुत सम्पन्न है, परन्तु शील सम्पन्न नहीं। (३) कोई शील सम्पन्न भी है और श्रुत सम्पन्न भी है। (४) कोई शील सम्पन्न भी नहीं और श्रुत सम्पन्न भी नहीं।

इन में से प्रथम भंग का स्वामी जो शील सम्पन्न है, परन्तु श्रुत सम्पन्न नहीं है, वह 'उपरत' है। वह तत्त्वों का विशेष ज्ञाता नहीं होते हुए भी स्व बुद्धि से ही पापों से निवृत्त है। गीतार्थ मुनि की नेश्राय में तप करने वाला वह अगीतार्थ पुरुष 'देशआराधक' है। अर्थात् देशत:-अंशत: मोक्ष-मार्ग की आराधना करने वाला है। यहाँ मूलपाठ में **'अविण्णायधम्मे'** पद दिया है। जिसका अर्थ है-**'न विशेषेण ज्ञात: धर्मो येन स अविज्ञातधर्मा'** अर्थात् जिसने विशेष रूप से धर्म को नहीं जाना, वह पुरुष 'अविज्ञातधर्मा' कहलाता है। तात्पर्य यह है कि प्रथम भंग का स्वामी देशआराधक पुरुष वह है, जो चारित्र की आराधना करता है, परन्तु विशेषरूप से ज्ञानवान् नहीं है। (उससे ज्ञान की आराधना नहीं होती) इस भंग का स्वामी मिथ्या-दृष्टि नहीं, किन्तु सम्यग्दृष्टि है।

दूसरे भंग का स्वामी जो शील सम्पन्न नहीं, परन्तु श्रुत सम्पन्न है, वह अनुपरत (पापादि से अनिवृत्त) है, फिर भी वह धर्म को जानता है। इसलिए वह देशविराधक कहा गया है। इस भंग का स्वामी 'अविरत सम्यग्दृष्टि' है। यह ज्ञान, दर्शन, चारित्र रूप रत्नत्रय—जो मोक्षमार्ग है, उसमें से तृतीय भाग रूप चारित्र की विराधना करता है अर्थात् प्राप्त हुए चारित्र का पालन नहीं करता, अथवा चारित्र को प्राप्त ही नहीं करता। इसलिये वह देशविराधक है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तीसरे भंग का स्वामी शील सम्पन्न भी है और श्रुतसम्पन्न भी है। वह उपरत है और धर्म को भी जानता है। अतः वह सर्वआराधक है। क्योंकि ज्ञान-दर्शन चारित्ररूप रत्नत्रय-जो मोक्ष का मार्ग है, उसकी वह सर्वथा आराधना करता है।

श्रुत शब्द से सम्यग्ज्ञान और सम्यग्दर्शन दोनों का ग्रहण किया गया है। जो मिथ्यादृष्टि पुरुष है, वह वस्तुतः विज्ञातधर्मा हो ही नहीं सकता।

चतुर्थभंग का स्वामी शीलसम्पन्न भी नहीं और श्रुतसम्पन्न भी नहीं। वह अनुपरत है और धर्म को भी नहीं जानता। वही पुरुष सर्व-विराधक है। क्योंकि सम्यग्ज्ञान, दर्शन, चारित्ररूप रत्नत्रय में से वह किसी की भी आराधना नहीं करता। इसलिए वह सर्वविराधक है।

तात्पर्य यह है कि श्रुत अर्थात् सम्यग्दर्शन युक्त ज्ञान और शील अर्थात् क्रिया, ये दोनों समुदितरूप में ही श्रेय (मोक्ष) के मार्ग हैं। सम्यग्ज्ञान युक्त क्रिया से ही अभीष्ट की सिद्धि (मोक्ष की प्राप्ति) होती है।

जघन्यादि आराधना और आराधक

२ प्रश्न-कइविहा णं भंते ! आराहणा पण्णत्ता ?

२ उत्तर-गोयमा ! तिविहा आराहणा पण्णत्ता, तं जहा-णाणाराहणा, दंसणाराहणा, चरित्ताराहणा।

३ प्रश्न-णाणाराहणा णं भंते ! कइविहा पण्णत्ता ?

३ उत्तर-गोयमा ! तिविहा पण्णत्ता, तं जहा-उक्कोसिया, मज्झिमा, जहण्णा।

४ प्रश्न-दंसणाराहणा णं भंते ! कइविहा ० ?

४ उत्तर-एवं चेव तिविहा वि, एवं चरित्ताराहणा वि।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

५ प्रश्न–जस्स णं भंते ! उक्कोसिया णाणाराहणा तस्स उक्कोसिया दंसणाराहणा, जस्स उक्कोसिया दंसणाराहणा तस्स उक्कोसिया णाणाराहणा ?

५ उत्तर–गोयमा ! जस्स उक्कोसिया णाणाराहणा तस्स दंसणाराहणा उक्कोसा वा अजहण्णुक्कोसा वा; जस्स पुण उक्कोसिया दंसणाराहणा तस्स णाणाराहणा उक्कोसा वा, जहण्णा वा, अजहण्णमणुक्कोसा वा ।

६ प्रश्न–जस्स णं भंते ! उक्कोसिया णाणाराहणा तस्स उक्कोसिया चरित्ताराहणा, जस्सुक्कोसिया चरित्ताराहणा तस्सुक्कोसिया णाणाराहणा ?

६ उत्तर–जहा उक्कोसिया णाणाराहणा य दंसणाराहणा य भणिया तहा उक्कोसिया णाणाराहणा य चरित्ताराहणा य भाणियव्वा ।

७ प्रश्न–जस्स णं भंते ! उक्कोसिया दंसणाराहणा तस्स उक्कोसिया चरित्ताराहणा, जस्सुक्कोसिया चरित्ताराहणा तस्सुक्कोसिया दंसणाराहणा ?

७ उत्तर–गोयमा ! जस्स उक्कोसिया दंसणाराहणा तस्स चरित्ताराहणा उक्कोसा वा, जहण्णा वा, अजहण्णमणुक्कोसा वा, जस्स पुण उक्कोसिया चरित्ताराहणा तस्स दंसणाराहणा णियमा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उक्कोसा ।

कठिन शब्दार्थ--उक्कोसिया--उत्कृष्ट, मज्झिमा--मध्यम, जहण्णा--जघन्य जस्सणं--जिसके, अजहण्णमणुक्कोसा--अजघन्यानुत्कृष्ट (मध्यम) ।

भावार्थ-२ प्रश्न-हे भगवन् ! आराधना कितने प्रकार की कही गई है ?

२ उत्तर-हे गौतम ! आराधना तीन प्रकार की कही गई है । यथा—१ ज्ञान आराधना, २ दर्शन आराधना और ३ चारित्र आराधना ।

३ प्रश्न-हे भगवन् ! ज्ञान आराधना कितने प्रकार की कही गई है ?

३ उत्तर—हे गौतम ! तीन प्रकार की कही गई है । यथा-१ उत्कृष्ट २ मध्यम और ३ जघन्य ।

४ प्रश्न—हे भगवन् ! दर्शन आराधना कितने प्रकार की कही गई है ?

४ उत्तर-हे गौतम ! ज्ञान आराधना के समान दर्शन आराधना भी तीन प्रकार की और चारित्र आराधना भी तीन प्रकार की कही गई है ।

५ प्रश्न-हे भगवन् ! जिस जीव के उत्कृष्ट ज्ञान आराधना होती है, उसके उत्कृष्ट दर्शन आराधना होती है और जिस जीव के उत्कृष्ट दर्शन आराधना होती है, उस जीव के उत्कृष्ट ज्ञान आराधना होती है ।

५ उत्तर-हे गौतम ! जिस जीव के उत्कृष्ट ज्ञान आराधना होती है, उसके उत्कृष्ट या मध्यम दर्शन आराधना होती है । जिस जीव के उत्कृष्ट दर्शन आराधना होती है, उसके उत्कृष्ट या मध्यम या जघन्य ज्ञान आराधना होती है ।

६ प्रश्न-हे भगवन् ! जिस जीव के उत्कृष्ट ज्ञान आराधना होती है, उसके उत्कृष्ट चारित्र आराधना होती है, और जिस जीव के उत्कृष्ट चारित्र आराधना होती है, उसके उत्कृष्ट ज्ञान आराधना होती है ?

६ उत्तर—हे गौतम ! जिस प्रकार उत्कृष्ट ज्ञान आराधना और दर्शन आराधना के विषय में कहा, उसी प्रकार उत्कृष्ट ज्ञान आराधना और उत्कृष्ट चारित्र आराधना के विषय में भी कहना चाहिये ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

७ प्रश्न-हे भगवन् ! जिसके उत्कृष्ट दर्शन आराधना होती है, उसके उत्कृष्ट चारित्र आराधना होती है और जिसके उत्कृष्ट चारित्र आराधना होती है, उसके उत्कृष्ट दर्शन आराधना होती है ?

७ उत्तर-हे गौतम ! जिसके उत्कृष्ट दर्शन आराधना होती है, उसके उत्कृष्ट या जघन्य या मध्यम चारित्र आराधना होती है और जिसके उत्कृष्ट चारित्र आराधना होती है, उसके नियमा (अवश्य) उत्कृष्ट दर्शन आराधना होती है ।

आराधकों के शेष भव

८ प्रश्न-उक्कोसियं णं भंते ! णाणाराहणं आराहेत्ता कइहिं भवग्गहणेहिं सिज्झइ जाव अंतं करेइ ?

८ उत्तर-गोयमा ! अत्थेगइए तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झइ, जाव अंतं करेइ; अत्थेगइए दोच्चेणं भवग्गहणेणं सिज्झइ, जाव अंत करेइ; अत्थेगइए कप्पोवएसु वा कप्पाईएसु वा उववज्जइ ।

९ प्रश्न-उक्कोसियं णं भंते ! दंसणाराहणं आराहेत्ता कइहिं भवग्गहणेहिं० ?

९ उत्तर-एवं चेव ।

१० प्रश्न-उक्कोसियं णं भंते ! चरित्ताराहणं आराहेत्ता० ?

१० उत्तर-एवं चेव, णवरं अत्थेगइए कप्पाईएसु उववज्जइ ।

११ प्रश्न-मज्झिमियं णं भंते ! णाणाराहणं आराहेत्ता कइहिं भवग्गहणेहिं सिज्झइ, जाव अंतं करेइ ?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

११ उत्तर–गोयमा ! अत्थेगइए दोच्चेणं भवग्गहणेणं सिज्झइ, जाव अंतं करेइ, तच्चं पुण भवग्गहणं णाइक्कमइ।

१२ प्रश्न–मज्झिमियं णं भंते ! दंसणाराहणं आराहेत्ता ० ?

१२ उत्तर–एवं चेव, एवं मज्झिमियं चरित्ताराहणं पि ।

१३ प्रश्न–जहण्णियं णं भंते ! णाणाराहणं आराहेत्ता कइहिं भवग्गहणेहिं सिज्झइ, जाव अंतं करेइ ?

१३ उत्तर–गोयमा ! अत्थेगइए तच्चेणं भवग्गहणेणं सिज्झइ, जाव अंतं करेइ; सत्त-ट्ठ भवग्गहणाइं पुण णाइक्कमइ । एवं दंसणाराहणं पि, एवं चरित्ताराहणं पि ।

कठिन शब्दार्थ–अत्थेगइए–कितने ही, णाइक्कमइ–अतिक्रमण नहीं करते ।

भावार्थ–८ प्रश्न–हे भगवन् ! ज्ञान की उत्कृष्ट आराधना करके जीव कितने भव ग्रहण करके सिद्ध होता है, यावत् सभी दुःखों का अन्त करता है ?

८ उत्तर–हे गौतम ! कितने ही जीव, उसी भव में सिद्ध हो जाते हैं, यावत् सभी दुःखों का अन्त कर देते हैं । कितने ही जीव दो भवग्रहण करके सिद्ध होते हैं यावत् समस्त दुःखों का अन्त करते हैं । कितने ही जीव कल्पोपपन्न देवलोकों में अथवा कल्पातीत देवलोकों में उत्पन्न होते हैं ।

९ प्रश्न–हे भगवन् ! दर्शन की उत्कृष्ट आराधना करके जीव कितने भवग्रहण करके सिद्ध होता है यावत् सभी दुःखों का अन्त करता है ?

९ उत्तर–हे गौतम ! जिस प्रकार उत्कृष्ट ज्ञान आराधना के विषय में कहा, उसी प्रकार उत्कृष्ट दर्शन आराधना के विषय में भी कहना चाहिए ।

१० प्रश्न–हे भगवन् ! उत्कृष्ट चारित्र आराधना करके जीव कितने भव

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ग्रहण करके सिद्ध होता हैं, यावत् समस्त दुःखों का अन्त करता हैं ?

१० उत्तर-हे गौतम ! जिस प्रकार उत्कृष्ट ज्ञान आराधना के विषय में कहा, उसी प्रकार उत्कृष्ट चारित्र आराधना के विषय में भी कहना चाहिये। कितने ही जीव कल्पातीत देवलोकों में उत्पन्न होते हैं।

११ प्रश्न-हे भगवन् ! ज्ञान की मध्यम आराधना करके जीव कितने भव ग्रहण करके सिद्ध होता हैं, यावत् सर्व दुःखों का अन्त करता हैं ?

११ उत्तर-हे गौतम ! कितने ही जीव, दो भव ग्रहण करके सिद्ध होते हैं यावत् सभी दुःखों का अन्त करते हैं, वे तीसरे भव का अतिक्रमण नहीं करते।

१२ प्रश्न-हे भगवन् ! दर्शन की मध्यम आराधना करके जीव कितने भव ग्रहण करके सिद्ध होता है, यावत् सर्व दुःखों का अन्त करता हैं ?

१२ उत्तर-हे गौतम ! जिस प्रकार मध्यम ज्ञान आराधना के विषय में कहा हैं, उसी प्रकार मध्यम दर्शन आराधना और मध्यम चारित्र आराधना के विषय में भी कहना चाहिये।

१३ प्रश्न—हे भगवन् ! ज्ञान की जघन्य आराधना करके जीव, कितने भव ग्रहण करके सिद्ध होता हैं, यावत् सभी दुःखों का अन्त करता हैं ?

१३ उत्तर-हे गौतम ! कितने ही जीव, तीसरे भव में सिद्ध होते हैं, यावत् सर्व दुःखों का अन्त करते हैं, परन्तु सात-आठ भव का अतिक्रमण नहीं करते। इसी प्रकार जघन्य दर्शन आराधना और जघन्य चारित्र आराधना के विषय में भी कहना चाहिये।

विवेचन—अतिचार न लगाते हुए आचार का शुद्ध पालन करना-'आराधना' है। इसके तीन भेद हैं। यथा-१ ज्ञान आराधना २ दर्शन आराधना और ३ चारित्र आराधना। ज्ञान के काल, विनय, बहुमान आदि आठ आचारों का निर्दोष रीति से पालन करना-ज्ञान आराधना है। शंका, कांक्षा आदि समकित के अतिचारों को न लगाते हुए निःशंकित आदि समकित के आचारों का शुद्धतापूर्वक पालन करना-'दर्शन आराधना' है। सामायिक आदि चारित्र में अतिचार न लगाते हुए निर्मलतापूर्वक पालन करना-'चारित्र आराधना' है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इन तीनों की आराधना में उत्कृष्ट प्रयत्न करना—'उत्कृष्ट आराधना' है, मध्यम प्रयत्न करना मध्यम आराधना है और अल्प प्रयत्न करना जघन्य आराधना है।

उत्कृष्ट ज्ञान आराधना में, उत्कृष्ट और मध्यम दर्शन आराधना पाई जाती है। उत्कृष्ट दर्शन आराधना में, उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य ज्ञान आराधना पाई जाती है। उत्कृष्ट ज्ञान आराधना में उत्कृष्ट और मध्यम चारित्र आराधना पाई जाती है। उत्कृष्ट चारित्र आराधना में तीनों प्रकार की ज्ञान आराधना पाई जाती है। उत्कृष्ट दर्शन आराधना में तीनों प्रकार की चारित्र आराधना पाई जाती है। उत्कृष्ट चारित्र आराधना में नियमा उत्कृष्ट दर्शन आराधना पाई जाती है।

उत्कृष्ट ज्ञान आराधना, उत्कृष्ट दर्शन आराधना और उत्कृष्ट चारित्र आराधना वाला जीव, जघन्य उसी भव में मोक्ष जाता है, उत्कृष्ट दो भव (बीच में एक देव भव करके दूसरे मनुष्य भव) में मोक्ष जाता है मध्यम ज्ञान आराधना, मध्यम दर्शन आराधना और मध्यम चारित्र आराधना वाला जीव, जघन्य दो भव से मोक्ष जाता है और उत्कृष्ट तीन भव से (बीच में दो भव देवों के करके) मोक्ष जाता है। जघन्य ज्ञान आराधना, जघन्य दर्शन आराधना और जघन्य चारित्र आराधना वाला जीव, जघन्य तीन भव से मोक्ष जाता है और उत्कृष्ट सात-आठ भव में मोक्ष जाता है। ये सात भव देव सम्बन्धी और आठ भव चारित्र सम्बन्धी, मनुष्य के समझने चाहिये।

पुद्गल का वर्णादि परिणाम

१४ प्रश्न—कइविहे णं भंते ! पोग्गलपरिणामे पण्णत्ते ?

१४ उत्तर—गोयमा ! पंचविहे पोग्गलपरिणामे पण्णत्ते, तं जहा—वण्णपरिणामे, गंधपरिणामे, रसपरिणामे, फासपरिणामे, संठाण-परिणामे।

१५ प्रश्न—वण्णपरिणामे णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते ?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१५ उत्तर—गोयमा ! पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा—कालवण्णपरिणामे, जाव सुक्किल्लवण्णपरिणामे । एवं एएणं अभिलावेणं गंधपरिणामे दुविहे, रसपरिणामे पंचविहे, फासपरिणामे अट्ठविहे ।

१६ प्रश्न—संठाणपरिणामे णं भंते ! कइविहे पण्णत्ते ?

१६ उत्तर—गोयमा ! पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा—परिमंडलसंठाणपरिणामे, जाव आययसंठाणपरिणामे ।

कठिन शब्दार्थ—पोग्गलपरिणामे—पुद्गल परिणाम, संठाणपरिणामे—आकार परिणाम, परिमंडल—वलयाकार, आयय—आयत ।

भावार्थ—१४ प्रश्न—हे भगवन् ! पुद्गल परिणाम कितने प्रकार का कहा गया है ?

१४ उत्तर—हे गौतम ! पांच प्रकार का कहा गया है । यथा—१ वर्ण परिणाम २ गन्ध परिणाम ३ रस परिणाम ४ स्पर्श परिणाम और ५ संस्थान परिणाम ।

१५ प्रश्न—हे भगवन् ! वर्ण परिणाम कितने प्रकार का कहा गया है ?

१५ उत्तर—हे गौतम ! पांच प्रकार का कहा गया है । यथा—१ काला वर्ण-परिणाम, यावत् शुक्ल (श्वेत) वर्ण-परिणाम । इसी प्रकार इस अभिलाप द्वारा दो प्रकार का गन्ध-परिणाम, पांच प्रकार का रस-परिणाम और आठ प्रकार का स्पर्श-परिणाम जानना चाहिये ।

१६ प्रश्न—हे भगवन् ! संस्थान-परिणाम कितने प्रकार का कहा गया है ?

१६ उत्तर—हे गौतम ! पांच प्रकार का कहा गया है । यथा—परिमण्डल संस्थान-परिणाम, यावत् आयत संस्थान-परिणाम ।

विवेचन—पुद्गल की एक अवस्था से दूसरी अवस्था होना 'पुद्गल-परिणाम'

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कहलाता है। उसके मूल भेद पांच हैं और उत्तर भेद पच्चीस हैं।

पुद्गलास्तिकाय के प्रदेश

१७ प्रश्न–एगे भंते ! पोग्गलत्थिकायपएसे किं दव्वं, दव्वदेसे, दव्वाइं, दव्वदेसा; उदाहु दव्वं च दव्वदेसे य, उदाहु दव्वं च दव्वदेसा य, उदाहु दव्वाइं च दव्वदेसे य, उदाहु दव्वाइं च दव्वदेसा य?

१७ उत्तर–गोयमा ! सिय दव्वं, सिय दव्वदेसे; णो दव्वाइं, णो दव्वदेसा, णो दव्वं च दव्वदेसे य, जाव णो दव्वाइं च दव्वदेसा य।

१८ प्रश्न–दो भंते ! पोग्गलत्थिकायपएसा किं दव्वं, दव्वदेसे–पुच्छा।

१८ उत्तर–गोयमा ! सिय दव्वं, सिय दव्वदेसे, सिय दव्वाइं, सिय दव्वदेसा; सिय दव्वं च दव्वदेसे य, णो दव्वं च दव्वदेसा य; सेसा पडिसेहेयव्वा।

१९ प्रश्न–तिण्णि भंते ! पोग्गलत्थिकायपएसा किं दव्वं, दव्वदेसे–पुच्छा।

१९ उत्तर–गोयमा ! सिय दव्वं, सिय दव्वदेसे, एवं सत्त भंगा भाणियव्वा, जाव सिय दव्वाइं च दव्वदेसे य, णो दव्वाइं च दव्वदेसा य।

२० प्रश्न–चत्तारि भंते ! पोग्गलत्थिकायपएसा किं दव्वं–

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पुच्छा ।

२० उत्तर-गोयमा ! सिय दव्वं, सिय दव्वदेसे; अट्ठ वि भंगा भाणियव्वा, जाव सिय दव्वाइं च दव्वदेसा य; जहा चत्तारि भणिया एवं पंच, छ, सत्त, जाव असंखेज्जा ।

२१ प्रश्न-अणंता भंते ! पोग्गलत्थिकायपएसा किं दव्वं ?

२१ उत्तर-एवं चेव, जाव सिय दव्वाइं च दव्वदेसा य ।

कठिन शब्दार्थ—पएसे--प्रदेश, उदाहु--अथवा, सिय--कथंचित्, पडिसेहेयव्वा--निषेध करना चाहिये ।

भावार्थ-१७ प्रश्न-हे भगवन् ! पुद्गलास्तिकाय का एक प्रदेश (१) द्रव्य हैं, (२) द्रव्य-देश हैं, (३) बहुत द्रव्य हैं, (४) बहुत द्रव्य-देश हैं, अथवा (५) एक द्रव्य और एक द्रव्य-देश है, (६) अथवा एक द्रव्य और बहुत द्रव्य देश हैं, (७) अथवा बहुत द्रव्य और एक द्रव्य-देश हैं, (८) अथवा बहुत द्रव्य और बहुत द्रव्य-देश हैं ?

१७ उत्तर-हे गौतम ! वह कथंचित् एक द्रव्य हैं, कथंचित् एक द्रव्य देश है, परन्तु वह बहुत द्रव्य नहीं और बहुत द्रव्य-देश भी नहीं । एक द्रव्य और एक द्रव्यदेश भी नहीं । यावत् बहुत द्रव्य और बहुत द्रव्यदेश नहीं ।

१८ प्रश्न-हे भगवन् ! पुद्गलास्तिकाय के दो प्रदेश क्या एक द्रव्य है, या एक द्रव्य-देश है, इत्यादि पूर्वोक्त प्रश्न ?

१८ उत्तर-हे गौतम ! १ कथंचित् द्रव्य है, २ कथंचित् द्रव्यदेश है, ३ कथंचित् बहुत द्रव्य है, ४ कथंचित् बहुत द्रव्य-देश है ५ कथंचित् एक द्रव्य और एक द्रव्यदेश है, परन्तु ६ एक द्रव्य और बहुत द्रव्य-देश नहीं ७ बहुत द्रव्य और एक द्रव्यदेश नहीं ८ बहुत द्रव्य और बहुत द्रव्यदेश नहीं ।

१९ प्रश्न-हे भगवन् ! पुद्गलास्तिकाय के तीन प्रदेश, क्या एक द्रव्य

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

है, या एक द्रव्य-देश है—इत्यादि पूर्वोक्त प्रश्न ?

१९ उत्तर—हे गौतम ! कथंचित् एक द्रव्य-है, कथंचित् एक द्रव्य-देश है, यावत् कथंचित् बहुत द्रव्य और एक द्रव्य-देश है, यहां तक सात भंग कहना चाहिये। परन्तु बहुत द्रव्य और बहुत द्रव्यदेश नहीं है।

२० प्रश्न—हे भगवन् ! पुद्गलास्तिकाय के चार प्रदेश, एक द्रव्य है, या एक द्रव्य-देश है, इत्यादि पूर्वोक्त प्रश्न ?

२० उत्तर—हे गौतम ! (१) कथंचित् एक द्रव्य है, (२) कथंचित् एक द्रव्य-देश है, इत्यादि आठ भंग कहना चाहिये। जिस प्रकार चार प्रदेशों के विषय में कहा, उसी प्रकार पांच, छह, सात, यावत् असंख्य प्रदेशों तक कहना चाहिये।

२१ प्रश्न—हे भगवन् ! पुद्गलास्तिकाय के अनन्त प्रदेश--एक द्रव्य है, या एक द्रव्य-देश है, इत्यादि पूर्वोक्त प्रश्न ?

२१ उत्तर—हे गौतम ! पहले कहे अनुसार इस में भी आठ भंग कहना चाहिये।

लोकाकाश और जीव के प्रदेश

२२ प्रश्न—केवइया णं भंते ! लोगागासपएसा पण्णत्ता ?

२२ उत्तर—गोयमा ! असंखेज्जा लोगागासपएसा पण्णत्ता ?

२३ प्रश्न—एगमेगस्स णं भंते ! जीवस्स केवइया जीवपएसा पण्णत्ता ?

२३ उत्तर—गोयमा ! जावइया लोगागासपएसा, एगमेगस्स णं जीवस्स एवइया जीवपएसा पण्णत्ता।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठिन शब्दार्थ–जावइया–जितने, एवइया–उतने ।

भावार्थ–२२ प्रश्न–हे भगवन् ! लोकाकाश के प्रदेश कितने कहे गये हैं ?

२२ उत्तर–हे गौतम ! असंख्य प्रदेश कहे गये हैं ।

२३ प्रश्न–हे भगवन् ! प्रत्येक जीव के प्रदेश कितने कहे गये हैं ?

२३ उत्तर–हे गौतम ! लोकाकाश के जितने प्रदेश कहे गये हैं, उतने ही प्रत्येक जीव के प्रदेश कहे गये हैं ?

विवेचन—इस सूत्र में पुद्गलास्तिकाय के एक प्रदेश के विषय में प्रश्न किये गये हैं। जिनमें द्रव्य और द्रव्य-देश के एक वचन और बहुवचन सम्बन्धी चार भंग हैं और इसी प्रकार द्विक-संयोगी चार भंग हैं । इन आठ भंगों में से एक प्रदेश में दो भंग पाये जाते हैं। जब दूसरे द्रव्य के साथ उस का सम्बन्ध नहीं होता, तब वह 'द्रव्य' है और जब दूसरे द्रव्य के साथ उसका सम्बन्ध होता है तब वह–'द्रव्यदेश' है । प्रदेश एक है, इसलिये उसमें बहुवचन सम्बन्धी दो भंग और द्विक-संयोगी चार भंग—ये छह भंग नहीं पाये जाते ।

पुद्गलास्तिकाय के दो प्रदेशों में उपर्युक्त आठ भंगों में से पहले के पाँच भंग पाये जाते हैं । तीन प्रदेशों में पहले के सात भंग पाये जाते हैं। इनकी घटना स्वयं करलेनी चाहिये। चार प्रदेशों में आठों भंग पाये जाते हैं । चार प्रदेशी से यावत् अनन्त प्रदेशी तक दस बोलों में प्रत्येक में आठ-आठ भंग पाये जाते हैं ।

लोक असंख्य प्रदेशी है, इसलिये उसके प्रदेश असंख्याता हैं । जितने लोक के प्रदेश हैं, उतने ही एक जीव के प्रदेश हैं, जब जीव, केवली-समुद्घात करता है, तब वह अपने आत्म-प्रदेशों से सम्पूर्ण लोक को व्याप्त कर देता है, अर्थात् लोकाकाश के एक-एक प्रदेश पर एक-एक जीव-प्रदेश अवस्थित हो जाते हैं ।

कर्म-वर्गणाओं से आबद्ध जीव

२४ प्रश्न–कइ णं भंते ! कम्मपगडीओ पण्णत्ताओ ?

२४ उत्तर–गोयमा ! अट्ठ कम्मपगडीओ पण्णत्ताओ, तं जहा–

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णाणावरणिज्जं, जाव अंतराइयं ।

२५ प्रश्न-णेरइयाणं भंते ! कइ कम्मपगडीओ पण्णत्ताओ ?

२५ उत्तर-गोयमा ! अट्ठ, एवं सव्वजीवाणं अट्ठ कम्मपगडीओ ठावेयव्वाओ जाव वेमाणियाणं ।

२६ प्रश्न-णाणावरणिज्जस्स णं भंते ! कम्मस्स केवइया अविभागपलिच्छेदा पण्णत्ता ?

२६ उत्तर-गोयमा ! अणंता अविभागपलिच्छेदा पण्णत्ता ।

२७ प्रश्न-णेरइयाणं भंते ! णाणावरणिज्जस्स कम्मस्स केवइया अविभागपलिच्छेदा पण्णत्ता ?

२७ उत्तर-गोयमा ! अणंता अविभागपलिच्छेदा पण्णत्ता; एवं सव्वजीवाणं, जाव-(प्र.) वेमाणियाणं पुच्छा । (उ.) गोयमा ! अणंता अविभागपलिच्छेदा पण्णत्ता, एवं जहा णाणावरणिज्जस्स अविभागपलिच्छेदा भणिया तहा अट्ठण्ह वि कम्मपगडीणं भाणियव्वा, जाव वेमाणियाणं जाव अंतराइयस्स ।

कठिन शब्दार्थ-ठावेयव्वाओ-स्थापित करनी चाहिये (कहनी चाहिये), अविभागपलिच्छेदा-अविभाग परिच्छेद (निरंश अंश-जिसका कोई विभाग नहीं हो सके वैसा अंश)।

भावार्थ-२४ प्रश्न-हे भगवन् ! कर्म-प्रकृतियाँ कितनी कही गई हैं ?

२४ उत्तर-हे गौतम ! कर्म-प्रकृतियाँ आठ कही गई हैं । यथा-ज्ञानावरणीय यावत् अन्तराय ।

२५ प्रश्न-हे भगवन् ! नैरयिक जीवों के कितनी कर्मप्रकृतियाँ कही हैं ?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

२५ उत्तर-हे गौतम ! आठ कर्मप्रकृतियाँ कही गई हैं। इस प्रकार वैमानिक पर्यन्त सभी जीवों के आठ कर्म-प्रकृतियाँ कही हैं।

२६ उत्तर—हे भगवन् ! ज्ञानावरणीय कर्म के कितने अविभागपरिच्छेद कहे हैं ?

२६ उत्तर-हे गौतम ! अनन्त अविभागपरिच्छेद कहे है।

२७ प्रश्न-हे भगवन् ! नैरयिक जीवों के ज्ञानावरणीय कर्म के कितने अविभागपरिच्छेद कहे हैं ?

२७ उत्तर-हे गौतम ! अनन्त अविभागपरिच्छेद कहे हैं। इसी प्रकार सभी जीवों के विषय में कहना चाहिये। यावत् (प्रश्न) वैमानिक देवों के विषय में प्रश्न ? (उत्तर) हे गौतम ! अनन्त अविभागपरिच्छेद कहे हैं। जिस प्रकार ज्ञानावरणीय कर्म के अविभागपरिच्छेद कहे, उसी प्रकार अन्तराय तक आठों कर्म-प्रकृतियों के अविभागपरिच्छेद-वैमानिक पर्यन्त सभी जीवों के कहना चाहिये।

२८ प्रश्न-एगमेगस्स णं भंते ! जीवस्स एगमेगे जीवपएसे णाणावरणिज्जस्स कम्मस्स केवइएहिं अविभागपलिच्छेदेहिं आवेढिय-परिवेढिए ?

२८ उत्तर-गोयमा ! सिय आवेढिय-परिवेढिए, सिय णो आवेढिय-परिवेढिए; जइ आवेढिय-परिवेढिए णियमा अणंतेहिं।

२९ प्रश्न-एगमेगस्स णं भंते ! णेरइयस्स एगमेगे जीवपएसे णाणावरणिज्जस्स कम्मस्स केवइएहिं अविभागपलिच्छेदेहिं आवेढिय-परिवेढिए ?

२९ उत्तर-गोयमा ! णियमं अणंतेहिं, जहा णेरइयस्स एवं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जाव वेमाणियस्स; णवरं मणुस्सस्स जहा जीवस्स ।

३० प्रश्न—एगमेगस्स णं भंते ! जीवस्स एगमेगे जीवपएसे दरिसणावरणिज्जस्स कम्मस्स केवइएहिं ?

३० उत्तर—एवं जहेव णाणावरणिज्जस्स तहेव दंडगो भाणियव्वो जाव वेमाणियस्स; एवं जाव अंतराइयस्स भाणियव्वं; णवरं वेयणिज्जस्स आउयस्स, णामस्स, गोयस्स—एएसिं चउण्ह वि कम्माणं मणुस्सस्स जहा णेरइयस्स तहा भाणियव्वं, सेसं तं चेव ।

कठिन शब्दार्थ—आवेढिय परिवेढिए—आवेष्टित-परिवेष्टित (अत्यन्त गाढ़ रूप से बँधे हुए) जहेव—जिस प्रकार, तहेव—उसी प्रकार ।

भावार्थ—२८ प्रश्न—हे भगवन् ! प्रत्येक जीव का प्रत्येक जीव प्रदेश, ज्ञानावरणीय कर्म के कितने अविभागपरिच्छेदों से आवेष्टित परिवेष्टित है ?

२८ उत्तर—हे गौतम ! कदाचित् आवेष्टित परिवेष्टित होता है और कदाचित् नहीं भी होता । यदि आवेष्टित-परिवेष्टित होता है, तो वह नियमा अनन्त अविभागपरिच्छेदों से होता है ।

२९ प्रश्न—हे भगवन् ! प्रत्येक नैरयिक जीव का प्रत्येक जीव-प्रदेश ज्ञानावरणीय कर्म के कितने अविभाग परिच्छेदों से आवेष्टित-परिवेष्टित होता है ?

२९ उत्तर—हे गौतम ! वह नियमा अनन्त अविभागपरिच्छेदों से आवेष्टित परिवेष्टित होता है । जिस प्रकार नैरयिक जीव के विषय में कहा, उसी प्रकार यावत् वैमानिक पर्यन्त कहना चाहिये । परन्तु मनुष्य का कथन औधिक (सामान्य) जीव की तरह कहना चाहिये ।

३० प्रश्न—हे भगवन् ! प्रत्येक जीव का प्रत्येक जीव प्रदेश, दर्शनावरणीय कर्म के कितने अविभागपरिच्छेदों द्वारा आवेष्टित परिवेष्टित है ?

३० उत्तर—हे गौतम ! जिस प्रकार ज्ञानावरणीय कर्म के विषय में

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दण्डक कहा है, उसी प्रकार यहाँ भी वैमानिक पर्यन्त कहना चाहिये और यावत् अन्तराय कर्म पर्यन्त कहना चाहिये। परन्तु वेदनीय, आयुष्य, नाम और गोत्र-इन चार कर्मों के विषय में जिस प्रकार नैरयिक जीवों के लिये कथन किया है, उसी प्रकार मनुष्यों के लिये कहना चाहिये। शेष सब वर्णन पहले के समान कहना चाहिये।

विवेचन—केवलज्ञानी की प्रज्ञा के द्वारा भी जिसके विभाग न किये जा सकें, ऐसे सूक्ष्म अंश (निरंश अंश) को 'अविभागपरिच्छेद' कहते हैं। वे कर्म स्कन्धों की अपेक्षा, अथवा ज्ञान के जितने अविभागपरिच्छेदों का आच्छादन किया हो, उनकी अपेक्षा अनन्त हैं।

औधिक जीव-सूत्र में जो यह कहा गया है कि 'उसका जीव-प्रदेश ज्ञानावरणीय द्वारा कदाचित् आवेष्टित परिवेष्टित होता है और कदाचित् नहीं होता। यह 'आवेष्टित परिवेष्टित न होने' की बात केवली की अपेक्षा कही गई है। क्योंकि उनके ज्ञानावरणीय कर्म का क्षय हो चुका है। इसलिये उनके आत्म-प्रदेश, ज्ञानावरणीय के अविभागपरिच्छेदों द्वारा आवेष्टित परिवेष्टित नहीं होते। इसी प्रकार दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय के विषय में भी समझना चाहिये। वेदनीय, आयुष्य, नाम और गोत्र, इन चार अघातिक कर्मों के विषय में मनुष्यपद में कोई अन्तर नहीं पड़ता। क्योंकि ये चारों कर्म छद्मस्थों के भी होते हैं और केवलियों के भी होते हैं। सिद्ध भगवान् में नहीं होते। इसलिये जीव-पद में ही इस विषयक भजना है, मनुष्य-पद में नहीं।

कर्मों का पारस्परिक सम्बन्ध

३१ प्रश्न--जस्स णं भंते ! णाणावरणिज्जं तस्स दरिसणावरणिज्जं; जस्स दंसणावरणिज्जं तस्स णाणावरणिज्जं ?

३१ उत्तर--गोयमा ! जस्स णं णाणावरणिज्जं तस्स दंसणावरणिज्जं णियमं अत्थि, जस्स णं दरिसणावरणिज्जं तस्स वि णाणावर-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णिज्जं णियमं अत्थि।

कठिन शब्दार्थ-अत्थि-होता है, या है।

भावार्थ—३१ प्रश्न-हे भगवन् ! जिस जीव के ज्ञानावरणीय कर्म है, उसके दर्शनावरणीय कर्म भी है और जिस के दर्शनावरणीय कर्म है, उसके ज्ञानावरणीय कर्म भी है ?

३१ उत्तर-हाँ गौतम ! जिसके ज्ञानावरणीय कर्म है, उसके नियम से दर्शनावरणीय कर्म भी है और जिसके दर्शनावरणीय कर्म है, उसके नियम से ज्ञानावरणीय कर्म भी है।

३२ प्रश्न-जस्स णं भंते ! णाणावरणिज्जं तस्स वेयणिज्जं, जस्स वेयणिज्जं तस्स णाणावरणिज्जं ?

३२ उत्तर-गोयमा ! जस्स णाणावरणिज्जं तस्स वेयणिज्जं णियमं अत्थि, जस्स पुण वेयणिज्जं तस्स णाणावरणिज्जं सिय अत्थि, सिय णत्थि।

कठिन शब्दार्थ-णत्थि-नहीं होता, या नहीं है।

भावार्थ-३२ प्रश्न-हे भगवन् ! जिसके ज्ञानावरणीय कर्म है, उसके वेदनीय कर्म है, और जिसके वेदनीय कर्म है, उसके ज्ञानावरणीय कर्म है ?

३२ उत्तर-हे गौतम ! जिसके ज्ञानावरणीय कर्म है, उसके नियम से वेदनीय कर्म भी है, किंतु जिसके वेदनीय कर्म है, उसके ज्ञानावरणीय कर्म कदाचित् होता भी है और कदाचित् नहीं भी होता।

३३ प्रश्न-जस्स णं भंते ! णाणावरणिज्जं तस्स मोहणिज्जं जस्स मोहणिज्जं तस्स णाणावरणिज्जं ?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

३३ उत्तर-गोयमा ! जस्स णाणावरणिज्जं तस्स मोहणिज्जं सिय अत्थि, सिय नत्थि; जस्स पुण मोहणिज्जं तस्स णाणावरणिज्जं णियमं अत्थि ।

भावार्थ-३३ प्रश्न-हे भगवन् ! जिसके ज्ञानावरणीय कर्म है, उसके मोहनीय कर्म है ? और जिसके मोहनीय कर्म है, उसके ज्ञानावरणीय कर्म है ?

३३ उत्तर-हे गौतम ! जिसके ज्ञानावरणीय कर्म है, उसके मोहनीय कर्म कदाचित् होता है और कदाचित् नहीं होता । परन्तु जिसके मोहनीय कर्म है, उसके ज्ञानावरणीय कर्म नियम से है ।

३४ प्रश्न-जस्स णं भंते ! णाणावरणिज्जं तस्स आउयं ?

३४ उत्तर-एवं जहा वेयणिज्जेण समं भणियं तहा आउएण वि समं भाणियव्वं, एवं णामेण वि, एवं गोएण वि समं; अंतराइएण समं जहा दरिसणावरणिज्जेण समं तहेव णियमा परोप्परं भाणियव्वाणि ।

कठिन शब्दार्थ—समं—साथ, परोप्परं—परस्पर ।

भावार्थ—३४ प्रश्न—हे भगवन् ! जिसके ज्ञानावरणीय कर्म है, उसके आयुष्य कर्म है, इत्यादि प्रश्न ?

३४ उत्तर-हे गौतम ! जिस प्रकार वेदनीय कर्म के विषय में कहा, उसी प्रकार आयुष्य कर्म के लिए भी कहना चाहिये । इसी प्रकार नाम और गोत्र कर्म के साथ भी कहना चाहिये । जिस प्रकार दर्शनावरणीय कर्म के सम्बन्ध में कहा, उसी प्रकार अन्तराय कर्म के साथ भी परस्पर नियमा कहना चाहिये ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

३५ प्रश्न-जस्स णं भंते ! दरिसणावरणिज्जं तस्स वेयणिज्जं, जस्स वेयणिज्जं तस्स दरिसणावरणिज्जं ?

३५ उत्तर-जहा णाणावरणिज्जं उवरिमेहिं सत्तहिं कम्मेहिं समं भणियं तहा दरिसणावरणिज्जं पि उवरिमेहिं छहिं कम्मेहिं समं भाणियव्वं; जाव अंतराइएणं ।

कठिन शब्दार्थ—उवरिमेहिं—ऊपर के ।

भावार्थ—३५ प्रश्न-हे भगवन् ! जिस जीव के दर्शनावरणीय कर्म है, उसके वेदनीय कर्म है और जिसके वेदनीय कर्म है, उसके दर्शनावरणीय कर्म है ?

३५ उत्तर-हे गौतम ! जिस प्रकार ज्ञानावरणीय कर्म का कथन-ऊपर के सात कर्मों के साथ कहा, उसी प्रकार दर्शनावरणीय कर्म का भी ऊपर के छह कर्मों के साथ कहना चाहिये । इस प्रकार यावत् अन्तराय कर्म तक कहना चाहिये ।

३६ प्रश्न-जस्स णं भंते ! वेयणिज्जं तस्स मोहणिज्जं; जस्स मोहणिज्जं तस्स वेयणिज्जं ?

३६ उत्तर-गोयमा ! जस्स वेयणिज्जं तस्स मोहणिज्जं सिय अत्थि, सिय नत्थि जस्स पुण मोहणिज्जं तस्स वेयणिज्जं णियमं अत्थि ।

भावार्थ-३६ प्रश्न-हे भगवन् ! जिस जीव के वेदनीय कर्म है, उसके मोहनीय कर्म है और जिस के मोहनीय कर्म है, उस जीव के वेदनीय कर्म भी है ?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर-हे गौतम ! जिस जीव के वेदनीय कर्म है, उसके मोहनीय कर्म कदाचित् होता है और कदाचित् नहीं होता, परन्तु जिसके मोहनीय कर्म हैं, उसके वेदनीय कर्म नियम से होता है।

३७ प्रश्न-जस्स णं भंते ! वेयणिज्जं तस्स आउयं ० ?

३७ उत्तर-एवं एयाणि परोप्परं णियमं, जहा आउएण समं एवं णामेण वि गोएण वि समं भाणियव्वं ।

भावार्थ—३७ प्रश्न--हे भगवन् ! जिसके वेदनीय कर्म है, उसके आयुष्य कर्म हैं, इत्यादि प्रश्न ?

३७ उत्तर-हे गौतम ! ये दोनों कर्म परस्पर अवश्य होते हैं। जिस प्रकार आयुष्य कर्म के साथ कहा, उसी प्रकार नाम और गोत्र कर्म के साथ भी कहना चाहिये।

३८ प्रश्न-जस्स णं भंते ! वेयणिज्जं तस्स अंतराइयं-पुच्छा।

३८ उत्तर-गोयमा ! जस्स वेयणिज्जं तस्स अंतराइयं सिय अत्थि, सिय नत्थि; जस्स पुण अंतराइयं तस्स वेयणिज्जं णियमं अत्थि ।

भावार्थ-३८ प्रश्न-हे भगवन् ! जिसके वेदनीय कर्म है, उसके अन्तराय कर्म है, इत्यादि प्रश्न ?

३८ उत्तर-हे गौतम ! जिसके वेदनीय कर्म है, उसके अन्तराय कर्म कदाचित् होता है, और कदाचित् नहीं भी होता। परन्तु जिसके अन्तराय कर्म

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

होता है, उसके वेदनीय कर्म नियमा होता है।

३९ प्रश्न-जस्स णं भंते! मोहणिज्जं तस्स आउयं, जस्स णं भंते! आउयं तस्स मोहणिज्जं?

३९ उत्तर--गोयमा! जस्स मोहणिज्जं तस्स आउयं णियमं अत्थि, जस्स पुण आउयं तस्स पुण मोहणिज्जं सिय अत्थि, सिय णत्थि; एवं णामं गोयं अंतराइयं च भाणियव्वं।

भावार्थ--३९ प्रश्न--हे भगवन्! जिसके मोहनीय कर्म होता है, उसके आयुष्य कर्म होता है और जिसके आयुष्य कर्म होता है, उसके मोहनीय कर्म होता है?

३९ उत्तर—हे गौतम! जिसके मोहनीय कर्म होता है, उसके आयुष्य कर्म अवश्य होता है। जिसके आयुष्य कर्म होता है, उसके मोहनीय कर्म कदाचित् होता है और कदाचित् नहीं भी होता। इसी प्रकार नाम, गोत्र और अन्तराय कर्म के विषय में भी कहना चाहिये।

४० प्रश्न--जस्स णं भंते! आउयं तस्स णामं--पुच्छा।

४० उत्तर--गोयमा! दो वि परोप्परं णियमं, एवं गोत्तेण वि समं भाणियव्वं।

भावार्थ-४० प्रश्न-हे भगवन्! जिसके आयुष्य कर्म होता है, उसके नाम कर्म भी होता है, इत्यादि प्रश्न?

४० उत्तर-हे गौतम! ये दोनों परस्पर नियम से होते हैं। इसी प्रकार गोत्र के साथ भी कहना चाहिये।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

४१ प्रश्न-जस्स णं भंते ! आउयं तस्स अंतराइयं-पुच्छा ।

४१ उत्तर-गोयमा ! जस्स आउयं तस्स अंतराइयं सिय अत्थि, सिय णत्थि; जस्स पुण अंतराइयं तस्स आउयं णियमं अत्थि ।

भावार्थ-४१ प्रश्न-हे भगवन् ! जिसके आयुष्य कर्म होता है, उसके अन्तराय कर्म होता है इत्यादि प्रश्न ?

४१ उत्तर-हे गौतम ! जिसके आयुष्य कर्म होता है, उसके अन्तराय कर्म कदाचित् होता है और कदाचित् नहीं भी होता, परन्तु जिसके अन्तराय कर्म होता है, उसके आयुष्य कर्म अवश्य होता है ।

४२ प्रश्न-जस्स णं भंते ! णामं तस्स गोयं, जस्स णं गोयं तस्स णं णामं-पुच्छा ।

४२ उत्तर-गोयमा ! जस्स णं णामं तस्स णियमा गोयं, जस्स णं गोयं तस्स णियमा णामं; दो वि एए परोप्परं णियमा अत्थि ।

भावार्थ-४२ प्रश्न-हे भगवन् ! जिसके नाम कर्म होता है, उसके गोत्र कर्म होता है और जिसके गोत्र कर्म होता है, उसके नाम कर्म भी होता है ?

४२ उत्तर-हे गौतम ! जिसके नामकर्म होता है, उसके गोत्र-कर्म अवश्य होता है और जिसके गोत्र कर्म होता है, उसके नामकर्म भी अवश्य होता है । ये दोनों कर्म परस्पर नियम से होते हैं ।

४३ प्रश्न-जस्स णं भंते ! णामं तस्स अंतराइयं-पुच्छा ?

४३ उत्तर-गोयमा ! जस्स णामं तस्स अंतराइयं सिय अत्थि,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सिय णत्थि; जस्स पुण अंतराइयं तस्स णामं णियमा अत्थि ।

भावार्थ--४३ प्रश्न--हे भगवन् ! जिसके नामकर्म होता है, उसके अन्तराय कर्म होता है ? और जिसके अन्तराय कर्म होता है, उसके नामकर्म होता है ?

४३ उत्तर- हे गौतम ! जिसके नामकर्म होता है, उसके अन्तराय-कर्म कदाचित् होता है और कदाचित् नहीं भी होता । परन्तु जिसके अन्तराय-कर्म होता है, उसके नामकर्म अवश्य होता है ।

४४ प्रश्न–जस्स णं भंते ! गोयं तस्स अंतराइयं–पुच्छा ।

४४ उत्तर–गोयमा ! जस्स णं गोयं तस्स अंतराइयं सिय अत्थि; सिय नत्थि; जस्स पुण अंतराइयं तस्स गोयं णियमं अत्थि ।

भावार्थ–४४ प्रश्न–हे भगवन् ! जिसके गोत्र-कर्म होता है, उसके अन्तराय-कर्म होता है और जिसके अन्तराय कर्म होता है, उसके गोत्र कर्म होता है ?

४४ उत्तर–हे गौतम ! जिसके गोत्र-कर्म होता है, उसके अन्तराय-कर्म कदाचित् होता है और कदाचित् नहीं भी होता । परन्तु जिसके अन्तराय कर्म होता है, उसके गोत्र-कर्म नियम से होता है ।

विवेचन–'भजना' का अर्थ है 'विकल्प' अर्थात् कदाचित् होता है और कदाचित् नहीं होना । 'नियमा' का अर्थ है 'नियमतः' (अवश्य)। चौबीस दण्डकों की अपेक्षा आठ कर्मों की नियमा और भजना बतलाई जाती है । मनुष्य में ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय–इन चार घाती-कर्मों की भजना है । वेदनीय, आयुष्य, नाम और गोत्र—इन चार अघाती-कर्मों की नियमा है । २३ दण्डकों में आठ कर्मों की नियमा है । सिद्ध भगवान् में कर्म नहीं होते । आठकर्मों की नियमा और भजना के २८ भंग होते हैं । यथा–ज्ञानावरणीय से ७, दर्शनावरणीय से ६, वेदनीय से ५, मोहनीय से ४, आयुष्य से ३ नाम से २, गोत्र-कर्म से १ ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१ ज्ञानावरणीय में दर्शनावरणीय की नियमा है और दर्शनावरणीय में ज्ञानावरणीय की नियमा है।

२ ज्ञानावरणीय में वेदनीय की नियमा है और वेदनीय में ज्ञानावरणीय की भजना है।

३ ज्ञानावरणीय में मोहनीय की भजना है और मोहनीय में ज्ञानावरणीय की नियमा है।

४ ज्ञानावरणीय में आयुष्य-कर्म की नियमा है और आयुष्य में ज्ञानावरणीय की भजना है।

५ ज्ञानावरणीय में नाम-कर्म की नियमा है और नामकर्म में ज्ञानावरणीय की भजना है।

६ ज्ञानावरणीय में गोत्र-कर्म की नियमा है और गोत्र-कर्म में ज्ञानावरणीय की भजना है।

७ ज्ञानावरणीय में अन्तराय की नियमा है और अन्तराय में ज्ञानावरणीय की नियमा है।

८ दर्शनावरणीय में वेदनीय की नियमा है और वेदनीय में दर्शनावरणीय की भजना है।

९ दर्शनावरणीय में मोहनीय की भजना है और मोहनीय में दर्शनावरणीय की नियमा है।

१० दर्शनावरणीय में आयुष्य की नियमा है और आयुष्य में दर्शनावरणीय की भजना है।

११ दर्शनावरणीय में नामकर्म की नियमा है और नामकर्म में दर्शनावरणीय की भजना है।

१२ दर्शनावरणीय में गोत्र-कर्म की नियमा है और गोत्र-कर्म में दर्शनावरणीय की भजना है।

१३ दर्शनावरणीय में अन्तराय-कर्म की नियमा है और अन्तराय में दर्शनावरणीय की नियमा है।

१४ वेदनीय में मोहनीय की भजना है और मोहनीय में वेदनीय की नियमा है।

१५ वेदनीय में आयुष्य की नियमा है और आयुष्य में वेदनीय की नियमा है।

१६ वेदनीय में नामकर्म की नियमा है और नामकर्म में वेदनीय की नियमा है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१७ वेदनीय में गोत्र-कर्म की नियमा है और गोत्र-कर्म में वेदनीय की नियमा है ।
१८ वेदनीय में अन्तराय की भजना है और अंतराय में वेदनीय की नियमा है ।
१९ मोहनीय में आयुष्य की नियमा है और आयुष्य में मोहनीय की भजना है ।
२० मोहनीय में नामकर्म की नियमा है और नामकर्म में मोहनीय की भजना है ।
२१ मोहनीय में गोत्र-कर्म की नियमा है और गोत्र-कर्म में मोहनीय की भजना है ।
२२ मोहनीय में अन्तराय की नियमा है और अन्तराय में मोहनीय की भजना है ।
२३ आयुष्य में नाम-कर्म की नियमा है और नामकर्म में आयुष्य की नियमा है ।
२४ आयुष्य में गोत्र-कर्म की नियमा है और गोत्र-कर्म में आयुष्य की नियमा है ।
२५ आयुष्य में अन्तराय की भजना है और अन्तराय में आयुष्य की नियमा है ।
२६ नामकर्म में गोत्र-कर्म की नियमा है और गोत्रकर्म में नामकर्म की नियमा है ।
२७ नामकर्म में अन्तराय की भजना है और अन्तराय में नाम-कर्म की नियमा है ।
२८ गोत्र-कर्म में अन्तराय की भजना है और अन्तराय में गोत्र-कर्म की नियमा है ।
इस नियमा और भजना की घटना सुगम है ।

जीव पुद्गल है या पुद्गली ?

४५ प्रश्न—जीवे णं भंते ! किं पोग्गली, पोग्गले ?

४५ उत्तर—गोयमा ! जीवे पोग्गली वि, पोग्गले वि । (प्र.) से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—'जीवे पोग्गली वि, पोग्गले वि' ? (उ.) गोयमा ! से जहाणामए—छत्तेणं छत्ती, दंडेणं दंडी, घडेणं घडी, पडेणं पडी, करेणं करी, एवामेव गोयमा ! जीवे वि सोइंदिय-चक्खिदिय-घाणिंदिय-जिब्भिदिय-फासिंदियाइं पडुच्च पोग्गली, जीवं पडुच्च पोग्गले; से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—'जीवे पोग्गली वि,

Jain Education International   For Personal & Private Use Only   www.jainelibrary.org

पोग्गले वि'।

४६ प्रश्न-णेरइए णं भंते ! किं पोग्गली० ?

४६ उत्तर-एवं चेव, एवं जाव वेमाणिए, णवरं जस्स जइ इंदियाइं तस्स तइ वि भाणियव्वाइं।

४७ प्रश्न-सिद्धे णं भंते ! किं पोग्गली, पोग्गले ?

४७ उत्तर-गोयमा ! णो पोग्गली, पोग्गले। (प्र.) से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ-'जाव पोग्गले' ? (उ.) गोयमा ! जीवं पडुच्च, से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ-'सिद्धे णो पोग्गली, पोग्गले।'

❀ सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति ❀

॥ अट्ठमसए दसमो उद्देसो समत्तो ॥

॥ अट्ठमं सयं समत्तं ॥

कठिन शब्दार्थ--पोग्गली--पुद्गली (इन्द्रियों वाला) पोग्गले--पुद्गल (जीव) पडेणं पडी--पट-वस्त्र युक्त होने पर पटी (सवस्त्री) पडुच्च--अपेक्षा (आश्रय) से, करेणं करी--हाथ से हाथ वाला।

भावार्थ-४५ प्रश्न-हे भगवन् ! जीव पुद्गली है, अथवा पुद्गल ?

४५ उत्तर-हे गौतम ! जीव पुद्गली भी है और पुद्गल भी।

प्रश्न-हे भगवन् ! ऐसा क्यों कहते हैं कि 'जीव पुद्गली भी है और पुद्गल भी है' ?

उत्तर-हे गौतम ! जिस पुरुष के पास छत्र हो उसे छत्री, दण्ड हो उसे दण्डी, घट हो उसे घटी, पट हो उसे पटी और कर हो उसे करी कहते हैं, उसी प्रकार जीव भी श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय जिव्हेन्द्रिय, और

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्पर्शनेन्द्रिय की अपेक्षा 'पुद्गली' कहलाता है और जीव की अपेक्षा 'पुद्गल' कहलाता है। इसलिये हे गौतम ! मैं ऐसा कहता हूं कि 'जीव पुद्गली भी है और पुद्गल भी है।'

४६ प्रश्न–हे भगवन् ! नैरयिक जीव पुद्गली हैं अथवा पुद्गल ?

४६ उत्तर–हे गौतम ! उपरोक्त सूत्र की तरह यहां भी कहना चाहिये। अर्थात् नैरयिक जीव पुद्गली भी हैं और पुद्गल भी है। इसी प्रकार वैमानिक पर्यंत कहना चाहिये, परन्तु जिन जीवों के जितनी इन्द्रियां हों, उनके उतनी इन्द्रियां कहनी चाहिये।

४७ प्रश्न–हे भगवन् ! सिद्ध जीव पुद्गली हैं या पुद्गल ?

४७ उत्तर–हे गौतम ! सिद्ध जीव, पुद्गली नहीं, किन्तु पुद्गल हैं ?

(प्र.) हे भगवन् ! ऐसा क्यों कहा कि–'सिद्ध जीव पुद्गली नहीं, पुद्गल हैं' ?

(उ.) हे गौतम ! जीव की अपेक्षा सिद्ध जीव पुद्गल हैं, इसलिए ऐसा कहता हूं कि सिद्ध जीव पुद्गली नहीं पुद्गल हैं।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है। हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है। इस प्रकार कह कर गौतम स्वामी यावत् विचरते हैं।

विवेचन–श्रोत्र, चक्षु, आदि पुद्गल जिसके हों, उसे 'पुद्गली' कहते हैं। घट, पट, दण्ड, छत्र आदि के योग से पुरुष को–घटी, पटी, दण्डी, छत्री कहते हैं। इसी प्रकार पुद्गल (इन्द्रियों) के योग से जीव को 'पुद्गली' कहते हैं।

जीव को जो 'पुद्गल' कहा है, वह जीव की 'संज्ञा' है। अर्थात् जीव के लिये पुद्गल शब्द संज्ञावाची है।

॥ इति आठवें शतक का दसवां उद्देशक समाप्त ॥

आठवाँ शतक सम्पूर्ण

॥ तृतीय भाग समाप्त ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

श्री भगवती सूत्र के

प्रथम भाग में–

शतक १–२ पृ. १ से ५३२ तक।

द्वितीय भाग में–

शतक ३–४–५–६ पृ. ५३३ से १०७६ तक।

तृतीय भाग में–

शतक ७–८ पृ. १०७७ से १५७० तक।

चतुर्थ भाग छप रहा है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णिग्गंथं पावयणं सच्चं

जो उवमिज्जइ सययं,तं संघ गुणायरं वंदे

श्री अ.भा.सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ जोधपुर

अखिल भारतीय सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org